दिल्ली सल्तनत और उसका राजपूताना से सम्बंध
(1173–1526 ई.)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा से इतिहास में

डॉक्टर ऑफ़ फिलॉसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबंध

2020

शोध-पर्यवेक्षक
प्रो. (डॉ.) याक़ूब अली खान
सी.ए.एस., इतिहास विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविधालय,
अलीगढ़

शोधार्थी
हेमराज चन्देल

मानविकी एवं समाज विज्ञान विद्यापीठ
इतिहास विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा (राजस्थान) – 324010

हेमराज चन्देल
जेआरएफ-यूजीसी
इतिहास विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा (राजस्थान)

प्रमाण – पत्र

मैं हेमराज चन्देल यह प्रमाणित करता हूँ कि इतिहास विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.) में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध जिसका शोध शीर्षक **"दिल्ली सल्तनत और उसका राजपूताना से सम्बंध (1173-1526 ई.)"** है। यह शोध कार्य मैंने पूज्य गुरुदेव प्रो. (डॉ.) याकूब अली खान, प्रोफ़ेसर, सी.ए.एस. इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश) एवं (पूर्व) प्रोफ़ेसर, इतिहास विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.) के निर्देशन में यूजीसी शोध विनियम 2009 के अंतर्गत पूर्ण किया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध मेरे व्यक्तिगत अनुसंधान पर आधारित मौलिक शोध कार्य है।

दिनांक

हेमराज चन्देल

शोधार्थी

प्रो. (डॉ.) याक़ूब अली खान
सी.ए.एस. इतिहास विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश)
(पूर्व प्रोफेसर)
इतिहास विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा (राजस्थान)

प्रमाण – पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **हेमराज चन्देल,** शोधार्थी, वर्धमान महवीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान) ने मेरे निर्देशन में **"दिल्ली सल्तनत और उसका राजपूताना से सम्बंध (1173-1526 ई.)"** विषय पर डॉक्टर ऑफ़ फिलॉसफी की उपाधि हेतु शोध कार्य किया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध शोधार्थी का व्यक्तिगत अनुसंधान पर आधारित मौलिक शोध कार्य है। यह शोध प्रबंध यूजीसी शोध विनियम 2009 के अंतर्गत पूर्ण किया गया। यह शोध प्रबंध इतिहास में डॉक्टर ऑफ़ फिलॉसफी की उपाधि हेतु वर्धमान महवीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.) को प्रेषित किया जा रहा है।

दिनांक **प्रो. (डॉ.) याक़ूब अली खान**

आभार

परम श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव एवं आदरणीय प्रो. (डॉ.) याक़ूब अली खान, प्राचार्य, सी. ए. एस. इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश) का ह्रदय से आभारी हूँ, जिनके विद्धतापूर्ण निर्देशन व स्नेहपूर्ण व्यवहार के फलस्वरूप मैं यह शोध कार्य पूर्ण करने में सफल हो सका हूँ। आपका पितृतुल्य स्नेह अमूल्य मार्गदर्शन कठिन परिश्रम अनुपम सहयोग शांत स्वाभाव और धैये जैसे गुण मुझे भविष्य में उन्नति हेतु अग्रसर होने की प्रेरणा देते रहेगें । समय-समय पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से दूरभाष के माध्यम से भी आपने शोध कार्य के दौरान आने वाली समस्याओं को सुलझा कर मुझे सदैव आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है।

मैं वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के प्रो. (डॉ.) आर. एल. गोदारा, कुलपति महोदय, प्रो. (डॉ.) बी. अरुण कुमार, निदेशक अकादमिक, डॉ. सुबोध कुमार, शोध निदेशक, प्रो. (डॉ.) दिनेश कुमार गुप्ता, पूर्व शोध निदेशक, डॉ. क्षमता चौधरी, उप-शोध निदेशक, डॉ. पंतजलि मिश्रा, उप-शोध निदेशक, पूर्व प्रो. (डॉ.) कमलेश शर्मा, डॉ. कपिल गौतम, डॉ. अखिलेश कुमार, डॉ. प्रभुलाल सैनी, पूर्व कृषि मंत्री, राजस्थान सरकार, का ह्रदय से आभारी हूँ जिन्होंने कार्य में व्यस्त होने पर भी विशेष समय निकलकर सदैव प्रेरित करते रहें। साथ ही मैं विश्वविद्यालय के उन समस्त गुरुजनों का आभारी हूँ। जिनका प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सहयोग मुझे शोध कार्य में मिला। मैं उन समस्त लेखकों अनुसंधानकर्ताओं के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ जिनके द्वारा किये गये कार्यो का सहयोग शोध कार्य में लिया है। शोध विभाग के कनिष्ठ लिपिक सुरेश कुमार सैनी, सहायक कर्मचारी बालकिशन का आभार व्यक्त करता हूँ। साथी शोधार्थी व मित्र पवन कुमार वर्मा, महावीर चतुर्वेदी, यशवंत जैन, महावीर बैरवा, वरिष्ठ पत्रकार, सुरेन्द्र सिंह नरूका, भूपेंद्र सिंह, विजेंद्र कुमार, रविशंकर मेघवाल, डॉ. सुधांशु गौतम का भी आभार व्यक्त करता हूँ। मैं अपने समस्त परिवार के प्रति ह्रदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिनके सहयोग एवं स्नेहमयी भावना के कारण मैं यह संकलन प्रस्तुत कर रहा हूँ। पिता श्री सूरजमल चन्देल, माता श्रीमति रामप्यारी चन्देल, मेरे बड़े भाई श्री रामलाल चन्देल, पूर्व सरपंच ग्राम पंचायत आंवा व श्री मदन लाल चन्देल, बड़ी बहनें श्रीमति गीता, श्रीमति संतोष, श्रीमति सुशीला पहाड़ियाँ, श्रीमति मनोहर सोयल (अध्यापक) ससुर जी श्री रमेश कुमार राजोरा (भू-अभिलेखाकर), माता श्रीमति अनोखी राजोरा जिनके आशीर्वाद से मैं शोध कार्य पूर्ण कर सका। इसके साथ ही मेरा विशेष आभार व कृतज्ञता जीवन साथी श्रीमती अमिता चन्देल, बेटी नवन्या व बेटा शौर्य चन्देल के प्रति है जिन्होंने मुझे प्यार व मानसिक सम्बल प्रदान किया है।

हेमराज चन्देल

विषय-सूची

प्रमाण – पत्र i

प्रमाण – पत्र ii

आभार iii

विषय-सूची iv

प्रस्तावना 1

संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन 6

शोध प्रविधि 18

अध्याय प्रथम 23

1. राजस्थान: एक परिचय एवं राजपूताना के प्रमुख राज्यों की ऐतिहासिक प्रष्ठभूमि 23

1.1 राजस्थान : एक परिचय 23

1.2 राजपूताना के प्रमुख राज्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 33

अध्याय-द्वितीय 68

2. मोहम्मद गौरी (1173-1206 ई.), गुलाम वंश (1206-1290 ई.) व राजपूताना 69

2.1 मोहम्मद गौरी (1173 -1206 ई.) 69

2.2 मोहम्मद गौरी के भारत पर आक्रमण के उद्देश्य 71

2.3 मोहम्मद गौरी व राजपूताना (1173-1206 ई.) 72

2.3.1 मोहम्मद गौरी का लोद्रवा पर आक्रमण व जैसलमेर राज्य की स्थापना 72

2.3.2 मोहम्मद गौरी का गुजरात पर आक्रमण व जैसलमेर के शासक शालीवाहन का हस्तक्षेप 74

2.3.3 गुजरात अभियान में सिरोही के कयाद्रा गाँव में मोहम्मद गौरी की भारत में प्रथम पराजय 75

2.3.4 मोहम्मद गौरी व पृथ्वीराज तृतीय 77

2.3.5 पृथ्वीराज तृतीय व मोहम्मद गौरी के 1178-1190 ई. के मध्य छेड़छाड़ 78

2.3.6 मोहम्मद गौरी का तबरहिन्द या भंठिडा दुर्ग पर अधिकार..... 78

2.3.7 तराईन नामक स्थान की पहचान 79

2.3.8 तराईन का प्रथम युद्ध 1191 ई.:- चौहानों की विजय 80

2.3.9 तराईन का द्वितीय युद्ध (1192 ई.) : चौहानों की पराजय 82

2.3.10 तराईन के द्वितीय युद्ध के सम्बंध में विभिन्न इतिहासकारों के मतों का विवेचनात्मक विवरण 83

2.3.11 पृथ्वीराज चौहान तृतीय के अंत के बारे में विभिन्न इतिहासकारों के कथन:..... 85

2.3.12 हरिराज चौहान का विद्रोह (1193 ई.) अजमेर में चौहान सत्ता की पुनःस्थापना..... 87

2.3.13 मोहम्मद गौरी के अधिकार में रणथम्भौर का दुर्ग..... 89

2.3.14 चौहान–तोमर सम्मिलित विद्रोह (1194ई.) व अजमेर में तुर्क-सल्तनत की पुर्नस्थापना 90

2.3.15 मोहम्मद गौरी व मारवाड़ 91

2.3.16 मोहम्मद गौरी व नागौर..... 93

2.3.17 मोहम्मद गौरी व आमेर का कछवाहा राजवंश 94

2.3.18 मोहम्मद गौरी व बयाना 94

2.3.19 अजमेर का मेर विद्रोह कुतुबुद्दीन ऐबक के जीवन का सर्वोधिक कठिनतम का समय..... 96

2.3.20 मोहम्मद गौरी व जालौर 97

2.3.21 खोखरों का विद्रोह (1206 ई.) व मोहम्मद गौरी 98

2.4 गुलाम वंश व राजपूताना (1206-1290 ई.) 101

2.5 कुतुबुद्दीन ऐबक व राजपूताना (1206-1210 ई.) 102

2.6 शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (1211-1236 ई.) व राजपूताना 105

2.7 शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के उत्तराधिकारी व राजपूताना (1236-1266 ई.) 112

2.8 गयासुद्दीन बलबन (1266-1287 ई.) व राजपूताना 119

अध्याय–तृतीय 126

3. खिलजी वंश (1290-1320 ई.) व राजपूताना 126

3.1 खिलजी वंश 1290-1320 ई. 126

3.2 जलालुद्दीन फिरोजशाह खिलजी (1290-1296 ई.) व राजपूताना: 128

3.2.1 जलालुद्दीन फिरोजशाह खिलजी का रणथम्भौर पर प्रथम आक्रमण 128

3.2.2 जलालुद्दीन फिरोज खिलजी का पाली, सांचौर और मण्डोर पर आक्रमण 132

3.3 अलाउद्दीन खिलजी व राजपूताना (1296-1316 ई.) 133

3.3.1 अलाउद्दीन खिलजी व जैसलमेर 135

3.3.2 अलाउद्दीन खिलजी व रणथम्भौर 139

3.3.3 अलाउद्दीन खिलजी व चित्तौड़ (1302 –1303 ई.) 156

3.3.4 अलाउद्दीन खिलजी व जालौर 161

3.4 खिलजी सुल्तानों की राजपूताना के सम्बंध में कोई स्पष्ट नीति नहीं 171

अध्याय-चतुर्थ 175

4. तुगलक़ वंश (1320-414 ई.) व राजपूताना 175

4.1 गयासुद्दीन(1320-1325 ई.) व मुहम्मद बिन तुगलक (1325-1351ई.) व राजपूताना 175

4.1.1 कछवाहा कोतल का विद्रोह 176

4.1.2 हम्मीर द्वारा मेवाड़ की स्वतंत्रता 176

4.1.3 मुहम्मद बिन तुगलक द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण 179

4.1.4 जालौर का स्वतंत्र होना 180

4.1.5 रावल घडसी के नेतृत्व में जैसलमेर की स्वतंत्रता 183

4.1.6 देवीसिंह द्वारा बूंदी राज्य की स्थापना 185

4.1.7 दिल्ली सल्तनत व करौली 190

4.1.8 डुंगरपुर राज्य की स्थापना व दिल्ली सल्तनत- 192

4.1.9 सिरोही राज्य की स्थापना व दिल्ली सल्तनत:- 193

4.2 फिरोजशाह तुगलक (1351-1388 ई.) व राजपूताना 195

4.2.1 फिरोजशाह तुगलक़ का कालरून या गागरोन के शासक राव पीपा या वप्पा पर आक्रमण .. 195

4.2.2 मेवात के कोका चौहान व वजीर खानेजहाँ का विद्रोह 196

4.3 उत्तरवर्ती तुगलक सुल्तान (1388 -1414 ई.) व राजपूताना 197

4.4 मण्डोर (मारवाड़) में राठौड़ राज्य उत्कर्ष 197

4.5 बतनीर (भटनेर) दुर्ग पर तैमूर का आक्रमण 200

4.6 उत्तरवर्ती तुगलक़ शासक व मेवाड़ के सिसोदियों का उत्कर्ष:- 202

4.7 तुगलक वंश का पतन व राजपूताना:- 203

अध्याय-पंचम 206

5. सैयद वंश (1414-1451 ई.) व राजपूताना 206

5.1 खिज्र खाँ (1414-1421 ई.) व राजपूताना:- 207

5.1.1 खिज्र खाँ व नागौर:- 207

5.1.2 खिज्र खाँ व बयाना:- 209

5.1.3 खिज्र खाँ व मेवात:- 209

5.2 मुबारक शाह (1421-1434 ई.) व राजपूताना:- 210

5.2.1 मुबारक शाह व मेवात:- 210

5.2.2 मुबारक शाह व बयाना:- 212

5.3 मोहम्मद शाह (1434-1443ई.) अलाउद्दीन शाह (1443-1451ई व राजपूताना:- 214

अध्याय-षष्टम 216

6. लोदी वंश (1451-1526 ई.) व राजपूताना 216

6.1 बहलोल लोदी व राजपूताना (1451-1489 ई.):- 217

6.1.1 बहलोल लोदी व मेवाड़:- 218

6.1.2 बहलोल लोदी व धौलपुर:- 219

6.1.3 बहलोल लोदी व रणथम्भौर:- 220

6.2 सिकन्दर लोदी व राजपूताना (1489-1517 ई.):- 220

6.2.1 सिकन्दर लोदी व बयाना:- 221

6.2.2 सिंकदर लोदी व धौलपुर:- 222

6.2.3 सिकन्दर लोदी व नागौर 223

6.2.4 रणथम्भौर व सुल्तान सिकन्दर लोदी:- 225

6.3 इब्राहीम लोदी व राजपूताना (1517-1526 ई.):- 226

6.3.1 सुल्तान इब्राहीम लोदी व बयाना:- 226

6.3.2 सुल्तान इब्राहीम लोदी व नागौर:- 226

6.3.3 मेवाड़ और सुल्तान इब्राहीम लोदी:- 227

6.3.4 खातोली का युद्ध 1517. ई.:- 229

6.3.5 बारी (धौलपुर) का युद्ध 1518-19 ई.:- 229

उपसंहार 234

संदर्भ ग्रंथ..... 251

संदर्भ ग्रंथ सूची..... 293

परिशिष्ट:-प्रकाशित शोध-पत्र/सेमिनार कांफ्रेंस प्रमाण-पत्र

प्रस्तावना

इतिहास के जनक व इतिहास के प्रथम व्याख्याता यूनानी विद्वान हेरोटोड्स (545-456 ईसा पूर्व) ने इतिहास को खोज अन्वेषण या अनुसंधान के अर्थ के रूप में ग्रहण करते हुए इसके चार लक्ष्य निर्धारित किये थे। प्रथम इतिहास वैज्ञानिक विधा है, अर्थात इसकी पद्धति आलोचनात्मक होती है। द्वितीय यह मानव जाति समूह से सम्बधिंत होने के कारण मानवीय विधा या मानविकी है। तृतीय इतिहास तर्कसंगत विधा है अर्थात इसके तथ्य व निष्कर्ष प्रमाण पर आधारित होते है। चतुर्थ यह अतीत के आलोक में भविष्य पर प्रकाश डालता है। अत: इतिहास शिक्षाप्रद विधा है। प्रसिद्ध इतिहासकार टायनबी के अनुसार यूनान के प्रसिद्ध कवि होमर के 'ईलियड' महाकाव्य को कोई इतिहास के रूप में पढ़ना चाहे तो उसे वह हानियों से भरा मिलेगा और यदि कोई उसे कथा के रूप में पढ़ना प्रारम्भ करे तो उसमें उसे इतिहास ही इतिहास मिलेगा।

किसी भी देश अथवा प्रदेश विशेष का गौरव उसके इतिहास से जाना जा सकता है। कर्नल जेम्स टॉड के पूर्व राजस्थान के इतिहास से संदर्भित विधा का विकास भी यहाँ के विभिन्न राज्यों के रूप में अनेकानेक खंडों में बंटा हुआ था। प्रत्येक राज्य का इतिहास उस राज्य की स्थापना व उसके संस्थापक के उत्थान से ही शुरू होता है, उस राज्यों की घटनाओं तक ही सीमित होता है। उनमें राजनीतिक घटनाओं तथा युद्धों के विवरण को ही अधिक महत्व दिया गया है। अन्य राज्यों का उल्लेख प्रसंगवंश ही किया जाता है। साक्ष्य के तौर पर पृथ्वीराज रासो को देखते है तो उसमे केवल चौहान वंश की उपलब्धियाँ ही मिलती है। पूरे राजस्थान के इतिहास को लिखने की शुरुआत मुहनौत नैणसी ने की। इन्होंने राजपूताना के विभिन्न राज्यों के साक्ष्यों को एकत्रित करके अपनी ख्यात को पूरा किया। फलस्वरूप हमें राजपूताना का आंशिक इतिहास एक रचना में मिल सका। कर्नल जेम्स टॉड ने प्रथम बार राजपूताना के अधिकांश राज्यों के इतिहास को एक ही ग्रन्थ में उपलब्ध कराने का प्रयास किया। बूंदी के महाराजा रामसिंह के आदेश से महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण ने 'वंश भास्कर' की रचना करके टॉड के काम को आगे बढ़ाया। उदयपुर के कविराज श्यामलदास ने चार भागों में ' वीर विनोद' की रचना करके राजस्थान के इतिहास को एक नया स्वरूप प्रदान किया। परन्तु इन सभी रचानों में संतुलित ऐतिहासिक साम्रगी का अभाव बना रहा। गौरीशंकर हिराचंद ओझा ने इस दिशा में और काम करते हुए व इस कमी को पूरा करते हुए अनेक खंडो में राजस्थान का इतिहास लिखा। तत्पश्चात नवीन इतिहासकारों ने ऐतिहासिक शोध कार्यों के आधार पर राजस्थान के इतिहास को एक नई दिशा प्रदान की है। इनमें डॉ. गोपीनाथ शर्मा, जगदीश सिंह गहलोत, रामनाथ रतनु, डॉ. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, डॉ. मथुरा लाल शर्मा, डॉ. दशरथ शर्मा, डॉ. रधुवीर शर्मा,

आदि प्रमुख है। राजस्थान के सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास के प्रति आकर्षण एवं शोध कार्य को प्रोत्साहित करने करने श्रेय प्रो. (डॉ.) याकुब अली खान, डॉ. कालूराम शर्मा को दिया जाता है।

प्राचीन भारत के इतिहास में हर्षवर्धन को अंतिम महान शासक कहा जाता है। समकालीन चीनी यात्री युआन च्वांग व इतिहासकार बाणभट्ट ने भी उसकी प्रशंसा और उपलब्धियों का वर्णन किया है। परन्तु यह गौरव उसके साथ ही समाप्त हो गया। इसका प्रमुख कारण यह था कि हर्ष का प्रशासन सामंतवाद पर आधारित था। हर्ष की मृत्यु के बाद सामंती तत्व शक्तिशाली हो गये। उन्होंने स्वतंत्र सत्ता की स्थापना कर ली। उत्तर व पश्चिमी भारत में एक नये युग का सूत्रपात हुआ।

712 ई. में सिंध में अरब शासन की स्थापना हुई। परन्तु वे सिंध से आगे नहीं बढ़ सके। दूसरी और कन्नौज पर यशोवर्मन ने अधिकार कर लिया। इसने मध्य और पूर्वी भारत में अपनी शक्ति का विस्तार किया। अरबों को आगे बढनें से रोका। चीन के सम्राट के साथ राजनयिक संबंध कायम किये। यशोवर्मन की मृत्यु के बाद कन्नौज में अराजकता फ़ैल गयी। फिर वज्रायुद्ध ने कन्नौज पर अधिकार कर आयुद्धवंश की स्थापना की। इसके बाद उत्तर व मध्य भारत में राजनैतिक विघटन तेजी से हुआ। इसके फलस्वरूप नये राज्यों और राजवंशों की स्थापना हुई। त्रिपक्षीय युद्धों के फलस्वरूप उत्तरी भारत की शक्तियों की फिर से दलबंदी आरम्भ हो गई। उत्तर भारत की राजनीति में अब राजपूत शक्तिशाली हो गये। क्षेत्रीय राज्यों की स्थापना होने लगी। राजपूताना के विभिन्न भागों में भी भिन्न-भिन्न राजवंशों के राज्य की स्थापना हुई। इन सभी राजवंशों को सम्मिलित रूप से राजपूत वंश कहा गया है। ये ब्राहम्ण, क्षत्रिय दोनों के मिश्रित रक्त के थे। जिनमें में से अधिकतर को राजपूत वंश का भी नहीं माना गया। लेकिन इनके कर्त्तव्य हिन्दू धर्म के क्षत्रियों की भाँति होने के कारण इन्हें राजपूत वंशों के अंतर्गत रखा गया। सभी ने विदेशी आक्रमणकारी अरबों व तुर्कों से संघर्ष किया। इन परिस्थितियों के कारण इनकों भारतीय संस्कृति में सम्मिलित कर लिया गया। इस कारण मूल भारतीय हिन्दू संस्कृति में मौलिक परिवर्तन हुए। इस कारण इस युग की अपनी एक अलग विशेषता बन गयी और इस युग को एक पृथक नाम 'राजपूत युग' के नाम से जाना गया। यह सभी नवीन तत्व दसवीं सदी के अंत में गुर्जर प्रतिहार राज्य के नष्ट होने के बाद प्रकट हुए। यही कारण है कि राजपूत युग का प्रारम्भ दसवीं सदी को माना गया है क्योंकि गुर्जर प्रतिहार वंश को भी राजपूत माना गया है।

भारत में इस्लामी राज्य की स्थापना का श्रेय तुर्कों को दिया जाता है। महमूद गजनवी ने 11 वीं सदी में भारत पर आक्रमण किया और भारत सहित राजपूताना के विभिन राजपूत राज्यों की सैन्य शक्ति को कमजोर कर

दिया और उनकी धन सम्पति को खूब लूटा। लेकिन महमूद गजनवी ने उत्तर–पश्चिम, सिंध व मुल्तान के अलावा भारत के किसी क्षेत्र को अपने साम्राज्य में सम्मिलित करने में कोई रूचि नहीं ली। महमूद गजनवी के आक्रमणों के 148 वर्षो बाद मोहम्मद गौरी ने भारत पर आक्रमण किया। जिसके परिणामस्वरूप भारत में तुर्की राज्य की स्थापना हुई। पूर्व मध्य युग के प्रारम्भ में राजपूताना के विभिन्न प्रदेशों में राजपूत जाति के वीरों ने अपने-अपने राज्यों की स्थापना की। इनके द्वारा स्थापित राज्य स्थान विशेष अथवा अपने वंश के नाम से प्रसिद्ध हुए। कालान्तर में इन्हें विविध राजपूत राज्यों की संज्ञा दी गयी। ये राज्य व राजपूत वंश जैसे दिल्ली व अजमेर का चौहान राजपूत वंश, मेवाड़ का गुहिल राजवंश, मारवाड़ राज्य में राठौड़ वश, रणथम्भौर का चौहान वंश, जैसलमेर राज्य के यदुवंशी भाटी राजपूत, आमेर के कछवाहा राजपूत, जालौर के सोनगरा चौहान, नागौर, बयाना, मण्डोर, बूंदी, मेवात या अलवर, करौली का यदुवंशी राजपूत वंश, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, सिरोही राज्य, गागरोन का राज्य आदि थे। प्रस्तुत शोध प्रबंध राजपूताना के राज्यों का दिल्ली सल्तनत के सम्बन्धों के विविध आयामों के अध्ययन में सहायक होगा।

प्रस्तुत शोध-कार्य दिल्ली सल्तनत और उसका राजपूताना से सम्बंध छ: अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में राजस्थान का सामान्य परिचय, राजपूताना के विभिन्न प्राचीन प्रदेशों के नामों का वर्णन तथा भौगोलिक परिवेश के साथ ही मेवाड़ के गुहिल, सांभर व अजमेर के चौहान, रणथम्भौर के चौहान, मारवाड़ के राठौड़, आमेर के कछवाह, नागौर, जालौर के सोनगरा चौहान, जैसलमेर के भाटी राजपूत, बयाना, करौली के यदुवंशी राजपूत आदि राज्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है।

द्वितीय अध्याय के मोहम्मद गौरी और उसका राजपूताना से सम्बंध में गौर वंश का उदय, मोहम्मद गौरी के भारत आक्रमण के उद्देश्य, मोहम्मद गौरी और जैसलमेर के बीच सम्बंध, मोहम्मद गौरी के गुजरात आक्रमण के समय जैसलमेर रावल शालिवाहन का हस्तक्षेप, मोहम्मद गौरी की प्रथम पराजय राजपूताना के सिरोही राज्य के कयाद्रा गाँव में, मोहम्मद गौरी व पृथ्वीराज तृतीय के बीच तराईन का प्रथम व द्वितीय युद्धों का वर्णन, पृथ्वीराज तृतीय के अंत समय के बारे में विभिन इतिहासकारों के विचार, अजमेर में हरिराज के नेतृत्व में चौहानों का विद्रोह व अजमेर में पुन: चौहान राज्य की स्थापना, मोहम्मद गौरी के अधिकार क्षेत्र में रणथम्भौर का दुर्ग, चौहान–दिल्ली के तोमर का सम्मिलित विद्रोह, मोहम्मद गौरी का मारवाड़, नागौर, बयाना व आमेर के कछवाहा, अजमेर का मेर विद्रोह व कुतुबुद्दीन ऐबक का सर्वाधिक संकटमय समय, जालौर के सोनगरा चौहान आदि के साथ सम्बन्धों का उल्लेख करता है।

“गुलाम या ममलुक वंश का राजपूताना से सम्बंध (1206 ई. से 1290 ई.)” में कुतुबुद्दीन ऐबक और राजपूताना में सम्बंध (1206-1210 ई.) कुतुबुद्दीन ऐबक का अजमेर, रणथम्भौर, कुतुबुद्दीन ऐबक व आरामशाह और जालौर, कुतुबुद्दीन ऐबक और बयाना, कुतुबुद्दीन ऐबक और नागौर आदि के बीच सम्बंध तथा शम्सुद्दीन इल्तुतुमिश और राजपूताना के बीच सम्बंध में, शम्सुद्दीन इल्तुतुमिश द्वारा जालौर, व मण्डोर पर आक्रमण, रणथम्भौर पर अधिकार, नागौर व बयाना के साथ सम्बंध तथा नागदा में सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतुमिश की पराजय, सुल्तान इल्तुतमिश के उत्तराधिकारी रुकनुद्दीन फिरोज व रजिया व सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद का रणथम्भौर पर आक्रमण, नासिरुद्दीन महमूद के समय मलिक अज्जुद्दीन बलबन ए किश्लू खाँ का नागौर में विद्रोह, नासिरुद्दीन महमूद व मेवाड़ व बूंदी, इसी के समय मेवातियों का आंतक तथा गयासुद्दीन बलवल का राजपूताना के साथ सम्बंध आदि का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय “खिलजी वंश और उसका राजपूताना” के साथ सम्बंध में जलालुद्दीन खिलजी का रणथम्भौर पर दो बार असफल आक्रमण, अलाउद्दीन खिलजी का जैसलमेर पर प्रथम आक्रमण, सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी और रणथम्भौर का शासक हम्मीर देव, अलाउद्दीन खिलजी द्वारा रणथम्भौर पर आक्रमण के कारण, नव-मुसलमानों का विद्रोह व रणथम्भौर में शरण, उलुग खाँ व नुसरत खाँ के नेतृत्व में शाही सेना का रणथम्भौर पर आक्रमण, इस आक्रमण के बाद रणथम्भौर में परिवर्तन, तुर्कों द्वारा रणथम्भौर लेने का असफल प्रयास, सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का रणथम्भौर पर आक्रमण व विजय, सुल्तान के विरूद्ध विद्रोह, सुल्तान द्वारा रणथम्भौर से संधि करने का प्रयास, दुर्ग में अन्न आदि का संकट, रतिपाल व रणमल का विश्वासघात, दुर्ग पर विजय, समसामयिक साहित्य में उल्लेखित प्रथम जौहर, सुल्तान व हम्मीर देव के बीच अंतिम युद्ध, उलुग खाँ के अधिकार में रणथम्भौर, अलाउद्दीन खिलजी और चित्तौड़, अलाउद्दीन खिलजी व गुहिलवंशीय शासक समरसिंह, सुल्तान व रावल रतनसिंह, सुल्तान द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण के कारण, पदमनी आख्यान, चित्तौड़ विजय, खिज्र खाँ के अधीन चित्तौड़, मालदेव सोनगरा के अधीन चित्तौड़, अलाउद्दीन खिलजी और जालौर पर आक्रमण, गुजरात अभियान के समय जालौर पर आक्रमण, जालौर विजय का द्वितीय चरण, जालौर पर आक्रमण का तृतीय चरण, सिवाना पर आक्रमण, जालौर पर आक्रमण का चतुर्थ व पंचम चरण, जालौर पर विजय, नागौर और खिलजी वंश, नागौर पर मंगोल आक्रमण और सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी, खिलजी सुल्तानों की राजपूताना के सम्बंध में कोई स्पष्ट नीति नहीं आदि का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है।

चतुर्थ अध्याय "तुग़लक वंश और राजपूताना में सम्बंध (1320-1414 ई.)" सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक (1320-1325 ई.) व सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक (1325-1351ई.) व राजपूताना में सम्बंध-कछवाहा कोतल का विद्रोह, हम्मीर के नेतृत्व में मेवाड़ का स्वतंत्र होना, हम्मीर द्वारा चित्तौड़ विजय का समय, हम्मीर द्वारा चित्तौड़ विजय की कथा, मुहम्मद तुगलक़ द्वारा मेवाड़ पर आक्रमण, मुहम्मद तुगलक़ के समय बणवीर सोनगरा चौहान के नेतृत्व में जालौर राज्य की पुन: संस्थापना, रावल घडसी के नेतृत्व में सुल्तान मुहम्मद तुगलक के समय जैसलमेर का स्वतंत्र होना, देवीसिंह के नेतृत्व में बूंदी राज्य की स्थापना, महाराज अर्जुनपाल के नेतृत्व में करौली में यदुवंशी राज्य की स्थापना, डूंगरपुर राज्य की स्थापना, सिरोही राज्य की स्थापना, फिरोज तुगलक और राजपूताना में सम्बंध (1351-1388 ई.), कालरून या गागरोन पर आक्रमण, मेवात का कोका चौहान व वजीर खानेजहाँ का विद्रोह, उत्तरवर्ती तुगलक सुल्तान (1388 -1414 ई.) व राजपूताना में सम्बंध, मण्डोर (मारवाड़) में राठौड़ राज्य उत्कर्ष, बतनीर (भटनेर) दुर्ग पर तैमूर का आक्रमण, मेवाड़ के सिसोदियों का उत्कर्ष, तुगलक वंश का पतन और राजपूताना आदि का विस्तृत विवरण प्रस्तुत है।

पंचम अध्याय "सैयद वंश और उसका राजपूताना से सम्बंध (1414-1451 ई.)" खिज्र खाँ व राजपूताना (1414-1421 ई.) खिज्र खाँ का नागौर, बयाना, मेवात से सम्बंध, मुबारक शाह (1421-1434 ई.) व राजपूताना, मेवात बयाना में सम्बंध आदि का विस्तृत विवरण प्रस्तुत है।

पष्ठम अध्याय "लोदी वंश व राजपूताना में सम्बंध (1451-1526 ई.)" बहलोल लोदी और राजपूताना में सम्बंध (1451-1489 ई.), बहलोल लोदी का मेवाड़, मेवात, धौलपुर, रणथम्भौर आदि से सम्बंध, सिकन्दर लोदी और राजपूताना में सम्बंध (1489-1517 ई.), सिकन्दर लोदी का बयाना, साम्राज्य की दूसरी राजधानी बयाना, सिकन्दर लोदी और धौलपुर, नागौर में फिरोज खाँ द्वितीय और सिकन्दर लोदी, मोहम्मद खाँ और सुल्तान सिकन्दर लोदी, रणथम्भौर व सुल्तान सिकन्दर लोदी में सम्बंध, सुल्तान इब्राहीम लोदी व राजपूताना में सम्बंध (1517-1526 ई.), सुल्तान इब्राहीम लोदी का बयाना, नागौर व मेवाड़ से सम्बंध, सुल्तान इब्राहीम लोदी व मेवाड़ के महाराणा सांगा के मध्य 1517 ई. में खातोली व 1518 ई. का बारी या धौलपुर का युद्ध आदि का विस्तृत विवरण प्रस्तुत है। तथा अन्त में उपसंहार के रूप में शोध प्रबंध के सारांश को प्रस्तुत किया गया है।

संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन

प्रस्तुत अध्याय में शोध-छात्र द्वारा शोध-शीर्षक दिल्ली सल्तनत और उसका राजपूताना से सम्बंध (1173-1526 ई.) से सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन किया है। वह इस प्रकार है।

- **(त्रिपाठी, 1940, पृ. 538-545)** ने अपने शोध-पत्र ***"एन्सेंट हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया"*** में निष्कर्ष निकाला है या वर्णन किया है। प्राचीन भारत में मेसोडोनिया के शासक सिकन्दर के आक्रमण करने के परिणामस्वरूप तक्षशिला के शासक आम्भी व झेलम व चिनाब के मध्यवर्ती प्रदेश के शासक पौरुस के बीच सम्बंध स्थापित होने पर भारत व पश्चिमी देशों के साथ व्यापारिक सम्बंध और दृढ हुए। इस व्यापारिक वृद्धि के फलस्वरूप भारतीय मुद्रा कला का निर्माण हुआ। यूनानी शासन पद्धति का भारतीय शासन पद्धति, यहाँ की कला स्थापत्य, लेखन कला आदि में परिवर्तन हुआ। सिकन्दर के आक्रमण की तिथि से भारतीय इतिहास की तिथि का निर्धारण हुआ। भारतीय ज्योतिष विधा ने यूनानियों को बहुत प्रभावित किया। भारत में यूनानी उपनिवेश स्थापित हुए। इसके बाद भारत व यूनान के बीच सम्बन्धों का एक नये अध्याय की शुरुआत हुई।
- **(राय, 1935, पृ. 686-692)** ने अपने शोध-पत्र ***"डेट ऑफ़ दी फर्स्ट मौर्य एम्पायर"*** से यह निष्कर्ष निकाला है कि भारत के प्रथम सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य व बेबीलोन के राजा सेल्यूकस के बीच संधि या सम्बंध स्थापित होने के परिणामस्वरूप दोनों देशों के बीच राजनीतिक व सामाजिक व आर्थिक सम्बन्धों की शुरुआत होती है, सम्बंध स्थापित हुए। चन्द्रगुप्त मौर्य व सेल्युकस की पुत्री हेलना के मध्य वैवाहिक सम्बंध हुआ। बेबीलोन का राजदूत भारत आया। उसने भारत के बारे में लिख कर अपना विवरण प्रस्तुत किया। दोनों शासकों के मध्य उपहारों का आदान-प्रदान हुआ। इस तरह के सम्बंध भारत व बेबीलोन के मध्य बाद के शासकों के समय भी जारी रहे।
- **(रत्नावत, 2009)** ने अपनी पुस्तक ***"मुग़ल-राजपूत सम्बंध (1526-1707)"*** में निष्कर्ष निकाला है या वर्णन किया है मुग़ल व राजपूतों के मध्य सम्बंध होने पर राजपूतों की सार्वभौमिकता समाप्त हो गयी। इस दौरान राजपूताना में अनेक ऐसे शासक हुए जिन्होंने मुग़लों के साथ किसी प्रकार का सम्बंध स्थापित नहीं किया। वह जीवन पर्यन्त लोहा लेते रहे। अपनी मात्र-भूमि की स्वतंत्रता का संग्राम बड़ी कठिनाईयों के बावजूद भी जारी रखा।

- **(भार्गव, 1964)** ने अपनी पुस्तक **"*मारवाड़ से मुगलों के सम्बंध*"** में निष्कर्ष निकाला है या विवेचना की है मारवाड़ व मुगल साम्राज्य के निर्णय को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। इससे पूर्व दिल्ली सल्तनत काल में मारवाड़ के उत्थान व विकास की विवेचना पृथ्वीराज की मोहम्मद गौरी के द्वारा पराजय जिसके परिणाम स्वरूप चौहान साम्राज्य का अंत व राजस्थान में छोटे छोटे नये राज्यों की स्थापना। इस सन्दर्भ पुस्तक में की गयी है। जिसके परिणामस्वरूप दिल्ली सल्तनत का मारवाड़ से सम्बंध स्थापित हुआ।
- **(परिहार, 1977)** ने अपनी पुस्तक **"*मराठा-मारवाड़ सम्बंध (1724-1843 ई.)*"** में अपने विचार व्यक्त किये है। इसमें मारवाड़ के राठौड़ शासकों की मराठा शक्ति के साथ सम्बन्धों की विवेचनात्मक व्याख्या की गयी है। इसमें यह भी बताया गया है कि मुग़ल साम्राज्य के अवनति के समय मारवाड़ के राठौड़ व मराठों ने शक्ति के प्रसार की नीतियाँ अपनाई। इनके आपसी टकराव के परिणामस्वरूप ऐसे हालात पैदा हुए जिनका लाभ अगेजों ने उठाया। अग्रेजों ने इन दोनों को पराजित कर इन पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। पहली बार उस युग की राजनैतिक शक्तियों के आपसी संघर्ष, समकालीन तीसरी शक्ति का विवेचनात्मक अध्ययन इसमें किया गया है।
- **(शर्मा ग. , 1976)** *ने अपनी पुस्तक* **"*मेवाड़ मुग़ल-सम्बंध*"** में विचार व्यक्त किया है कि मेवाड़-मुगल सम्बंध इतिहास में अपने आप में एक रोचक एवं प्रेरणादायक है। मेवाड़ के शासकों ने अपनी परम्परा के रक्षार्थ त्याग की भावना से मुगलों से निरन्तर युद्ध लड़े। इसमें राजपूत, ब्राहम्ण, वैश्य व भीलों ने बड़ी तत्परता से अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए मेवाड़ के शासकों का साथ दिया। इसके परिणामस्वरूप मुगलों ने भी अंत समय में यहाँ के शासकों से युद्ध के स्थान पर सहयोग का रास्ता अपनाया। इसका फल यह हुआ की दोनों शक्तियों के सांस्कृतिक आदान-प्रदान के कारण एक ने दूसरे को प्रभावित किया। लेखक ने इन समूची परिस्थिति का विश्लेषण यहाँ वैज्ञानिक रूप से किया है।
- **(खान य. अ., 2003, पृ. 123)** ने अपनी पुस्तक **"*मध्ययुगीन ऐतिहासिक निबन्ध*"** के अध्याय चतुर्थ मुग़ल-राजपूत सम्बंध में अपने विचार व्यक्त किये है। इसमें मुग़ल काल (1526-1707) के सभी शासकों की राजपूतों के प्रति नीतियाँ की विवेचनात्मक व्याख्या की गयी है। अकबर से पूर्व के सभी शासकों ने राजपूतों से शत्रुता मोल ले रखी थी। इसलिए वे शान्तिपूर्व ढंग से शासन नहीं कर पाये। उस समय राजपूतों के अलावा और कोई भरोसे योग्य नहीं थे। वे आवश्यकता पड़ने पर अपना सर्वस्व न्यौछावर

करने को तत्पर थे। अकबर ने पहली बार इस वीर राजपूतों के महत्व को समझा और इनसे सम्बंध स्थापित करना चाहा।

- **(शर्मा द. , 1935, पृ. 149-152)** ने अपने शोध-पत्र **"*इन्वेंशन ऑफ़ जैसलमेर बाय खिल्जिस*"** निष्कर्ष निकला है। खिल्जियों के द्वारा जैसलमेर पर जो दो आक्रमण किये गये थे। उनको किसी भी ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर ख़ारिज नहीं किया जा सकता है। त्रुटी को समझकर दूर किया जा सकता है और इसे आसानी से समझा जा सकता है। अनजाने में जलालुद्दीन फिरोजशाह के समय के आक्रमण को अलाउद्दीन खिलजी के समय का बता दिया गया। इस प्रकार सुल्तानों के आक्रमण का क्रम उल्टा हो गया। जिनके समय जैसलमेर पर आक्रमण हुआ। आक्रमण के परिणामस्वरूप इनमें आपसी सम्बंध स्थापित हुए। जैसलमेर पर मुस्लिमों का अधिकार होने पर अनेक राजनीतिक व सामाजिक परिवर्तन हुए।
- **(बनर्जी, 1935, पृ. 345-349)** ने अपने शोध-पत्र **"*किंगशिप एंड नोबिलिटी इन दी थर्टीन सेंचुरी*"** में निष्कर्ष निकला है कि भारत में मुस्लिम राज्य का वास्तविक संस्थापक मुईनुद्दीन मोहम्मद साम था। 1206 ई. में वह भारत से गया। उसके दास अधिकारी उसके द्वारा विजित प्रदेशों पर नियुक्त थे। कुतुबुद्दीन ऐबक जो उसके दासों में प्रमुख था और भारतीय प्रदेशों का गवर्नर था। उसने भारत में दिल्ली सल्तनत की स्थापना की। मोहम्मद गौरी व भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना, गुलाम वंश 1206-1290 ई. के सभी शासकों शासन व्यवस्था, सैनिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक तथ्यों की विवेचनात्मक व्याख्या की गयी है। परिणामस्वरूप भारत की तत्कालीन राजनीति व सामाजिक धार्मिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। भारत व तुर्कों के मध्य सभी क्षेत्रों में सम्बंध स्थापित हुए।
- **(बनर्जी, 1935, पृ. 686-692)** ने अपने शोध-पत्र **"*किंगशिप एंड नोबिलिटी इन दी फोर्टीन्थ सेंचुरी*"** में निष्कर्ष निकला है कि दिल्ली सल्तनत में खिजली वंश के सत्ता में बैठने के बाद सम्बन्धों के एक नये अध्याय की शुरुआत हुई। तुर्कों व हिन्दुओं के मध्य प्रशासनिक, आर्थिक, धार्मिक सम्बन्धों की शुरुआत हुई। सम्पूर्ण भारत को इस राजवंश ने प्रभावित किया।
- **(शाहनवाज, 2014, पृ. 133-137)** ने अपने शोध-पत्र **"*कैरियर एंड अचीवमेंट ऑफ़ ए मुइज़्ज़ नोबल मलिक बहाउद्दीन तुगरिल*"** में निष्कर्ष निकाला है कि तुर्कों का बयाना के महत्वपूर्ण दुर्ग तहनगढ़ पर अधिकार होने पर नवीन सम्बन्धों की स्थापना हुई। इसके बाद बयाना के यादव राजपूत शासन का अंत

हो गया। दिल्ली सल्तनत के लिए बयाना का तहनगढ़ दुर्ग पूर्वी राजस्थान का सैनिक व प्रशासनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण केंद्र बन गया। नवीन नगर की स्थापना कर शरीयत या मुस्लिम कानूनों को लागू किया गया। इस प्रकार बयाना के साथ राजनीतिक, धार्मिक व सामाजिक सम्बंधों की एक नयी शुरुआत हुई।

- **(जोशी व. , 1977, पृ. 5-12)** ने अपने शोध-पत्र ***"राजस्थान के साथ लोदी सुल्तानों के सम्बंध"*** में निष्कर्ष" निकला है कि लोदी वंश के प्रथम शासक का राजस्थान के साथ सम्बंध का कोई विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता। इसका राजस्थान के धौलपुर व रणथम्भौर के साथ सम्बंध स्थापित हुआ। सिकंदर लोदी के शासन काल में भी राजस्थान के धौलपुर व रणथम्भौर के साथ सम्बंध कायम रहे। नागौर पर पुन: इनका अधिकार स्थापित हुआ। लोदी वंश के अंतिम शासक इब्राहीम लोदी का राजस्थान के मेवाड़ राज्य के शासक महाराणा सांगा के साथ सम्बन्धों का उल्लेख इस शोध-पत्र संक्षेप में किया गया है।
- **(माथुर.एम.एल., मार्च 1951, पृ. 52-69)** ने अपने शोध-पत्र ***"चित्तौड़ व अलाउद्दीन खिलजी"*** में निष्कर्ष निकाला है। दिल्ली सल्तनत के खिलजी सुल्तान अलाउद्दीन के द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण और उस पर अधिकार करने के परिणामस्वरूप दिल्ली सल्तनत व चित्तौड़ में सम्बंध स्थापित हुआ। पहली बार चित्तौड़ पर मुस्लिम गवर्नर की नियुक्ति की गयी। जिससे वहाँ की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक स्वरूप में परिवर्तन हुआ। लेकिन हिन्दुओं के विरोध के कारण दस साल बाद चित्तौड़ में हिन्दू गवर्नर की नियुक्ति की गयी। जिसके कारण चित्तौड़ व दिल्ली सल्तनत के अध्याय में एक नये राजनैतिक सम्बन्धों की शुरुआत स्थापना हुई। इसके बाद यहाँ के राजपूतों ने लक्ष्मणसिंह के पोते हम्मीर के नेतृत्व में सोनगरा चौहानों को चित्तौड़ से निकाल कर उस पर अधिकार कर लिया।
- **(शर्मा श. र., मार्च 1950, पृ. 27-39)** ने अपने शोध-पत्र ***"नासिरुद्दीन खुसरो शाह"*** में निष्कर्ष निकाला है। कि खुसरो खाँ दिल्ली सल्तनत के अंतिम खिलजी सुल्तान मुबारक शाह की हत्या कर नासिरुद्दीन खुसरो शाह के नाम से शासक बना था। वह हिन्दू धर्म से परिवर्तित मुसलमान था। उसका शासन काल भारतीय मुसलमानों द्वारा राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने का द्वितीय प्रयास था। प्रथम प्रयास नासिरूद्दीन महमूद के शासन काल में इमादुद्दीन रैहान ने किया था। उसने देवल रानी से विवाह किया। उसने निज़ामुद्दीन औलिया जैसे धार्मिक व्यक्ति का भी नैतिक समर्थन प्राप्त कर लिया था। धार्मिक भावना के

कारण मुस्लिम अमीरों लोगों ने इसे पसंद नहीं किया। गयासुद्दीन तुगलक ने इसकों पराजित कर दिल्ली सल्तनत के एक नवीन वंश की स्थापना की।

- **(माथुर, दिसम्बर 1950, पृ. 263-276)** ने अपने शोध-पत्र **"*ओरिजिन ऑफ़ दी गुहिलोट्स: दे वर नगर ब्राह्मण* (they were नगर brahmans)"** में निष्कर्ष निकाला है। मेवाड़ के गुहिलोत सूर्य वंश के क्षत्रिय है। इनको क्षत्रियवंश का मंडन मणि कहा गया है।
- **(शर्मा द. , दिसम्बर 1949, पृ. 292-296)** ने अपने शोध-पत्र **"*जाजा, जाजदेव ऑर जज्जाला ए मिनिस्टर एंड कमान्डर ऑफ़ हम्मीर ऑफ़ रणथम्भौर"*** में निष्कर्ष निकाला है दिल्ली सल्तनत के खिलजी सुल्तान ने रणथम्भौर दुर्ग पर अधिकार करने के लिए आक्रमण किया। युद्ध के अंतिम समय हम्मीर अपने 9 साथियों के साथ दुर्ग से बाहर निकला। दुर्ग की सुरक्षा के लिए चौहान जाजा को नियुक्त किया था। हम्मीर की मृत्यु के बाद जाजा चौहान ने दो दिन तक अलाउद्दीन खिलजी के आठ गवर्नरों के साथ अकेले ही हिन्दुवती में युद्ध किया था। दो दिन तक दुर्ग की रक्षा करता है। हम्मीर की अधिकांश विजय व उसकी सफलता श्रेय जाजा चौहान को दिया जाता है।
- **(मजूमदार, दिसम्बर 1939, पृ. 622-628)** ने अपने शोध-पत्र **"*शोर्ट कल्चरल हिस्ट्री ऑफ़ दी चाहमान"*** में निष्कर्ष निकाला है। चाहमान शासकों के राजनीतिक सम्बंध परिस्थितियों पर निर्भर करते थे। इसी के आधार पर उनके मित्र व शत्रु बनते थे। उनकी प्रशासनिक व्यवस्था का वर्णन किया है। सभी चाहमान शासकों का समान आराध्य देव शिव व विष्णु थे। धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक सम्बन्धों की विवेचना की गयी है।
- **(शर्मा द. , मार्च 1936, पृ. 145-149)** ने अपने शोध-पत्र **"*ए न्यू जीनिएलजि ऑफ़ दी राठौड़"*** में निष्कर्ष निकाला है। जयचंद के वंशज सीहा जी व सेतराम का राजस्थान के जोधपुर व बीकानेर के राठौड़ों के साथ सम्बंध था।
- **(सिंह, 1974, पृ. 17-21) ने** अपने शोध-पत्र **"राव *केलण की मृत्यु"*** में निष्कर्ष निकाला है कि जैसलमेर के महारावल केहर ने केलण को गद्दी से हटा कर माड देश से निकाल दिया था। इसके बाद वह सम्भवत: 1387-88 ई. में जैसलमेर से सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के समय शहजादा मोहम्मद की सेवा में चला गया। उसे समना क्षेत्र की जागीर प्राप्त हुई। इस कारण केलण ने फिरोज शाह तुगलक

की मृत्यु के बाद हुए उत्तराधिकार युद्ध में गयासुद्दीन तुगलकशाह, अबुबक्र शाह के विरूद्ध सुल्तान मुहम्मद शाह के पक्ष में लड़ाईयाँ लड़ीं। सुल्तान नासिरुद्दीन, सुल्तान हूमायूं व मोहम्मद शाह के शासन काल में अपनी शक्ति को बढ़ाया। अपने शोध पत्र में निष्कर्ष रूप से लिखते है कि तैमूर के भटनेर आक्रमण के समय राव केलण का वध नहीं किया गया था। इसके बाद भी वह काफी समय तक जीवित रहा।

- **(गुप्ता, 1974, पृ.155)** ने अपने शोध-पत्र ***"मिराकयल्स ओरिजिन ऑफ़ दी राजपूत"*** में निष्कर्ष निकाला है कि विदेशी व भारतीय दोनों विद्वानों द्वारा राजपूतों की उत्पत्ति विशेष रूप से अग्निकुल से चौहानों, चालुक्य, परमार, प्रतिहारों की चर्चा की गयी है। इसके पीछे विश्वामित्र का उद्देश्य यह था। उस समय के विदेशी आक्रमणकारियों के खिलाफ इन चारों को एक जुट करना था। लेकिन यह सिद्वात राजपूतों की छतीस कुलों की व्याख्या नहीं करता है। राजपूत पुराने क्षत्रिय थे जो छठी शताब्दी बाद आये थे। यह शोध-पत्र राजपूत शासक परिवारों के कुलों की उत्पत्ति की कुछ रोचक कहानियाँ बताता है।
- **(शर्मा द. , 1972, पृ. 32-38)** ने अपने शोध-पत्र ***"खानजादा ऑफ़ नागौर-ओरिजिन एंड हिस्ट्री"*** में निष्कर्ष है कि नागौर के खानजादा का उल्लेख मुस्लिम स्रोतों में हुआ। फिरोजशाह तुगलक के शासन काल में वाजिह उल मुल्क के वंशज राजपूत से मुस्लिम धर्म में परिवर्तित हो गये थे। सुल्तान की मृत्यु के बाद यह दिल्ली सल्तनत के अधिकार क्षेत्र से बाहर हो गये थे। कुछ समय बाद शाहजादा फिरोज खाँ, उसका पुत्र मुईनुद्दीन, शम्स खाँ दंदानी के पुत्र हाकिम खाँ की और से चित्तौड़ के राणा के साथ हुए युद्ध में मार गये।
- **(अहमद, 1940, पृ. 48-56)** ने अपने शोध पत्र **"फाउंडेशन ऑफ़ मुस्लिम रूल इन इंडिया (1206-1290)"** में भारत में तुर्क शासन की स्थापना, भारत में तुर्क शासन की स्थापना के प्रारम्भिक दौर के समय किस प्रकार भारत में मुस्लिम कानूनों को लागु किया गया। दिल्ली सल्तनत व राजपूताना की विभिन्न रियासतों के मध्य संषर्ष की बात की है। इस समय राजपूताना विभिन्न रियासतों में विभक्त था। यहाँ की रियासतों ने किस प्रकार तुर्को क मुकाबला किया। अपने शौर्ये व बल के द्वारा कई रियासतों ने तुर्को के जीवन को संकट में डाल दिया। उन्हें पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। कई रियासतों को पराजय क भी सामना करना पड़ा। फिर भी इस समय तक यहाँ की कई रियासतों ने अपने अस्तित्व को बनाये रखा था। दिल्ली सल्तनत की भारत में स्थापना के बाद यहाँ किस प्रकार मुस्लिम कानूनों को

लागु किया गया। किस प्रकार यहाँ के शासन, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था आदि के मध्य सामजस्य स्थापित करने की कोशिश की गयी आदि की विवेचना की गयी है।

- **(हबीबुल्लाह, 1940, p. 750)** ने अपने शोध-पत्र ***"सुल्तान रज़िया"*** में निष्कर्ष निकाला है कि मुस्लिम राजनीतिक विचारधारा में पहली बार दिल्ली की आम जनता ने उत्तराधिकार के प्रश्न पर स्वयं निर्णय लिया। वह इल्तुतमिश के उत्तराधिकारियों में सबसे योग्य थी। महिला होते हुए भी वह पुरुषोचित गुणों से परिपूर्ण थी। रज़िया में एक महान शासक के सभी गुण थे। मुस्लिम शासन काल के इतिहास में वह एक मात्र महिला है जिसने राजसत्ता क उपभोग किया। तीन वर्षों से अधिक समय तक दिल्ली पर शासन किया। उसके शासन के प्रारम्भिक समय के दौरान सामंत और उलेमा ने भी उसका खुलकर विरोध करने का साहस नहीं कर सके ।
- **(हीराचंद, 1954)** राजस्थान विश्व विधापीठ, साहित्य संस्थान, उदयपुर का श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा के महत्वपूर्ण निबन्धों का यह विस्तृत ***"ओझा निबन्ध संग्रह"*** एक महत्वपूर्ण एवं अनूठा प्रकाशन है। स्व. ओझा ने अपने स्वर्गवास के पहले अपने सभी निबन्ध इस संस्थान को सप्रेम भेंट कर दिए थे। ओझा ने एक अग्रदुत की भाँति इतिहास को प्रमाणित किया। वंशालियों, घटना-क्रमों और अन्य ऐतिहासिक सामग्रियों के आधार पर राजपूताना के राजवंशों के सामने उस मतिमान राजपूताना के राजवंशों के विशाला को खड़ा किया। यह ओझा निबन्ध संग्रह प्रमाणित करता है कि ओझा ने भारतीय इतिहास की प्राचीन पगडंडियों खंडहरों, ताम्र-पत्रों और उनके विवादास्पद इतिहास प्रसंगों एवं व्यक्तियों को अछुता नहीं छोड़ा। परोक्षतः ओझा ने प्राचीन भारत व मध्यकालीन इतिहास की कई मार्ग दिशायें खोली है । "ओझा निबन्ध संग्रह" के विषय पर दृष्टिपात करते ही ऐसा प्रतीत होता है, सूक्ष्म किन्तु विशाल इतिहास नयन प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय अतीत को एकाग्र होकर देख रहा है। निबन्ध संग्रह के दूसरे भाग में दो प्रकरण है। मुख्यतः पहले में हिन्दी साहित्य के इतिहास से सम्बंध रखने वाले निबन्धों को रखा गया है। निबन्ध में आनंद विक्रम संवत् की कल्पना नाम का प्रबंध सवर्प्रथम रखा गया है। दूसरा प्रबंध पृथ्वीराजरासो का निर्माण काल, संग्रह का तीसरा लेख विमल प्रबंध और विमल पर है। संग्रह के पाँचवें लेख में कवि जटमल रचित गोरा बादल की बात का सारांश और उसका जायसी के पद्मावत से तुलनात्मक अध्ययन है। ओझा का अनुमान है कि पदमनी सभवतःसिंगोली के जागीरदार की पुत्री रही हो। संग्रह के दूसरे प्रकरण में इतिहास और पुरातत्व के लेख संग्रहित है।

- **(ओझा, 1937)** ने अपनी पुस्तक ***"राजपूताना का प्राचीन इतिहास"*** में निष्कर्ष निकाला है कि अत्यंत प्राचीन काल में भारतवर्ष ही संसार की सभ्यता का आदि स्रोत था। यही से संसार के कहीं प्रदेशों में धर्म, सभ्यता, संस्कृति, विज्ञान और विधा का प्रचार हुआ। परन्तु भारतवर्ष का मुसलमानों के आने से पहले का क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता है। मुसलमानों के समय प्राचीन नगर, मंदिर, मठ आदि धर्मस्थल, राजमहल और पुस्तकालय नष्ट कर गयें। जिससे भारतीय इतिहास के अधिकांश साधन विलुप्त हो गए। इन सब घटनों से स्पष्ट है कि ऐसी अवस्था में इस देश का क्रमबद्ध इतिहास बना रहना और मिलना कठिन था। प्रस्तुत पुस्तक में चीन व तिब्बत का भारतवर्ष के साथ घनिष्ठ सम्बंध का विस्तृत वर्णन किया गया है। उन्होंने अपनी भाषा में कई संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद किया। श्रीलंका का भारत के साथ विशेष सम्बंध रहा। उनके दीपवंश, महावंश और मिलन्द्पन्हो आदि ग्रंथों में भारत कई ऐतिहासिक घटनाओं के बारे में जानकारी मिलती है। इस ऐतिहासिक ग्रन्थ में राजपूताना के विभिन्न प्रदेशों के भिन्न-भिन्न नाम, राजपूतों कई उत्पत्ति, मूल निवास स्थल आदि राजपूताना से सम्बंध रखने वाले प्राचीन राजवंश जैसे रामायण व राजपूताना, महाभारत व राजपूताना, मौर्ये वंश व राजपूताना, राजपूताना के पूर्वी मौर्येवंशी राजा, यूनानी या यवन या ग्रीक राजाओं का राजपूताना से सम्बंध, गुप्त वंश का राजपूताने से सम्बंध आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। मुसलमानों, मरहठों और अग्रेजों का राजपूताना के साथ सम्बन्धों का वर्णन किया गया है।
- **(गहलोत, 1991)** ने अपनी पुस्तक **"मारवाड राज्य का इतिहास"** में निष्कर्ष निकाला है कि राष्ट्रकूट का अपभ्रंश राठौड है और राठौड प्राचीन राष्ट्रकूटों की संतान है। परन्तु जोधपुर के राठौडों का सम्बंध मालखेड के राठौडों के साथ जोड़ा है। मारवाड का यह इतिहास केवल वर्णनात्मक ही नहीं है। वरन् यह आलोचनात्मक भी है। इसमें मंडोर के शासको और दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों के मध्य के सम्बन्धों का यथोचित वर्णन किया है।
- **(रेऊ प. व., 1938)** ने अपनी पुस्तक ***"मारवाड राज्य का इतिहास"*** में निष्कर्ष निकाला है कि इसमें मारवाड के संक्षित प्राचीन इतिहास के साथ-साथ राव सीहा के मारवाड आने तक से लेकर तब तक का इतिहास दिया गया है।
- **(श्यामलदास, 1989)** ने अपनी पुस्तक ***"वीर विनोद: मेवाड़ का इतिहास"*** में निष्कर्ष निकाला है कि मेवाड़ राज्य स्थापना किसी युद्ध के कारण या संधि के परिणामस्वरूप न होकर ईश्वरीय अनुकम्पा व

गुरु के आशीर्वाद से हुई। इस ऐतिहासिक ग्रन्थ के प्रथम भाग में यूरोप अफ्रीका, उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका, आस्टेलिया व एशिया के सामान्य भौगोलिक सर्वेक्षण, सिकंदर महान के सैनिक अभियानों का वर्णन भारत सहित राजपूताना पर मुसलमानों के द्वारा बार-बार आक्रमणों का वर्णन मिलता है। जिसके परिणामस्वरूप दिल्ली सल्तनत व मेवाड़ के बीच सम्बंध कायम हुए।

- **(ओझा ग. ह., 1999)** ने अपनी पुस्तक ***"उदयपुर राज्य का इतिहास"*** में निष्कर्ष निकाला है कि राजपूताना का इतिहास जिस प्रंशसनीय वीरता आत्मोत्सर्ग, पवित्र त्याग और स्वतंत्रता प्रेम की शिक्षा देता है। वैसा अन्य इतिहास नहीं। राजपूताने के सम्पूर्ण इतिहास में मेवाड़ या उदयपुर का इतिहास ही सबसे अधिक गौरवपूर्ण है। मुसलमानों के आने से पहले यहाँ बहुत से स्वतंत्र राजा हुए। परन्तु सुल्तान महमूद व उसके वंशजो ने बहुतो को अपने अधीन कर लिया। इसके बाद शहाबुद्दीन गौरी ने अजमेर व दिल्ली को अपने अधिकार में किया। उदयपुर का इतिहास अधिकांश में स्वतंत्रता का इतिहास है, जबकि तत्कालीन अन्य राजाओं ने अपना सिर झुका लिया था। मेरे शोध कार्य में गौरीशंकर हीराचंद ओझा कृत उदयपुर राज्य के इतिहास का महत्वपूर्ण स्थान है। और इस कार्य हेतु में श्री ओझा का आभार व्यक्त करता हूँ।
- **(नैणसी, 1960)** ने अपनी ख्यात ***"मुहनौत नैणसी री ख्यात"*** में वर्णन किया है कि अब तक मिली हुई सभी ख्यातों में मुहनौत नैणसी री ख्यात का महत्वपूर्ण स्थान है। इस ख्यात के लिखने तक राजपूताना के इतिहास के लिए मुसलमानों की लिखी हुई तवारीखों से भी यह ख्यात अधिक महत्वपूर्ण है। सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्वर्गीय मुंशीप्रसाद ने नैणसी को 'राजपूताना का अबुल फजल' कहकर सम्बोधित किया। इस ख्यात में सिसोदिया,राठौडों, कछवाहों, यादवों, परमारों आदि के अलावा राजपूताना के अलावा कई राजवंशों का इतिहास का वर्णन किया गया है। राजपूताना के इतिहास का संग्रह करने का प्रथम प्रयास नैणसी ने किया था। कहा जाता है कि यदि कर्नल जेम्स टॉड को यह ख्यात मिल जाती तो उसके द्वारा लिखा गया इतिहास और अधिक शुद्ध होता।
- **(टॉड, 1920)** ने अपने ऐतिहासिक ग्रन्थ ***"एनाल्स एंटीक्युटीज ऑफ राजपूताना"*** में वर्णन किया है कि राजपूताना के इतिहास की दृष्टि से कर्नल जेम्स टॉड का एनल्स एण्ड एंटीक्युटीज ऑफ राजपूताना सर्वोधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। राजपूताना के स्वतंत्रता प्रेम और यहाँ के शूरवीरों की गौरव गाथाओं ने देश विदेश के विद्वानों को कलम उठाने पर मजबूर कर दिया। कर्नल जेम्स टॉड के इस

इतिहास ग्रन्थ का महत्व सुस्थापित है। इसलिए कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह ग्रन्थ इतिहास में रूचि रखने वाले सभी महानुभावों के साथ ही राजपूताना के गौरव से परिचित सभी सज्जनो को अत्यंत रुचिकर लगता है।

- **(सोमानी, 1966)** ने अपनी पुस्तक ***"वीर भूमि चित्तौड़"*** में निष्कर्ष या वर्णन किया है। यह ग्रन्थ मुख्यतः सात अध्याय में विभक्त है। इसमें मेवाड़ का यशोगान किया गया है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर चित्तौड़ पर खिलजी विजय तक का उल्लेख है । विशेषकर पदमनी की ऐतिहासिकता का अनुमोदन राज वल्लभ सोमानी ने सुस्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है। चित्तौड़ के राजनैतिक इतिहास, साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के बारे में बताया गया है। इसमें समूचे मेवाड़ के राजनैतिक जीवन तथा सांस्कृतिक व्यक्तित्व की सही जानकारी मिलती है।
- **(जैन, 1972)** ने अपनी पुस्तक ***"एन्सेंट सिटीज एंड टाउनस ऑफ राजस्थान"*** में वर्णन या निष्कर्ष निकाला है। राजपूताना के प्राचीन व मध्यकालीन शहर व कस्बों की राजनैतिक जीवन और सांस्कृतिक गतिविधियों के बारे में बताया गया है। दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों ने किन-किन शहरों के मंदिरों आदि को धार्मिक द्वेष से उजाड़ा आदि की जानकारी इस पुस्तक से प्राप्त होती है। राजपूताना के प्राचीन व मध्यकालीन प्रमुख व्यापारिक शहरों व मार्गों के बारे जानकारी प्राप्त होती है।
- **(सारदा, 1917)** ने अपनी पुस्तक ***"महाराणा कुम्भा"*** में वर्णन या निष्कर्ष निकाला है। महाराणा कुम्भा के यशोगान के साथ ही दिल्ली सल्तनत के लोदी वंश व मेवाड़ के महाराणाओं के मध्य सम्बन्धों का भी वर्णन किया गया है। महाराणा सांगा व दिल्ली के सुल्तान सिकंदर लोदी के बीच राजनैतिक सम्बन्धों का वर्णन किया है ।
- **(रिजवी, 1956)** ,ने अपने ग्रन्थ ***"आदि तुर्क कालीन भारत"*** में 1206 ई. से 1290 ई. तक के समकालीन फारसी व अरबी इतिहासकारों की कृतियों का अनुवाद किया है। इसमें मिन्हाज सिराज की तबकाते नासिरी, जियाउद्दीन बरनी की तारीखे फिरोजशाही, तारीखे मुबारकशाही, हसन निजामी की ताजुल मासिर, आमिर खुसरो की प्रमुख रचनाएँ, एसामी की फुतूह रस्सातीन, व इब्बनेबतूता के यात्रा का वर्णन प्रमुख है।
- **(शर्मा द. , राजस्थान थ्रू दी एजेज , 1966)** ने ***"राजस्थान थ्रू दी एजेज"*** नामक पुस्तक राजस्थान सरकार की योजना के तहत दशरथ शर्मा से करवाही गयी है। इस ग्रंथ के भाग तृतीय में राजपूत व

मुस्लिम के सम्बन्धों के बारे में बताया गया है जिसमे रणथम्भौर, जालौर के चौहान और उनका दिल्ली सल्तनत से सम्बंध, राजस्थान का प्रशासनिक व जनजीवन 1200-1316 ई. आदि की विस्तृत विवेचना की गयी है। यह राजस्थान सरकार द्वारा अनुमोदित व मान्य ग्रंथ है।

- **(अनवर, 1989)** ने अपनी पुस्तक ***"ए हिस्ट्री ऑफ रणथम्भौर"*** में वर्णन या निष्कर्ष निकाला है कि सम्पूर्ण भारत के इतिहास में रणथम्भौर के किले का एक अलग महत्व है । रणथम्भौर के किले का नाम लेते ही स्वत: ही राव हम्मीर की याद आ जाती है। इसमें रणथम्भौर के सम्पूर्ण इतिहास की विवेचना की गयी है। रणथम्भौर के प्रारम्भिक राजाओं व दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों का रणथम्भौर पर आक्रमण की विस्तृत जानकारी इस ग्रंथ में दी गयी है।
- **(किशोरीलाल**, 1950) ने अपनी पुस्तक ***"दी हिस्ट्री ऑफ दी खिल्जिस"*** निष्कर्ष या वर्णन किया है कि दिल्ली सल्तनत के राजवंश खिलजी सल्तनत काल में एक प्रशासनिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक परिवर्तन का काल था। इसने अपने साम्राज्य विस्तार हेतु न केवल उत्तर भारत बल्कि दक्षिण भारत पर भी आक्रमण किया । सम्पूर्ण भारत के राज्यों के साथ सम्बंध स्थापित किये। इस पुस्तक में खिल्जिओं के इतिहास के साथ ही उनका राजपूताना के साथ सम्बन्धों की विस्तृत विवेचना की गयी है।
- **(रिजवी स. अ., 1955)** ने अपनी पुस्तक ***"खिलजी कालीन भारत 1290-1320 ई."*** में वर्णन किया है। यह प्रस्तुत ग्रंथ खिलजी सुल्तानों अल्प बल्कि अत्यंत आवश्यक शासनकाल 1290-1320 ई. से सम्बंध रखता है। डॉ. सैयद अतहर अब्बास रिजवी ने इस ग्रन्थ में निम्न समकालीन अरबी व फारसी के इतिहासकारों की रचनाओं को सम्मिलित किया है। जियाउद्दीन बरनी की तारीखे फिरोजशाही, अमीर खुसरो की पाँच ऐतिहासिक रचनाएँ मिफ्ताहल फुतूह, खजाइन फुतूह, दिवलरानी खिजसानी, नुह सिपेहर और तुगलकनामा, एसामी की फुतूह ए रस्सलातीन बाद के तीन इतिहासकारों के ग्रंथों का भी इसमें समावेश किया गया है।
- **(रिजवी स. अ., तुगलक कालीन भारत, 1956)** ने अपने इस ग्रंथ ***"तुगलक कालीन भारत"*** भाग प्रथम में 1320-1351 ई. तक के समकालीन अरबी और फारसी के ऐतिहासिक इतिहासकारों की रचनाओं का अनुवाद का समावेश किया है। जियाउद्दीन बरनी की तारीखे फिरोजशाही, एसामी की फुतूह ए

रस्सलातीन, बद्रचाच के कसोदे और अमीर खुर्द के सियारुल औलिया आदि रचनाओं का अनुवाद सम्मिलित है। द्वितीय भाग में समकालीन यात्रियों के वृतांतों का अनुवाद किया गया है।

- **(हुसैन, 1938)** ने अपनी पुस्तक ***"दी राइज एंड फाल ऑफ मुहम्मद बिन तुगलक"*** में वर्णन या निष्कर्ष निकाला है। कि दिल्ली सल्तनत के शासन काल में सर्वोधिक विस्तार मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में हुआ। अपने साम्राज्य विस्तार की नीति व असफल योजनाओं के कारण दिल्ली सल्तनत का विघटन भी इसी के समय से शुरू हुआ। अनेक राज्य दिल्ली सल्तनत से अधिकार क्षेत्र से बाहर होते गये।
- **(ब्रिग्स, 1908)** ने अपने ग्रन्थ ***"हिस्ट्री ऑफ दी राइस ऑफ दी मोहम्मद न पॉवर इन इंडिया"*** में वर्णन किया है। जॉन ब्रिग्स ने अरबी व फारसी के ऐतिहासिक इतिहासकार मोहम्मद कासिम फरिश्ता की ग्रन्थ तारीखे फरिश्ता का अनुवाद किया है। भारत में किस प्रकार मुस्लिम राज्य का उदय हुआ, के बारे विस्तृत वर्णन किया है।
- **(डाउसन् & इलियट, 1869)** ने अपने ग्रंथ ***"हिस्ट्री ऑफ इंडिया अस टोल्ड बाय इट्स ओवन हिस्टोरियन"*** में अरबी व फारसी भाषा के ऐतिहासिक इतिहासकारों की रचनाओं का अनुवाद किया है। इसमें अलबरुनी की तारीख ए हिंद, उत्बी की तारीख ए यामिनी, बैहाकी की तारीख ए सुबक्तिगिन, हसन निजामी की ताजुल मासिर, मिनहाजए सिराज की तारीखे ए नासिरी आदि मुख्य है।
- **(सिद्दीकी, 2001)** ने अपनी पुस्तक ***"मध्यकालीन नागौर का इतिहास (1206-1752 ई.)"*** में निष्कर्ष या वर्णन किया है। नागौर के मध्यकालीन राजनैतिक इतिहास के विवेचन विश्लेषण के साथ ही आर्थिक स्थिति, शिक्षा व साहित्य, स्थापत्य कला, धार्मिक, सूफी व अन्य सम्प्रदाय, मूर्ति कला, चित्रकला,नृत्य-संगीत आदि के वर्णन के कारण इस ग्रंथ का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। इस ग्रंथ में नागौर के मध्यकाल का केवल राजनीतिक ही नहीं वर्णन सांस्कृतिक इतिहास को भी सम्मिलित किया गया है।

सारांश :- प्रस्तुत अध्याय में शोधार्थी द्वारा सम्बन्धित साहित्य का सिंहावलोकन " दिल्ली सल्तनत और उसका राजपूताना से सम्बंध (173-1526 ई.)" के परिपेक्ष्य में किया है। सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा के परिणामस्वरूप शोधार्थी को पूर्व में हुए शोध-कार्य में जिस अन्तराल की अनुभूति हुई, उसे शोधार्थी ने अपने अनुसंधान का विषय बनाया है।

शोध प्रविधि

किसी भी अध्ययन को शोध की संज्ञा तब ही दी जाती है। जब वह विश्वसनीय, वस्तुनिष्ठ, मानकीकृत, तार्किक, यथार्थ, निष्पक्ष और वैध हो। ऐसे में किसी भी शोध को इन सभी मानकों पर खरा उतरने के लिए कुछ आधुनिक वैज्ञानिक विधियों एवं उपकरणों की आवश्यकता होती है। इन विधियों एवं उपकरणों के माध्यम से किसी भी शोध अध्ययन को नई दिशा प्रदान की जा सकती है व परिणामों तक पहुँचा जा सकता है। इन उपकरणों और प्रविधियों की क्रमबद्व व वैज्ञानिक रूपरेखा शोध-प्रविधि कहलाती है।

पी.वी यंग ने लिखा है कि "शोध एक ऐसी व्यवस्थित प्रविधि है, जिसके द्वारा नवीन तथ्यों की खोज एवं प्राचीन तथ्यों कि पुष्टि की जा सकती है तथा उनके अनुक्रमों, पारस्परिक सम्बन्धों एवं कारणात्मक व्याख्याओं का अध्ययन करते है।" अर्थात शोध प्रविधि में पहले नये ऐतिहासिक तथ्यों को खोजा जाता है फिर उन्ही तथ्यों की सत्यता परखने के लिए उनकी प्राचीन ऐतिहासिक साक्ष्यों के साथ मिलान किया जाता है अर्थात उनकी पुष्टि की जाती है।

एडवर्ड के अनुसार शोध उस अध्ययन, प्रक्रिया एवं कार्य को कहा जाता है जिसमें बोधपूर्वक ढंग से प्रयत्न करके तथ्यों को संकलित कर सूक्ष्मग्राही एवं विवेकपूर्ण बुद्धि से उसका अवलोकन एवं विश्लेषण किया जा सकता है और नवीन तथ्यों को प्रकाश में लाया जाता है । शोध इन्हीं प्रश्नों अथवा समस्याओं के समाधान हेतु किया जाता है और प्रश्नों के उत्तरों की जाँच-पड़ताल के लिये किया जाता है।

लुण्डबर्ग के अनुसार "शोध अवलोकित साक्ष्यों का क्रमबद्व, व्यवस्थित और विश्वसनीय सत्यापन करना ही शोध कहलाता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि शोध-प्रविधि वह क्रमबद्व अध्ययन विधि है जिसमें नवीन तथ्यों की खोज करके विद्यमान ज्ञान को विस्तृत एवं परिष्कृत करके और घटनाओं के कारणों के बीच विद्यमान अंतसम्बन्धों और उनमें मौजूद अंत:क्रियाओं व प्रक्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन, विश्लेषण और निरूपण किया जाता है।

स्पष्ट है कि यदि कोई शोध कार्य करना है तो उसके लिए मानक विधियों एवं उपकरणों का प्रयोग करना आवश्यक है। इससे शोध कार्य के परिणामों को उद्वेश्यपूर्ण एवं वस्तुनिष्ठ बनाया जा सकता है।

मानविकी एवं समाज शोधकार्य मुख्यतः तीन बातों से सम्बन्धित होता है– समय, धन एवं श्रम । समाज में प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है इसलिए इससे सम्बन्धित शोध कार्य को जितनी जल्दी सम्पन किया जावे। उसके परिणाम भी उतने ही अधिक समय सापेक्ष, सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण होगे। शोध हेतु समय व श्रम की सुलभता भी कम ही होती है। शोधार्थी का यह कर्तव्य होता है कि सुलभता के अनुसार धन व समय से श्रेष्ठत्तम, सत्य, प्रमाणिक, एवंम विश्वसनीय परिणाम दें। इनके कारण शोधार्थी को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इनका ध्यान रखकर क्षमतानुसार अनुसंधान को पूर्ण करे। इन्हीं की पूर्ति हेतु विशेषज्ञों ने राय दी है कि शोध अध्ययन को शुरू करने से पहले शोधार्थी को शोध-प्ररचना को बना लेना चाहिए। (शर्मा, 2007, पृ.126)

करलिंगर, एफ. एन. (1964) ने "फाउंडेशन ऑफ बिहेविरल रिसर्च" में शोध-प्ररचना को स्पष्ट किया है कि शोध-प्ररचना, शोध के लिए बनायी गयी। एक ऐसी योजना एवं संरचना है, जिसके द्वारा शोध समस्याओं का समाधान किया जाता है व प्रसरण पर नियंत्रण किया जाता है (शर्मा, 2007, पृ. 127) । इस प्रकार शोध-प्ररचना में दो कार्य प्रमुख रूप से किया जाता है। प्रथम के अन्तर्गत शोध को उपयोगी, सार्थक, विश्वसनीय ओर वस्तुनिष्ठ बनाता है द्वितीय में शोध कार्य को प्रभावित करने वाले कारकों को नियंत्रित किया जाता है।

करलिंगर, एफ. एन. की इस विचारधारा को विशेषज्ञों का व्यापक समर्थन मिला, किन्तु आधुनिक विद्वानों ने चरों की भूमिका की अनदेखी करने के कारण करलिंगर के इन विचारों की आलोचना की है । इसमें मैथ्थुज की आलोचना में अहम भूमिका रही। जिसमें स्वतंत्र चरों को विभिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न मात्रा में प्रस्तुत किया ओर उन्हें प्रतिक्रिया करने हेतु निर्देशित एवं प्रेरित किया जा सके। इस प्रकार शोध एक ऐसी प्रकिया है, जिसमें स्वतंत्र चर की मात्रा तथा तीव्रता में फेर-बदल करके आश्रित पूर्व चर पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जा सके । इस प्रकार स्पष्ट है कि शोध प्ररचना एक ऐसा साधन है जो आंकड़ों के संकलन ओर विश्लेषण को एक निश्चियत व क्रमबद्व आकार देता है, इसकी मदद से महत्वपूर्ण शोध उद्देश्य को मितव्ययी ढंग से प्राप्त किया जा सकता है। (शर्मा, 2007 पृ. 127) । अर्थात शोध-प्ररचना एक ऐसी योजना या रूप रेखा है जो समस्या के प्रारम्भ से लेकर शोध- प्रतिवेदन के अंतिम चरण तक के पहलुओं में

उचित विचार-विमर्श कर उपलब्ध सभी विकल्पों पर विशेष ध्यान देकर इस तरह से निर्णय लेती है कि सीमित समय, धन एवं श्रम के खर्च से अधिक शोध उद्देश्यों को पूर्ण कर सके।

इस प्रकार शोध प्ररचना किसी भी शोध की एक उचित कड़ी है । जो न केवल शोध की वस्तुनिष्ठता एवं विश्वसनीयता को निश्चियत करता है। शोध प्ररचना एक दीर्धकालिक एवं जटिल प्रक्रिया है । इसमें शोध प्रश्नों की परिकल्पना और संरचना के निर्माण से लेकर उनका सत्यापन तक के सभी बिंदुओं को शामिल किया जाता है। **किर्क** ने शोध प्ररचना के उद्देश्यों को तीन भागों में विभाजित किया है-

- वस्तुनिष्ठ और विश्वसनीय परिणाम प्राप्त करना
- प्राप्त परिणामों की भिन्न-भिन्न कमियों को सही करना
- प्राप्त परिणामों को अधिक से अधिक पर्याप्त बनाना

शोध का मुख्य उद्देश्य अज्ञात की खोज से शुरू होता है। ज्ञान के अगाध भण्डार से प्रकृति और प्राणी की अनन्य उपलब्धियों की खोजकर उनकी विवेचना प्रस्तुत करना ही शोध का प्रमुख कार्य है । ज्ञान का क्षेत्र जितना व्यापक होगा उतना ही शोध का क्षेत्र भी है। जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नही है जो शोध का विषय नही बन सकता है । ज्ञान विज्ञान की पूर्ण गहराई तक पहुँचना और उसे प्रकाशित करना ही शोध-कर्ता का लक्ष्य होता है (अरोड़ा, 2011, पृ. 19) ।

शोध प्रारूप का एक महत्वपूर्ण भाग **तथ्यों को संकलित करने की तकनीक** है। शोध कार्य शुरू करने से पहले ही इस महत्वपूर्ण विषय पर शोध की प्रकृति एवं तथ्यों की विशेषताओं का परिपेक्ष्य में व्यापक सोच-विचार के बाद शोध कर्त्ता के द्वारा यह निर्णय लिया गया है कि प्राथमिक तथ्य संलकन का कार्य किस प्रविधि के द्वारा किया जायेगा। उल्लेखनीय है कि तथ्य संकलन की विविध प्रविधियाँ है जैसे अवलोकन, साक्षात्कार, प्रश्नावली, अनुसूची, वैयत्तिक अध्ययन आदि। इन सभी प्रविधियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ एवं सीमाएँ होती है तथ्य संकलन की सही तकनीक का प्रयोग शोध की गुणवत्ता, विश्वसनीयता तथा वैज्ञानिकता निर्धारित करता है। उल्लेखनीय है कि इन प्रविधियों का प्रयोग प्रत्येक समाज एवं उत्तरदाताओं पर नहीं किया जा सकता है।

लुण्डबर्ग (1951) ने सूचनाओं के दो प्रमुख स्रोत बताया है – एक ऐतिहासिक क्षेत्र और दूसरा क्षेत्रीय स्रोत

ऐतिहासिक स्रोत में प्रलेख, विविध कागजातों व शिलालेखों, भुर्तत्त्वीय स्तरों, उत्खनन से प्राप्त वस्तुओं को शामिल करते हुए लुण्डबर्ग ने लिखा है कि "ऐतिहासिक स्रोत उन अभिलेखों का प्रतिनिधित्व करते है जो भूतकाल की घटनाएँ अपने पीछे छोड़ गये है, जिनकों की उन साधनों द्वारा सुरक्षित रखा गया है जो मनुष्य से परे हैं" उदाहरण के लिए हम उल्लेख कर सकते है, उन विविध स्थानों का जहाँ पुरातत्त्वीय उत्खनन के बाद तत्कालीन समाज की विविध सूचना प्राप्त हुई या विविध पुरातात्विक संग्रहालयों में सुरक्षित रखे दस्तावेजों, सरकारी और गैर सरकारी का जिनका आज भी शोधकर्ता अपने शोध में कार्य में व्यापक रूप से करते है। क्षेत्रीय स्रोत में लुण्डबर्ग ने जीवित मनुष्यों से प्राप्त विशिष्ट सूचनाओं एवं क्रियाशील व्यवहारों के प्रत्यक्ष अवलोकन को सम्मिलित किया हैं।

उपरोक्त समस्त विवरण स्पष्ट करता है कि सूचना के स्रोत होते हैं, इन समस्त स्रोत को विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से विश्लेषित किया है। जो भी सूचना के स्रोत है जिन्हें प्रयोग में लाया जाता है, शोध प्रारूप के अंग हैं ।

प्रस्तुत शोध अध्ययन **"दिल्ली सल्तनत और उसका राजपूताना से सम्बंध (1173-1526 ई.)"** एक विशेष प्रकार का शोध है जिसमें मध्यकालीन राजस्थान या राजपूताना के राज्यों के साथ दिल्ली सल्तनत के सम्बन्धों की स्थिति का विवेचनात्मक और विश्लेषनात्मक अध्ययन किया गया है।

शोध का उद्देश्य और महत्व

मुग़ल-राजपूत जैसे सम्बंध क्या दिल्ली सल्तनत और राजपूताना की रियासतों के मध्य विद्यमान थे, पर अनुसंधान करना।

मुग़ल-राजपूत सम्बन्धों की पृष्ठभूमि दिल्ली सल्तनत 1173 से 1526 ई. के समय बन चुकी थी, आदि पर अनुसंधान करना।

दिल्ली सल्तनत व राजपूताना या राजस्थान (1173-1526 ई.) के महत्वपूर्ण पहलुओं का क्रमागत अध्ययन करना।

इस काल खण्ड (1173-1526 ई.) से सम्बंधित व्याप्त भ्रांतियों व अपुष्ट जानकारियों का अध्ययन करना।

अध्ययन कर्ताओं में आत्मगौरव राष्टभक्ति का भाव जाग्रत करना।

इस काल खण्ड (1173-1526 ई.) के राजपूताना के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं का अधययन करना।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा प्रमुख रूप से राजपूताना व दिल्ली सल्तनत (1173-1526 ई.) से सम्बन्धित शोध साहित्य यथा-शोध-पत्र, पुस्तकें, शोध आलेख व पत्र-पत्रिकाओं, एपिग्राफिया इंडिका, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया में उल्लेखित सन्दर्भित परवर्ती कालीन शिलालेखों, अभिलेखों, हस्तलिखित एवं भाषाएँ रूपान्तरित ग्रंथों प्रकाशित तथा अप्रकाशित यथा बस्तों, बहियों आदि पर विवेचनात्मक व विश्लेषणात्मक किया गया। इससे राजपूताना की विभिन्न रियासतों व दिल्ली सल्तनत (1173-1526 ई.) से संपन विभिन्न अध्ययनों और कार्यों का सार सम्मुख आया है। अभी भी इस काल खण्ड से सम्बन्धित विषय और क्षेत्र है, जिनसे सम्बन्धित अध्ययन किये जाने की आवश्यकता है। शोध की पृष्ठभूमि में शोधार्थी को अपने शोध अध्ययन हेतु शोध प्रविधि को तैयार करने में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मदद मिली है। प्रस्तुत शोध में शोध प्रविधि और न्यादर्श चयन के साथ ही उपकरण निर्माण की प्रकिया आदि को सुव्यवस्थित ढंग से करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है।

शोध लिए राजस्थान व दिल्ली सल्तनत समकालीन तथा सन्दर्भित परवर्ती कालीन शिलालेखों, अभिलेखों, हस्तलिखित एवं भाषाएँ रूपान्तरित ग्रंथों प्रकाशित तथा अप्रकाशित यथा बस्तों, बहियों तथा अन्य पुरातत्वीय स्रोतों से शोध साम्रगी एकत्रित की गयी है। इस उद्देश्य से राजस्थान राज्य अभिलेखागार-बीकानेर, राजस्थान प्राच्य विधा प्रतिष्ठान-जोधपुर, राजस्थान शोध संस्थान-चौपासनी-जोधपुर, मानसिंह पुस्तकालय, मेहरानगढ़-जोधपुर, अनूप संस्कृत पुस्तकालय-बीकानेर, भारतीय विधा मंदिर शोध प्रतिष्ठान-बीकानेर, केन्द्रीय पुस्तकालय, वर्धमान महावीर खुला विश्वविधालय-कोटा, केन्द्रीय पुस्तकालय, कोटा विश्वविधालय-कोटा, केन्द्रीय विश्वविधालय, राजस्थान विश्वविधालय-जयपुर, केन्द्रीय पुस्तकालय व स्टडी सेंटर, दिल्ली विश्वविधालय-दिल्ली, राष्टीय अरबी व फारसी शोध संस्थान-टोंक, निजी संग्रह केन्द्रों तथा व्यक्ति विशेष के मार्ग दर्शन, सुझाव, आदि की विशेष भूमिका रही है।

अध्याय प्रथम

1. राजस्थान: एक परिचय एवं राजपूताना के प्रमुख राज्यों की ऐतिहासिक प्रष्ठभूमि

1.1 राजस्थान : एक परिचय

राजपूताना प्राचीन काल से ही वीर पुरषों का लीला क्षेत्र व भारत वर्ष के इतिहास का केंद्र रूप रहा है। राजपूताने का प्राचीन इतिहास न केवल वर्तमान राजस्थान की सीमा तक सम्बन्धित था। यह भारत वर्ष के अधिकांश प्रदेशों जैसे दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात आदि भू-भागों तक विस्तृत था। यह भू-भाग प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक कई मानव सभ्यताओं के विकास और पतन की स्थली रहा है। यहाँ पुरापाषाणकाल, कांस्ययुगीन सिन्धु सभ्यता की मानव बस्तियाँ, वैदिक सभ्यता एवं ताम्रयुगीन सभ्यताएँ खूब फली-फूली हैं। मौर्य, मालव, यूनानी(ग्रीक), अर्जुनायन, क्षत्रप, कुषाण, गुप्त, यशोधर्मन, हुण, गुर्जर, चावड़ा, प्रतिहार, परमार, सोंलकी, यौधय, तँवर, दहिया, निंकुश, गौड़ आदि वंशों ने किसी ना किसी काल में इस देश के किसी न किसी प्रदेश या भू-भाग पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। छठी शताब्दी के बाद इस भू-भाग पर राजपूत राज्यों का उदय शुरू हुआ, जो धीरे-धीरे सम्पूर्ण प्रदेश में अलग-अलग राज्यों के रूप में विस्तृत हो गया। राजपूत राज्यों की प्रमुखता के कारण कालांतर में इस सम्पूर्ण भू-भाग को राजपूताना कहा जाने लगा[1]

नाम:

राजपूताना प्रदेश के लिए पहले किसी एक नाम का प्रयोग होना नहीं पाया जाता। उसके भू-भागों को, प्राचीन तथा मध्य युग में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता था और इसके कुछ विभाग अन्य प्रदेशों के अंर्तगत सम्मिलित थे। वाल्मीकि कृत रामायण में राजपूताना प्रदेश को "मरुकान्तार"[2] कहा गया है। महाकाव्य रामायण के अनुसार जब दक्षिण सागर ने सेतु बंधवाना स्वीकार किया। तब भगवान राम ने उसको भयभीत करने के लिए खींचा अपना अमोध बाण इस प्रदेश की ओर फेंका जिससे समुद्र के स्थान पर मरुकान्तार हो गया। राजपूताना जहाँ अभी रेगिस्तान है वहाँ पहले समुद्र लहराता था। परन्तु भूंकप आदि प्राकृतिक कारणों से उस भूमि के ऊँचा हो जाने पर समुद्र का जल दक्षिण से हट कर रेत का पुंज मात्र रह गया । शंख, कौड़ी आदि का परिवर्तित पाषाण रूप (Fossil) में मिलना इस परिकल्पना की पुष्टि करता है। [3] [4]

महाभारत के अनुसार राजपूताने का "जांगलदेश" (पांड्वों के) के राज्य के अंतर्गत सम्मिलित था। पहले सारा बीकानेर राज्य और जोधपुर राज्य का उत्तरी भाग, जिसमें नागौर आदि परगने थे जांगलदेश कहलाता था और इसकी राजधानी अहिच्छत्रपुर (नागौर) थी, जिसको इस समय नागौर कहते है। बीकानेर के राजा इसी जांगलदेश के स्वामी होने के कारण अपने को "जंगलधर बादशाह" कहते थे और बीकानेर राज्य के राज-चिन्ह में "जय जंगलधर बादशाह लिखा मिलता है कभी-कभी इनका नाम "कुरु जांगला" "मार्दये जांगला" भी मिलता है । जो 'कुरु' और 'मदृ ' के पड़ौसी देशों के नाम से सम्बन्धित लगता है।[5]

जांगलदेश के निकट वाले प्रदेश चाहमान के राज्य समय 'सपादलक्ष्य' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसलिए इन्हें 'सपादलक्ष्य नरपति' कहते थे और इस राज्य की पहली राजधानी शाकम्भरी (सांभर) थी और जब उनके राज्य का विस्तार हुआ। मारवाड़, बीकानेर, दिल्ली और मेवाड़ के बहुत से प्रदेश सम्मिलित थे तब दूसरी राजधानी अजमेर थी।[6]

प्राचीन काल में उत्तरी भारत में कुरु, मत्स्य, और शूरसेन राज्य विस्तृत थे। अलवर राज्य का उत्तरी विभाग कुरुदेश के, दक्षिण और पश्चिम मत्स्य देश के और पूर्वी अलवर के कुछ भू-भाग शूरसेन देश के अंतर्गत था। भरतपुर और धौलपुर राज्य तथा करौली राज्य का अधिकांश प्रदेश शूरसेन देश के अंतर्गत था। शूरसेन की राजधानी मथुरा और कुरु की राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी।[7]

मत्स्य जनपद मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही अस्तित्व में रहा है। राजस्थान प्रान्त के जयपुर के आसपास का क्षेत्र मत्स्य जनपद के अंतर्गत था जिसमें जयपुर के अलावा अलवर का पूर्वी भाग, भरतपुर का एक भाग इसमें सम्मिलित था और इसकी राजधानी विराटनगर थी। जहाँ पांडवों ने अज्ञातवास बिताया था जिसकी स्थापना विराट नामक राजा ने थी। साहित्यिक स्रोतों में 'अपर मत्स्य' वीर मत्स्य' आदि का उल्लेख मिलता है। मत्स्य जनपद कभी 'चेदि' जनपद के अधीन भी रहा था। इस क्षेत्र में ढूंढ़ाडी भाषा बोली जाने के कारण यह क्षेत्र 'ढूंढ़ाड' भी कहलाता है।[8] उदयपुर राज्य का प्राचीन नाम शिवि देश था, जिसकी राजधानी 'मध्यमिका' नगरी थी। उसके खंडहर इस समय नगरी के नाम से प्रसिद्ध है और जो चित्तौड़ से 7 मील उत्तर में है। वहाँ पर मेव जाति का अधिकार होने से उक्त देश का नाम मेद अर्थात 'म्लेच्छा को मारने वाला' मेद्पाट या मेवाड़ हुआ। जिसको प्राग्वाट देश भी कहते है। मेवाड़ का पूर्वी हिस्सा चाहमानों के राजत्व काल में सपादलक्ष्य देश के अंतर्गत था।[9]

प्राचीन 'वागड़' देश में डूंगरपुर, बाँसवाड़ा और उदयपुर राज्य का कुछ दक्षिण प्रदेश अर्थात छप्पन प्रदेश का समावेश होता है। वागड़ देश की प्राचीन राजधानी बड़ौदा थी। जब से डूंगरपुर राज्य की स्थापना हुई, तभी से वागड़ को 'डूंगरपुर राज्य' कहा जाने लगा और बाद में इस राज्य के दो विभाग हुए पश्चिमी प्रदेश डूंगरपुर राज्य और पूर्वी प्रदेश बाँसवाड़ा राज्य के नाम से विख्यात हुआ।जोधपुर राज्य के सारे रेतीले प्रदेश का सामान्यत: मरु देश में सम्मिलित किया जाता है, परन्तु इस समय खास मरू (मारवाड़) में उक्त राज्य के शिवि, मालानी और पंचभद्रा के परगने ही माने जाते है। जैसलमेर से मिले हुए जोधपुर राज्य के दक्षिण अथवा पश्चिमी प्रदेश का नाम 'वल्ल' देश था। मालानी और उसके आसपास का एक प्रदेश कन्नौज के प्रतिहारों के समय 'त्रवणी' कहलाता था। गुर्जरों के अधीन जोधपुर राज्य की उत्तरी सीमा से लगाकर दक्षिणी सीमा तक का सारा मारवाड़ गुर्जरत्रा या गुर्जर (गुजरात) के नाम से प्रसिद्ध था।[10] कुछ लोग 'मरू' और 'माड' देशों के मिलने से 'मारवाड़' नाम की उत्पत्ति होने का अनुमान करते है। 'माड' जैसलमेर के पूर्वी भाग का नाम है और ये मरुदेश के पश्चिमी भाग से मिला हुआ है। उनके मतानुसार बाद में इसी 'माड' शब्द का वाड़ के रूप में परिवर्तन हो गया।[11]

ऐतिहासिक काल के शुरू में ही इस भू-भाग को 'माडमड' के नाम से पुकारा जाता था। शक संवत 72(150 ई.) के रूद्रददामन के जूनागढ़ अभिलेख में इस भू-भाग को 'मरु' कहते हुए सिंध-सौवीर के साथ सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार इस भूभाग के लिए 'माड' शब्द का दूसरा उल्लेख प्रतिहार नरेश कक्कुट के घटियाला अभिलेख से भी होता है। यहाँ इसे त्रवनी और वल्ल के साथ सम्मिलित किया गया है। प्रतिहार नरेश बाऊक के जोधपुर अभिलेख के अनुसार जैसलमेर का कुछ भूभाग त्रवनी के अंतर्गत भी सम्मिलित था। इससें पता चलता है कि मरुमंडल के प्रतिहारों की सीमावर्ती प्रदेशों में वल्ल, माड एवं त्रवनी के प्रदेश थे इस प्रकार हम यह कह सकते है कि मरुमंडल के पश्चिम में स्थित माड प्रदेश ही कालान्तर में जैसलमेर कहलाया। इस प्रकार माड क्षेत्र के पश्चिम उत्तर में सौवीर प्रदेश, दक्षिण-पूर्व में त्रवेणी और वल्ल था[12]

सिरोही राज्य और उससे मिले हुए जोधपुर राज्य के एक विभाग की गणना अबुर्द (आबू) देश में होती है।[13] कोटा और बूंदी जो पहले सपादलक्ष के अधीन थे। जो बाद में हाड़ा शासकों द्वारा शासित होने के कारण हाड़ौती कहलाने लगा। झालावाड़ राज्य और टोंक के छबडा, पिरावा तथा सिरौज मालव देश के अंतर्गत माने जाते थे।[14] इसी प्रकार भौगोलिक विशेषताओं को लेकर भी राजस्थान के कुछ भागों को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता रहा है। जैसे-माही नदी के पास वाले प्रतापगढ़ के भू-भाग को 'कांटल' कहा जाता था क्योंकि वह माही नदी के कांठे अर्थात किनारे का या सीमा का भाग था। प्रतापगढ़ और बाँसवाड़ा के बीच 56 ग्राम-समूह होने के कारण

इस भू-भाग को कालान्तर में छप्पन कहा जाने लगा। डूंगरपुर और बाँसवाड़ा के बीच के प्रदेशों को मेवल और देवलिया, मेवल के निकटवर्ती प्रदेश को मुढोल कहतें है, क्योंकि वह एक स्वतंत्र प्रदेश था। भैंसरोड़गढ़ से लेकर बिजौलिया तक के पठारी भाग को ऊपरमाल कहते है। जरगा और रागा के पहाड़ी भाग हमेशा हरे-भरे रहने के कारण इस क्षेत्र को 'देशहारों' के नाम से जाना जाता रहा है। उदयपुर के आस-पास का क्षेत्र पहाड़ियों से गिरा रहने के कारण कालान्तर में 'गिरवा' के नाम से विख्यात हुआ। सिरोही-आबू क्षेत्र को 'चन्द्रावती' चुरू के सरदार शहर के क्षेत्र को थली कहा जाता है। निःसंदेह उपर्युक्त नामकरण राज्य के भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप के परिचायक रहे है।[15]

राजपूताना के प्रदेश को जिसे आज हम सब राजस्थान कहते है। वह पूर्व में किसी विशेष नाम से कभी प्रसिद्ध नहीं रहा। पंडित गौरीशंकर हिराचंद ओझा के अनुसार राजपूताना नाम अंग्रेजों की देन है। मुगल इतिहासकार 'राजपूत' शब्द को लिखने में 'राजपूतों' शब्द प्रर्युक्त किया करते थे और इसी आधार पर सम्भवतः गोडवाना, तिलिंगाना आदि के सापेक्ष पर इस राज्य का नाम भी 'राजपूताना' अर्थात 'राजपूतों का देश' रखा गया। राजपूताना के प्रथम एवं प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड ने अपनी बहियों एवं साधारण बोलचाल की भाषा में इस राज्य का नाम 'रजवाड़ा'[16] या 'रायथान' लिखा है जो साहित्य और साधारण बोलचाल की भाषा में राजा के निवास स्थल या उनके राज्यों का सूचक था। ख्यात लेखक अलग-अलग राज्यों के लिए जिनके वे आश्रित थे, रायथान शब्द का प्रयोग करते थे। [17] [18]

ब्रिटिश शासन से पूर्व यह सम्पूर्ण प्रदेश इस नाम से कभी प्रसिद्ध रहा हो। ऐसा कोई उदाहरण हमें नहीं मिलता, अतएव वह नाम भी कल्पित ही है, क्योंकि राजस्थान या उसके प्राकृत (लौकिक) रूप रायथान का प्रयोग प्रत्येक राज्य के लिए हो सकता है। सारे राजपूताना के लिए पहले किसी एक नाम का प्रयोग होना नहीं पाया जाता। उसके कितने एक अंशों के तो प्राचीन काल में समय-समय पर भिन्न-भिन्न नाम थे और कुछ विभाग अन्य बाहरी प्रदेशों के अंतर्गत थे।

ब्रिटिश कम्पनी का जब सम्पूर्ण देश पर अधिकार हो गया। तो उन्होंने प्रशासनिक सुविधानुसार विभिन्न देशी रियासतों को, जिसमें अधिकांश राजपूत नरेशों का शासन था, को एक संयुक्त नाम 'राजपूताना' रखा गया। गौरीशंकर हिराचंद ओझा, गोपीनाथ शर्मा जैसे इतिहासकारों आदि की मान्यता है कि सम्भवतः गोडवाना, तेलगाना जहाँ गोड और तेलंग लोग निवास करते थे, के अनुरूप यह नाम दिया। इस प्रकार यहाँ राजपूतों की प्रधानता होने के कारण इस प्रदेश 'राजपूताना' कहा जाने लगा।[19] [20]

गोपीनाथ शर्मा ने इस सम्बंध में एक अन्य कथन भी प्रस्तुत किया है। उनका विचार है कि फारसी में राजपूतां, राजपूत शब्द का बहुवचन है जिससे राजपूतों के विभिन्न राज्यों को राजपूतां लिखे जाने से राजपूताना कहने लगे है।[21] फ़्रेकलिन विलियम ने अपनी पुस्तक मिलिट्री मेमायर्स ऑफ़ मिस्टर जार्ज टॉमस में लिखा है कि 1800 ई. में सर्वप्रथम जार्ज टॉमस ने इस सम्पूर्ण प्रदेश के लिए 'राजपूताना' शब्द का प्रयोग किया।[22] जबकि कर्नल जेम्स टॉड इस प्रान्त का नाम स्थानीय साहित्य एवं बोलचाल की भाषा को ध्यान में रखकर 'रायथान' नाम दिया।[23] क्योंकि स्थानीय बोली में राजाओं के निवास प्रान्त को रायथान कहते थे जो डिंगल शब्द का संस्कृत स्वरूप है। कर्नल टॉड से पूर्व राजस्थान नामकरण जोधपुर की अर्जी बहियों में भी मिलता है तथापि राजस्थान शब्द का आधुनिक काल में प्रथम बार प्रयोग वि.सं.1765/1708 ई. में हुआ है।[24] [25] इसी का संस्कृत स्वरूप राजस्थान कहलाया। सातवीं शताब्दी में जब इस प्रदेश पर राजपूत राजाओं का आधिपत्य स्थापित हो गया तो उन्होंने पूर्व प्रचलित अधिकारियों के पद के अनुरूप इस प्रदेश को राजस्थान की संज्ञा दी। जिसे स्थानीय साहित्य में 'रायथान' कहा जाता था। राजस्थान शब्द का प्राचीनतम प्रयोग 'राजस्थानीयादित्य वि.सं.682 में उत्कीर्ण बसंतगढ़ (सिरोही) के शिलालेख में उत्कीर्ण है।[26] अत: जब देश आजाद हुआ तो कई राज्यों के नाम उनकी सांस्कृतिक विरासत के अनुरूप रखने के क्रम में इस राज्य का नाम राजस्थान रखा गया।

भौगोलिक स्थिति:

राजस्थान आकार में विषमकोणीय चतुभुर्ज है। राजस्थान भारत के उत्तर-पश्चिम में स्थित है व क्षेत्रफल की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा राज्य है। इसका क्षेत्रफल 3,42,239 वर्ग किमी है, जो भारत के कुल क्षेत्रफल का 10.41% है। राजस्थान के पूर्व में गंगा-यमुना नदियों के वृहत मैदान, दक्षिण में मालवा का पठार तथा उत्तर पश्चिम में सतलज-व्यास नदियों के मैदान तथा पश्चिम में यह पाकिस्तान से घिरा है। राजस्थान का भौतिक स्वरूप अत्यधिक जटिल और विविधतापूर्ण है। जहाँ एक और विशाल मरुभूमि है वहीं दूसरी और मैदानी भाग है। इस भौतिक भाग का स्वरूप, भूगर्भिक इतिहास में होने वाली आंतरिक शक्तियों के सम्मिलित प्रभाव से उत्पन प्रक्रियाओं का परिणाम है। यह भूखंड विश्व के प्राचीनतम भूखंडों (गौडवाना लैड) का अवशिष्ट हिस्सा है। राज्य के मध्य उत्तर से पूर्व व दक्षिण से पश्चिम फैली अरावली पर्वतमाला इसे जलवायु और धरातल की दृष्टि दो से असमान भागों में विभाजित करती है। राजस्थान भारत के उत्तर-पश्चिम भाग में $23^0 3'$ से $30^0 11'$ उत्तरी अक्षांश से $69^0 29'$ से $78^0 17'$ पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। राज्य की पश्चिम सीमा भारत-पाकिस्तान की अंतरराष्ट्रीय सीमा है, जो 1070 किमी लम्बी है। राज्य के उत्तरी व उत्तरी पूर्वी सीमा पंजाब और हरियाणा से,

पूर्वी सीमा उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश से, दक्षिण पूर्वी सीमा मध्यप्रदेश से तथा तथा दक्षिणी तथा पश्चिमी सीमा क्रमशः मध्यप्रदेश तथा गुजरात से संयुक्त है। कर्क रेखा राज्य के दक्षिण में बाँसवाड़ा नगर के दक्षिण से गुजरती है।[27]

राजस्थान में पूर्व की 19 देशी रियासतों सहित (जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, अलवर, जयपुर,भरतपुर, धौलपुर, करौली, बूंदी, कोटा, झालावाड़, प्रतापगढ़, बाँसवाड़ा, डूंगरपुर, उदयपुर, सिरोही, किशनगढ़, टोंक, और अजमेर के विलीनीकरण सहित 26 जिले थे। 9 जनवरी 1991 में तीन नए जिले बांरा (कोटा जिले से) राजसमंद (उदयपुर जिले से), दौसा (जयपुर जिले से) बनाये गये। इसके पश्चात हनुमानगढ़ (गंगानगर जिले से), करौली (सवाईमाधोपुर जिले) बनाये गये। सबसे नवीन जिला प्रतापगढ़ 26 जनवरी, 2008 को अस्तित्व में आया। इस प्रकार वर्तमान में राजस्थान में कुल 33 जिले है।

जब हम राजस्थान की आंतरिक स्थिति के नजर पर डालते है तो इसकी बनावट के आधार पर पांच स्पष्ट भौगोलिक भाग दिखाई देते है।– 1. पर्वतीय भाग, 2. पठारी भाग, 3. मैदानी भाग, 4. मरुस्थलीय प्रदेश, 5. नदीय प्रदेश। यदि इन प्राकृतिक भू-भागों की जलवायु, वर्षा, तथा वनस्पति और उपज के संदर्भ में अध्ययन किया जाये तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि राजस्थान की भोगौलिक अवस्था का प्रभाव ऐतिहासिक घटनों और वहाँ के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर विशेष रूप से परिलक्षित होता है। यह तो स्पष्ट है कि जितनी भी संस्कृतियों हुई उनमें भौगोलिक स्थिति का बड़ा हाथ है और ये राजस्थान के सम्बंध में और अधिक स्पष्ट है।[28]

पर्वतीय प्रदेश:

अरावली[29] पर्वत श्रेणी राजपूताना को दो प्राकृतिक प्रदेशों में विभक्त करती है। जिनको पश्चिमी और पूर्वी विभाग कहते है और ये श्रेणियाँ अरावली पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है। राजपूताना में ये पहाड़ आडावव्ठा या वव्ठा नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ की भाषा में वव्ठा शब्द पहाड़ का सूचक है। अंग्रेजी वर्णमाला की अपूर्णता उसमें लिखा हुआ नाम एक तरह से पढ़ा नहीं जाता, इसी दोष से आडावव्ठा का अर्वली नाम अंग्रेजों के समय से प्रचलित हो गया, परन्तु राजपूताना के लोग अब भी इसको आडावव्ठा ही कहते है अर्वली का लौकिक रूप आडावव्ठा ही है इसका अर्थ मार्ग में सीधी बल्ली से है। वास्तव में राजस्थान के एक छोर से दूसरे छोर तक अर्गली के रूप में अर्वली दिखाई देती है। ये पर्वत श्रेणियाँ राजपूताना के ईशान कोण से शुरू होकर शुरू नैऋत्य तक चला गया है। वहाँ से दक्षिण की और से बढ़ता हुआ गुजरात के माही कांठा से होकर सतपुड़ा से जा मिला

है। उत्तर में इसकी श्रेणियाँ बहुत चौड़ी नहीं है, अजमेर के दक्षिण में जाकर ये बहुत चौड़ी होती गयी। सिरोही, उदयपुर, बाँसवाड़ा, डूंगरपुर तथा प्रतापगढ़ का पश्चिमी हिस्सा इन श्रेणियों से बहुत कुछ ढका हुआ है। एक दूसरी पर्वत श्रंखला उदयपुर के मांडलगढ़ से शुरू होकर बूंदी, कोटा, जयपुर, झालावाड़ में होकर पूर्व और दक्षिण में मध्य भारत में फैलती हुए सतपुड़ा पर्वत से जा मिलती है। अर्वली पर्वत का सबसे ऊँचा भाग सिरोही राज्य में है, जिसकी गुरु-शिखर नाम की सबसे ऊँची चोटी की ऊँचाई समुद्र की सतह से 5650 फुट है और वीरविनोद के अनुसार गुरुशिखर की ऊँचाई समुद्र तल से 5653 फुट है। हिमालय और नीलगिरी पर्वत के बीच इतनी ऊँचाई वाला कोई दूसरा पर्वत शिखर नहीं है।[30]

ये पर्वत श्रंखलायें और पहाड़ी घाटियाँ उन आदिम निवासियों के लिए सुरक्षा का कारण बन गयी जिन्हें हम भील, मीणा और मेर कहते हैं। इस प्रदेश में रहते हुए इन आदिम जातियों ने अपने को बाहरी सम्पर्क से अलग रखा। ये लोग एक लम्बे समय तक अपनी संस्कृति का विकास करने में सफल हो सके। इनका जीवन पर्वतों और जंगलों में रहने के कारण एकांतप्रिय और उदात्त बन गया। उनके रक्षा के साधन और युद्ध के तरीके भी विलक्षण थे जिसका उपयोग महाराणा कुम्भा, महाराणा प्रताप, महाराणा चन्द्रसिंह,, महाराणा राजसिंह, तथा दुर्गादास राठौड़ आदि ने इन आदिवासियों के सहयोग से, आक्रमणकारियों ने उन्हें परास्त करने में पग-पग पर असफलता का सामना करना पड़ा। इन जातियों के सहवास से राजपूतों ने भी अपने रहन-सहन तथा युद्ध शैली में स्थानीय गुणों को इस तरह अपना लिया कि वे उनके आचरण और व्यवहार के अंग बन गये।[31]

अरावली पर्वत श्रेणियाँ का राजपूताना के जन-जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। अरावली की पश्चिम और केन्द्रीय मेखला इतनी घनी और दुर्गम है कि एक भाग से दूसरे भाग में आक्रमण होने की कम संभावना रही है। जिस व्यक्ति के पास इस संकरे भागों का अधिकार रहा। उसने अपने भू-भाग को शत्रुओं से सुरक्षित रखने में सफलता प्राप्त की। मेवाड़ में होने वाले आक्रमण पश्चिम से न हो सके, क्योंकि अरावली की इधर वाली पर्वत श्रेणियाँ ऊँची व घनी है, जो सरलता से पार नहीं की जा सकती थी और इसी तरह हाड़ौती में फैली अरावली की पहाड़ियाँ देश की रक्षा के लिए पर्याप्त थी। डॉ. गोपीनाथ शर्मा के अनुसार अबुल-फजल ने इस भाग की पहाडियों के लिए "ऊँट गर्दन" कहकर दुर्गम कहा था। मेवाड़, मारवाड़, हाड़ौती के रणस्थलों में जब विदेशियों ने जब स्थानीय सैनिकों से टक्कर ली तो उन्हें विफलता का सामना करना पड़ा। स्थानीय शासक आक्रमणकारियों की सशक्त सेना का भी मुकाबला घाटियों, गिरी, पहाड़ियाँ की चोटियों की सहायता से कर पाए थे। यौधेय, मालव, शिवि, आदि प्राचीनकाल में तथा मेवाती, राठौड़, सिसोदिया, चौहान मध्य युग में अपने शत्रुओं को

पहाड़ी स्थिति के कारण नीचा दिखा सके, जिसके लिए इतिहास के पृष्ट साक्षी है। इन पहाड़ी प्रदेशों का उपयोग धर्म-स्थलों को प्रश्रय देने में लाभप्रद सिद्ध हुआ। आक्रमणकारियों से धर्म को बचाने के लिए समृद्ध परिवारों ने अपने निजी सम्पति को अनुदान में देकर पर्वतीय प्रदेशों में मंदिरों और धर्मस्थलों का निर्माण करवाया। नागदा, एकलिंगजी, धूवेल, राणकपुर, सिहाड़, करेडा आदि धर्म स्थलों की स्थिति इस अवस्था का परिणाम है।[32]

पठार:- राजपूताने का पठार चित्तौड़ से बेगूं, बिजौलिया, मांडलगढ़, तथा हाड़ौती, के निकटवर्ती भू-भाग में फैला हुआ है। अधिक ऊचाँ ना होने के कारण, एक स्थान से दूसरे स्थान में चौड़ा होने के कारण तथा उपजाऊ होने के नाते पठारी भागों का बड़ा महत्व है। इसकी केन्द्रीय स्थिति ने इसके अंतर्गत बड़े नगरों की स्थापना, धर्म स्थलों के निर्माण एवं राजनीतिक प्रभुता को परिवर्तित करने में बड़ा योग दिया है। चौहानों और उनके पीछे तुर्क. मुगल और अंग्रेजों की शक्ति को सुदढ़ बनाने में इनका बड़ा उपयोग रहा है। चंदरबरदाई तथा सूर्यमल्ल मिश्रण की उद्भूति यह संकेत करती है कि मानसिक विकास में भी पठारी भाग अपना स्वतंत्र स्थान रखता है।[33]

मैदान:- राजस्थान का पूर्वी प्रदेश जिस में एक और भरतपुर, अलवर के भाग, धौलपुर, सवाई माधोपुर, जयपुर, टोंक, भीलवाड़ा, दूसरी और दक्षिण में माही का मैदान इस में सम्मिलित है। यह प्रदेश अरावली के उत्तर-पूर्व में दक्षिण-पूर्व के विस्तृत राज्य के लगभग 23.3 प्रतिशत भू-भाग पर फैला हुआ है। यह मैदान पश्चिम से पूर्व की 50 से.मी. वर्षा रेखा द्वारा विभाजित है। मैदान की दक्षिण-पूर्वी सीमा विन्ध्य पठार द्वारा बनाई जाती है, इस मैदान के अंतर्गत चम्बल बेसिन, बनास बेसिन, और माही बेसिन (छप्पन बेसिन) सम्मिलित है। वास्तव में इस प्रदेश को 'नदी बेसिन' कहा जाये तो उपयुक्त होगा। इसी क्षेत्र में घनी आबादी बसी है और बड़े पैमाने पर यहाँ के निवासी खेती, पशुपालन, व्यापार तथा विविध व्यवसाय में लगे रहते है। युद्ध के अवसर पर अभाग्यवंश, इसी मैदानी भाग को अधिक आर्थिक संकट उठाना पड़ता था और जन और पशुधन की हानि झेलनी पडती थी।

रेगिस्तान:-राजस्थान के अरावली पर्वत श्रेणियों के पश्चिम का क्षेत्र एक शुष्क और अर्द्ध शुष्क मरुस्थली प्रदेश, जो राजस्थान का सबसे बड़ा प्राकृतिक प्रदेश है। इसका विस्तार उत्तरी छोर से गुजरात की सीमा तक तथा अरावली पर्वत के पश्चिम भाग में विस्तृत है जिसके अंतर्गत जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर, जालौर, पाली, नागौर, झुझुनू, सीकर, जिले का पश्चिमी भाग सम्मिलित है। प्राचीन जैन ग्रंथों और मुगल तवारीखों में इस रेतीले भाग का वर्णन मिलता है जिसमे पानी और पशुओं के लिए चारे का अभाव प्रमुख है इस कारण यहाँ की आबादी कम रही है व दूर-दूर यात्रा करने पर कहीं-कहीं गाँव और पानी की सुविधा मिलती है। जहाँ-जहाँ पानी

के स्रोत है वहाँ लोग बसते है और पशुपालन का व्यवसाय करते है। सैनिक सुरक्षा और राजनैतिक नियन्त्रण के विचार से रेगिस्तान का अपना एक अलग महत्व है।

नदियों की स्थिति:- राजस्थान की गणना भारत के शुष्क प्रदेशों में की जाती है। अत: यहाँ की नदियों, झीलों अर्थात जल राशियों का विशेष महत्व है। उत्तर-पश्चिम की नदियों में सरस्वती और द्श्द्रती मुख्य है, जिसके किनारे प्राचीन भारतीय संस्कृति का विकास हुआ। कालान्तर में ये नदी सूख गयी। अब केवल बरसाती नदी के रूप में घग्घर नदी बहती है। कविराज श्यामलदास के अनुसार पश्चिमोत्तर प्रदेश की प्रसिद्ध नदी लूनी है, जो प्राय: 200 मील दक्षिण और पश्चिम में बहने के बाद कच्छ के रण में विलीन हो जाति है। राजस्थान की सबसे बड़ी नदी चम्बल नदी है। इसको प्राचीन काल में 'चर्मण्यवती' के नाम से जाना जाता था। चम्बल का उदभव मध्य भारत में महू के निकट मानपुर के समीप जनापाव पहाड़ी से हुआ है, जो विन्ध्य पर्वत श्रेणी का भाग है। ये राजस्थान में चौरासीगढ़ किले के निकट प्रवेश कर कोटा और बूंदी जिले की सीमा बनाती है, तत्पशचात सवाई माधोपुर व कोटा सीमा बनाती हुए राजस्थान-मध्यप्रदेश की सीमा के साथ-साथ प्रवाहित होती हुए अंत में यमुना नदी में उत्तरप्रदेश के इटावा नगर के निकट मिल जाती है। चम्बल की प्रमुख सहायक नदियों में बनास, वापनी, मेज, गंभीरी आदि है। बनास (वर्णनाशा) नदी अरावली की खमनौर पहाड़ियाँ से निकलती है, जो कुम्भलगढ़ से 5 कि.मी. दूर स्थित है। बनास राजस्थान की प्रमुख नदी है। इसकी प्रमुख सहायक नदियों में बेडच, कोठारी, खारी, मैनाल, मोरेल है। दक्षिण राजस्थान की प्रमुख नदियों में माही, सोम और जाखम है और इन नदियों के आसपास प्राचीन काल में अनेक संस्कृतियों का विकास हुआ। आसपास का क्षेत्र उपजाऊ होने से समृद्धि के केंद्र भी इनके किनारे विकसित हुए। अनेक राज्य की सीमा निर्धारण में इनका एक राजनीतिक महत्व भी रहा। आक्रमण के समय नदियों के किनारों ने आक्रमणकारी सेना को मार्ग देकर प्रस्थान में सुविधा पैदा की।[34]

जलवायु और वनस्पति: -राजस्थान के जनजीवन में जलवायु और वर्षा का अपना महत्व है। यहाँ की जलवायु विशेषकर शुष्क और अधिकांश भागों में वर्षा का अभाव रहता है। उपज की कमी रहने से इस पर विदेशी आक्रमणकारियों का यहाँ अपना अधिकार स्थापित करने में कम उत्साह दिखाया। मारवाड़ विजय के बाद शेरशाह ने अपनी नीति को नया मोड़ दिया था। जलवायु की विषमता के कारण बाबर ने खानवा के बाद राजस्थान के भीतरी भाग में आगे बढ़ने में अपनी उपेक्षा प्रदर्शित की थी, परन्तु जहाँ राजस्थान में बड़े सूखे प्रदेश है वहीं पूर्वी राजस्थान अपनी उपजाऊ भूमि के कारण प्रसिद्ध है।

इस प्रकार राजस्थान की प्राकृतिक स्थिति में विविधता होते हुए भी एक सूत्रता दिखाई देती है। पर्वत-श्रेणी का सिलसिला, नदियों का बहाव, मरुभूमि का फैलाव इसके एक कोने से दूसरे कोने तक प्रसारित होने से समूचे प्रदेश को एक सूत्र में बाँधता है।[35]

प्राचीन समय के राष्टीय संगठन के तत्व तथा मध्ययुगीन का स्वतंत्रता-प्रेम राजस्थान के जनजीवन के मुख्य अंग इसीलिए बनने पाये, कि यहाँ भाषा, धर्म, आचार-विचार के बंधन द्धढ रहे और जन जीवन को संकीर्ण दृष्टि से ऊपर उठाने में सफल हुए। सबसे बड़ी विशेषता भौगोलिक और राजनीतिक सम्बंध में यह है कि भौगोलिक स्थिति राजनीतिक सीमाओं के निर्माण में बड़ी सहायक रही है। ऊपर के वर्णन से यह भी स्पष्ट है कि भौगोलिक वातावरण ने हर युग में कला, धर्म, शिक्षा और अन्य सांस्कृतिक पहलुओं को प्रभावित किया है। हम जानते है कि किस प्रकार मेवाड़ के शासक और उनकी प्रजा ने अपनी आर्थिक स्थिति संतोषजनक न होते हुए भी पीढ़ियों तक दिल्ली सल्तनत व मुगलों से टक्कर लेते रहे, जब की अन्य राज्यों ने परिस्थितियों के अनुसार अपना भविष्य का निर्धारण कर लिया। इस सम्बंध में कहना ठीक ही है कि ऐसी भौगोलिक वास्तविकता और उसका प्रभाव राजस्थान के जनजीवन पर्याप्त मात्रा में है।

1.2 राजपूताना के प्रमुख राज्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

देश की आजादी से पूर्व राजपूताना मात्र एक भौगोलिक अभिव्यक्ति था। उसमे केन्द्र शासित अजमेर के अतिरिक्त 19 देशी रियासतें सम्मिलित थी। इन सभी रियासतों को सम्मिलित रूप से राजपूताना के नाम से जाना था। इन रियासतों में उदयपुर, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़ व शाहपुरा में गुहिल, जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़ में राठौड़, कोटा व बूंदी में हाड़ा चौहान, सिरोही में देवड़ा चौहान, जयपुर व अलवर में कछवाहा, जैसलमेर व करौली में यदुवंशी और झालावाड में झाला राजपूत राज्य करते थे। नागौर, टोंक में मुसलामान भरतपुर व धौलपुर में जाटों का राज्य था।

राजपूताना में राजपूत राज्यों की स्थापना ऐतिहासिक काल-क्रम में बहुत ही निकट की है। इस काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना युद्धप्रिय राजपूत जाति का उदय एवं राजपूताना में राजपूत राज्यों की स्थापना है। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद केन्द्रीय शक्ति का अभाव उत्तरी भारत में एक प्रकार की अव्यवस्था का प्रर्वतक बना। गुप्त साम्राज्य के बाद प्राचीन भारत के इतिहास में हर्षवर्धन को अंतिम महान शासक कहा जाता है। समकालीन चीनी यात्री युआन च्वांग व इतिहासकार बाणभट्ट ने भी उसकी प्रशंसा और उपलब्धियों का वर्णन किया है, परन्तु यह गौरव उसके साथ ही समाप्त हो गया।

इसका प्रमुख कारण यह था कि हर्ष का प्रशासन सामंतवाद पर आधारित था। हर्ष की मृत्यु के बाद सामंती तत्व शक्तिशाली हो गये। उन्होंने स्वतंत्र सत्ता की स्थापना कर ली। उत्तर व पश्चिमी भारत में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। इसके बाद हूणों के प्रलयकारी आक्रमणों से राजपूताना को बड़ी क्षति पहुँची और बिखरी हुए गणतन्त्र व्यवस्था को जर्जरित कर दिया। कुछ समय के लिए मालवा के शासक यशोधर्मन ने राजपूताना में सुख और सम्प्रदा लाने में सहायक सिद्ध हुआ, परन्तु ये शान्ति भी क्षणिक रही। यशोधर्मन के अधिकारी जो "राजस्थानी" कहलाते थे। अपने-अपने क्षेत्र में स्वतंत्र होने की चेष्टा कर रहे थे। इस राजनीतिक उथल-पुथल के बीच राजपूत कुलों ने राजपूताना के कई प्रदेशों पर अपने-अपने राज्य स्थापित कर लिए थे। मारवाड़ में राठौड़, मेवाड़ के गुहिल, सांभर के चौहान, चित्तौड़ के मौर्य, भीनमाल तथा आबू के चावड़ा, आमेर के कछवाहा, जैसलमेर के भाटी, रणथम्भौर के चौहान, जालौर के सोनगरा चौहान आदि प्रमुख है जिनकी ऐतिहासिक प्रष्ठभूमि इस प्रकार है।–

मेवाड़ राज्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :-

गोपीनाथ शर्मा के अनुसार उदयपुर का प्राचीन नाम 'किव' था जिसकी राजधानी मध्यमिका थी। वर्तमान समय में मध्यमिका को 'नगरी' के नाम से जाना जाता है जो चित्तौड़ से 7 मील उत्तर दिशा में स्थित है। मेवाड़ के प्राचीन नाम शिवि, प्राग्वाट, मेदपाट आदि रहे है। इस क्षेत्र में पहले मेद अर्थात 'म्लेच्छा को मारने वाले' या मेव जाति का अधिकार रहने से मेदपाट (मेवाड़) पड़ा।[36] राजपूताने के सम्पूर्ण इतिहास में मेवाड़ राज्य का इतिहास ही सबसे अधिक गौरवपूर्ण रहा है। इस छोटे से राज्य ने जितने वर्षों तक उस समय के सबसे अधिक सम्पन साम्राज्यों का वीरतापूर्ण मुकाबला किया, वैसा उदाहरण सम्पूर्ण संसार के इतिहास में बहुत नहीं मिलेगा। पुराणों में सूर्यवंशी और चंद्रवंशी राजपूत राजाओं का उल्लेख है। इन दोनों में भी सूर्यवंशी राजपूतों का स्थल सबसे अधिक प्रतिष्ठित और अग्रणीय बताया गया है। इनमें गुहिल वंशीय राजपूत मुख्य है ये गुहिलों के बाद 'राणा उपाधिधारी' और सूर्यवंश की बड़ी शाखा के वंशज रहे है। राम के एक पूर्वज के पीछे उन्हें 'रघु वंशी[37]' भी कहा जाता है। हिन्दू लोग एक स्वर में मेवाड़ के महाराजाओं को राम का वैधानिक उत्तराधिकारी मानते है और उन्हें 'हिन्दुवा सूरज'[38] कहते है।

गुहिल:- इस वंश में सर्वप्रथम गुहिल के प्रतापी राजा होने के कारण इस वंश के वंशज भारत में जहाँ-जहाँ जाकर बसे। उन्होंने अपने को गुहिल वंशज कहा। डॉ.गोपीनाथ शर्मा के अनुसार संस्कृत लेखों में इस वंश के लिए गुहिल, गुहिलपुत्र, गोहिल, गहलोत, गोहिल्ये आदि शब्दों का प्रयोग किया गया। भाषा का गोहिल रूप संस्कृत के गोभिल और गौहिल्य से बना है।[39] साधारण बोलचाल की भाषा में गुहिल, गोहिल और गैहलोत प्रसिद्ध हो गये। नैणसी ने अपने ख्यात में गुहिल वंश की 24 शाखाएं उल्लेखित की है। कर्नल टॉड ने भी अपने ग्रन्थ में 24 शाखाएँ बताई है। कविराज श्यामल दास ने इनको क्षत्रियों की 36 शाखा अंतर्गत रखा है। इस वंश की एक शाखा सिसोदिया नामक गाँव की निवासी होने के कारण सिसोदिया कहलायी।[40]

मूल-निवास स्थान:- गुहिलों के मूल-निवास स्थान के बारे विभिन्न इतिहासकारों के मत एक नहीं है। जिसके कारण उनकें मूल-निवास स्थान को लेकर काफी भ्राँतियाँ पैदा हो गयी है। जिन इतिहासकारों ने मेवाड़ के गुहिलों के बारे अपने-अपने मत दिये है, उनमे प्रमुख है। जैसे अबुल-फजल, मासिरुल उमरा, बिसातुल गनाइमम् के लेखक, कर्नल जेम्स टॉड, स्मिथ आदि लेखक मेवाड़ के गुहिलों का विदेशियों की संतान होना बताया है। कुछ

इतिहाकारों ने जैसे कि वीर विनोद के लेखक कविराज श्यामलदास, गौरी शंकर हिराचंद ओझा, श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर, मुहणोत नैणसी, गोपीनाथ शर्मा आदि ने उनके स्वदेशी होने के प्रमाण दियें है।

विभिन्न इतिहासकारों के मत :-

अबुल-फजल :- राजपूताने के इतिहास को लिखने का सर्वप्रथम प्रयास बादशाह अकबर के मंत्री अबुल-फजल ने किया। उसने अपने ग्रन्थ 'आईने-अकबरी' में अकबर के समय के राज्य के प्रत्येक सूबे का इतिहास लिखने का प्रयत्न किया। इसी प्रसंग में अबुल-फजल ने अजमेर सूबे के अंतर्गत मेवाड़ का प्राचीन इतिहास लिखने का भी प्रयास किया था। उसने मेवाड़ के गुहिलों को ईरान के बादशाह नौशेरवां आदिल की संतान होना बताया, किन्तु उस समय तक मेवाड़ ने अकबर बादशाह की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। जिससे अकबर उसका कट्टर शत्रु हो गया था। वह मेवाड़ को नष्ट करना चाह रहा था। अबुल-फजल के पहले की अरबी अथवा फारसी तवारीखों, भाटों की ख्यातों, जैनों की पुस्तकों तथा प्राचीन शिलालेखों आदि में इसका उल्लेख नहीं हुआ है। उस समय प्राचीन संस्कृत ऐतिहासिक पुस्तकों को, जो भिन्न-भिन्न स्थानों के पुस्तक संग्रहों में पड़ी हुई थी, किसी ने संग्रह भी नहीं किया था। प्राचीन शिलालेख और दानपत्र तो पढ़े ही नहीं जाते थे। यह कल्पना अबुल-फजल की मनगढंत होने के कारण आधुनिक इतिहासकार इसको स्वीकार नहीं करते है। [41]

कर्नल जेम्स टॉड :- अयोध्या जिसे वर्तमान में अवध कहते है। प्रसिद्ध राम की राजधानी थी। राम के दो पुत्र थे- लव और कुश, जनश्रुति के अनुसार लव ने लोहकोट नामक नगर बसाया था, जिसे अब लाहौर कहते है। इसी क्षेत्र में मेवाड़ राज्य के पूर्वज उस समय तक निवास करते रहे। जब तक कनकसेन उसे छोड़कर सौराष्ट्र नहीं चला आया। इस समय इस क्षेत्र पर परमार वंश के किसी राजा का अधिकार था। कर्नल टॉड के अनुसार कनकसेन ने किसी परमार राजा को पराजित करके उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। अपनी सत्ता स्थापित कर ली। 144 ई. में वीर नगर नामक नगर की स्थापना की। कनकसेन की चोथी पीढ़ी में उसके वंश में विजयसेन नामक राजा हुआ। इसने विजयपुर, विदर्भ, वल्लभीपुर नामक नगर बसाये। इनमें वल्लभीपुर विशेष प्रसिद्ध था। वर्तमान में भावनगर से 15 कि.मी. उत्तर पश्चिम में जो वल्लभी नामक नगर बसा है, वहीं प्राचीन वल्लभीपुर का बचा हुआ हिस्सा है। सूर्यवंशी महाराज कनकसेन की आठवीं पीढ़ी में शिलादित्य नाम का एक राजा हुआ था। उसी के शासनकाल में मलेच्छों ने आक्रमण कर वल्लभीपुर को तहस-नहस कर दिया था। कर्नल जेम्स टॉड ने वल्लभी के पतन के समय हुए आक्रमण में गुहिल के पिता शिलादित्य का मारा जाना लिखा है। उस समय शिलादित्य की

रानी पुष्पावती, जो अम्बा भवानी की यात्रा के लिए गयी हुई थी। टॉड ने माना है कि शत्रुओं द्वारा आक्रमण करने पर वहाँ के तत्कालीन राजा की रानी अपने पुत्र गुहिल को लेकर मेवाड़ की तरफ आ गयी।[42]

डॉ. गोपीनाथ शर्मा:- के अनुसार गुह्दत्त या गुहिल या गुहा (566 ई.) इस वंश का संस्थापक था जिसके दो हजार से अधिक सिक्के आगरा के पास मिलना उसके विस्तार का घोतक है।[43] ताम्रपत्र के संवतो को मिलाने से गोहित शिलादित्य प्रथम का पुत्र प्रतीत होता है। इसी गुहिल के वंशज होने के कारण यह वंश गुहिलोत कहलाया। वीर विनोद के लेखक कवि श्यामलदास ने तों यह मान लिया कि गुहिलवंश वल्लभी से मेवाड़ आया था। पर उन्होंने शिलादित्य के समय में वल्लभी पतन की टॉड की दलील से मतभेद प्रकट करते हुए यह लिखा कि उस समय वल्लभी में और कोई राज होगा। उसके मर जाने के बाद उक्त खानदान की बड़ी शाखा जिसमें गुहिल और बापा हुए मेवाड़ की अरावली की पहाड़ियाँ में आकर रहने लगी।[44]

कर्नल जेम्स टॉड:- ने 'शत्रुंजय महात्म्य' आदि जैन ग्रंथों के आधार पर मेवाड़ के शासकों को वल्लभी के राजाओं का वंशज माना है, परन्तु वल्लभी के अंतिम शासक शिलादित्य छठे के अलीना दान-पत्र और मेवाड़ के शासक शिलादित्य के वि. सं. 703 के सोमाली लेख से टॉड के मत की पुष्टि नहीं होती है। ओझा ने आइन-ए-अकबरी और मुहणोंत नैणसी की ख्यात के आधार पर मेवाड़ के शासकों का दक्षिण भारत की तरफ से आना प्रतिपादित होता है,। लेकिन यह नहीं बताया कि ये कहा से आये लेकिन उन्होंने यह लिखा कि मेवाड़ के नागदा में सूर्यवंशी शासक थे और वह गुहिल से सम्बधिंत था।[45]

डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने समसामयिक शिलालेख की सहायता से गुहिल के वंश के राजाओं के नाम और उनके वर्णन पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता कि गुहिल के उत्तराधिकारी इसी क्रम में थे जिनमें प्रमुख है– शील, अपराजित, भर्तभट्ट, अल्लट, नरवाहन, शक्तिकुमार, विजयसिंह आदि प्रमुख है।[46] बाप्पा, खुमाण प्रथम, मत्तट, भर्तभट प्रथम, खुमाण द्वितीय, महायक, खुमाण तृतीय, भर्तभट तृतीय, अल्लट/अल्लू, नरवाहन, शालिकुमार, शक्तिकुमार, अम्बाप्रसाद, शुचिवर्मा, नरवर्मा, कीर्तिवर्मा, योगराज, बैरट, हंसपाल, वैरीसिंह, विजयसिंह, अरिसिंह, चौड़सिंह, विक्रमसिंह, रणसिंह, क्षेत्रसिंह, सामंतसिंह और तेजसिंह ।[47]

शिलादित्य (शील) - नागादित्य का उत्तराधिकारी शिलादित्य ही माना जाता है। मेवाड़ के शिलालेखों में इसे शील कहा गया है। महत्वपूर्ण सोमाली शिलालेख लिखवाने का श्रेय शिलादित्य को ही है। यह शिलालेख वि.सं. 703 (646 ई.) का माना जाता है।[48]

अपराजित- शिलादित्य का उत्तराधिकारी अपराजित था इसके समय का एक एक शिलालेख नागदा के समीप कुंडेश्वर मंदिर से मिला है। यह शिलालेख वि.सं. 718 (661 ई.) का माना जाता है। कुंडा की प्रशस्ति में पाया जाता है कि इसके उत्कीर्ण के समय अपराजित अल्प आयु का रहा होगा। इसी प्रशस्ति में उसके सैनिक अधिकारी को सेनापति महाराज वराहसिंह लिखने से यह प्रकट भी होता है कि अपराजित एक बड़ा राजा था। वि.सं.770 सन् 713 ई. के लगभग शत्रुओं ने एक दम आक्रमण कर दिया जिससे वह अपने साथियों सहित लड़कर मारा गया। इस विपत्ति के समय में उक्त राजा की रानी अपने पुत्र महेंद्र (बाप्पा) सहित अपनी जान बचाकर नागदा में पुरोहित वशिष्ठ रावल के यहाँ लाई गई और वहीं रहने लगी।[49]

बाप्पा रावल:- अपराजित के बाद महेन्द्र द्वितीय मेवाड़ की गद्दी पर आसीन हुआ। उसके शासनकाल की घटनाओं की जानकारी नहीं मिलती है। कालभोज/बापा इस वंश के प्रतापी शासकों में बाप्पा रावल/कालभोज का नाम चर्चित है। डॉ. रामप्रसाद व्यास का कहना है कि बाप्पा या बाप्पा रावल किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं वरन् यह एक उपाधि है, परन्तु इस उपाधि से कौनसा शासक अंलकृत था, यह पता नहीं। गौरीशंकर हिराचंद का कहना है कि यह अलंकरण कालभोज का ही था, क्योंकि मेवाड़ के विभिन्न शिलालेखों, दानपत्रों, ऐतिहासिक ग्रंथों तथा बाप्पा की स्वर्ण मुद्रा के पृष्ट भाग पर उसके विभिन्न नाम मिले है यथा वप्प, वोप्प, वप्पक, बप्पा, बापा आदि। वप्प व बप्प दोनों प्राकृत भाषा के प्राचीन शब्द है जिनका मूल अर्थ बाप (बीज बोनें वाला पिता है तब से यही नाम चला आ रहा है। यह सम्मान सूचक माना जाता है। मेवाड़ के पिछले अनेक लेखों में बापा के लिए रावल शब्द मिलते है। गुहिल के बाद प्रतापी शासकों में बाप्पा का नाम आना चाहिये। इस सन्दर्भ में डॉ. गोपीनाथ शर्मा का कहना है कि बाप्पा रावल गुहिल से आगे बढ़ ही जाते है। बाप्पा जिसे बप्प, बापा, बप्पक, बाष्प, आदि नामों से संबोधित किया गया है, मेवाड़ के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

निष्कर्ष रूप में हम यह विचार व्यक्त करना उचित समझते है कि बापा के सम्बंध में कई कथाएँ आवश्क प्रचलित है। ये कथाएँ रोचक आवश्क है पर तथ्यों पर आधारित नहीं है और उनसे बापा का वैभव भी स्पष्ट नहीं होता है। तथापि ये तो आवश्क स्वीकार करना पड़ेगा कि बापा एक ऐतिहासिक व्यक्ति था। जिसके उत्कर्ष में हारीत ऋषि का महत्वपूर्व योगदान था। डॉ.गोपीनाथ शर्मा के अनुसार बापा एक विरूद्ध था ये किसी शासक की उपाधि या विरूद्ध न होकर स्वतंत्र व्यक्ति का परिचायक है। ये सभी कथाएँ बड़ी रोचक है, परन्तु इनमें ऐतिहासिक तथ्य आंशिक नहीं है। हारीत की कृपा से बापा की वैभव प्राप्ति में ऐतिहासिकता झलकती है।

एकलिंगमहात्म्य के बीसवें अध्याय के बीसवें श्लोक में कहा गया है कि वि.सं.810 में अपने पुत्र को राज्य प्रदान कर बापा रावल मुनि के पास नागदा चले आया। उक्त श्लोक का पूरा अर्थ इस प्रकार है– हे मुनि संवत वि.सं.810 में अपने पुत्र को राज्य दे, संन्यास ग्रहण कर साथ में समाधि लिए उसने (बापा) नागहद क्षेत्र (नागदा) में अर्थाविधा विशारद के पास पहुँचकर गुरु का दर्शन किया। इस कथन से स्पष्ट होता है कि वि.सं.810 (753 ई.) में बापा ने अपने पुत्र को राज्य देकर संन्यास ग्रहण कर लिया। डॉ.ओझा का मत है कि बापा का राज्य छोड़ने संवत स्वीकार योग्य है, क्योंकि प्रथम तो कुम्भकर्ण के समय के बने एकलिंगमहात्म्य में पाया जाता है कि यह संवत कपोल-कल्पित नहीं है, किन्तु प्राचीन आधार पर लिखा गया है। दूसरी बात यह है कि बापा ने मौर्य वंशीय से चित्तौड़ का किला ले लिया।[50] डॉ. गोपीनाथ शर्मा, डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा के इस मत से सहमत नहीं है। बापा की मृत्यु भी एकलिंगपूरी में हुई। कर्नल जेम्स टॉड का कहना है कि पचास वर्ष की आयु में बापा खुरासान चले गये। और सौ साल की आयु प्राप्त कर वहीं परलोक सिधार गये। टॉड का कथन भट्ट ग्रंथों पर आधरित है और कपोल- कल्पित है। वर्तमान एकलिंगपुरी से एक मील दुरी पर बापा रावल की समाधि बनी हुई है। आज भी समाधि स्थल को बापा रावल कहा जाता है।[51]

टॉड के मतानुसार बप्पा के जीवन काल में आक्रमणकारी मुसलमानों ने भारत में प्रवेश किया था और ये लोग सिंध नदी को पार कर इस देश में आये। हिजरी संवत 95 में खलीफा वलीद का सेनापति मुहम्मद बिन कासिम सिंध प्रदेश को जीत कर गंगा के किनारे तक चला गया था। आठवीं सदी के मध्य में इन आक्रमणकारियों ने अजमेर के राजा माणकराय का राज्य उजाड़ दिया था। सिंध के राजा दाहिर का इतिहास पढ़ने पर इस बात का संदेह नहीं रह जाता कि अजमेर आक्रमण करने वाला कासिम था। अब्बुल फजल ने लिखा है कि हिजरी संवत 95/713 ई. में कासिम ने दाहिर को मारकर उसके राज्य को नष्ट किया था । राजा दाहिर के बेटे ने भाग कर चित्तौड़ के मोरिराज के यहाँ आश्रय लिया था। बप्पा से लेकर शक्तिकुमार के बीच तक (दो शताब्दियों में) चित्तौड़ के सिंहासन नौ राजा आसीन हुए। इनमें चार राजा बड़े वीर और प्रतापी निकले। पहला कनकसेन (144 ई.), दूसरा शिलादित्य (सन् 524 ई.में), तीसरा बप्पा 728 ई. में चौथा शक्तिकुमार(1068 ई.)[52]

खुम्माण प्रथम-बापा रावल का पुत्र खुम्माण प्रथम था। मेवाड़ के इतिहास में खुम्माण का नाम सभी शासकों के साथ प्रशंसनीय शासकों में लिया गया है।[53] मेवाड़ का पराभव काल – (मत्तट से महायक तक)[54] **खुम्माण तृतीय: मेवाड़ की शक्ति का उदय** डॉ.गोपीनाथ शर्मा के अनुसार 877 ई. में खुम्माण तृतीय मेवाड़ का शासक बना। उसने अपनी सेना का पुन: गठन किया और मेवाड़ की स्थिति में सुधार किया।[55] **भर्तभट्ट द्वितीय** खुम्माण

के पुत्र भर्तभट्ट द्वितीय को 977 ई. के आटपुर के लेख में तीनों लोकों का तिलक बताया गया है। गोपीनाथ शर्मा के अनुसार 943 ई. में उसके समय में आदिवराह पुरुष के द्वारा गंगोदभव तीर्थ में आदिवराह के मंदिर का निर्माण किया था।[56] **अल्लट/आलू रावल** उदयपुर के दिल्ली दरवाजे के बाहर शारणवर महादेव के मंदिर की प्रशस्ति के अनुसार भर्तभट्ट और रानी महालक्ष्मी के पुत्र अल्लट वि. सं.1010 में राजा था। इसी अभिलेख से यह भी पता चलता है कि इस समय आहड़ अच्छा नगर था और वहाँ दूर-दूर से व्यापारी आते थे जैसे कर्नाटक, मध्यप्रदेश, लाट, टक्कदेश आदि से व्यापारी आया जाया करते थे और व्यापारिक गतिविधियाँ होती रहती थी। अल्लट का विवाह हुण कन्या हरियादेवी से हुआ था। इसी कारण आघात के संस्थापकों में उसकी गणना होती है।[57] **नरवाहन** शक्तिकुमार के वि.सं.1034 (977 ई.) के शिलालेख से ज्ञात होता है कि अल्लट का उत्तराधिकारी नरवाहन राजा हुआ। चौहानों से मैत्रीपूर्ण स्थापित करने के लिए उसने चौहान राजा जेजय की पुत्री से विवाह किया । नरवाहन की मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र शालिवाहन राजा बना। यह एक योग्य राजा साबित नहीं हुआ।[58] शक्तिकुमार शालिवाहन का पुत्र था। उसके समय का एक अभिलेख वि.सं.1034/ 977 ई. का मिला उसमे इसको तीन शक्तियों (प्रभु शक्ति, मन्त्र शक्ति और उत्साह शक्ति) से सम्पन बताया है ।[59] डॉ.गोपीनाथ के अनुसार मालवा के राजा मुंज ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर उसके आधार को तोड़ा, परन्तु उस समय राष्ट्रकूट नरेश धवल ने शक्तिकुमार की सहायता की। इस पर भी मुंज का आक्रमण नहीं रुका। शक्तिकुमार के समय चित्तौड़ मालवा के परमारों के अधीन बना रहा। कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति के अनुसार नागदे के भोजसर का निर्माण भोज ने करवाया था और 1022 ई. में उसके द्वारा नागदा में भूमि दान दिया गया था।[60]

ऐसा प्रतीत होता है कि ग्यारहवीं सर्दी के प्रथम अर्द्ध अवधि तक मेवाड़ का कुछ भाग चित्तौड़ में सम्मिलित, वह परमारों के अधीन बना रहा। फिर ऐसा प्रतीत होता है कि परमारों से चालुक्य सिद्धराज ने चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया जो उसके पीछे उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल के अधीन रहा।

अम्बाप्रसाद:- शक्तिकुमार के उपरांत उसका पुत्र अम्बाप्रसाद मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। चित्तौड़ दुर्ग से प्राप्त रावल समरसिंह के समय के शिलालेख वि.सं.1331/1274 ई.में उसका नाम आम्रप्रसाद अंकित है। कश्मीर के विख्यात विद्वान् जयानक द्वारा रचित 'पृथ्वीराजविजय' महाकाव्य से ज्ञात होता है कि सांभर के महान चौहान शासक वाक्पपतिराज द्वितीय ने अम्बाप्रसाद पर धावा बोलकर उसे यमलोक पहुँचा दिया।[61] नरवर्मा के बाद शुचिवर्मा शासक हुए। शुचिवर्मा के बाद नरवर्मा, कीर्तिवर्मा, योगराज, बैरट, क्रमश: गद्दी पर बैठे, परन्तु इन चारों के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती है।[62]

हंसपाल बैरट के उपरांत शासक बना। इसके बाद वैरिसाल, इसका उत्तराधिकारी विजयसिंह था। मालवा के उदयसिंह की पुत्री से शादी करके और अपनी पुत्री अल्हणदेवी का विवाह कलचुरी के शासक से करके अपनी शक्ति में विस्तार किया था। विजयसिंह के बाद अरिसिंह, चोड़सिंह, और विक्रमसिंह, शासक हुए जिनके विषय में हमारे पास बहुत कम जानकारी है।[63]

विक्रमसिंह के बाद उसका पुत्र रणसिंह मेवाड़ का शासक बना। क्षेमसिंह के बाद उसका पुत्र मेवाड़ का शासक बना। गोपीनाथ शर्मा के अनुसार सामंतसिंह ने 1174 ई. के आसपास गुजरात के शासक अजयपाल को युद्ध में पराजित करके मेवाड़ के बहुत से प्रदेशों को अपने अधिकार में कर लिया परन्तु सामंतसिंह अपने पैत्रक राज्य को अधिक दिनों तक अपने अधिकार में नहीं रख सका। चौहान शासक कीतू ने उसे मेवाड़ से निकाल दिया। तब उसने 1178 ई. के लगभग वागड में जाकर अपना नवीन राज्य स्थापित करना पड़ा। वटप्रदक (बड़ौदा उसके राज्य की राजधानी थी। गोपीनाथ शर्मा के अनुसार सांमतसिंह का विवाह अजमेर के शासक पृथ्वीराज द्वितीय की बहन से होना पाया जाता है। पृथ्वीराजरासो के अनुसार पृथ्वीराज तृतीय की बहिन का विवाह समरसिंह से होना लिखा। लेकिन यह संभव नहीं, क्योंकि वीर विनोद के अनुसार 1192 ई. में जिस वर्ष में पृथ्वीराज तृतीय और शहाबुद्दीन गौरी की लड़ाई हुई, रावल समरसिंह का होना संभव नहीं। इससे स्पष्ट है कि पृथ्वीराज द्वितीय की बहिन का विवाह चित्तौड़ के किसी राजा के साथ हुआ हो तो वह कोई दूसरा राजा होगा समरसिंह नहीं, क्योंकि पृथ्वीराज तृतीय 1192 ई. में मारा गया था और रावल समर सिंह की प्रशस्तियाँ 1273 ई. से लेकर 1287 ई. तक मिलती है अर्थात समरसिंह का राज्य पृथ्वीराज तृतीय की मृत्यु के लगभग 80 साल बाद आता है। ओझा भी गोपीनाथ शर्मा के मत से सहमत है कि चौहान शासक पृथ्वीराज द्वितीय की बहन का विवाह रावल सांमत सिंह के साथ होना संभव है।[64] [65] [66] [67]

सामन्तसिंह के बाद उसका भाई मंथनसिंह मेवाड़ का शासक बना। उसने अपने वंश परम्परागत राज्य को चौहान शासक कीतू से छीन लिया और अपने अधिकार में कर लिया। उसके उत्तराधिकारी पदमसिंह ने मेवाड़ में पुन: शासन व्यवस्था की स्थापना की और अपने बड़े पुत्र योगराज को नागदा का तलारक्ष नियुक्त किया।[68] [69]

इस प्रकार गुहिलों ने 13वीं सदी के प्रारम्भिक काल तक मेवाड़ में की उथल-पुथल होने पर भी अपने कुल के परम्परागत राज्य को बनाई रखा। कभी उनके हाथ से मेवाड़ निकल जाता तो कभी नागदा निकल जाता। इस पर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और धीरे-धीरे अपने अपहृत राज्य पर पुन: अधिकार करते रहे। इस प्रकार कई

स्थिति बनाने में सोंलकी, परमारों और चौहानों की भूमिका भी एक कारण थी केवल चित्तौड़ पूर्णरूप से नहीं आ सका जिसकों विजित करने का श्रेय पदमसिंह के पुत्र जैत्रसिंह को जाता है।[70]

जैत्रसिंह:- 13वीं सदी के प्रांरभ के साथ ही मेवाड़ की राजनीति नये मोड़ के साथ आरंभ होती है। इस समय चौहानों का उत्कर्ष समाप्त हो चुका था और मेवाड़ में जैत्रसिंह के साथ गद्दी पर बैठते ही (1213 ई.) नयी शक्ति का संचार होता है। चिरवा का लेख प्रमाणित करता है कि जैत्रसिंह इतना शक्तिशाली शासक बन गया था कि मालवा, गुजरात, मारवाड़, बीकानेर (जांगल) तथा दिल्ली के शासक उसकी बढ़ती शक्ति को नहीं रोक सके। इस कथन में अतिशोक्ति आवश्यक हो सकती है, परन्तु इतना आवश्क स्वीकार करना पड़ेगा कि उसने अपने पूर्वजों से अपने पड़ौसी राज्यों को दबाने में अधिक सफलता पाई। इतिहास में इसे जयवल, जयजस, जयंतसिंह और जीतसिंह नामों से भी जाना जाता है। उसने अपने शासनकाल में मेवाड़ के लुप्त गौरव को पुन: स्थापित करने का प्रयास किया। 1243 ई. में जैत्रसिंह ने गुजरात के शासक त्रिभुवनपाल पर आक्रमण किया और उसे पराजित किया। इस पर वीरधवल के मंत्रियों वस्तुपाल और तेजपाल दोनों ने जैत्रसिंह से गुजरात के साथ संधि करवानी चाही। इनके अनुसार यदि गुजरात और मेवाड़ के सम्बंध अच्छे हो जाये। जिससे तुर्कों की बढ़ती शक्ति इन राज्यों के लिए धातक सिद्ध न हो सके परन्तु जैत्रसिंह ने इस प्रकार के संधि प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। [71]

1192 ई. में तराईन के दूसरे युद्ध के उपरांत ही चौहानों की शक्ति का सूर्य अस्ताचल को चला था। दिल्ली में 1206 ई. में ही तुर्कों की हुकुमत स्थापित हो गयी थी। उसका अवरोध करने वाला कोई राजपूत शासक नहीं रहा था। ऐसे समय में जैत्रसिंह का राजा बनाना राजपूतों और देश के लिए सौभाग्य की बात थी।

मारवाड़ राज्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:-

ऐतिहासिक काल में मारवाड़:- मौर्य वंशी चन्द्रगुप्त और उसके पौत्र सम्राट अशोक के समय मौर्य साम्राज्य का विस्तार नर्मदा से अफगानिस्तान तक फैला था। इसका पौत्र सम्राट अशोक भी बड़ा प्रतापी राजा था। उसने सुदूर-दक्षिण को छोड़कर करीब-करीब सारे हिंदुस्तान अफगानिस्तान और बलूचिस्तान पर अधिकार कर लिया था। जयपुर राज्य के बैराट से उसका स्तभ लेख मिला है। इससे स्पष्ट होता है कि मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त और उसके पौत्र अशोक के समय मारवाड़ भी मौर्य साम्राज्य का ही एक भाग रहा होगा (रेऊ प. व., मारवाड़ का इतिहास, 1938) ।

मौर्य के बाद उनका राज्य शुंगवंशी राजाओं के अधिकार में चला गया। इस वंश के संस्थापक पुष्यमित्र के समय में वि.सं.66/156 ई. में ग्रीक नरेश मिनेडर ने राजपूताने पर चढ़ाई की थी। उसकी सेना नगरी चित्तौड़ से 6 मील उत्तर में तक जा पहुँची। पंडित विश्वेश्वर नाथ राय के अनुसार नही कह सकते कि उसका मारवाड़ में भी प्रवेश हुआ था। भारत के पश्चिमी प्रदेशों पर वि.सं.97 से 283/40 से 226 ई. तक कुषाण वंशी राजाओं का अधिकार रहा क्योंकि इन्होने बल्ख से आगे बढ़कर धीरे-धीरे काबुल, कंधार, फारस, सिंध और राजपूताने का बहुत सा भाग दबा लिया था। इसमें कनिष्क विशेष प्रतापी राजा हुआ। समस्त उत्तर पश्चिम भारत में और दक्षिण भारत का विंध्य तक का प्रदेश इसके राज्य में था। इसलिये मारवाड़ के कुछ भाग पर भी इस वंश के नरेशों का अधिकार रहा (रेऊ प. व., मारवाड़ का इतिहास, 1938)।

वि.सं. 176/116 ई. के समीप गुजरात काठियावाड कच्छ आदि प्रदेशों पर पश्चिमी क्षत्रप नहपाल का राज्य था। इससे मारवाड़ के दक्षिण भाग भी इसके अधिकार में होना पाया जाता है। इसके जामाता ऋषभदत्त ने पुष्कर में जाकर बहुत सा दान दिया था। विक्रम संवत 181 के कुछ काल बाद ही नहपाल का राज्य आंध्रवंशी गौतम शातकर्णी ने छीन लिया था। इस पर मारवाड़ का दक्षिण भाग उसके अधिकार में चला गया था (एपिग्राफिया इंडिका, 1905-06) । शक संवत 72/वि.सं.207 के रुदादमन प्रथम के जूनागढ़ अभिलेख के अनुसार श्वभ्र (उत्तरी गुजरात) मरू (मारवाड़) कच्छ और सिंध प्रदेशों पर उसका अधिकार था (रेऊ प. व., मारवाड़ का इतिहास, 1938)।

परमारों के राज्य की समाप्ति जालौर के सोनगरा चौहानों ने ग्यारहवीं शताब्दी में कर दी थी। जालौर के चौहानों का राज्य भी अल्लाउद्दीन खिलजी द्वारा वि.सं.1368 में समाप्त कर दिया गया था। फिरोजशाह द्वितीय ने मंडोर पर वि.सं.1351 में व अल्लाउद्दीन खिलजी ने सिवाणा पर वि.सं.1365 कब्जा कर लिया था। इससे बहुत पहले ही वि.सं.1176 में नागौर पर बाहलीम ने कब्जा कर लिया। वहाँ मुसलमानों का अधिकार पन्द्रहवीं शताब्दी तक किसी न किसी रूप में बना रहा (एपिग्रफिया इंडिका, 1909-10)।

इस प्रकार मारवाड़ राज्य पर वि.सं.1300 तक कई राजवंशों का शासन रहा। लेकिन किसी भी राजवंश का सम्पूर्ण मारवाड़ पर अधिकार स्थाई रूप से नहीं रहा।

वि.सं.1300 के लगभग मारवाड़ राज्य में राठौड़ राजवंश का आर्विभाव हुआ। इस राजवंश ने धीरे-धीरे सम्पूर्ण मारवाड़ पर आधिपत्य जमा लिया। उनका शासन वि.सं.1445 से अब तक बराबर चलता आ रहा है। जिस प्रकार दक्षिण पश्चिमी राजपूताना पर गुहिलों का शासन मेवाड़ और वागड प्रान्त में स्थापित हुआ। प्रतिहारों का एकछत्रीय राज्य पनपा। उसी प्रकार राजस्थान के उत्तरी तथा पश्चिमी भागों में राठौड़ों के राज्य भी स्थापित हुए। राठौड़ शब्द भाषा में एक राजपूत जाति के लिए पर्युक्त हुआ है जिसे संस्कृत में राष्ट्रकूट भी लिखते है। अशोक के शिलालेखों में कुछ दक्षिण जातियों के लिए 'रिस्टिक', 'लटिक' और 'रटिका' शब्दों का प्रयोग किया गया था। ये सभी शब्द 'रटट' शब्द के प्राकृत रूप है जो राष्ट्रकूट से मेल खाते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि राठौड़ शब्द राष्ट्रकूट से सम्बन्धित है और उस जाति विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ है जो दक्षिण में राष्ट्रकूट नाम से विख्यात है। राष्ट्रकूट की उत्पति के बारे में विद्वानों में मतभेद है। भिन्न-भिन्न ताम्रपत्रों, शिलालेखों और प्राचीन पुस्तकों में राठौड़ वंश की उत्पति भिन्न-भिन्न रूप से प्रतिपादित की गयी है। कुछ भाटों का मानना है कि राठौड़ हिरण्यकश्यप की संतान है। जोधपुर राज्य की ख्यात में इन्हें राजा विश्वुतमान के पुत्र राजा वृहदबल से पैदा होना लिखा है (जोधपुर राज्य की ख्यात, 1988) । दयालदास ने इन्हें सूर्यवंशीय लिखा है और इन्हें ब्राह्मण के वंश में होने वाले भल्लराव की संतान होना लिखा है (सिद्वायच, 1948) । नैणसी ने मारवाड़ के राठौड़ों को कन्नौज से आने वाली शाखा बताया है (नैणसी, मुहनौत नैणसी री ख्यात, 1960) । 1596 ई. में लिखे 'राठौड़ वंश-महाकाव्य' में राठौड़ों की उत्पति शिव के शीश पर स्थित चन्द्रमा से बतायी है। कर्नल टॉड ने वंशावलियों के आधार पर इन्हें कुल की सूर्यवंशीय संतान माना है (टॉड, एनाल्स एंड एंटीक्यूटीज ऑफ राजपुताना, 1920) ।

राजपूताना के राठौड़:- राजपूताना के राठौड़, हस्तिकुण्डी के राठौड़, धनोप के राठौड़, वागड के राठौड़ तथा जोधपुर व बीकानेर के राठौड़ के नाम से विख्यात है। हरिकुण्डी के राठौड़ गोडवाड इलाके में राज्य करते थे। इस शाखा के विद्ग्ध ने 916 ई. में हस्तिकुण्डी में एक चैत्यग्रह का निर्माण करवाया था। इसी शाखा के एक धवल ने मेवाड़ के शासक मुजं के विरूद्व सहायता पहुँचायी और दुर्लभराज चौहान से नाडौल के चौहान शासक महेन्द्र को बचाया तथा आबू के धरणीवराह परमार को आश्रय दिया। मेवाड़ के शासक भर्तभट की रानी महालक्ष्मी हथुड़ी के राठौड़ राजा की पुत्री थी (राजपूताना म्यूजियम रिपोर्ट, 1923-24) । 1006 ई. के शिलालेख में राठौड़ चच का उल्लेख मिलता है, जो धनोप शाखा का राठौड़ था। इसी वंश में भल्लिन दन्तिवर्मा बुद्वराज गोविन्द आदि शासक हुए। वागड के राठौड़ों में राका और विरम का उल्लेख 1305 ई. नोगामा के शिलालेख में

मिलता है। ये वागडिया राठौड़ या छप्पनिया राठौड़ भी कहलाते थे। जोधपुर के राठौड़ों के विषय में विद्वानों मतैक्य नहीं है। नैणसी री ख्यात (नैणसी, मुहनौत नैणसी री ख्यात, 1960) जोधपुर राज्य की ख्यात (जोधपुर राज्य की ख्यात, 1988) दयालदास री ख्यात राठौड़ों को कन्नोज से आना बताते है। पृथ्वीराज रासो ने भी इन्हें कन्नोजिया गहड़वाल माना है (बरदाई, 1906) ।

मारवाड़ में राठौड़ राज्य की स्थापना राव सीहा के नेतृत्व में (1240 -1273 ई.):- जगदीश सिंह गहलोत के अनुसार 1192 ई. के तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज तृतीय की पराजय के एक वर्ष बाद चन्दावर के युद्ध में जयचंद की मृत्यु के बाद इसका पुत्र हरिश्चन्द्र कन्नौज के सिंहासन पर बैठा। ताजुल माआसिर के अनुसार 1226 ई. तक हरिश्चन्द्र शासन करता रहा। लेकिन जब 1226 ई. में तक कन्नौज पर बादशाह शमशुद्दीन अल्तमस ने अधिकार कर लिया। तब वह फरुखाबाद जाकर रहने लगा। महाराज हरिश्चंद्र के पुत्र का नाम सेतराम था और सेतराम का पुत्र सीहा राव। जब कुछ समय बाद फरुखाबाद जिले में भी मुसलमानों का अधिकार हो गया तो सीहा ने अपने दलबल सहित द्वारिका यात्रा पर जाने का निश्चय किया। जब सीहा जी पुष्कर में रुके हुए थे। तब तीर्थयात्रा पर आये भीनमाल के ब्राम्हाणों जो भीनमाल में मुसलमानों के आक्रमण से परेशान थे। सीहा जी को दलबल सहित देकर इनसे सहायता माँगी और सीहा जी ने स्वीकार कर भीनमाल पहुँचकर वहाँ से मुसलमानों को भागा दिया। द्वारिका की यात्रा पर निकल गये। अपनी यात्रा की वापसी के समय जब सीहा जी मारवाड़ के पाली नामक शहर में आये। यह नगर उस समय अपने व्यापार और वाणिज्य के लिए काफी प्रसिद्व था। यहाँ पालीवाल ब्राहम्ण रहते थे, जो आसपास के गाँवों में रहने वाले मीणा भील और मेर आदि लुटरों से परेशान थे। इन पालीवाल ब्राहम्णों ने सीहा जी से यहाँ रहकर अपनी रक्षा के लिए सहायता माँगी। सीहा जी ने पालीवाल ब्राहम्णों की प्रार्थना स्वीकार कर ली, यहाँ रह कर समय-समय पर इन लुटरों से इनकी रक्षा करने लगे। धीरे-धीरे आसपास के गाँवों पर सीहा जी का अधिकार हो गया। पाली इस समय जालौर के सोनगरा के अधीन था और दिल्ली पर गुलाम वंश का शासन था (गहलोत ज. स., 1991)।

पाली से चौदह मील उत्तर-पश्चिम में बिठु गाँव के पास वि. सं. 1330/ 9 अक्टूबर, 1273 का एक देवल लेख प्राप्त हुआ है जिससे सिद्व होता है कि इस तिथि को राव सीहा की मृत्यु हुई थी। इस लेख से यह भी पता चलता है। सीहा सेतराम का पुत्र था और उसकी सोंलकी वंश की पार्वती नामक रानी थी और लेख का बीठु में पाली के

पास होने से भी यह प्रमाणित होता है कि प्रारम्भ में राठौड़ों का राज्य विस्तार पाली के आपपास ही सीमित था (शर्मा ग. , राजस्थान का इतिहास, 1971)।

जगदीश सिंह गहलोत के अनुसार राठौड़ों का मारवाड़ में यही पहला आगमन नहीं था क्योंकि बाली परगने के गाँव हथुंडी के वि.सं.1053 और वि.सं.996 के शिलालेखों से स्पष्ट है कि राठौड़ वंश के पाँच महापुरुषों ने जो दक्षिण के राष्ट्रकूटों से सम्बन्धित थे, ने हथुंडी में शासन किया था। राठौड़ों का दूसरा राज्य हथुडी से 50 मील पूर्व में शाहपुरा (मेवाड़) धनोप में था। यहां से दो शिलालेख मिले है जिसमें से एक संवत रहित है लेकिन राजा दन्तिवर्मा और उनके बेटे बुधराज के नाम दर्ज है दूसरे शिलालेख सं.1063 और राष्ट्रकूट राजा मलील उसके पुत्र दन्तिवर्मा और दन्तिवर्मा के पुत्र बुधराज और गोविन्दराज का नाम है।

नैणसी री ख्यात के अनुसार सीहा ने मन की विरुत्ति के लिए राज-पात छोड़कर गौ-हत्या पश्चताप के लिए कन्नोज से द्वारिका की पैदल यात्रा पर निकला। मार्ग में चावडा और सोलकियों ने उनके शत्रु सिंध के मारू लाखा को पराजित करने में सहायता के लिए प्रार्थना की। यात्रा से वापस लौटते समय सीहा ने मारू लाखा की युद्ध में हत्या कर दी। बदले में चावडों और सोंलकियों के राजाओं ने अपनी कन्याओं का विवाह सीहा जी के साथ कर दिया। एक रानी सोभागदे मूलराज बागनाथोत की पुत्री थी और दूसरी सोंलकी राव जयसिंह की पुत्री थी। जिससे आस्थान का जन्म हुआ था (नैणसी, मुहनौत नैणसी री ख्यात, 1960) ।

(जोधपुर राज्य की ख्यात, 1988) **जोधपुर की ख्यात** के अनुसार सीहा वरदाई सेन का पौत्र और सेतराम का पुत्र था। राव सीहा ने कन्नोज से पुष्कर यात्रा के भीनमाल के मुसलमानों को परास्त कर यहाँ के ब्राहम्णों की सहायता की और कन्नौज लौटे गया। अपनी कन्नौज यात्रा के दौरान उसने बालेचा चौहानों से पाली के ब्राहम्णों की सहायता की। उसकी वीरता के समाचार सुनकर गुजरात के सोंलकी राजा ने अपनी पुत्री का विवाह जिसका विवाह लाखा फुलाणी से तय हो चूका था सीहा के साथ करने हेतु नारियल भेजा। उसने 1152 ई. में लाखा फुलाणी को मारा। अपने अंतिम समय में अपने पुत्रों को पाली जाने का आदेश दिया। (सिद्वायच द., 1948) **दयालदास की ख्यात** के अनुसार सीहा का जन्म 1118 ई. सिंहासन 1155 ई. और मृत्यु 1187 ई. में, मुगलों से 52 लड़ाईयाँ फिर उसका मनसबदार, लाखा फुलाणी की हत्या और फिर मूलराज की पुत्री से विवाह आदि का

वर्णन किया है। दयालदास द्वारा दिया गया सीहा का जन्मकाल 1118 ई. कन्नौज की गद्दी बैठने का समय 1155 ई. मुगलों से लड़ाई तथा उनसे मनसब प्राप्ति, मूलराज की कन्या से विवाह निराधार है।

(टॉड, एनाल्स एंड एंटीक्यूटीज ऑफ राजस्थान, 1920) **कर्नल जेम्स टॉड** के अनुसार जयचंद के पोते सीहा ने अपने साथियों के साथ राजपूताना की तरफ कूच किया। कुलमुद बीकानेर के पास के सोंलकी सरदार की लाखा फुलाणी से सहायता कर उसकी बहन से शादी की और खेड़ के गुहिलों को परास्त कर उसकी अपनी राजधानी बनाया। और पाली को छल के द्वारा वहाँ के ब्राहम्णों से छीन लिया। टॉड का कथन भी ख्यातों पर आधारित होने के कारण विश्वसनीय नही है। इसी प्रकार पं. रेऊ सीहा जी का पहले खेड़ जाना फिर वहाँ से महुई में जा रहना बताते है जो ख्यातों पर आधारित है।

विभिन्न लेखकों के मतों का विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि यह निराधान और अविश्वसनीय है। नैणसी ने जो चावड़ा और सोंलकियों का राज्य गुजरात में बताया। वह ठीक नही क्योंकि सीहा के समकालीन सोंलकी राजा त्रिभुवनपाल, विसलदेव और अर्जुन देव थे। इस प्रकार लाखा फुलाणी सीहा के 200 वर्ष पूर्व में ही हो गया था। जिसे मूलराज ने मारा था ना कि सीहा ने इसकी पुष्टि हेमचन्द्र के द्वयाश्रम महाकाव्य, सोमेश्वर की कीर्ति कौमुदी और मेरुतुंग प्रबंध चिंतामणी, अरिसिंह के सुकृति संकीर्तन और कुछ प्राचीन गुजराती पदों से होती है।[72] इसी प्रकार सीहा का विवाह जयसिंह की पुत्री से होना भी निर्मूल है क्योंकि वह सीहा का समकालीन नही था। भीनमाल के ब्राहम्णों को मुसलमानों के विरूद्ध सहायता देना भी कल्पित है क्योंकि सीहा के समय तक और उसके पीछे भी वहाँ चौहानों का राज्य था। वहाँ सीहा के समकालीन चौहान राजा उदयसिंह[73] और उसका पुत्र चाचिगदेव था।

जोधपुर की ख्यात में मूलराज की कन्या का विवाह सीहा से होना और उसके द्वारा लाखा फुलाणी को मारा जाना कल्पित है। इसी प्रकार उसका कन्नौज जाना और अल्हड को वहाँ का राज्य देना और अपने पुत्रों को पाली जाकर बसने का आदेश देना निर्मूल है क्योंकि कन्नोज का राज्य सीहा के जन्म के पूर्व ही मुसलमानों के अधिकार में आ चुका था। अलबत्ता पाली के ब्राहम्णों से धन मिलने की सत्यता हो सकती है क्योंकि वह सम्पन थे और उनकी सहायता बलुचा चौहानों ने की हो जो चौहानों के जागीरदार थे।

इन सभी लेखों से सीहा के जीवन के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। जोधपुर राज्य का मूल पुरुष सीहा था, जो बदायूं के राठौड़ों का वंशज या हथुडी के राष्ट्रकूट की किसी शाखा से सम्बधित कोई व्यक्ति हो। वह बहुत

महत्वकांक्षी राठौड़ था। यात्रा के बहाने नये राज्य स्थापना हेतु द्वारिका और पुष्कर गया। ऐसे अवसर पर उसे चौहानों और गुहिलों की शक्ति का आकलन किया और उनसे टक्कर ली, क्योंकि ये शक्तियाँ अभी क्षीण नहीं हुई थी सीहा मारवाड़ के एक छोटे से भाग अर्थात पाली के उत्तर-पश्चिम में अपना राज्य स्थापित कर सका था। परन्तु उसको वह व्यवस्थित नहीं कर सका था क्योंकि उसकी मृत्यु के बाद आस्थान को अपने ननिहाल में जाकर रहना पड़ा था। सीहा के राज्य के आसपास चौहान मेर आदि रहते थे। गुहिल और सोंलकियों की शाखाएँ पश्चिमी राजपूताना में विस्तार कर चुकी थी। परमार भी पडौस में ही काफी शक्तिशाली थे। ऐसे समय में सीहा ने जो अपना स्थान राजपूताना बनाया। वह निर्बल और नगण्य ही था, फिर भी विजय के द्वारा राज्य संस्थापन सीहा को दे सकते है। इस अर्थ में वह मारवाड़ में राठौड़ों के राज्य का प्रथम संस्थापक था। परन्तु गुहिलों, परमारों, चौहानों आदि राजपूत वंशों की तुलना अभी राठौड़ राजपूताना में अपने पूरे पैर नहीं जमा पाए थे। जबकि अन्य राजपूत वंश यहाँ के राजनीतिक संतुलन में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। इन्हें लगभग दो सौ वर्ष और अथक परिश्रम करना पड़ा। जिससे यहाँ उनकी स्थिति को मान्यता मिली। यह स्थिति चुंडा, जोधा, मालदेव के सतत परिश्रम का फल था।

सांभर के चौहानों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:-

चाहमान शब्द की उत्पत्ति:- जयानक ने अपने ग्रंथ पृथ्वीराज विजय में 'चाहमान' शब्द के प्रत्येक अक्षर के सम्बन्धित शब्दों से 'चाहमान' का सम्बंध जोड़ा है। जैसे 'च' से 'चाप' 'ह' से 'हरि' 'म' से 'मान' और 'न' से नय' करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि चाहमान नाम का इस वंश का कोई आदि पुरुष रहा होगा। अपनी दूसरी मान्यता के अनुसार चाहमानों का सम्बंध मोरी वंश के शासकों से भी जोड़ा है, उनका मानना है कि मोरी वंश के शासक अपने नाम के अंत में दाम, मान आदि रखते थे इसलिए सम्भव है कि इस वंश का आदि पुरुष का नाम 'चाहमान' रहा हो।[74]

चाहमानों की उत्पत्ति :- भाटों और चारणों की वंशावलियों और ख्यातों ने इनको अग्निवंशीय माना है। डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा के अनुसार ये सूर्यवंशीय क्षत्रिय थे और गोत्रोचार में इन्हें चन्द्रवंशीय माना गया है। कई भारतीय और यूरोपीय इन्हें आर्य मानकर विदेशी मानते है। डॉ. दशरथ शर्मा चाहमानों की उत्पत्ति ब्राहम्ण वंश से मानते है। चंदरबरदाई के पृथ्वीराज रासो के कथानक के अनुसार जब ऋषियों ने आबू पर्वत पर यज्ञ करना शुरू किया। राक्षसों ने अपवित्र वस्तुएँ डाल कर उसे भ्रष्ट कर देते थे। इन सब से परेशान होकर वशिष्ट

ऋषि ने यज्ञ की रक्षा के लिए अपनी मंत्र सिद्धी से अग्नि से चार पुरुष चाहमान, परमार, चालुक्य और प्रतिहार पुरुषों को जन्म दिया। नैणसी और सूर्यमल्ल मिश्रण ने भी इससे मिलते जुलते कथानक दिए है। यह कथानक कल्पनामात्र लगते है क्योंकि न तो अग्नि से पुरुष पैदा हो सकता है और न ही पृथ्वीराज रासो समसामयिक ग्रन्थ है। इस कथा से ऐसा संकेत मिलता है कि देश पर संकट आया तो राजपूतों ने देश की रक्षा का भार अपने कन्धों पर ले लिया। इससे राजपूतों का विदेशी होना भी सिद्ध होता है, क्योंकि यज्ञादि के द्वारा विदेशियों को शुद्ध करके हिंदू धर्म में शामिल कर लिया गया। डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा के अनुसार चाहमान सूर्यवंशीय क्षत्रिय थे। पृथ्वीराज विजय[75] हम्मीर महाकाव्य[76] हम्मीर रासो आदि ग्रंथों में चाहमानों को सूर्यवंशीय माना है और गोत्रोचर में चन्द्रवंशीय बताया है। इतिहासकार अग्निवंशीय और चन्द्रवंशीय दोनों को एक ही मानते है क्योंकि दोनों का एक ही रूप है । इस मत के खण्डन के लिय चाहमानों का प्राचीन रायपाल का सेवाडी का लेख मिलता है । जिसमें इन्हें इंद्र का वंश बताया गया है । यदि इन्हें सूर्यवंशीय माना जाये तो इनका उद्भव इक्ष्वाकु वंश से जोड़ना होगा परन्तु किसी भी प्राचीन लेख या लेखक ने इन्हें इक्ष्वाकु की संतान नहीं माना है । इस मत का केवल यही अभिप्राय हो सकता है कि राजपूतों को नवीन भारतीय समाज में मान्यता प्राप्त हो गयी। इनको सूर्यवंशीय कहा जाने लगा। कर्नल जेम्स टॉड ने मध्य एशियाई जातियों के रस्मो-रिवाज के आधार पर चाहमानों को विदेशी बताया है।[77] डॉ. स्मिथ और क्रुक ने भी टॉड के मत का समर्थन किया है।

डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा ने राजपूतों के विदेशी उत्पत्ति के इस मत का खण्डन किया है क्योंकि यह रस्मो-रिवाज जैसे–सूर्य उपासना, वेशभूषा, अग्नि और पशु-पूजा आदि ऊपरी दिखाई देती है जो मध्य एशिया और राजपूतों में सभ्यता के कारण दिखाई देती है। जो आर्य संस्कृति के उन देशों में प्रचार के कारण दिखाई देती है न कि उत्पत्ति के कारण।[78] भण्डारकर महोदय ने वासुदेव की एक मुद्रा के आधार पर चाहमानों को खज्र जाति से सम्बधित बताया है किन्तु मुद्रा वाले वासुदेव और पृथ्वीराज रासो वाले वासुदेव में मेल नहीं है। जिसमें मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

दशरथ शर्मा बिजोलिया लेख के आधार पर चाहमानों को ब्राहम्ण वंश की संतान मानते है।[79] कायम खाँ रासो और चन्द्रवती के लेख में भी इनका ब्राहाण होना माना गया है। इस बात को और ज्यादा बल मिलता है जब हम भारत के प्राचीन काल में पल्लव, कदम्ब, गुहिल आदि ब्राहम्णों को शासन करते देखते है ।

चाहमानों का मूल स्थल:- चित्तौड़ के मानमोरी के 713 ई. के शिलालेख में दी गयी वंशावली से महेश्वेरदास और भीमदास नाम आते है। जो चाहमान शासक भर्तवृद्ध द्वितीय के भी पूर्व पुरुष थे। इसी तरह जैसे चित्तौड़

के वे शासक 'त्वष्टि' वंश के थे, तो चाहमान भी पहले इन्हें इसी वंश का मानते थे। चाहमान और मोरी वंश की वंशावलियों के नाम या नामांत की साम्यता नहीं है। वरन् इनके समय में भी यह समानता दिखाई पडती है। ऐसी हालत में चाहमानों का मोरियों से वंश सम्बंध हो सकता है और उनका मूल निवास स्थान चित्तौड़ माना जा सकता है।

अधिक विश्वस्त मान्यता जो चाहमानों के मूल स्थान के सम्बंध में है। वह यह है कि वे सपादलक्ष झील के आसपास रहते थे। पृथ्वीराज विजय काव्य शब्द कल्पद्रुम कोष लाडनू लेखादि में चाहमानों के निवास-स्थान के सम्बंध में जांगलदेश, सपादलक्ष, अहिछत्रपुर आदि स्थल विशेष का वर्णन मिलता है। इससे स्पष्ट है कि चाहमान जांगलदेश, बीकानेर, जयपुर और उत्तरी मारवाड़ के रहने वाले थे और उनके राज्य का प्रमुख भाग सपादलक्ष (सांभर) था, उनकी राजधानी अहिछत्रपुर (नागौर) थी।[80] उस समय की भौगोलिक सीमा के अनुकूल जांगलदेश के विस्तृत भाग सांभर और नागौर थे।

551 ई. के लगभग अनुमानित बिजोलिया शिलालेख के अनुसार चाहमान वंश का आदि पुरुष सांभर झील का पर्वतक वासुदेव था। इसी वंश में सामंत नाम का राजा हुआ, जो वत्सगोत्र ब्राहम्ण वंश में पैदा हुआ। इसका समय 817 ई. के लगभग अनुमानित किया जा सकता है। इसके बाद बिजोलिया लेख में नृप का नाम आता है जिसे हम्मीर काव्य और सुर्जन चरित्र में पूर्णतल (पुढला जोधपुर राज्य में) का शासक था।[81] इसके उत्तराधिकारी क्रमशः जयराज विग्रहराज प्रथम चन्दराज प्रथम और गोपेन्द्रराज हुए।[82]

गोपेन्द्रराज के उत्तराधिकारी दुर्लभराज ने वत्सराज के सहयोग से दोआब मध्यदेश और पाली तक विजय प्राप्त की और गौड़ देश पर अधिकार कर अपने वंश का गौरव बढ़ाया। इसका पुत्र गुवक प्रथम नागभट्ट द्वितीय का सामंत था। जब गुवक शासक बना तब उसे प्रतिहार नागभट्ट द्वितीय के सामंत होने के कारण काफी प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी। गुवक प्रथम के द्वारा हर्षनाथ के मन्दिर का निर्माण होना जो चाहमानों के इष्टदेव थे। इस बात का प्रमाण है कि उस समय तक चाहमानों की राजनीतिक स्थिति संतोषजनक हो चुकी थी। इसका उत्तराधिकारी चन्द्रराज द्वितीय और उसका उत्तराधिकारी गुवक द्वितीय था। इसने अपनी शक्ति का विस्तार करने के लिये अपनी बहन कलावती का विवाह कन्नोज नरेश भोजराज के साथ किया। इसके पुत्र चन्दनराज ने दिल्ली के तोमर शासक को पराजित कर अपनी शक्ति का परिचय दिया था। उसकी पत्नी रुद्राणी जिसे आत्मप्रभा भी कहते है। वह प्रति दिन पुष्कर में एक हजार दीपक अपने इष्टदेव महादेव के सम्मुख जलाती थी। [83] [84]

चन्दनराज का उत्तराधिकारी वाकपतिराज प्रथम बना। हर्ष अभिलेख के अनुसार इसने महाराज की उपाधि धारण की थी।[85] इसके बाद क्रमशः विध्यराज, सिंहराज, विग्रहराज द्वितीय शासक हुए।[86]

विग्रहराज द्वितीय चाहमान वंश के प्रारम्भिक शासकों में महत्वकांक्षी और योग्य शासक था। जयानक और चन्द्रशेखर के अनुसार इसने चालुक्य शासक मूलराज को पराजित किया था। उसको कांठा में शरण लेनी पड़ी। वह चाहमान शासक ने इसको कर देने हेतु बाध्य किया था। उसमे एक अच्छे विजेता और अश्वारोही के गुण थे।[87] विग्रहराज के बाद दुर्लभराज शासक बना। वह अपने समय का प्रतापी राजा था। उसने नाड़ौल के महेन्द्र चाहमान को पराजित किया। इसका उत्तराधिकारी गोविन्द तृतीय था, जिसकी उपाधि पृथ्वीराज विजय में वैरीघरट दी है जो उसको शत्रु संहारक होना प्रमाणित करता है। फरिश्ता ने इसको गजनी के शासक को मारवाड़ में आगे बढ़ने से रोकने वाला कहा है। इसके पुत्र वाक्पतिराज द्वितीय ने मेवाड़ के शासक अम्बाप्रसाद को युद्ध में मारकर ख्याति प्राप्त की थी। इसके पीछे वीर्यराम चामुंडाराज सिंलट और दुर्लभराज तृतीय शासक बने।[88] दुर्लभराज का उत्तराधिकारी उसका भाई विग्रहराज तृतीय जिसे विसल भी कहते है। इसका पुत्र पृथ्वीराज प्रथम 1105 ई. के लगभग विद्यमान था। 700 चालुक्यों को जो पुष्कर के ब्राहम्णों को लूटने के लिए वहाँ आये थे। मौत के घाट उतारा।[89]

पृथ्वीराज प्रथम के उत्तराधिकारी उसका पुत्र अजयराज हुआ। अजयराज के काल को चाहमानों के साम्राज्य निर्माण का काल मानते है। उसमें राज्य विस्तार हेतु संघर्ष की क्षमता थी। अजयराज ने मालवा के परमार शासक नरवर्मन को परास्त कर उसके सेनापति सुलहाणा को बंदी बनाया। इस अवसर पर उसने तीन राजाओं चाचिग, सिन्धुल और यशोराज का वध किया। पृथ्वीराज विजय के अनुसार उसने गजनी के मातंगो को पराजित करना भी पाया जाता है। इसमें सत्यता यह हो सकती है कि उसने आक्रमणकारी सालार हुसैन को पीछे धकेल दिया हो क्योंकि अजयराज गजनी के सुल्तान बहरामशाह का समकालीन था। उसके प्रान्तपति मोहम्मद बाहलिम ने नागौर को विजित करके उसकी किले बंदी की। उसने राजपूताना के उत्तरी सीमा के हिन्दू सरदारों को भी पराजित किया।[90] [91] मोहम्मद बाहलीम की यह नागौर विजय चौहान नरेश अजयपाल पर हुई थी।[92] मालवा के परमारों पर दबाव बनाये रखने और अन्य शत्रुओं से अपने साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए और मोहम्मद बाहलिम से पराजय के बाद अजयपाल ने अपने नाम पर अजयमेरु पहाड़ी पर दुर्ग बनाकर सांभर और नागौर के स्थान पर अजमेर में लगभग 1123 ई. में अपनी नवीन राजधानी स्थापित की।[93] [94] यह सोमेश्वेर के पुत्र पृथ्वीराज तृतीय तक चौहानों की राजधानी रही। अजयराज की राजनीतिक प्रतिभा उसके समय के मिले

चाँदी और ताँबे के सिक्कों से प्रमाणिक होती है। कुछ मुद्रा पर उसकी रानी सोमलवती का नाम भी अंकित मिलता है। अजयराज शैव होते हुए भी धर्म सहिष्णु था। उसने जैन वैष्णव धर्मावलम्बियों को समान की दृष्टि से देखा था। उसने नये नगर में जैनों को मंदिर बनाने की अनुज्ञा दी और पार्श्वनाथ के मंदिर के लिए स्वर्ण कलश प्रदान किया। डॉ. दशरथ शर्मा के अनुसार अपने जीवन काल में ही इसने अजयपाल को सिंहासनसीन कर दिया था और स्वयं 1130 ई. के लगभग पवित्र पुष्कर झील के निकट वन में जाकर अवकाश ग्रहण कर लिया।[95]

अर्न्नोराज (1133-1155 ई.) :- चौहान नरेश अजयपाल नागौर पर पुन: अधिकार करने में असफल रहा ।[96] किन्तु उसके पुत्र अर्न्नोराज ने मुसलमान आक्रमणकारियों को जो अजमेर के निकट तक पहुँच चुके थे। अजमेर नगर के बाहर के मैदान में जहाँ कि बाद में आना सागर झील का निर्माण हुआ था, बुरी तरह परास्त किया। उसने उन्हें न केवल सपादलक्ष अथवा शिवालिक से ही अपितु राजस्थान के अन्य भागों से भी मार भगाया।[97] [98] [99] इस प्रकार अर्न्नोराज के सतत प्रयासों के फलस्वरूप नागौर अब पुन: चाहमानों के अधिकार में आ गया। इसने मालवा के नरवर्मन को परास्त किया। सिंध और सरस्वती नदी तक के प्रदेशों को विजित कर अपने वंश के गौरव को आगे बढ़ाया। हस्तिनक देश, पंजाब के कुछ पूर्वी भाग और संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी भाग को अपने सम्राज्य में सम्मिलित किया।[100] [101]

अर्नोराज के समकालीन गुजरात के चालुक्य शासक जयसिंह और कुमारपाल थे। अर्नोराज ने अपना साम्राज्य का विस्तार मालवा की ओर एवं तो जयसिंह राजपूताना की और करना चाहता था। दोनों शासक महत्वकांक्षी थे। चौहान-चालुक्य संघर्ष छिड़ गया जो पुराना था। अंत में जयसिंह ने अपनी पुत्री कान्चनदेवी का विवाह अर्नोराज के साथ करके इस वैमनस्य को समाप्त किया। जयसिंह के पश्चात चालुक्य का शासक कुमारपाल हुआ। अर्नोराज और कुमारपाल के समय चौहान चालुक्य संघर्ष फिर छिड़ गया। हेमचन्द्र कृत द्धयाश्रय महाकाव्य के अनुसार अर्नोराज ने कुछ राजाओं को अपने साथ लेकर गुजरात पर आक्रमण किया था। मेरूतुंग कृत प्रबंध चिंतामणि के अनुसार अर्नोराज ने चाहड को साथ में लेकर गुजरात के सामंतों में फूट डलवा दी। जिससे कुमारपाल की स्थिति गम्भीर हो गयी। जयसिंह सूरी, जिनमंडल चरित्र सुंदर तथा प्रबंध कोश के लेखक ने संघर्ष का कारण अर्नोराज और उसकी पत्नी कुमारपाल की बहन देवलदेवी की बीच हास्य-विनोद में एक दूसरे के वंश की निंदा के कारण कुमारपाल द्वारा आक्रमण की बात की है । परन्तु इस कथानक पर विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि देवलदेवी नाम की कुमारपाल की बहन का विवाह अर्नोराज के साथ नहीं हुआ था। हेमचन्द्र ने इस युद्ध का कारण राजनीतिक बताया है जो अधिक सत्य प्रतीत होता है क्योंकि वह कुमारपाल के बहुत घनिष्ठ

था। इन दोनों के बीच दो बार युद्ध हुए, दोनों में अर्नोराज पराजित हुआ। प्रथम युद्ध आबू के निकट हुआ, जिसमें कुमारपाल अजमेर तक आ गया । लेकिन वह किले में मजबूत दीवारों के कारण घुस नहीं पाया। अर्नोराज ने अपनी इस पराजय का बदला लेने के लिय गुजरात पर आक्रमण किया। दोनों सेना के बीच युद्ध हुआ। जिसमे चौहान नरेश अर्नोराज बुरी तरह घायल हुआ। चालुक्यों के साथ संधि करने के लिए अब अर्नोराज को अपनी पुत्री कलहराणा का विवाह चालुक्य नरेश कुमारपाल के साथ करने के लिए विवश होना पड़ा । इस विवाह के अवसर पर हाथी घोड़े व उपहार आदि देकर संधि करके अपनी राज्य की सीमा को यथावत बनाए रखा। इससे कुमारपाल को राजपूताना में काफी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।[102]

अणोंराज शैव था परन्तु अन्य धर्मो के प्रति भी उसने सहिष्णुता की नीति जारी रखी । उसने अजमेर में खरतरगछ के अनुयायियों को भूमि दान दी थी । पुष्कर में वराह मंदिर का निर्माण करवाया था । उसके समय के दो प्रसिद्ध विद्वान देवबोध व धर्मघोष थे । कुमारपाल द्वारा पराजित होने पर उसके मान-सम्मान में काफी कमी आयी थी, फिर भी उसके द्वारा गजनियों को पराजित कर नागौर को अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया। मालवा और हरियाणा में सफल अभियान करके अपने वंश का गौरव बढ़ाया । चालुक्यों द्वारा पराजित होने पर अर्नोराज अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सका । उसके पुत्र जगदेव ने 1143 ई. के पूर्व किसी समय उसका वध कर दिया और स्वयं सिंहासन पर बैठा । किन्तु वह अधिक दिनों तक शासन नहीं कर सका । उसके छोटे भाई विग्रहराज चतुर्थ ने उसे बल पूर्वक राज्य से निकाल दिया । सिंहासन पर स्वयं अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[103] [104]

विग्रहराज चतुर्थ का शासन काल सपादलक्ष अथवा शिवालिक के चौहान राजवंश के इतिहास में स्वर्णकाल था । क्योंकि इस काल में उसने अपने पिता अर्नोराज के समय चौहानों की चालुक्य नरेश कुमारपाल के हाथों खोयी हुई प्रतिष्ठा को पुन: प्राप्त करने तथा अर्नोराज की पराजयों का बदला लेने के लिए चालुक्य नरेश के विरूद्ध अनेक चढ़ाईयाँ की । नाड़ौल जालौर तथा पाली आदि राज्यों को जो चालुक्य नरेश कुमारपाल के अधिकार में थे और उसी के जागीरदारों द्वारा शासित भी थे, नष्ट-भष्ट किया।[105] अपने शत्रु सज्जन को भी पराजित कर कुमारपाल परमार को नीचा दिखाया। डॉ. गोपीनाथ शर्मा के अनुसार उसने नागौर पर भी अधिकार कर लिया।[106] जबकि कैलाश चन्द जैन के अनुसार नागौर अब भी चालुक्य नरेश के अधिकार में रहा । उसने ढील्लिका (दिल्ली) के तोमरों को पराजित किया । पंजाब में हिसार और अन्य प्रदेश मुसलमानों से जीतकर

आर्यवर्त को आर्य भूमि बना दिया । विग्रहराज चतुर्थ द्वारा जिस मुसलमान शासक को परास्त करने का उल्लेख ललितविग्रह नाटक में किया गया है, गजनी का अमीर खुसरूशाह था।[107]

विग्रहराज चतुर्थ एक महान विजेता होने के साथ ही कला व साहित्य संरक्षक भी था। उसने स्वयं हरकेली नामक नाटक की रचना की थी। उनको कटिबन्ध की उपाधि से विभूषित किया गया था। ललितविग्रह नामक नाटक का लेखक उसका राजकवि था। किलहोर्न ने उसकी विद्धता की प्रशंसा करते हुए स्वीकार किया है कि वह उन हिन्दू शासकों में से एक व्यक्ति था जो कालिदास और भवभूति की होड़ कर सकता था।[108] उसके द्वारा अजमेर में एक संस्कृत पाठशाला का निर्माण किया गया। अपने नाम पर उसने विशालसर झील व बिलासपुर नामक कस्बे की स्थापना की थी । वह शैव का उपासक व अन्य धर्म के प्रति धर्म-सहिष्णुता की भावना रखता था । धर्मघोष सूरी के आदेश से उसने एकादशी के दिन के लिये पशुवध पर प्रतिबन्ध लगाया । विग्रहराज चतुर्थ का काल सपादलक्ष का सुवर्णकाल था।

विग्रहराज चतुर्थ का उत्तराधिकारी उसका पुत्र अपरगांगेय हुआ, किन्तु वह अधिक दिनों तक शासन नहीं कर सका। वह अपने चचेर भाई पृथ्वीराज द्वितीय के द्वारा जो पितृहन्ता जगदेव का पुत्र था, युद्ध में पराजित हुआ और मार डाला गया। पृथ्वीराज द्वितीय स्वयं अजमेर के सिंहासन पर बैठा।[109] [110] पृथ्वीराज द्वितीय के समय का यामिनी वंश का खुसरो मलिक उसका शत्रु था, जिसको पूरी तौर से दबाया रखा। कुछ शिलालेखों से पता चलता है उसका राज्य अजमेर और शाकम्भरी के अतिरिक्त जहाजपुर के निकट मेनाल चित्तौड़ के निकट हांसी, पंजाब आदि भागों तक विस्तारित था।[111]

सन् 1169 ई. में पृथ्वीराज द्वितीय की मृत्यु हो गयी। उसके कोई पुत्र अथवा उत्तराधिकारी न होने के कारण उसके मंत्रियों ने उसके चाचा सोमेश्वर, अर्नोराज की चालुक्य रानी, जो गुजरात के चालुक्य नरेश जयसिंह की पुत्री थी और जिसका नाम कांचन देवी था, को उसका उत्तराधिकारी घोषित कर सिंहासनासीन किया गया। चौहान नरेश सोमेश्वर के जीवन का प्रारम्भिक भाग गुजरात के चालुक्य नरेश जयसिंह और उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल के शासन काल में तथा उन्हीं के राजदरबार में व्यतीत हुआ था। उसने कुमारपाल के शत्रु मल्लिकार्जुन को परास्त कर एक ख्याति प्राप्त की थी। उसी समय उसने कलचुरी की राजकुमारी से विवाह किया जिससे उसके पृथ्वीराज तृतीय और हरिराज पुत्र पैदा हुए।[112]

सन् 1177 ई. में सोमेश्वर की मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र पृथ्वीराज तृतीय, जो भारतीय इतिहास में पृथ्वीराज चौहान व रायपिथौरा के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, गद्दी प्र बैठा । पृथ्वीराज तृतीय के अल्पवयस्क होने के कारण उसकी माता कर्पूरी देवी ने राज प्रतिनिधि के रूप में अपने शासन का प्रबंध स्वयं संचालित किया।[113] कर्पुरदेवी ने अपने विश्वस्त अधिकारियों की सहायता से राज-व्यवस्था को देखा और उसका दक्षता से संचालन किया। इन अधिकारियों में कदम्बवास राज्य का मुख्यमंत्री था। उसने पृथ्वीराज के षटगुणों की रक्षा की और अपने स्वामी की प्रभुता के गौरव को परिवर्द्धित करने के लिये राज्य के चारों और शत्रुओं के उत्पातनार्थ सेना भेजी। वह विधानुरागी था। जिसे पधप्रभ और जिनपति सूरि के शास्त्रार्थ की अध्यक्षता का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उसने बड़ी राजभक्ति से शासन किया। सैनिक कार्य के लिय कर्पूरदेवी ने एक सुयोग्य अधिकारी की नियुक्ति सेना अध्यक्ष के पद पर की। यह अधिकारी भुवनमल्ल था जो कर्पूरदेवी का निकट का सम्बन्धी था। जिस प्रकार गरुड ने राम और लक्ष्मण को मेघनाद के नागपाश से बचाया था। उसी प्रकार भुवनमल्ल ने भी पृथ्वीराज को प्रारम्भिक कठिनाइयों के काल में सुरक्षित रखा। शीघ्र ही एक वर्ष के उपरांत 1178 ई. में पृथ्वीराज तृतीय ने शासन सत्ता स्वयं ग्रहण की।[114] [115]

पृथ्वीराज तृतीय (1177-1192 ई.):-

बाहरवीं शताब्दी के अंतिम चरण तक चौहानों की शक्ति ने महत्वपूर्ण स्थिति को प्राप्त कर लिया था। इनको राज्य विस्तार थानेश्वर से जहाजपुर (मेवाड़) के एक छोर तक फ़ैल चुका था। आस पास के कई शासक चौहानों के सामंत बन चुके थे। ऐसा प्रतीत होता है कि चौहान उत्तरी भारत के मानवीय शक्ति वाहक बन चुके थे और राजपूताना की राजनीति में उनको प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। आस-पास के कुछ राज्य जिनमें कन्नोज और गुजरात प्रमुख थे, अलबत्ता चौहानों के शत्रु थे, परन्तु इनकी बढ़ती हुए शक्ति ने उनको भयभीत कर दिया था। इन परिस्थिति ने उत्तरी भारत में क्षोम और आशंका के वातावरण को जन्म दिया। उत्तरी-पश्चिम में मुसलामानों की बस्तियों और बढ़ता हुआ तुर्कों का आतंक देश के लिये भय का कारण था, परन्तु ऐसा लगता है कि उदीयमान नव-शक्ति की उपेक्षा की जा रही थी और किसी को इस सम्बंध में कोई चिंता नहीं थी। पृथ्वीराज चौहान ने इस शक्ति को दबाने या उससे निपटने के सम्बंध में कोई योजना नहीं बनाई थी। ये तो एक दुर्भाग्य की बात थी कि चौहानों की इतनी बढ़ती हुई शक्ति तुर्को के काँटे को निकाल फ़ेंकने में चिंतित नहीं थी।

पृथ्वीराज तृतीय ने उच्च पदों पर अपने विश्वस्त अधिकारियों को नियुक्त करने के बाद उसने अपनी विजय नीति को सम्मानित करने का बीड़ा उठाया। उसकी विजय नीति के कई पहलू थे। प्रथम, पृथ्वीराज अपने स्वजनों के

विरोध से मुक्ति प्राप्त करना चाहता था। दूसरा, वह दिग्विजय की भावना से ओतप्रोत था। जिससे उसे प्राचीन हिन्दू शासकों की भाँति पड़ौसी राज्यों का दमन करना था। तीसरा, विदेशी शत्रु से टक्कर लेने का था । जिससे फलस्वरूप उसकी विजय-नीति की आभा क्षीण हो गयी।

शासक बनने के बाद पृथ्वीराज तृतीय को विद्रोह का सामना करना पड़ा। शीघ्र ही उसके चाचा अपरगांगे ने विद्रोह कर दिया। परन्तु पृथ्वीराज ने उस परास्त कर उसकी हत्या कर दी, फिर भी विद्रोह दल शांत नहीं हुआ। अपरगांगे के छोटे भाई नागार्जुन ने विद्रोहों को जारी रखा। अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए उसने गुडगाँव पर अधिकार कर लिया। देवभट्ट के नेतत्व में एक बड़ी सेना गुडगाँव भेजी गयी। लेकिन नागार्जुन वहाँ से भाग निकला, लेकिन उसकी माँ, स्त्री व बच्चें तथा परिवार के अन्य व्यक्ति विजेता के हाथ लग गये। उन्हें बंदी बनाकर अजमेर लाया गया। कई शत्रुओं को अजमेर लाया गया। कई को मौत के घाट उतार दिया गया। जिससे कि भविष्य में कोई विद्रोह का साहस न कर सके। नागार्जुन जो युद्ध स्थल से भाग निकला था। ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी राजपूत दरबार में जाकर रहने लगा। जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी। ऐसा अनुमान सही हो सकता है, क्योंकि हमें नागार्जुन का इस घटना के बाद कोई पता नहीं चलता है।[116]

भण्डानक सतलज प्रान्त से आने वाली एक जाति थी। गुडगाँव और हिसार जिले के आसपास बस गयी थी। इनका बाहुल्य मथुरा, भरतपुर और अलवर के आसपास के प्रदेशों में बढ़ता जा रहा था। इनकी स्वतंत्र वृत्ति ने चौहानों को उन्हें दबाने के लिये प्रेरित किया। विग्रहराज चतुर्थ ने भी इन्हें अपने समय में पराजित तो किया था। परन्तु वह उन्हें पूर्णरूपेण अपने अधीन करने या दबाने में सफल न हो सका। पृथ्वीराज तृतीय के उत्तर व पश्चिम अभियान बिना भण्डानकों को दबाये सफल नहीं हो सकते थे। इसलिये उसने उनकी शक्ति को क्षीण करने के लिय उनकी बस्तियों को घेरा और उन्हें आत्मसमर्पण करने पर मजबूर कर दिया। वह उत्तरप्रदेश की ओर भागने पर विवश हो गये। प्रसिद्ध समसामयिक लेखक जिनपति सूरि ने पृथ्वीराज तृतीय द्वारा भण्डानकों का दबाने का उल्लेख अपनी कविता में किया है।[117]

स्वजनों के विद्रोह के दमन के कारण उसका राज्य पद निर्विवाद बन गया। वह चौहानों का नेता बन गया। इसी प्रकार भण्डानकों को परास्त करने से अजमेर और दिल्ली जो उसके राज्य की दो धूरियाँ थी। एक राजनीतिक सूत्र में बंध गयी। इन प्रारम्भिक विजय से पृथ्वीराज तृतीय का साम्राज्य उत्तर से मुस्लिम सत्ता, दक्षिण-पश्चिम से गुजरात और पूर्व में चंदेलों के राज्य से जा मिली थी। चंदेलों के राज्यों से परे कन्नौज के गहड़वाल थे। यदि पृथ्वीराज तृतीय को दिग्विजय की अभिलाषा पूरी करनी थी। इन राज्यों को बारी-बारी से निपटाना आवश्यक

था। इन राज्यों से सैनिक सम्बंध ही उसकी दिग्विजय नीति थी और वे राज्य महोबा गुजरात और कन्नौज थे। भण्डानकों के दमन के पश्चात पृथ्वीराज तृतीय के राज्य की पूर्वी सीमा चंदेलों के राज्य के सीमा से मिल गयी।

चौहान-चालुक्य:-

चौहान-चालुक्य वैमनस्य काफी पुराना था फिर भी पृथ्वीराज तृतीय के पिता सोमेश्वर के समय मधुर सम्बंध स्थापित हो गये थे। दोनों वंशों के बीच फिर वैमनस्य बढ़ गया। पृथ्वीराजरासो[118] के अनुसार आबू के परमार नरेश की पुत्री इच्छिनी से विवाह को लेकर पृथ्वीराज तृतीय और भीमदेव द्वितीय दोनों के बीच तनाव बढ़ गया। क्योंकि चालुक्य नरेश भी इच्छिनी से विवाह करना चाह रहा था। लेकिन गौरीशंकर हिराचंद ओझा के अनुसार इस समय आबू में धारावर्ष का शासन था न कि साँखला परमार का जो इच्छिनी का पिता था।[119] इसी प्रकार पृथ्वीराज के चाचा कान्हड़देव द्वारा भीमदेव के चाचा सारंगदेव के चाचा के सात पुत्रों की हत्या, भीमदेव का नागौर पर आक्रमण, भीमदेव द्वारा सोमेश्वर की हत्या क्योंकि भीमदेव अपनी मौत से मरा था आदि वर्णन अपनी कसौटी पर ठीक नहीं उतरते। सीमा विवाद और दोनों नरेशों की महत्वकांशाए ही संघर्ष का प्रमुख कारण दिखाई देती है।

चौहान-गहड़वाल:-

जैसे दक्षिण में चौहानों के शत्रु चालुक्य थे, उसी प्रकार उत्तर-पूर्व में उनके शत्रु गहड़वाल थे। दिल्ली को लेकर चौहानों में और गहड़वालों में वैमनस्य एक स्वाभाविक घटना बन गयी थी। अन्त में अत्यधिक कटुता का कारण यह बना कि पृथ्वीराज तृतीय ने जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता का बलपूर्वक अपहरण कर उससे विवाह कर लिया।

रणथम्भौर के चौहान वंश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

रणथम्भौर दुर्ग का निर्माण:- हम्मीररासो के अनुसार राजा जयन्त ने पज्ञ ऋषि से वरदान प्राप्त करके इस दुर्ग का निर्माण करवाया।[120] परन्तु इतिहासकारों का मत है कि चाहमान राजा चंद्रवंशी हस्ति, जिसने हस्तिनापुर बसाया था, के चचेर भाई महेश्वर के राजा रंतिदेव ने इस दुर्ग का निर्माण करवाया था।[121] और कुछ इतिहासकारों का मत है कि इस दुर्ग का निर्माण चाहमान राजा रणथम्भन ने करवाया था। परन्तु उसका राज्यकाल अंधकार में है। सारी परिस्थितियों पर विचार करने के उपरांत रणथम्भौर दुर्ग का निर्माण चाहमान वंश के राजाओं ने करवाया हो। अनुमान है कि इस दुर्ग का निर्माण आठवीं सदी के आसपास हुआ हो। अत: यह दुर्ग वि.सं.1160/1103 ई. के पहले का जरुर है।

समसामयिक लेखकों का रणथम्भौर दुर्ग के बारे में कथन:- इसकी स्थिति के कारण अधिकांश लेखक इसे बख्तरबंद की संज्ञा देते है। इन पहाडियों में से जिस पहाड़ी पर दुर्ग बना है। उस पहाड़ी को 'थभौर' पहाड़ी के नाम से जाना जाता है। ठीक इसी पहाड़ी के सामने एक पहाड़ी स्थित है जो अपेक्षाकृत नीची है इस पहाड़ी को 'रण' के नाम से जाना जाता है। अबुल फजल के अनुसार रणथम्भौर का दुर्ग पहाड़ी प्रदेश के बीच में है इसलिए लोग कहते है कि दूसरे दुर्ग नंगे है, किन्तु यह बख्तरबंद है। दुर्ग का नाम रंतपुर (रण की घाटी में स्थित दुर्ग) है। रण उस पहाड़ी का नाम है जो उत्तर की ओर है। अबुल फजल ने इस दुर्ग को देखकर इसकी तारीफ में यह पद कहा है : यह न हाथों से बना था ना पानी और मिट्टी से कल्पना की चिड़िया इसके उपर से होकर नहीं निकली संसार में ऐसा दुर्ग दूसरा नहीं है' मध्यकालीन इतिहासकालीन अमीर खुसरो के अनुसार- 'किले की चार दीवारी 3 फरसंग के घेरे में थी तथा मजबूत पत्थर की बनी हुई थी। इस प्राचीर में बड़ी-बड़ी विशाल बुर्जिया बनाई गयी थी। प्राचीरों पर भैरव यंत्र ठीकुलिया मर्कटी यंत्र लगे हुये थे। जिनसे शत्रु सेना पर पत्थर के गोले बरसाये जाते थे'।[122]

जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा तुजक-ए-जहाँगीरी में लिखा है– 'रण' और 'थभौर' नामक दो अलग-अलग पहाड़ियाँ है जिनमें से पिछली पहाड़ी पर दुर्ग बना है। पहाड़ियों के मिश्रित नाम पर ही इस दुर्ग का नाम रणथम्भौर रखा गया है'।[123]

हम्मीर रासो के अनुसार 'किला सुदृढ़ और दुर्गम है। पाँच विशाल सरोवर किले की सुरक्षा को दृढता प्रदान करते है। इसकी रक्षा 600 नागा जो सब कुशल सैनिक करते है। इसमें खाद्यान्न और शस्त्रों का विशाल भण्डार है।[124]

कविराज श्यामल दास कृत वीर विनोद में रणथम्भौर दुर्ग के सम्बंध में वर्णन मिलता है– 'रणथम्भौर के हर तरफ गहरे और पेचदार नाले और पहाड़ है। जो तंग रास्ते से गुजरते है। ऊपर जाकर पहाड़ी की बुलंदी ऐसी सीधी है कि सीढ़ियों के जरिये चढ़ना पड़ता है। चार दरवाजे आते है। पहाड़ की चोटी एक मील लम्बी चौड़ी है। संगीन फसीलें बनी है जो पहाड़ की हालत के मुताबिक ऊँची और नीची होती गई है। इसके अंदर जावजा बुर्ज और मोर्च बने है।[125]

इतिहासकार गौरीशंकर हिराचंद ओझा के अनुसार 'रणथम्भौर का किला अंडाकृति वाली एक ऊँचे पहाड़ पर बना है जिसके प्राय चारों और ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ आ गयी है जिसको इस किले को रक्षार्थ कुदरती बाहरी

दीवारें कहना तो कोई अनुचित नहो होगा। इन पहाड़ियों पर खड़ी सेना शत्रु सेना को दूर से देख सकने में समर्थ हो सकती है। इसमें से एक किले और उसके बीच गहरा खड्डा होने से शत्रु इधर से तो दुर्ग पर पहुँच ही नहीं सकता है'।[126]

इस प्रदेश पर चाहमान वंश ने प्राय: 600 वर्षो तक एकछत्र शासन किया। इसलिये निश्चित ही इस दुर्ग पर चौहान वंशीय शासकों का अधिकार रहा। परन्तु ऐतिहासिक स्रोतों में से इस दुर्ग के प्रारम्भिक चौहान वंशीय शासकों का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। गहलोत के राजपूताने के इतिहास में उद्धत होता है कि पृथ्वीराज प्रथम ने रणथम्भौर दुर्ग के एक जैन मन्दिर में स्वर्ण कलश चढ़ाया था। इससे यह प्रमाणित होता है कि यह अपने निर्माण काल से ही चाहमान वंशीय शासकों के अधिकार में रहा। अमीर खुसरो ने दिवल रानी तथा खिज्र खाँ में लिखा है कि रणथम्भौर का राय हमयाराय/हम्मीरदेव राय पिथौरा का वंशज था।[127] इसलिए निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि अपने निर्माण काल से पृथ्वीराज तृतीय के बाद भी रणथम्भौर पर चाहमान वंश का शासन रहा।

वंश भास्कर ग्रन्थ के अनुसार रणथम्भौर के चाहमानों को महान पृथ्वीराज का वंशज स्वीकार किया गया है व राव हम्मीर देव के पुत्र रतनसिंह को चित्तौड़ भेजने का उल्लेख है। हम्मीर महाकाव्य में हम्मीर के सम्बंध में पृथ्वीराज के उत्तरोतर वंशज होना अंकित है।[128] सिरोही के बडूआ की पुस्तक में रणथम्भौर के चाहमानों को पृथ्वीराज के काका सुरसेन की औलाद होना बताया है। मेयो कॉलेज के शिलालेख के आधार पर पृथ्वीराज तृतीय का पुत्र गोविन्दराज ने मोहम्मद गौरी की अधीनता स्वीकार कर ली थी। इसके काका हरिराज ने गोविन्दराज को अजमेर से खदेड़ दिया था, इसलिए वह रणथम्भौर चला गया।[129]

जैसलमेर राज्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जैसलमेर नगर एवं इसी नाम के नगर की स्थापना भारतीय इतिहास के मध्यकाल में हुई थी। यह राज्य जो लगभग 1175 ई. में स्थापित हुआ था, अपने लम्बे जीवन काल में अनेक उतार-चढ़ाव देख कर अंत में 1949 में स्वतंत्र भारत में विलीन हो गया। जैसलमेर राज्य पर यदुवंशी भाटी राजपूत राजा शासन करते थे। प्रचलित परम्परा के अनुसार सूर्यवंश में मेवाड़ी के क्षेत्रीय और चन्द्रवंश में जैसलमेर के क्षत्रिय समूचे जगत के मुखिया माने जाते रहे है। भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा में स्थित होने के कारण मध्य एशिया से सिंध के रास्ते समस्त मुस्लिम आक्रमणों का सामना कर मध्यकालीन भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जैसलमेर के

शासकों ने असाधारण साहस से भी सामना किया और कई बार उन्हें पीछे खदेड़ने में सहायक हुए, इसलिए उन्हें 'उत्तर भड़ किवाड़ भाटी' को पदवीं से सुशोभित किया गया।

जैसलमेर राज्य भारत के स्वतंत्र होने से पूर्व भारत के पश्चिमी क्षेत्र में स्थित थार के रेगिस्तान के दक्षिणी पश्चिमी क्षेत्र में फैला हुआ था। मानचित्र में जैसलमेर की स्थिति 26'14 से 28' 23 उत्तरी अक्षांश व 69' 30 से 72'42 पूर्व देशांतर है।

दंतकथाओं तथा पिछली ख्यातों व वंशावलियों के आधार पर भट्टी वंश के मुख्य प्रवर्तकों में रज और गज का नाम आता है जो पंजाब में छठी शताब्दी में शासन करते थे। सातवीं शताब्दी के इसी वंश के शासक शालिवाहन और बलन्द बताये जाते है जो पंजाब में राज्य करते रहे। फिर बलन्द, भाटी, मंगलराव, और मंजस तथा केहरजी और तन्नुजी के नाम गिनाये जाते है। मंजस राव का राजपूताना के रेगिस्तान में आना माना जाता है। केहर ने अपने नाम एक दुर्ग के हरोर और दूसरा अपने पुत्र के नाम से तणुकोट बनाया। ये दोनों बस्तियाँ आज भी थार के रेगिस्तान में उजड़ गयी है पर दुर्ग के खंडहर वहाँ बिखरे मिलते है। केहर द्वारा तनोट के किले के बनाये जाने की मान्यता है जो जैसलमेर से 75 मील उत्तर-पश्चिम में है।[130] देवी का मंदिर आज भी मौजूद है। राय केहर के बाद तणु राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। जिसने अपनी राजधानी मारोठ के स्थान पर तनोट स्थापित की। इसके बाद के शासकों के नाम आते है। ये वंशालियाँ एवं ख्याते भटियों के इतिहास की प्राचीनता तप स्थापित करती है पर विश्वस्त नहीं है।[131]

तणु के जीवन काल में ही उसका पुत्र विजयराज शासक बना। इसके समय से भाटियों का इतिहास व्यवस्थित रूप से प्रारम्भ होता है। इसने अपने कई पड़ौसी राजाओं को हराकर अपने पूर्वजों के दुर्ग वापस लिए थे। विजयराज के पास तणोंट, मारोठ, केहरोर, भटनेर, व मुमणावाह नामक पाँच दुर्ग थे। नैणसी के अनुसार विजयराज के समय सिंध की ओर से मुस्लिम सेना ने तनोट पर आक्रमण किया। देवी के आर्शीवाद से विजय उसे ही मिली। इसके बाद से विजयराज प्रथम चुडाला के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[132]

विजयराज के बाद उसका पुत्र रावल देवराज शासक हुआ। जैसलमेर की तवारिक ख्यात के अनुसार देवराज गजनी के शासक नासिरुद्दीन सुबक्तगीन के समकालीन था। जोधपुर के बाऊक शिलालेख में जो वि.सं.894 का है, में देवराज का उल्लेख है।[133] देवराज के पश्चात उसका उसका पुत्र मंघ लौद्रवा का शासक बना। ख्यात में इसे महमूद गजनवी के समकालीन बताया गया है। महमूद गजनवी का लौद्रवा आगमन रावल मंघ के समय की

सबसे उल्लेखनीय घटना महमूद गजवनी का सोमनाथ पर आक्रमण है। महमूद ने मुल्तान से गुजरात जाने हेतु मरुस्थलीय मार्ग का अनुसरण किया था। वह लोद्रवा होकर ही जाता था। यहाँ भाटी शासक ने उसका सामना भी किया, किन्तु उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। विद्वान नारायण सिंह भाटी का कथन है कि रावल बच्छराज ने उसका सामना किया था। यह बच्छराज ना होकर उसका पिता रावल रावल मंध था क्योंकि रावल बच्छराज 1056 ई. में लौद्रवा का शासक था। जबकि सोमनाथ पर महमूद का आक्रमण 1025 ई. में हुआ था। सिंध के जाटों पर महमूद का अंतिम आक्रमण 1027 ई. में हुआ था। अत: महमूद की सेना का सामना रावल मंघ ने ही किया था। डॉ. दशरथ शर्मा का भी कहना है कि महमूद 30 हजार घुड़सवार व हजारों पैदल सैनिकों के साथ लौद्रवा होकर सोमनाथ गया था। रावल मंघ की मृत्यु के बाद 1056 ई. में रावल बच्छराज लोद्रवा का शासक बना व उसके पश्चात् दुसाज 1098 के लगभग शासक बना इसके दो पुत्र थे, बड़ा राव जैसल और विजयराज, रावल दुसाज की मृत्यु के बाद पाहू नामक जाति के पदाधिकारियों की सहायता से 1145 ई. में रावल विजयराज 'लांझा'[134] शासक बना।

रावल विजयराज 'लांझा' के समकालीन शासक विग्रहराज चतुर्थ, पृथ्वीराज द्वितीय, सोमेश्वर (अजमेर और सांभर के शासक) अमर गांगेय, कन्नौज का विजयचंद्र व गोविन्दचन्द्र, महोबा का परमर्द्दीदेव, गुजरात के चालुक्य शासक कुमारपाल व अजयपाल, नाड़ौल का केल्हण, व आबू का धारावर्ष आदि थे। विजयराज के पाँच विवाहों का उल्लेख मिलता है जिसमें से एक विवाह धर के परमार के यहाँ हुआ था। यहाँ उसने नगर के तालाब में कर्पुर मिला दिया था। जिससे समस्त नगर वासियों को कर्पुरी जल पीने को मिला।[135] इसी उदारता के कारण उसे लांझा कहा जाता है। जबकि नैणसी का कथन है कि यह घटना उसके पाटन में उसके विवाह के समय की है।[136] विजयराज का द्वितीय विवाह चित्तौड़ के सिसोदिया कर्ण समरसी के यहाँ हुआ था। उसका पाँचवा और अंतिम विवाह अन्हलपुरपाटन के जयसिंह सोंलकी के यहाँ हुआ था। टॉड और नैणसी का कथन है कि यह विवाह आबू के परमारों के यहाँ हुआ था। इस विवाहोत्सव के समय उपस्थित तत्कालीन सोंलकी, परमार व सिसोदिया शासकों ने उसे 'उत्तर किवाड़ भाटी' की पदवी से सुशोभित किया था।[137]

आर.सी.मजूमदार के दी स्ट्रेगल फॉर एम्पयार, मुहनौत नैंणसी की ख्यात व राजस्थान थ्रू दी एजेज के अनुसार सन् 1177 में विजयराज की मुत्यु के उपरांत उसका जेष्ट पुत्र रावल भोजदेव लोद्रवा का शासक बना। विजयराज का बड़ा भाई और रावल भोजदेव का चाचा जैसल वैधानिक उत्तराधिकारी होने के कारण जैसल शासक बनाने के लिये प्रयासरत था। जैसल पंजाब की ओर गया जहाँ पर महमूद गजनवी का उत्तराधिकारी

खुसरव शाह का शासन था। यह एक योग्य शासक था। इसलिय जैसल मुल्तान चला गया। जहाँ गयासुद्दीन के छोटे भाई मुईनुद्दीन का प्रभुत्व था। मुईनुद्दीन 1175 ई. तक सिंध मुल्तान और पंजाब के कुछ भागों पर पहले ही अधिकार कर चुका था। अब वह गुजरात के चालुक्य शासक मूलराज द्वितीय पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था। इस समय जैसल द्वारा माँगी गयी सहायता को मुईनुद्दीन द्वारा सशर्त स्वीकार कर ली। मुल्तान सिंध से होते हुए गुजरात छोटे रास्ते हेतु लोद्रवा से जाना होता था। सन् 1178 में जब मुईनुद्दीन की सेना जब माड प्रदेश में प्रवेश किया तो रावल भोजदेव यह सोच कर तटस्थ रहा कि उसकी सेना गुजरात जा रही है। लेकिन जब उसे याद हुआ कि गौरी के साथ उसका चाचा जैसल भी है तो उसे शंका हुई। रावल भोजदेव युद्ध हेतु लोद्रवा से 6 मील की दूरी पर अपनी सेना सहित गौरी के मार्ग में जा पहुँचा। जहा वह अपने समस्त साथियों सहित लड़ता हुआ जुझार हो गया। मुस्लिम स्रोतों में इस घटना का उल्लेख नहीं है किन्तु स्थानीय स्रोतों में इस घटना का विस्तार से वर्णन है। गौरी की सेना को इस युद्ध में अपार क्षति हुई। वह गुजरात अभियान को छोड़कर लोद्रवा की अपार सम्पति लूटकर जैसल को लोद्र्वा सौंपकर लौट गया। रावल भोजदेव लोद्रवा का अंतिम शासक था इसके बाद जैसल ने अपनी राजधानी वर्तमान जैसलमेर में स्थापित की थी।[138] [139]

लौद्रवा के शासक भोजदेव के विरूद्ध मोहम्मद गौरी और जैसल के संयुक्त हमले से भोजदेव लड़ता हुआ निसंतान मारा गया। जैसल को अपने बाहुबल से विजित क्षेत्र का शासक बनने में कोई कठिनाई नहीं हुई। जैसल ने लोद्रवा का शासन भार संभालने के उपरांत सर्वप्रथम वहाँ मुस्लिम सैनिकों द्वारा की जा रही लूट-पाट को रोका। वहाँ की जनता को निर्भय किया। अपनी नीतिपूर्ण और स्वभाव द्वारा उसने समस्त भाटी सामंतों को अपने पक्ष में कर लिया। विजयराज और भोजदेव का साथ देने वाले लोगों के साथ किसी प्रकार का पूर्वाग्रह न रखते हुए मित्रता का हाथ बढ़ाया। जिसके परिणाम सुखद रहा व जैसल शीघ्र ही अपनी स्थिति को मजबूत करने में सफल हो गया।

जैसल द्वारा सर्वप्रथम लोद्रवा को अपनी राजधानी बनाया, किन्तु लोद्रवा को असुरक्षित मानकर पहले उसने सोहण पहाड़ी किले का निर्माण शुरू किया। इस पूर्ण किले के दो बुर्ज खण्डहर के रूप आज आज भी विद्यमान है जिसे स्थानीय लोग सोहन की पहाड़ी कहकर बुलाते है लेकिन ईसाल नामक एक वृद्ध के कहने पर लोद्रवा से पन्द्रह किलोमीटर की दूरी पर त्रिकुट नामक पहाड़ी पर दुर्ग का निर्माण प्रारम्भ किया और अपनी राजधानी को वहाँ स्थानांतरिक कर दिया। वह केवल मात्र नई राजधानी के लिए कुछ द्वार और प्रकार का निर्माण कराने आया था कि पाँच वर्ष राज्य करने के बाद ही उसकी मृत्यु को गयी।[140] उसका उत्तराधिकारी शालिवाहन था।

जिसने 1187 ई.के आसपास तक राजधानी के निर्माण कार्य को पूरा करवाया।[141] इसके बाद बैजक शासक बना जो एक दुश्चरित्र शासक था। नैणसी के अनुसार उसका सम्बंध उसकी विमाता से संशयात्मक था।[142] कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार उसको पद से बलपूर्वक हटा दिया था और कुछ समय बाद उसने आत्महत्या कर ली। बैजक के बाद केल्हण शासक बना उसके उत्तराधिकारियों में चाचकदेव व कर्णसिंह आदि थे।[143] जैसलमेर भारत के मानचित्र पर ऐसे स्थल पर स्थित है जहाँ इसका इतिहास में विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान है। भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा पर इस राज्य का विस्तृत क्षेत्रफल होने से अरबों एवं तुर्को के प्रारम्भिक आक्रमणों को यहाँ के शासकों ने न केवल सहन किया, वरन् दृढ़ता के साथ उन्हें पीछे धकेल कर शेष राजपूताना व गुजरात मध्य भारत को इन बाहरी आक्रमणों से सदियों तक सुरक्षित रखा।

आमेर के कछवाहों की पृष्ठभूमि:-

आमेर के कछवाहा राजपूत भगवान रामचंद्र के पुत्र कुश के वंशज माने जाते है। इस मान्यता के आधार पर ये कछवाहा कौशल के शासक और अयोध्या इनकी राजधानी थी। भाटों के वृत्तान्तों के अनुसार कछवाहों की एक शाखा पूर्व से रोहतास की तरफ से आयी थी और फिर वहाँ से एक शाखा पश्चिम की तरफ बढ़ी और राजा नल के नेतृत्व में नरवर राज्य की नींव रखी। कर्नल जेम्स टॉड और नैणसी री ख्यात के अनुसार 'नरवर' नगर की स्थापना राजा नल ने की थी।[144]

इन्हें कछवाहा कहे जाने के कारण-प्रथम इन्होंने 'कच्छपघाट' जाति को खदेड़कर अपना राज्य स्थापित किया था। इन्हें 'कच्छपघाट' कहा जाने लगा जो आगे चलकर कछवाहा हो गया, परन्तु आर.सी.मजूमदार कृत स्ट्रगल फॉर एम्पायर के अनुसार कछवाहा और कच्छपघाट दोनों अलग अलग थे और इनका तीनों शाखा डूबकुण्ड, ग्वालियर और नरवर से कोई सम्बंध नहीं था।[145] जनरल कनिघम के अनुसार 'कच्छपघटक' और कछवाहा दोनों शब्दों में कोई अर्थ भेद नहीं है। कच्छपघटक शब्द से बोलचाल की भाषा में कछवाहा बना है। दानपत्रों एवं अभिलेखों के आधार पर भी विद्वानों की धारणा है कि दसवीं और ग्यारहवीं सदियों में नरवर ग्वालियर और दूबकुण्ड के आस पास के क्षेत्रों में कच्छपघाट राजपूतों की शाखाएँ शासन कर रही थी। यह भी मानना है कि इनके पूर्वज कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार के सामंत थे। द्वितीय इनकी कुलदेवी 'कच्छपवाहिनी' थी और उसी के पीछे ये 'कुर्मवंशी' और बाद में कछवाहा कहलाने लगे। तृतीय, सूर्यमल्ल मिश्रण के अनुसार किसी कुर्म नामक रघुवंशी शासक की सन्तान होने के कारण ये कुर्मवंशीय कहलाने लगे और भाषा में उन्हें कछवाहा कहा जाने लगा। चतुर्थ पंडित गौरीशंकर हिराचन्द ओझा ने राजपूताने के इतिहास में लिखा है कि किसी मूल-पुरुष के नाम से इस वंश

के राजपूतों को कछवाहा कहा जाने लगा। कछवाहा का एक राज्य दूबकुण्ड में भी था। यहाँ से एक शिलालेख मिला है, जिसमें चार शासकों के नाम है।[146]

पंचम, कुश की संतति होने से भी कुशवाहा से कछवा बनना स्वाभाविक दिखाई देता है। कुश के वंशज होने या कुशावती से आने के कारण समसामयिक लेखक इनको कुशवाहा या कुछावा कहते है। रामनाथजी रतनु तो इन्हें 'कौशवा' भी कहते है।[147] और विशेषज्ञ इनको कछवाहे कहते है। वास्तव में बहुत से इतिहास लेखकों ने इसी नाम को शुद्ध और संगत बताया है और इसी का उपयोग किया है।

कुश के उपरांत उनका पुत्र अतिथि अयोध्या का शासक बना और उनसें 24वीं पीढ़ी पीछे वृहद्धल, 28 वीं पीढ़ी पीछे सुमित राजा हुए। वंश भास्कर में कुर्म और विश्वेश्वर को सुमित के पुत्र बताया है जो किसी कारण नाराज होकर इधर आये और पीछे से नागवंश ने उस देश पर अधिकार कर लिया।[148] जाति भास्कर के अनुसार कोसल देश से कछवाहों की दो शाखा निकली। जिसमें से एक लाहौर की तरफ और दूसरी ने रोहतास पर अधिकार कर लिया। रामनाथ रतनु ने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि इन्होंने अयोध्या से रोहतास के बीच कितने राज्य स्थापित किये इसका उल्लेख नहीं मिलता है। कुछ लोगों ने तवारीख कश्मीर, तवारीख फरिश्ता इतिहास दिवाकर और उर्दू राजतंरगिनी के आधार पर आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व रवि सेन कछवाहा हुए और उनसे 28वीं पीढ़ी पीछे महीराज इनसें 21 वीं पीढ़ी पीछे सूर्यसेन और उनके पीछे संवत 362 में श्रीपाल संवत 662 में ज्ञानपाल संवत 832 में रुद्धपाल संवत 920 में गौतमपाल और सवंत 944 में नल हुए। इन लोगों ने नरवर मारवाड़ और ढूंढ़ाड में शासन किया। परन्तु इस अनुसंधान में कुछ अंश असंगत या अस्तव्यस्त होने से सम्भव है कि जयपुर भविष्य इतिहास लेखकों को संतोष के बदले सभ्रम होगा। इसमें संदेह नहीं की कछवाहा ने इस देश में आकर कहीं जगह राज किया और अपने नाम और यश को फैलाया। यह आवश्यक है कि रोहतासगढ़ आने के बाद उनको पूरा संतोष मिला और उनकी बहुत उन्नति हुए।[149]

ईशदेव जी देवानीक के पुत्र और आमेर के आदिपुरुष थे। 3 वंशावलियों में इनका नाम ईस, इसै, ईसल, और ईसासिंह लिखा है। वीर विनोद में ईसासिंह और भारत के देशी राज्यों में ईश्वरीसिंह[150] कच्छवंश काव्य में ईश्वरदेव लिखा है। वंशीवली में इनको ग्वालियर और नल का शासक माना गया है लेकिन कर्नल जेम्स टॉड और भारत भ्रमण में इनका कोई उल्लेख नहीं है। जयपुर हिस्ट्री में लिखा है ईसलदेव धर्मात्मा शासक थे। उन्होंने नरवर और ग्वालियर दोनों में शासन किया था। अंत में अपने भाँजे जयसिंह को राज्य देकर दूसरी जगह चले गये। पंडित गौरीशंकर हिराचंद ओझा वंशावलियों में दी गई सभी जानकारियों को कल्पित मानते है।[151] डा.

राजेन्द्रलाल ने ग्वालियर किले में मिले शिलालेख के अनुसार कहा है कि तँवरों ने ग्वालियर का राज्य अपने बाहुबल से जीता था। कवि श्याममलदास के वीर विनोद के अनुसार सोढ़देव जी अपना राज्य दान देकर अन्यत्र चले गये थे।[152]

जयपुर राज वंशावली[153] के अनुसार ईश्वदेव के बाद सोढ़देव जी उनके उत्तराधिकारी बने। सोढ़देव जी के बेटे दूलैराय/ दुलहराय का विवाह मोंरा के चाहमान राजा रालणसी की बेटी के साथ हुआ था। रालणसी ने अपने ब्याही सोढ़देव को सुचित किया कि हमारे राज्य से 6 मील दूर दौसा राज्य है। वह आधा हमारा है और आधा बड़गुर्जरों का है। हम हमारा आधा राज्य तो आपको वैसे ही दे देगें और बड़गुर्जरों को राज्य को जीतने में भी आपकी मदद करेगें। सोढ़देव जी की उस समय आयु कम थी, इसलिए उन्होंने सम्बन्धी की बात मान कर दुलहराय को बड़गुर्जरों पर आक्रमण करने भेज दिया। दुलहराय ने चाहमानों की सहायता से बड़गुर्जरों पर आक्रमण कर दौसा के राज्य पर अधिकार कर लिया। इस विजय से चाहमान बहुत खुश हुए और उन्हेंने सोढ़देव जी को बरेली से बुलाकर दौसा का शासक बना दिया। यह कछवाहों का ढूंढ़ाड[154] में प्रवेश का श्री गणेश था। उन दिनों दौसा में सोढ़देव जी की आमदनी कम थी। उन्होंने माँच के मीणाओं को पराजित कर उनके राज्य पर अधिकार कर लिया।[155]

दुलहराय/ दूल्हेंराय :- संवत 1068 सोढ़देव के उत्तराधिकारी बने। इस विषय में इतिहासकारों के मत भिन्न है। मदनकोस के अनुसार संवत 1024 में ढ़ोला ने दौसा राज्य की स्थापना की थी। कर्नल जेम्स टॉड ने जयपुर के इतिहास में लिखा है कि ढ़ोला ने दौसा पर कब्जा किया था। कवि श्याममलदास के वीर विनोद के अनुसार दुलेराय ने अपने पिता सोढ़देव जी की आज्ञा से दौसा पर शासन किया।[156] जयपुर राज वंशावली 'ग' के अनुसार राजा दुल्हेराय ने राजपद ग्रहण नहीं किया बल्कि वह कुंवर ही रहे। जयपुर राज वंशावली क के अनुसार सोढ़देव जी दौसा आये और उन्होंने दुल्हेराय जी का राजतिलक किया। वंशावली 'ख' में लिखा है सोढ़देव ने दुल्हेराय को युवराज बनाना और राज्य विस्तार की आज्ञा दी। डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने लिखा है कछवाहा के एक वंशज दुलहराय ने ग्वालियर से दौसा आकर और फिर बड़गुर्जरों को परास्त कर 1137 ई. में ढूंढ़ाड में नवीन राज्य स्थापित किया।[157]

राजनाथ रतनु के राजस्थान इतिहास के अनुसार अपने पिता की आज्ञा से दुल्हेराय ने मांच के मीणों पर आक्रमण कर दिया। प्रथम आक्रमण में दुल्हेराय मूर्छित हो गये, पर उन्हें सफलता नहीं मिली। वंशावलियों के

अनुसार इसी बीच दौसा के बडगुर्जरों ने अपने भाई देवती के राजा की सहायता से दौसा को लेने का असफल प्रयास किया। बुढ़वाया माता के आर्शीवाद से दुलहराय ने मांच के मीणाओं दुबारा आक्रमण किया। इस समय मीणा अपनी विजय से हर्षित होकर शराब पी रहे थे। अचानक दुल्हेराय के आक्रमण से वे परास्त हो गये। मांच पर उसका अधिकार हो गया। माँची विजय की यादगार में दुल्हेराय ने माँची से तीन कोस दूर बूढवाया माता का मन्दिर बनवाया। ये जमवाया माता के नाम से विख्यात हुआ। इस समय दुल्हेराय दौसा में रहते थे। माँची पर अधिकार हो जाने के बाद माँची में भगवान रामचंद्र के नाम रामगढ़ का किला बनवाया और वहीं रहने लगे। कुछ समय उपरांत दुल्हेराय ने आमेर की तलेटी में बसे तीन ठिकाने वर्तमान जयपुर से दो कोस पूर्व में खोह में चंदा मीणा तथा उत्तर में एक कोस गेटोर में गेटा मीणा और पश्चिम में झोटवाडा में झोटा मीणा थे। ये सब अपने ठिकाना के राजा थे। अपने समय में राव कहलाते थे। समय पाकर दुल्हेराय ने इन तीनो ठिकानों पर अधिकार कर लिया। इसमें विजय के साथ उसे काफी धन प्राप्त हुआ।[158] वहाँ एक मजबूत किला बनवाया और रामगढ़ की जगह वहीं रहने लग गये। हनुमान शर्मा के जयपुर राज्य के इतिहास के अनुसार सोढ़देव जी मृत्यु खोह में ही हुई। वीर विनोद, वंशावलियों के अनुसार दुल्हेराय ग्वालियर के राजा के निमंत्रण पर, दक्षिण से आये शत्रुओं से सहायता के लिए गये थे। वहाँ उनके मरने का उल्लेख करते है।[159] जबकि कर्नल जेम्स टॉड ने लिखा है कि वह मीणों से युद्ध करता हुआ मारा गया।[160]

जालौर के सोनगरा चौहानों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:-

जालौर लूनी की सहायक सुकड़ी नदी के दाएं तट पर जोधपुर से लगभग 124 कि.मी. दक्षिण में स्थित है। स्थानीय परम्परा के अनुसार जालौर दो शब्दों से मिलकर बना है जाल व लोर, जाल यानि पीलू के पेंड (सल्वाडोर पेर्सिका) लोर चारों से और घिरा होना अर्थात जाल के पेड़ों से चारों और से घिरा होने के कारण यह जालौर कहलाया। पश्चिमी राजपूताना में इस प्रदेश को जालंधर भी कहते है। साहित्य व अभिलेखों में इसे जाबालिपुर के नाम से जाना जाता है। जिस पहाड़ी पर जालौर का किला बना हुआ है उसे सोनगढ़ और किले को सोनगिरी या सुस्वर्णगिरी व कनकाचल कहा जाता है। जिसको अपभ्रंश में सोनगढ़ कहते है। इसी पहाड़ी के नाम से जालौर की चौहान शाखा सोनगरा चौहान कहलायी। वर्तमान में ग्रेनाइट शहर के नाम से विख्यात जालौर राजस्थान का एक जिला है। इसकी स्थिति 24^0 37' से $25^0$49' उत्तरी अक्षांश एवं $71^0$11' से 73^0 05' पूर्वी देशांतर है।[161]

जालौर एक ऐतिहासिक नगर रहा है। जालौर और उसके निकटवर्ती प्रदेश गुर्जर देश में सम्मिलित थे। प्रतिहार शासकों के शासन काल में जालौर एक शक्तिशाली व समृद्ध नगर था। प्रतिहार शासक वत्सराज के शासन काल में जैन आचार्य उधोतन सूरी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ' कुवलयमाला' जालौर में ही लिखी थी। इसी आधार पर डॉ. दशरथ शर्मा का मानना है कि प्रतिहार शासक नागभट्ट प्रथम ने जालौर को अपनी राजधानी बनाया था। जालौर दुर्ग को बनवाने वाला सम्भवतः नागभट्ट प्रथम ही था। इससे अरब आक्रमणकारियों का सफल प्रतिरोध हो सका। अरबों के आक्रमणों को असफल करने में नागभट्ट प्रथम का योगदान उल्लेखनीय है।[162]

प्रतिहारों के उपरांत जालौर पर परमारों ने अधिकार कर लिया। डॉ.गौरीशंकर हिराचंद ओझा के अनुसार जालौर के किले का निर्माण परमारों ने ही करवाया था। किन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में यह निश्चित नहीं कहा जा सकता है। सम्भवत: उन्होंने पूर्व में बने हुए किले का जीर्णोद्धार व विस्तार करवाया हो। जालौर के परमारों का मालवा के परमारों से क्या सम्बंध था इसको लेकर विद्वान एक मत नहीं है। जालौर के परमार शासक वीसल का एक शिलालेख वि.सं.1144/1087 ई. का प्राप्त हुआ है। वीसल सहित इसमें सात परमार शासकों के नामों का उल्लेख है। वाक्पतिराज, चंदन, देवराज, अपराजित, विज्जल, धारावर्ष व वीसल। इसी में वर्णन है कि वीसल की रानी मेलरदेवी ने सिन्धुराजेश्वर भगवान के मन्दिर में सोने का कलश चढ़ाया है।[163] जालौर के परमार कभी स्वतंत्र व कभी गुजरात के चालुक्य के सामंत के रूप में शासन कर रहे थे। 1164 ई. में गुजरात का चालुक्य नरेश कुमारपाल का शासन था।[164] जिसने अपने नाम पर कुंवर विहार नामक जैन मंदिर का निर्माण करवाया था, किन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होता। क्योंकि इस समय अजमेर में चौहान शासक विग्रहराज चतुर्थ का शासन था। जिसने चालुक्य शासक कुमारपाल को युद्ध में पराजित कर पाली, जालौर, नागौर आदि पर अधिकार कर लिया। अत: इस समय जालौर, अजमेर के चौहानों के अधिकार में थे और परमार उनके सामंत होंगे।

कीर्तिपाल:- कीर्तिपाल नाड़ौल के चौहान शासक अल्हण व अल्हणादेवी का सबसे बड़ा पुत्र था। वि.सं. 1218 में अल्हण ने अपने पुत्र केल्हण को बारह गाँव सहित नाड़ौल का शासक बनाया। वि.सं. 1220 में उसे नाड़ौल राज्य का कुछ प्रदेश और दिया गया। इसका अनुमोदन महाराज अजयसी के पुत्र कुमारसी के अनुदान से होता है। सुंधा अभिलेख में इसे नाड़ौल का राजेश्वर कहा गया है। इस प्रकार हम वास्तविक रूप से कुछ नहीं कह सकते कि कीर्तिपाल को उसके पिता के राज्य में से कुछ हिस्सा मिला है। कीर्तिपाल ने उस समय मारवाड़ में अपनी उत्कृष्ट ऊर्जा और बुद्धि के पूर्ण अभ्यास के लिए एक तैयार क्षेत्र पाया। कीर्तिपाल स्वतंत्र राज्य की खोज में

मारवाड़ की ओर आया। इसी समय चालुक्य-चौहान के बीच संघर्ष चल रहा था। इसलिए मारवाड़ में उसके लिए अच्छा अवसर था और कुछ ही समय बाद इसने किराडू के परमार राज्यपाल असला को पराजित करके उस पर अधिकार कर लिया। यह गुजरात के चालुक्य नरेश भीम द्वितीय का सामंत था। कीर्तिपाल ने 1181 ई. में जाबालीपुर पर अधिकार कर उसे अपनी राजधानी बनाया (शर्मा द., दी अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, 1959) । इस प्रकार वह जालौर की चौहान शाखा का संस्थापक बना। जालौर का दुर्ग जिस पहाड़ी पर बना था। उसका नाम सोनगिरी था। इस कारण जालौर के चौहान सोनगरा चौहान कहलाये। नैणसी के अनुसार कीर्तिपाल का जालौर व सिवाना दोनों पर अधिकार था और 'कीतू एक महान राजपूत' था (नैणसी, मुहनौत नैणसी री ख्यात, 1960) ।

समरसिंह:- (शर्मा ग., सुंडा पर्वत शिलालेख, राजस्थान के इतिहास के स्रोत, 1993) कीर्तिपाल के बाद उसका पुत्र समरसिंह जालौर का शासक बना। 1262 ई. के सुंडा शिलालेख में समरसिंह के द्वारा जालौर दुर्ग का निर्माण व अपने नाम पर समरपुर की स्थापना उल्लेख है। उसकी बहन रुदालदेवी ने जालौर में दो शिव मंदिर का निर्माण करवाया। जालौर के किले में चतुर्दिक विशाल व उन्नत प्राचीर का निर्माण करवाया था। युद्धकाल में शत्रु का मुकाबला करने हेतु संहारक यंत्रो और उपकरणों से लेस किया था। दुर्ग के अन्दर शस्त्रागार अनाज के भण्डार आदि का निर्माण करवाया। विभिन्न उपायों द्वारा किले को दुर्जेय स्वरूप प्रदान किया। (शर्मा द. , दी अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, 1959) समरसिंह ने गुजरात के चालुक्य शासक भीमसिंह द्वितीय के साथ अपनी पुत्री लीलादेवी का विवाह करके उस समय के शक्तिशाली राजवंश के साथ राजनीतिक सम्बंध स्थापित किये। एक निर्माता व विजेता होने के साथ-साथ ही एक सफल कूटनीतिज्ञ का भी परिचय दिया। समरसिंह के दो पुत्र थे। मानवसिंह और उदयसिंह इसके बड़े पुत्र मानवसिंह ने चंद्रावर्ती व माउंट आबू के चौहान राजवंश की स्थापना की थी।

उदयसिंह (1205 -1257 ई.):- (शर्मा ग., सुंडा पर्वत शिलालेख,राजस्थान के इतिहास के स्रोत, 1993) समरसिंह के उपरांत उसका छोटा पुत्र उदयसिंह 1205 ई. के लगभग जालौर के सोनगरा चौहान शाखा का शासक बना। इसके बारे में जानकारी इसके पुत्र चाचिगदेव के समय के वि.सं.1313/1262 ई. के सुंडा पर्वत शिलालेख से प्राप्त होती है। इस लेख में उदयसिंह को नाड़ौल जाबालिपुर (जालौर) सुरचंदा रतहरडा खेड़ा

रामसैन्य श्रीमाल (भीनमाल) रतनपुरा और सांचौर (सत्यपुर) आदि प्रदेशों का स्वामी कहा गया है। बाड़मेर के किराड़ू को उसने परमारों से पहले ही जीत लिया था। नैणसी के अनुसार उसने सत्यपुर (सांचौर) को उसने दहियाँ राजपूतों जालौर दिल्ली सल्तनत के आरामशाह सुल्तान के शासन काल में अपना विस्तार करता रहा। गुजरात के चालुक्य शासक लवणप्रसाद को पराजित कर उनकी शक्ति को कमजोर करने वाला उदयसिंह ही था। उसने मण्डोर और नाड़ौल को जीत कर अपने राज्य में सम्मिलित किया। उसने मेवाड़ व गोडवाल के कुछ प्रदेशों पर भी अधिकार कर लिया था। जालौर का उदयसिंह दिल्ली सल्तनत के सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक, आरामशाह, इल्तुतमिश, रूकनुद्दीन फिरोजशाह, सुल्तान रजिया, बहरामशाह, मसूदशाह, नासिरुद्दीन महमूद शाह आदि आठ सुल्तानों के समकालीन था। अजमेर व सपादलक्ष के चौहानों की शक्ति के पतन के बाद दिल्ली सल्तनत के विस्तार पर रोक लगाने वाला एक मात्र चौहान शासक उदयसिंह था। उदयसिंह ने आरामशाह या उसके किसी कमजोर सेनापति को भी पराजित किया था क्योंकि सुंडा पर्वत के शिलालेख में उसे तुर्कों का दमन करने वाला कहा गया है। दिल्ली सल्तनत के शासकों की शक्ति को नजरअंदाज करते हुए अपने राज्य की सीमाओं को विस्तृत किया। मण्डोर व नागौर विजय इस दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जाती है

अध्याय-द्वितीय

2. मोहम्मद गौरी (1173-1206 ई.), गुलाम वंश (1206-1290 ई.) व राजपूताना

सातवीं शताब्दी में इस्लाम का उदय विश्व इतिहास की एक युगांतकारी घटना थी। इससे सम्पूर्ण विश्व प्रभावित हुआ। अपने पर्वतक की मृत्यु की एक सदी के भीतर ही इसने एक वृहत साम्राज्य की स्थापना कर ली। इसी प्रक्रिया के अंतर्गत मुस्लिम धर्म के आस्थावानों ने पहले अपने पड़ोसी प्रदेशों पर और इसके बाद अन्य देशों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। उत्तरी भारत पर आक्रमण करने वाले मुस्लिम आक्रमणकारियों की प्रथम पंक्ति में अरब आक्रमण द्वितीय पंक्ति में महमूद गजनवी और तीसरा नाम गौर वंश का आता है। विदेशी आक्रमणों और भारत में उनकी सत्ता की स्थापना के उपरांत भी उन मुस्लिम शासकों की आक्रमणात्मक नीति के विरूद्ध इस देश साथ ही राजपूताना के शासकों ने भी इनका निरन्तर सामना किया। इन आक्रमणों के परिणामस्वरूप भारत वर्ष के कुछ शासकों ने इनका सफलता पूर्वक सामना किया। कुछ शासकों को निराशा भी हाथ लगी। प्रथम और द्वितीय पंक्ति के जो आक्रमण भारत वर्ष में हुई। इन आक्रमणों का उद्देश्य यहाँ की अपार धन सम्पति को लूटकर मध्य एशिया ले जाना। यहाँ की धार्मिक स्थलों को नष्ट-भष्ट करना व इस्लाम धर्म का विस्तार करना था। इन दोनों आक्रमणों का भारत पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। तीसरी पंक्ति अर्थात मोहम्मद गौरी के नेतृत्व में हुए आक्रमणों के कारण उत्तर व पश्चिम भारत की राजनीतिक सामाजिक स्थितियों में भारी परिवर्तन आया।

2.1 मोहम्मद गौरी (1173 -1206 ई.):-

गौर के सुल्तान मलिक ईजुद्दीन हुसैन के बाद उसके पुत्र सैफ़ुद्दीन सूरी ने उसके साम्राज्य का विभाजन अपने भाइयों में कर दिया था। तब बहाउद्दीन साम के हिस्से में सांग का प्रान्त आया था। जब सैफ़ुद्दीन सूरी ने अपने भाई कुतुबुद्दीन मोहम्मद की हत्या का बदला लेने के लिए गजनी सुल्तान बहरामशाह पर आक्रमण किया। उस समय बहाउद्दीन साम भी उसके साथ था। गजनी विजय के उपरांत सूरी ने गौर का प्रदेश भी बहाउद्दीन साम को सूपुर्द कर दिया था। इसका विवाह किदान के मलिक बदरुद्दीन की पुत्री मलिका से हुआ था। इसके तीन बेटियाँ व दो पुत्र हुए। बहाउद्दीन साम के दो पुत्र सुल्तान गयासुद्दीन मोहम्मद साम व मुईनुद्दीन मोहम्मद साम थे। लेकिन जब गजनी सुल्तान बहरामशाह द्वारा सैफ़ुद्दीन सूरी का अपमान कर उसकी हत्या की सूचना जब उसके

भाई बहाउद्दीन साम को मिली तो वह गजनी पर आक्रमण के लिए रवाना हुआ। तब किदान में उसकी मृत्यु हो गयी। अपने पिता की मृत्यु के समय गयासुद्दीन व मुईनुद्दीन का अधिकार सिर्फ किदान तक सीमित था। इनके चाचा सुल्तान अलाउद्दीन हुसैन जहाँसोंज ने इन्हें वर्जिस्तान का प्रदेश भी दे दिया था लेकिन फिरोजकोह को उसने स्वयं के अधिकार में रखा। अलाउद्दीन हुसैन के बाद उसका पुत्र सैफ़ुद्दीन मोहम्मद फिरोजकोह की गद्दी पर बैठा जो एक झगड़े में मारा गया। इसके बाद सुल्तान गयासुद्दीन मोहम्मद शाम (1163-1203 ई.) अपने पिता व माता के पुराने सहयोगियों की सहायता से गद्दी पर बैठा। सुल्तान गयासुद्दीन मोहम्मद साम ने अपने भाई शिहाबुद्दीन या मुईनुद्दीन को तिगानाबाद का राज्यपाल नियुक्त किया। उसे आदेश दिया कि वह गजनी पर विजय करे जो उस समय गुज्जं तुर्कों के अधिकार में था। जब उसके द्वारा 1173-1174 ई.में गुज्ज जाति के तुर्क सुल्तान खुसरो शाह को पराजित कर गजनी पर विजय प्राप्त कर ली गयी तो गयासुद्दीन ने यह प्रदेश मुईनुद्दीन मोहम्मद साम को दे दिया। जो भारतीय इतिहास में मोहम्मद गौरी के नाम से प्रसिद्ध है। शंसबानी वंश की यह शाखा साम्राज्य विस्तार के लिए भारत की ओर आकर्षित होने लगी। प्रोफेसर हबीब के अनुसार मुईनुद्दीन के अधीनस्थ गजनी राज्य की सीमा का काफी विस्तार हो गया था। फिर भी वह अपने बड़े भाई गयासुद्दीन मोहम्मद को ही अपना स्वामी मानता था। सुल्तान से जो भी आदेश उसे प्राप्त होता था। उसका वह पालन करता था। वह अपने भाई की आज्ञा की बिना कोई सैनिक अभियान पर नहीं जाता था।[165]

इस प्रकार गौर के सुल्तान गयासुद्दीन के राज्यकाल में गौर साम्राज्य तीन भागों में बँट गया। वरिष्ठ शाखा फिरोजकोह को केन्द्र बना कर गौर साम्राज्य पर शासन करने लगी। इसने अपने विस्तार के लिए खुरासान को अपना लक्ष्य बनाया। गजनी पर आधिपत्य के पश्चात मुईनुद्दीन के नेतृत्व में दूसरी शाखा ने गजनी को केन्द्र बनाकर भारतवर्ष को अपनी विजय का क्षेत्र बनाया। बामियान के नवविजित क्षेत्र पर फखरुद्दीन ने आक्स नदी के तट तक तुखारिस्तान बदरूशा और शुगान पर राज्य किया। 12वीं सदी के मध्य गौरी वंश का उदय हुआ। गौरी साम्राज्य का आधार उत्तर-अफगानिस्तान था। आरम्भ में गौरी गजनी के अधीनस्थ थे, पर शीध्र ही उन्होंने ये बोझ उतार फेंक दिया। गौर में जो वंश प्रधान था उसका नाम शंसवानी। मोहम्मद गौरी के समय ये वंश प्रभावशाली हो गया था। अपने आप को उसी वंश ने गजनी में प्रतिष्ठित किया। गजनी को अपना मुख्य स्थान बनाकर उसने भारत पर कई बार आक्रमण कियें और दिल्ली सल्तनत का मार्ग सुगम किया। गौरी के राजनीतिक संगठन के बारे में चर्चा करते हुए मोहम्मद हबीब लिखते है कि गौर के भारतीय राज्य के पीछे साम्राज्य का

विचार नहीं था और न कोई सरकार का रूप था। यदि हम उसके राज्य के विस्तार के बारे में ध्यान न दे, तो जिस संस्था के समान वह था, वह भारतीय संयुक्त परिवार प्रथा के बहुत निकट था।[166]

2.2 मोहम्मद गौरी के भारत पर आक्रमण के उद्देश्य :-

मोहम्मद गौरी द्वारा गजनी विजय के साथ ही वह शक्ति का प्रमुख केन्द्र बन गया। इस केन्द्र से आगे चलकर भारत के भाग्य का फैसला होना था। गजनी के पश्चिम में सबल तुर्को के अधिपत्य के फलस्वरूप उसने भारत को अपने विजय का क्षेत्र चुना। मोहम्मद गौरी के भारतीय अभियानों के उद्देश्यों पर इतिहासकारों ने यह दलील प्रस्तुत की है कि उसका उद्देश्य साम्राज्य विस्तार करना था। परन्तु उसके समस्त अभियानों का अवलोकन करें तो यह गलत साबित होगा। यह बात अवश्य है कि साम्राज्य विस्तार का यह अंतिम चरण कमश: विकास की अंतिम परिणीति थी। एक महत्वपूर्ण तथ्य उपस्थित किया जा सकता है कि यदि उसका उद्देश्य साम्राज्य विस्तार करना था। तो उसने बिना पंजाब स्थगत किये गुजरात जैसे सुदुरस्थ स्थल को अभियान के लिए क्यों चुना। अत: कहा जा सकता है कि गजनी के सुसज्जित शहर की राख पर बैठने वाले मुईनुद्दीन ने डेढ़ शताब्दी पूर्व गजनी के वैभव के बारे जो सूचनाएं पाई। जब उसने महमूद गजनवी द्वारा भारत से धन सोखकर गजनी में निचोड़ने की प्रकिया का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन सुना होगा तो पुनः उसी रास्ते पर चल कर गजनी को फिर से एक बार संवारने का संकल्प किया होगा। सोमनाथ के स्वर्ण घंटो की आवाज जब इस गजनी के सुल्तान के कानों में पड़ी तो वह बिना सोचे मूर्खतापूर्ण गुजरात अभियान के लिए कृतसंकल्प हो गया होगा किन्तु प्रारभिंक असफलता ने उसे इतना परिपक्त बना दिया था कि अब उसने महमूद गजनवी भाँति लूट नहीं बल्कि सुदृढ़ स्थायी सफलता से अपनी महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने की बुद्धिमत्ता पूर्ण नीति अपनायी।

मोहम्मद गौरी के भारतवर्ष पर जो आक्रमण हुए उसके पीछे उसका मुख्य उद्देश्य भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना करना था। वह एक महत्वाकांक्षी और साहसी व्यक्ति था। सभी महत्वाकांक्षी व्यक्तियों की भाँति वह भी विस्तृत साम्राज्य का निर्माण करके यश कमाना चाहता था।

दूसरे, गौरी राजवंश की गजनवी वंश के साथ भयंकर शत्रुता थी। इसके अतिरित ख्वारिज्म के शाह के साथ भी गौरियों का दीर्घकाल से युद्ध चल रहा था। उसके विरुद्ध सफलता प्राप्त करने के लिए गौर वंश के लिए पंजाब पर जो उस समय गजवनी वंश के अधिकार में था, अधिकार करना अत्यंत आवश्यक था क्योंकिं गजनवी सुल्तान गौरियों के ख्वारिज्म के शाह के साथ युद्ध के दौरान पीछे से गजनी पर आक्रमण करके इस पर अधिकार कर

सकते थे। इसी भाँति मुल्तान के करमाथियों से भी विरोध की ही आशा की जा सकती थी। अतएव गौर साम्राज्य की रक्षा के लिए मुल्तान और पंजाब पर अधिकार करना वांछनीय ही नहीं वरन् एक अनिवार्य आवश्यकता थी। तीसरे, वह यह भलीभाँति जानता था कि भारतीयों पर विजय प्राप्त करने में धार्मिक जोश का लाभ उठा सकेगा तथा कट्टरपंथी मुसलमानों की दृष्टि में वह पुण्य का भागी होगा। साथ ही भारत से प्राप्त धन (भारत से उसे जैसा कि उसने महमूद गजनवी के आक्रमणों में सुना था, अथाह धन प्राप्त करने की आशा थी) तथा सामरिक साधन उसे अपने वंश के शत्रु ख्वारिज्म के शाह के विरूद्ध विजय प्राप्त करने में भी सहायक होगें। इन्हीं सब उद्देश्यों से मोहम्मद गौरी ने भारतवर्ष पर आक्रमण करने की योजना बनायीं।

2.3 मोहम्मद गौरी व राजपूताना (1173-1206 ई.):-

मोहम्मद गौरी ने अपने प्रारंभिक अभियान हेतु खैबर दर्रे को छोड़कर उससे सुरक्षित व लघु रास्ते के लिए इस्माइल खाँ के पश्चिम में गोमल दर्रे को चुना[167] 1175 ई. में उसने करामतियों से मुल्तान छीन लिया[168] और फिर उच्छ पर अधिकार जमा कर अलिकरभाखा की नियुक्ति कर गजनी लौट गया।[169]

2.3.1 मोहम्मद गौरी का लोद्रवा पर आक्रमण व जैसलमेर राज्य की स्थापना:

लोद्रवा के शासक दुसाजी के जैसल, पवो, पहोड़ नामक तीन पुत्र थे। दुसाजी का विवाह वृद्वावस्था में मेवाड़ के महाराणा की कन्या के साथ हुआ। इस सिसोदिया रानी से वृद्वावस्था में दुसाजी के विजयराव नामक पुत्र हुआ। इस कुमार विजयराव का विवाह आहडवाडा शासक सोंलकी राजपूत जयसिंह की पुत्री से हुआ। इसी विवाह अवसर पर उपस्थित सभी राजाओं ने कुमार विजयराव को 'उत्तर भड किवाड़ भाटी' की उपाधि दी थी। कुमार का दूसरा विवाह धाराधिपति राय धवल पंवार के साथ हुआ था। इस विवाह के समय विजय राव ने अत्यधिक द्रव्य खर्च किया था। इस कारण उसे लाझा कहा जाने लगा। दुसाजी ने सिसोदिया रानी के प्रेमवश विजयराव को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। इसलिए उनकी मृत्यु के उपरांत लाझा विजय राव लोद्रवा की गद्दी पर बैठा। सामंत मण्डल के इस अनुचित निर्णय से जैसल अत्यधिक रुष्ट हुए। जैसल विजयराव के राज्यकाल में कुछ नहीं कर सका। वह नगरथट्टा के शासक शिहाबुद्दीन के केम्प में जाकर रहने लगा।[170] रावल बिजयराव लांझा[171] 1127-1147 ई. ने अपने राज्यों के क्षेत्र में सिंध और पंजाब से अतिक्रमण करने वाले तुर्को को पराजित करके 'परम भट्टारक महाराजधिराज परमेश्वर' की उच्च पदवी धारण की।[172]

मजेज खाँ और करीम खाँ के नेतृत्व में मोहम्मद गौरी के अग्रिम सैनिक दस्तों ने सिंध में अपने आधार स्थल नगरथटा से लुद्रवा पर धावे करने आरम्भ कर दिए।[173] रावल ने उन्हें अनेक बार पराजित करके पीछे धकेला किन्तु वह लुद्रवा को लूटने के लिय दृढ़ संकल्प थे। उनके पश्चात युवराज भोजदेव 1147-1152 ई. लुद्रवा की गद्दी पर बैठे। रावल भोजदेव अपने काका जैसल से आशकिंत होकर पाँच सौ सोंलकी राजपूत अंगरक्षकों सहित लोद्रवा में रहते थे। आर.सी. मजूमदार, मुहनौत नैणसी व हरिसिंह भाटी की गजनी से जैसलमेर के अनुसार जैसल ने लुद्रवा की राजगद्दी पर अपना अधिकार मान कर छोटे भाई के पुत्र रावल भोजदेव के विरूद्ध मोहम्मद गौरी[174] के पास पहुँचा। उसने जैसल को सहर्ष सहायता देने स्वीकार कर लिया। इसके कई कारण थे। सर्वप्रथम, उसे ऐसा निमंत्रण अभी तक किसी भी हिंदू शासक से प्राप्त नहीं हुआ था, क्योंकि इस समय तक भारतीयों की मनोदशा इन तुर्को के प्रति म्लेच्छो से ज्यादा नहीं थी। द्वितीय, उसे मरुभूमि के राज्यों की जानकारी देने वाला सूत्र मिल गया। तृतीय, सबसे महत्वपूर्ण कारण उसे अपने पूर्ववती आक्रमणकारियों द्वारा जीते गये सबसे ज्यादा धनवान प्रदेश गुजरात जाने के लिए मार्गदर्शक व सहायक भी प्राप्त हो गया। अत: उन दोनों में शीघ्र मित्रता हो गयी। मोहम्मद गौरी ने जैसल को सहायता देना स्वीकार किया। अपने सेनापति मजुज खाँ व करीम खाँ के नेतृत्व में रावल भोजदेव पर सन् 1152 ई. आक्रमण किया। मोहम्मद गौरी की सेना ने लुद्रवा के किले को घेरे रखा, किन्तु रावल भोजदेव ने झुकने का नाम तक नहीं लिया। रावल भोजदेव की स्वर्गवास की स्मृति में निम्न सोरठा प्रसिद्ध है।– गौरी शिहाबुद्दीन, भिडिया रावल भोजदे। नाम उमर रख लीन, बारह सौ नव लुद्रपुर।।

अन्ततः उनकी सेना ने आत्मघाती आक्रमण कर किले पर अधिकार कर लिया। नगर की धन सम्पदा को लूट कर किले को तोड़ कर समतल कर दिया। सन् 1024ई. के पश्चात यह दूसरा अवसर था जब लोद्रवा के किले को तोड़ा गया। आंततायियों ने न केवल किले को ही तोड़ा बल्कि उन्होंने सदियों से वंचित अमूल्य कला और शिल्प धरोहर संस्कृति और संपदा को कुछ दिनों में ही नष्ट कर डाला। पंडित हरिदत्तगोविन्द व्यास ने जैसलमेर के इतिहास में लिखा है कि विजय शिहाबुद्दीन गौरी की सेना ने लोद्रवा की समस्त धन सम्पदा को लूट कर ले जाने की इच्छा की, पर जैसल ने अपना मनोरथ पूर्ण होना समझकर जीवित रहे भट्टी राजपूत वीरों के सहयोग से मजुम खाँ को मार कर लूट की समस्त सम्पति पर अधिकार कर लिया। [175]

युवा रावल भोजदेव द्वारा प्राणोंत्सर्ग किए जाने के पश्चात् सन् 1152 ई. में जैसल[176]लुद्रवा की राजगद्दी पर बैठे। रावल जैसल ने रावल भोजदेव की पराजय से अनुभव किया कि युद्ध की कूटनीति व सामरिक दृष्टि से

लुद्रवा राजधानी के लिए उपयुक्त स्थान नहीं था। इसलिय उन्होंने राजधानी के अनेक नए स्थानों का सैनिक परिवीक्षण किया। 1156 ई. में वर्तमान जैसलमेर के किले की नींव रखी। जहाँ सन् 1162 ई. में अपनी राजधानी ले गए। उनके समय में चौहान साम्राज्य का भाग्योदय चरमोत्कर्ष पर था। मालवा और मेवाड़ के प्रतिभाशाली शासक चौहान सम्राटों की सेवा में अजमेर के दरबार में उपस्थित रहते थे।[177]

रावल जैसल ने अपने युवराज कालणजी के स्थान पर छोटे पुत्र शालिवाहन को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। यद्यपि रावल शालीवाहन भाटियों के प्रथम शासक थे। जिनका राज्याभिषेक जैसलमेर के नवनिर्मित किले में किया गया था। परन्तु युवराज बीजक के दुष्कर्म से लज्जित सामान्यतः वह अपने पूर्वजों के दूरस्थ देरावर के किले में निवास किया करते थे। बीजक को जैसलमेर से निर्वासित करके सैनिक संरक्षण में ऊँच्छ के किले में रखा गया था। किन्तु 1175 ई. में मोहम्मद गौरी के ऊँच्छ[178] पर आक्रमण के कारण उन्हें अपने दुष्कर्म पर पश्चाताप करने के लिए किले की सुरक्षा का दायित्व सौंपा गया। उस वीर राजकुमार ने किले की घेराबंदी को लम्बे समय तक साहसपूर्वक झेला किन्तु आखिर मोहम्मद गौरी ने षड्यंत्रपूर्वक छलकपट से किले पर अधिकार कर लिया। चूँकि ऊँच्छ के किले की रक्षा करते हुए राजकुमार बीजक मर गये थे।

2.3.2 मोहम्मद गौरी का गुजरात पर आक्रमण व जैसलमेर के भाटी शासक रावल शालीवाहन का हस्तक्षेप:-

गुजरात के चालुक्य शासक भीमदेव द्वितीय (सन् 1178-1248 ई.) के विरुद्ध आक्रमण करने के लिए मोहम्मद गौरी[179] ने सन् 1178 ई. में मुल्तान से रवाना हुआ। वह मुल्तान से ऊँच्छ देरावर (वर्तमान पाकिस्तान में) बीकमपुर लौद्रवा से होते हुए गुजरात जा रहा था। जैसलमेर रावल शालिवाहन ने उन्हें सुरक्षित मार्ग नहीं दिया और उनका रास्ता रोक दिया। गौरी के पहले आक्रमण को भाटियों ने पीछे धकेल कर विफल कर दिया था। पर बाद की झड़पों में वह हार गये। किन्तु जैसा कि डेढ़ सौ पचास वर्ष पहले रावल बाछुजी के समय भाटियों ने महमूद गजनवी की सेना के साथ किया था। वैसा ही गौरी की सेना के पिछले व पाशर्व भागों पर बार-बार धावे करके भाटियों ने उन्हें परेशान करके भौतिक हानि पहुँचा कर किया। पिछले व पाशर्व भागों पर छेडछाड से आपूर्ति सेवा से गौरी विचलित हो गए। उनकी सेना फलौदी ओसियाँ राखीचंद (फलौदी का एक गाँव) सांडराव से होती हुए आगे बढ़ी। उन्होंने चालुक्यो के सामंत चौहानों से नाडोल ले लिया। उनकी अग्रसर होती सेना ने किराडू (बाड़मेर) और नाडोल में लूट-पाट करके इन्हें नष्ट कर दिया। शिशु भीमदेव की माता गुजरात की

राजमाता नाईकी देवी ने उन्हें कयाद्रा (कसहदा-आबू के निकट) के पास निर्णायक युद्ध में निश्चित रूप से पराजित कर उन्हें सिंध लौटने लिए बाध्य किया। सन् 1178 ई. में पराजित होकर पीछे लौटती हुई गौरी की सेना की कठिनाइयों और कष्ट उनके अग्रसर होने के समय की परेशानियों से अधिक झेलनी पड़े। बची-कुची जो सेना गजनी पहुँची उसकी स्थिति बड़ी दयनीय थी। सोमनाथ से सिंध लौटती हुई महमूद गजनी की सेना की पहले भी भाटियों ने लगभग ऐसी ही दुर्गति कर डाली थी। इसलिए उन्होंने सैन्य दृष्टि से अपनी सेना के पीछे के और पार्श्व भाग की सुरक्षा के लिए लोद्रवा पर अधिकार करके उसे किसी मित्र को सौंपना उचित समझा। उन्होंने लुद्रवा पर अधिकार करके इसका शासन रावल शालिवाहन के बड़े भाई कालणजी जिन्हें उनके राजगद्दी के अधिकार से उनके पिता रावल जैसल ने वंचित कर दिया था, को देना चाहा परन्तु स्वाभिमानी कालणजी ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। उनकी निष्ठा भाटी जाति के लिए सर्वोपरि थी। तत्कालीन शासक अपने छोटे भाई रावल शालिवाहन के प्रति वह विश्वासघाती कैसे हो सकता था। वह सौभाग्य की प्रतीक्षा करते रहे। दैवयोग से युद्ध में रावल शालिवाहन की मुत्यु हो जाने पर, वह जैसलमेर के शासक बने। इसलिए रावल शालीवाहन के पश्चात उनके बड़े भाई कालणजी सन् 1189 ई. में जैसलमेर की राजगद्दी पर बैठे। इनके समय में गजनी के सुल्तान मोहम्मद गौरी ने उग्रता से उत्तरी भारत के राज्यों का नाश करते हुए दिल्ली और अजमेर के चौहान सम्राटों के लिए संकट खड़ा कर दिया था। सन् 1192 ई. के तराईन के दूसरे युद्ध में उसने सम्राट पृथ्वीराज चौहान के नेतृत्व में राजपूत राजाओं के संगठन को छिन्न-भिन्न कर दिया था।[180]

2.3.3 1178 ई. में गुजरात अभियान के समय सिरोही के कयाद्रा गाँव में मोहम्मद गौरी की भारत में प्रथम

वर्तमान में कसहदा, सिरोही राज्य में स्थित पश्चिम रेलवे के कोवरली स्टेशन से लगभग 4 मील उत्तर में स्थित आधुनिक कायद्रा[181] नामक गाँव है। भारतीय सीमा पर मुल्तान और उच्छ पर मोहम्मद गौरी का आधिपत्य स्थापित होने के बाद वह भारत की ओर आकर्षित हुआ। अब वह 1178 ई. में मुल्तान और उच्छ के रास्ते गुजरात की राजधानी अन्हिलवाडा या नहरवाला के लिए रवाना हुआ।[182] पृथ्वीराज विजय महाकाव्य में वर्णन मिलता है कि इस समय मोहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज चौहान को तटस्थ रखने के लिए उसके पास दूत भेजा था। क्योंकि उसे अनुमान था कि वह चालुक्य शासक की मदद कर सकता है। पृथ्वीराज चौहान चालुक्य की सहायता करना चाहता था। पर अपने मंत्री कदम्बवास के कारण वह ऐसा नहीं कर सका।[183]

मोहम्मद गौरी सेना सहित किराडू होते हुए नाड़ौल पहुँचा व उस पर अधिकार कर लिया।[184] किराडू से प्राप्त कार्तिक सुद्री 13 गुरुवार वि.सं.1235/26 अक्टूम्बर 1178 ई. के शिलालेख में उल्लेख है कि गुजरात के शासक भीमदेव के राज्यकाल में तेजपाल की पत्नी मानस ने तुरुषकों द्वारा नष्ट की गयी मूर्ति की पुन: स्थापना करवायी थी।[185] समकालीन इतिहासकार मिनहाज-ए-सिराज, हसन निजामी व मोहम्मद कासिम फरिश्ता आदि सभी लेखकों ने तत्कालीन गुजरात के शासक का नाम भीमदेव बताया है। [186] [187] किन्तु स्थानीय स्रोतों में चालुक्य शासक मूलराज द्वितीय का नाम मिलता है। अशोक कुमार, मजूमदार के अनुसार बाल मूलराज ने सं.1235/ 1178 ई.तक शासन किया था। उसी वर्ष भीमदेव सिंहासनारूढ़ हुआ। प्रोफ़ेसर हब्बीबुल्ला के अनुसार 1178 ई. में मोहम्मद गौरी का अभियान गुजरात चालुक्य राज्य के विरूद्ध हुआ। वह एक धन सम्पदा से सम्पन्न राज्य था। जहाँ से भारत के भीतरी भाग में प्रवेश करने का सरल मार्ग था। पश्चिम राजपूताना पर उसका वास्तविक अधिकार था। इस प्रकार गुजरात राज्य गजनियों पंजाब का गजनी राज्य के पार्श्व से निकलकर हिंदुस्तान में प्रवेश करने के उसके मार्ग में बाधक था। गुजरात में उस समय मूलराज द्वितीय शासन कर रहा था व अन्हिलवाडा उसकी राजधानी थी।[188] मोहम्मद गौरी मुल्तान, उच्छ और पश्चिमी राजपूताना में होकर जब आबू पर्वत की तलहटी के पास पहुँचा, तो वहाँ कयार्दा के पास मूलराज द्वितीय की सेना से उसका युद्ध हुआ। 1025 ई. में महमूद गजनवी द्वारा मिली अपमानजनक पराजय का बदला लेने के लिए मूलराज द्वितीय ने मोहम्मद गौरी का आबू के निकट कर्याद्रा में सामना किया। हसन निजामी ने लिखा है सुल्तान आबू पर्वत के पास घायल हुआ।[189] वि.सं.1319 के सुंधा पहाड़ी अभिलेख के 36वें श्लोक में जालौर के शासक कृतिपाल, नाडोल के शासक केल्हण, आबू के परमार शासक धारावर्ष ने भी भाग लिया था। धारावर्ष ने मूलराज की सहायता करके अपने राज्य को मुस्लिम आक्रमण से बचाने का प्रयास किया था।[190] मिनहाज-ए-सिराज ने तबकाते नासिरी में वर्णन किया है कि गुजरात के राय (राजा) के पास एक हाथियों से सुसज्जित शक्तिशाली सेना थी। गजनी सुल्तान इस स्थल को बिना विजित किये ही वापस लौट गया।[191] यदि "प्रबंध चिंतामणि" का कथन सही माना जाय तो कहा जा सकता है कि हिन्दुओं की सेना का नेतृत्व गुजरात के शासक बाल मूलराज द्वितीय की माता नाइकी देवी ने किया था। उसी के नेतृत्व में हिन्दुओ की सेना ने मुस्लिम सेना को पूर्णतया पराजित करके महमूद के हाथों हुई पराजय का बदला चुका लिया।[192]

मोहम्मद गौरी का हि.574/1178 ई. का गुजरात अभियान पूरी असफल रहा। यदि यह अभियान आबू के स्थान पर अन्हिलवाडा या सोमनाथ के आसपास होता तो उसके लिए गजनी वापस लौटना मुश्किल हो जाता।

गुजरात अभियान की असफलता के बाद मोहम्मद गौरी ने अब अपना ध्यान सीमावर्ती क्षेत्रों पर लगाया। 1179-80 ई. में पेशावर, 1182 ई. में देवल के समुद्ध तट तक का भाग, इस समय देवल पर सुमरावंश[193] के शासकों का अधिकार था। 1185-86 ई. अंतिम गजनी सुल्तान खुसरो मलिक से सियालकोट तत्पश्चात 1186 ई. में लाहौर छीन लिया।[194] उसने मुल्तान के गवर्नर सिपहसालार अलिकरम खाँ को लाहौर[195] में नियुक्त कर दिया। इस प्रकार 1187 ई. तक मोहम्मद गौरी सम्पूर्ण प्राचीन गजनवी साम्राज्य का एक मात्र अधिपति बन गया। उस जैसे साम्राज्यवादी एवं महत्वाकांक्षी शासक के अधीन पंजाब के भू-भाग के आते ही सीमावर्ती हिंदू शासकों से उसका संघर्ष अनिवार्य हो गया। इस प्रकार उत्तरवर्ती शासकों के समय शिथिल हुआ आक्रमण पुनः एक नये जोश के साथ नये सिरे से प्रारम्भ हो गया।

2.3.4 मोहम्मद गौरी व पृथ्वीराज तृतीय :-

मोहम्मद गौरी 1173 ई. में गजनी का सूबेदार बना। पश्चिमी भारत में स्थित मुल्तान व उच्छ पर 1175 ई. में उसका अधिकार हो गया। 1178 ई. में उसने गुजरात के चालुक्य नरेश भीमदेव द्वितीय के राज्य पर आक्रमण किया। जिसमे मोहम्मद गौरी की सिरोही के कयाद्रा नामक स्थान पर बुरी तरह बुरी तरह पराजय हुई। वह गजनी वापस लौट गया। पृथ्वीराज चौहान ने इस समय गुजरात की कोई मदद नहीं की। पृथ्वीराज विजय महाकाव्य में उल्लेख मिलता है कि इस समय मोहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज चौहान को तटस्थ रखने के लिए उसके पास दूत भेजा था। क्योंकि उसे अनुमान था कि वह चालुक्य शासक की मदद कर सकता है। पृथ्वीराज चौहान चालुक्य की सहायता करना चाहता था, पर अपने मंत्री कदम्बवास के कारण वह ऐसा नहीं कर सका।[196] यह उसकी एक बड़ी भूल थी। उसको भी अहसास हो गया कि भारतीय राजाओं को पराजित करना इतना आसान नहीं है। 1181 ई. में उसने सियालकोट के दुर्ग पर व 1186 ई. में खुसरू मलिक को परास्त कर लाहौर पर अधिकार कर लिया। अब उसने यहाँ पर दुर्गो का निर्माण करवाकर कर भारतीय सीमा पर अपनी स्थिति मजबूत कर ली। उसकी व पृथ्वीराज तृतीय के राज्य की सीमा स्पर्श करने लगी।[197] [198]

पृथ्वीराज तृतीय जो इस समय अपने दिग्विजय की योजना को साकार रूप दे चुका था। एक वृहत राज्य का स्वामी था। उसका राज्य सतलज नदी से बेतवा नदी तक व हिमालय के नीचे के भागों से लेकर आबू तक फैला हुआ था।[199] इस विशाल राज्य सीमा की सुरक्षा करना उसका उत्तरदायित्व हो चुका था। जिससे उसका सीधा सर्म्पक तुर्की राज्य सीमा से होना स्वाभाविक था। चौहान और तुर्क एक प्रकार से निकट के पड़ोसी और शत्रु निर्धारित हो चुके थे। ऐसी स्थिति में यदि चौहान अपनी शक्ति को सुरक्षित बनाये रखना चाहते थे। तो उन्हें तुर्को को उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रदेशों से बाहर निकाल देना आवश्यक था। और यदि मोहम्मद गौरी तुर्की सल्तनत का विस्तार करना चाहता था तो उसके लिए दिल्ली और अजमेर लेना आवश्यक था जो भारतीय सत्ता के प्रमुख केन्द्र थे।

2.3.5 पृथ्वीराज तृतीय व मोहम्मद गौरी के 1178-1190 ई. के मध्य छेड़छाड़:-

इस प्रकार की राजनीतिक स्थिति ने 1178 से 1190 ई. के बीच चौहान-तुर्क छेडछाड को जन्म दिया। इन्हीं सीमांत छेड़छाड़ की घटनाओं को पृथ्वीराज रासो ने चौहानों और तुर्को के बीच 21 बार मुठभेड़ होना लिखा है जिसमे चौहानों को विजेता होना बताया है। हम्मीर महाकाव्य पृथ्वीराज का गौरी को सात बार पराजित होना लिखा है। पृथ्वीराज प्रबंध में आठ बार हिंदू-मुस्लिम संघर्ष के होने का जिक्र करता है। प्रबंध कोष का लेखक बीस बार गौरी का पृथ्वीराज द्वारा कैद के मुक्त करना बताता है। सुर्जन चरित्र में 21 बार और प्रबंघ चिंतामणि[200] में 23 बार गौरी का हारना अंकित है। उपयुर्क्त गैर-मुस्लिम स्रोतों में वर्णित पृथ्वीराज द्वारा मोहम्मद गौरी को बार-बार बंदी बनाकर छोड़ने का जो वर्णन है। वह काल्पनिक एवं अतिशयोक्तिपूर्ण हो सकता है। मुस्लिम इतिहासकारों ने मोहम्मद गौरी की तबरहिन्द विजय से पूर्व किसी अभियान का वर्णन नहीं किया। लेकिन गैर-मुस्लिम स्रोतों से पता चलता है कि पंजाब अधिकृत करने के उपरांत ही उसका हिन्दू शासको से संघर्ष प्रारम्भ हो गया था। सम्भवतः इसी कारण मुस्लिम लेखकों ने इसका उल्लेख नहीं किया। इन वर्णनों का अर्थमात्र मुस्लिम सेनापतियों के प्रारम्भिक धावों की असफलता ही मानी जा सकती है।

2.3.6 मोहम्मद गौरी का तबरहिन्द या भंठिडा दुर्ग पर अधिकार:-

छोटे-छोटे अभियानों के उपरांत मोहम्मद गौरी आगे बढ़ा। मोहम्मद गौरी ने 1191 ई. में तबरहिंद[201] के दुर्ग पर आक्रमण किया। कहीं-कहीं पर इसे सरहिंद भी लिखा गया है। फरिश्ता ने इसे वितुंडा लिखा है। आधुनिक

लेखक एच.जी. रेवर्ती, वुल्जले हेग, ए. बी. एम. हबीबुला, के. ए. निजामी, कनिघम ने भटिंडा लिखा है। जबकि दशरथ शर्मा ने इसकी पहचान सरहिंद से की है। किसी भी मुस्लिम सेना ने तबरहिन्द (सरहिंद) में वहाँ की रक्षक सेनाओं के प्रतिरोध का वर्णन नहीं किया। अत: यह कहना मुश्किल है कि किस प्रकार सरहिंद जैसे सुदृढ़ किले पर तुर्कों की हुई। सम्भवतः रक्षक सेना की कमी ही इस विजय का कारण रही होगी। मोहम्मद गौरी ने दुर्ग पर अधिकार करने बाद उसे जियाउद्दीन तुलाकी को सौंप दिया, पर तुलाकी ने अपनी सुरक्षार्थ सुल्तान से घुड़सवारों की माँग की। तब सुल्तान उसकी प्रार्थना को पूर्ण कर गजनी लौट गया। वह आठ महीने तक इसे अपने अधिकार में रख पाया। इससे प्रतीत होता है कि मोहम्मद गौरी को अपनी विजय पर संदेह था। वह गजनी से पुनः नई तैयारी के साथ प्रस्थान करना चाहता था, परन्तु अजमेर के चौहान शासक पृथ्वीराज तृतीय रायपिथौरों मुस्लिम लेखक पृथ्वीराज तृतीय को सामान्यता रायपिथौरों अथवा कोलाराय लिखते है। उसके मनोभावों को पूर्ण नहीं होने दिया। ज्योही उसको अपनी सीमावर्ती प्रदेश पर मुस्लिम विजय का समाचार मिला। उसने तुरंत दिल्ली के तोमर शासक चाहडपाल[202] या गोविन्दराज सहित एक बड़ी सेना के साथ अपने खोये हुए प्रदेशों पर अधिकार करने के लिए भेजा।[203]

दिल्ली के तोमर शासक का नाम इतिहासकार अलग-अलग बताते है। तबकात-ए-नासिरी[204] में गोविन्द कंद खान्द खाँ दी निजामुद्दीन अहमद ने खाँ दीराय, बदायूँनी ने खन्दीराय जबकि फरिश्ता ने इसे चावुंडाराय[205] लिखा है। जबकि एसामी ने इसे गोविन्दराय ही लिखा है। हरिहर निवास द्विवेदी इसे दिल्ली का तोमर शासक चाहडपाल 1189-1192 ई. बताते है।[206] अलाउद्दीन खिलजी के समकालीन ठक्कुरफेरु ने अपनी पुस्तक में विभिन्न शासकों की मुद्राओं का उल्लेख करते हुए दिल्ली के तोमर शासकों की मुद्राओं उल्लेख किया है। जिसमे चाहडपलाहे (चाहडपल) के सिक्कों का उल्लेख है। अत: अंतिम तोमर शासक चाहडपाल को हम उस समय दिल्ली का शासक मान सकते है। संभवतः इसी को मुस्लिम लेखकों ने अलग-अलग नामों से पुकारा है। मोहम्मद गौरी को वापस आना पड़ा और दोनों सेनाओं का तराईन नामक स्थान पर संघर्ष हुआ।

2.3.7 तराईन नामक स्थान की पहचान :-

यह तराईन नामक स्थल कहाँ स्थित है। इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। डॉ. ए.एल.श्रीवास्तव ने इसे भंटिडा के पास बताया है।[207] एच.जी.रैवटी ने तराईन के स्थान पर कहीं-कहीं नरायन भी लिखा है, परन्तु यह मात्र नुक्ते या बिंदु के हेर-फेर से है[208] कनिघम ने तराईन की पहचान भटिंडा और सिरसा के मध्य भटिंडा से 27 मील और सिरसा 20 मील दूर स्थित तोरवाना नामक गाँव से किया है। इसी मत को हबीबुल्ला, खलिक अहमद

निजामी आदि इतिहासकारों ने स्वीकार किया है। इसके विपरीत दशरथ शर्मा ने करनाल जिले में स्थित तरावरी तथा डी. सी. गांगुली ने थानेश्वर से 14 मील तथा दिल्ली से 80 मील दूर स्थित तराईन से इसकी पहचान करते है।[209]

2.3.8 तराईन का प्रथम युद्ध 1191 ई.:- चौहानों की विजय

मिनहाज के अनुसार राजपूताना के सभी राणा पृथ्वीराज के साथ थे। फरिश्ता के अनुसार उसकी सेना की संख्या 2 लाख घुड़सवार और 30 हजार हाथी थे।[210] उपयुर्क्त मुस्लिम लेखकों के वर्णन में अतिशयोक्ति हो सकती है क्योंकि राजपूताना के समस्त रायों व राणाओं का 30 हजार हाथियों सहित रणस्थल में पहुँचना असम्भव सा लगता है।[211] गोपीनाथ शर्मा ने भी लिखा है कि जम्मू के राजा का एक शिष्टमंडल मोहम्मद गौरी से मिला था।[212] [213]

युद्ध के प्रथम चक्र में ही मुस्लिम सेना की बाँई और दाँई कतार टूट गयी। इसमें इतनी अव्यवस्था फेल गयी कि वह एक परिधि में आ गये। केन्द्र में सुल्तान ने जब अपनी सेना की अव्यवस्था देखी तो वह अपनी सेना को प्रोत्साहित करने के लिय जब पृथ्वीराज की सेना की तरफ बढ़ा। यह देख कर दिल्ली का शासक चाहडपाल जो सम्भवतः सेना के अग्रभाग का नेतृत्व कर रहा था, ने अपने हाथी को मोहम्मद गौरी की ओर किया और दोनों सेनानायकों में संघर्ष प्रारम्भ हुआ। मोहम्मद गौरी ने हाथी पर सवार गोविन्द पर भाले से प्रहार किया। जिससे उसके सामने के दो दांत टूट गये। तभी उसने भी अपने भाले से सुल्तान के कंधे पर वार किया। फलस्वरूप सुल्तान इतनी बुरी तरह से घायल हो गया कि अपने घोड़े पर भी बैठने में असमर्थ हो गया। वह घोड़े से गिरने वाला ही था कि उसकी सेना के एक खिलजी सैनिक ने उसे पहचान लिया और युद्ध स्थल से बाहर ले गया। मुस्लिम सेना पराजित होकर भागने लगी। फरिश्ता का कथन है कि राजपूतों ने उसका 40 मील तक पीछा किया परन्तु यह उनका दुर्भाग्य था कि भारत में भावी मुस्लिम साम्राज्य का निर्माता घायल और पराजित अवस्था में भी उनकी पहुँच से भी दूर हो गया। मिनहाज का कहना है कि राजपूत सेना के द्वारा पीछा किये जाने से दूर पहुँचने पर अनेक गौर सैनिक सुल्तान के पास आ गये। उन्होंने अपने भालों को तोड़ कर पालकी बनाई। उस पर सुल्तान को गजनी ले गये। यहिया के अनुसार सुल्तान गजनी चला गया। जबकि फरिश्ता कहता है कि मोहम्मद गौरी लाहौर में घाव ठीक होने तक रुका, तत्पश्चात गौर गया। गोपीनाथ शर्मा के अनुसार युद्ध में पराजित व घायल मोहम्मद गौरी जब जम्मू से गुजर रहा था तो वहाँ के राजा का एक शिष्टमंडल उससे मिला था जिससे उसे आपत्तिकाल में बड़ी सान्त्वना मिली।[214] [215]

विजय की मद में राजपूत सेना तराईन से आगे बड़ी और तबरहिन्द के किले का घेरा डाल दिया। गोपीनाथ शर्मा के अनुसार पृथ्वीराज ने जियाउद्दीन तुलाकी से किला छिन्न लिया। तुलाकी को बंदी बनाकर अजमेर लाया गया। जहाँ उससे विपुल धन लेकर उसे छोड़ दिया गया। जबकि मिनहाज के वर्णन से पता चलता है कि जियाउद्दीन तुलाकी ने 13 महीनों तक राजपूतों का सामना किया। तत्पश्चात राजपूतों ने उस किले पर अपना अधिकार जमा लिया। इस प्रकार चौहानों ने अपने प्रदेशों पर अधिकार कर महमूद गजनवी द्वारा स्थापित सीमा रेखा को पुन: जीवित कर दिया।[216]

निष्कर्ष:-

प्रथम तराईन का युद्ध तुर्कों की पराजय की एक महान घटना है परन्तु जैसा की मिनहाज लिखता है कि शीघ्र ही मैदान से भागी हुई तुर्की सेना आगे जाकर फिर एक हो गयी। वे सकुशल गजनी पहुँच गयी। वैसे तो तुर्कों के विरुद्ध लडे गये युद्धों में तराईन का प्रथम युद्ध हिन्दू विजय का एक गौरवपूर्ण अध्याय है। परन्तु इस युद्ध में की गयी भूल भारतीय भ्रम का एक कलंकित पृष्ट भी है। पृथ्वीराज ने कभी भी यह प्रयत्न नहीं किया कि इस विजय को स्थायी विजय बनाया जाये। विजय के आनदं से मग्न होकर उसने पराजित सैनिकों का जो अस्त-व्यस्त अवस्था में थे, का पीछा नहीं किया। कुछ लोग इसको पृथ्वीराज की उदारता मानते है, परन्तु दशरथ शर्मा इसको पृथ्वीराज का शैथिल्य मानते हुए लिखते है कि वैसे उदारता का प्रतिपादन हिन्दू शास्त्रों में मिलता है। परन्तु ऐसी उदारता ना तो सैनिक नियमों से है न मुस्लिम युद्ध-प्रणाली से। यह वास्तव में उसकी भारी भूल मानी जानी चाहिए। इसके विपरीत संयोगिता के अपहरण और कन्नौज के पददलित करने में लग कर उसने एक बहुत बड़ा शत्रु अपने विरुद्ध उत्पन कर लिया। अन्यथा सम्भवतः मोहम्मद गौरी के दूसरे आक्रमण के समय कन्नौज की सहायता बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती थी। इतना ही नहीं संयोगिता से विवाह करने के बाद पृथ्वीराज का जीवन पतनोमुन्ख दिखाई देता है। उसने विलासी और प्रमादी होकर राजकीय और सैनिक कार्यो की उपेक्षा की। जिससे वह विशाल राज्य को भलीभाँति ना संभाल सका। यहाँ तक कि पराजित शत्रु अपनी पराजय का बदला लेने की पूरी तैयारी कर रहा था। वहाँ पृथ्वीराज अपने उत्तर–पशिचमी सीमांत भागों की सुरक्षा का कोई प्रबंध न सोच सका। उसने शत्रु को परस्त कर दिया, परन्तु उसे नष्ट करने पर कोई ध्यान न दिया।[217]

आधुनिक लेखकों ने हिन्दुशास्त्र और राजपूती शान के अनुसार मुस्लिम सेना का पीछा करके उसे नष्ट न करने के आरोप पृथ्वीराज चौहान पर लगाया है। समकालीन परिस्थियों में यह आरोप निराधार प्रतीत होता है।

जबकि फरिश्ता स्पष्ट लिखता है कि मोहम्मद गौरी का चौहान सैनिकों ने 40 मील तक पीछा किया गया । मिनहाज के अनुसार भी मुस्लिम सेना राजपूतों द्वारा पीछा किये जाने से परे आने पर सुल्तान के पास पहुँची ।[218] उपयुक्त इतिहासकारों के मतों स्पष्ट होता है कि मुस्लिम सेना का कई मील तक राजपूत सैनिकों द्वारा पीछा किया था। यहाँ पर यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि मुस्लिम घुड़सवार अपने द्रुतगति वाले घोड़े पर जिन्हें उत्तरी भारत की विजय का श्रेय दिया जाता है। तीव्र गीत से पंजाब की और भागे होंगे जिसका उन्हें की तीव्र गति से पीछा करती राजपूतों सैनिकों की वश की बात नहीं थी। दूसरे तराईन से 27 मील की दूरी पर स्थित तबरहिन्द का किला अभी मुसलमानों के हाथ में था। जिसे बिना हस्तगत किये आगे बढना सामरिक भूल होती। हुमायूँ के चुनार किले की भाँति यह चौहानों का दुर्भाग्य था कि तबरहिन्द लेने में उन्हें 13 महीने लग गये थे। उसके पश्चात वे इस स्थिति में नहीं रहे होगें कि आगे बढ़कर पंजाब पर हमला करते। चौहान नरेश ने भी अपने राज्य हित में अपने राज्य की गहड़वालों एवं चंदेलों के हाथ असुरक्षित छोड़कर सुदूर पंजाब पर आक्रमण करना उचित नहीं समझा होगा। यद्यपि राष्ट्रीयता की दृष्टी से आक्रमण करना उचित था, किन्तु जिस काल में राज्यहित ही सर्वोत्तम था। गाहडवाल और चंदेल राज्य को छोड़कर चौहान हित हेतु आगे जाना मूर्खता ही होती।[219]

2.3.9 तराईन का द्वितीय युद्ध (1192 ई.) : चौहानों की पराजय:-

कायन्द्रा और तराईन की प्रथम पराजय से मोहम्मद गौरी ने हार नहीं मानी। गजनी के इस साहसी सुल्तान के सिर पर भारत में मुस्लिम साम्राज्य के संस्थापक का सेहरा बंधना लिखा था। गजनी पहुँच कर उसने उन सैनिक अधिकारियों को जो अनुशासित नहीं थे। सार्वजनिक रूप से दंडित किया। उसने शीघ्र ही नये ढंग से युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। इस सम्बंध में वह इतना अधिक व्यग्र था कि उसके लिए आराम-हराम हो गया। वह अपनी पराजय का प्रतिशोध लेने की तैयारियों में लग गया।

उसे कुछ हिन्दू सीमावर्ती लोंगों ने भी सहायता का आश्वासन् दिया था। दूसरे मोर्चो के सम्बंध में उसने जयचंद से भी बातचीत का सिलसिला स्थापित कर रखा था। जम्मू के राजा विजयी देव ने अपने पुत्र नरसिंह को अपनी सेना सहित मोहम्मद गौरी की सहायतार्थ भेजा।[220] कैमास आख्यान से भी उक्त तथ्य की पुष्टि होती है। हम्मीर महाकाव्य से पता चलता है कि उसे घटैक देश के राजा की सहायता प्राप्त हुई थी। हरिहर निवास द्विवदी के अनुसार घटैक देश जम्मू के लिय प्रयुक्त हुआ है। गोपीनाथ शर्मा ने भी लिखा है कि जम्मू के राजा का एक शिष्टमंडल मोहम्मद गौरी से मिला था।[221] [222] पृथ्वीराज चौहान का मंत्री सोमेश्वर जो युद्ध के पक्ष में नहीं था। पृथ्वीराज द्वारा दंडित किया गया। अतएव वह शत्रु से मिल गया था।[223]

उसने अपनी सेना में तुर्क ताजिक अफगानों को सम्मिलित किया। उन्हें शस्त्रों से सुसज्जित किया। याहिया और बदायुनीं ने मोहम्मद गौरी की सेना की संख्या मात्र 40 हजार घुड़सवार तथा एसामी ने एक लाख 30 हजार लिखी है। जी. एस. रैवटी के अनुसार जबकि उसकी सेना में 1 लाख 20 हजार घुड़सवार हो गये। तब उसने भारत पर आक्रमण करने का प्रयास किया। फरिश्ता के अनुसार राजपूत सेना में 3 लाख घुड़सवार 3 हजार हाथी और पैदल सेना थी। उसके साथ 150 राजपूत राजा थे, किन्तु फरिश्ता के कथन में अतिश्योक्ति का अंश है। विरुद्ध-विधि-विघ्वंश से पता चलता है। कि इसी समय पृथ्वीराज चौहान का संधि-विग्रहिक स्कन्द किसी अन्य युद्ध में गया था। अत: कहा जा सकता है कि यद्यपि पृथ्वीराज चौहान के पास बड़ी सेना रही होगी किन्तु अन्य युद्ध में सेना का कुछ भाग चले जाने से उसकी सेना की संख्या प्रथम तराईन युद्ध से कम रही होगी।[224]

मोहम्मद गौरी 1192 ई. लाहौर और मुल्तान के मार्ग से फिर उसी मैदान में आ गया। जहाँ उसे एक वर्ष पूर्व करारी हार मिली थी। मोहम्मद गौरी ने अपने एक सरदार किवामुलमुल्क रूहुद्दीन हमजा को अजमेर के चौहान नरेश पृथ्वीराज के पास अधीनता एवं इस्लाम स्वीकार करने के लिए भेजा। परन्तु चौहान नरेश ने उत्तर देते हुए रणस्थल में मिलने को कहा। वह भी एक बड़ी सेना एकत्रित करके शत्रु का मुकाबला करने के लिए तराईन के मैदान में आकर जम गया। दिल्ली का तोमर शासक गोविन्दराय इस बार भी उसके साथ था।[225]

2.3.10 तराईन के द्वितीय युद्ध के सम्बंध में विभिन्न इतिहासकारों के मतों का विवेचनात्मक विवरण

मिनहाज के अनुसार मोहम्मद गौरी ने इस युद्ध के लिए बड़ी सावधानीपूर्वक योजना बनाई थी। उसकी योजना में सर्वप्रथम अपने घुड़सवारों द्वारा दूर से तीर बरसा कर शत्रु को थका देने तत्पश्चात अपने सुरक्षित सैनिकों द्वारा उन्हें अंतिम रूप से विनष्ट करने की थी। एसामी के अनुसार युद्ध के दोनों पक्षों ने बड़ी ही ठोस व्यूह रचना की थी। दोनों दलों ने प्रारम्भ से ही आमने-सामने युद्ध किया। जिसमे राजपूतों की पराजय हुई। इसके विपरीत फरिश्ता का कथन है कि मोहम्मद गौरी ने प्रारम्भ से ही हिन्दुओं को धोखे में रखा। उन पर अचानक आक्रमण कर अपनी सफल व्यूह रचना से उन्हें पराजित कर दिया। मोहम्मद गौरी शत्रु पर छल से विजय प्राप्त करना चाहता था। इसलिए उसने दोबारा दूत भेज कर यह आश्वासन् दिलवाया कि वह युद्ध की अपेक्षा संधि करना अच्छा मानता है और इसी सम्बंध में उसने एक दूत अपने भाई के पास भी भेजा है और कहा कि ज्योंही उसे गजनी से आदेश प्राप्त हो जायेगा, वह स्वदेश लौट जायेगा। संधि के सम्बंध उसने बताया कि वह पंजाब मुल्तान और सरहिंद को लेकर वह संतुष्ट रहेगा।[226] [227] [228]

फरिश्ता का कहना है हिन्दुओं ने मोहम्मद गौरी को लिखा कि वे हिन्दुओं की वीरता और साहस से परिचित है। इस समय हमारी संख्या भी अधिक है जो प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। इन परिस्थिति में उनके लिए उचित होगा कि वे चुपचाप वापस लौट जायें और वापस लौटती हुई मुस्लिम सेना को वे तंग नहीं करेगें। यदि मुसलमान लोग ऐसा नहीं करके युद्ध करने का निर्णय करेगें तो हम उन्हें नष्ट कर देंगे। सुल्तान ने बड़ी ही चालाकी से उनके प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा की मैं तो अपने बड़े भाई की आज्ञा से यहाँ आया हूँ। मैं युद्ध में रूचि नहीं रखता हूँ यदि वह समय दे तो मै अपने भाई से इस बारे में सलाह ले लूँ। इस पत्र को पाकर हिन्दुओं ने समझा कि मुस्लिम सेना में भय है और वे रात भर मौज मस्ती लेते रहे। दूसरी तरफ मोहम्मद गौरी ने रात भर युद्ध की योजना बनायी और नदी पार कर राजपूत सेना के पास आ गया। सूर्योदय से पूर्व ही उन पर आक्रमण कर उन्हें पराजित कर दिया।[229]

खलिक अहमद निजामी फरिश्ता द्वारा वर्णित हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच पत्र-व्यवहार[230] व सुल्तान द्वारा हिन्दुओं को धोखे में रखे जाने की घटना को अस्वीकार करते हुए कहते है कि राजपूत इतने मुर्ख नहीं थे कि जब दोनों की सेना आमने-सामने पड़ी थी। तब वह ऐसा प्रस्ताव स्वीकार करते।[231]

इस संधिवार्ता ने पृथ्वीराज चौहान को भ्रमित कर दिया। वह थोड़ी सी सेना के साथ तराईन के मैदान में था। शेष सेना जो स्कन्द के साथ थी। वह तराईन के मैदान में ना आ सकी। उसका दूसरा सेना सेनाध्यक्ष उदयराज उस समय राजधानी से रवाना ना हो सका। उसका मंत्री सोमेश्वर जो युद्ध के पक्ष में न था। पृथ्वीराज द्वारा दंडित किया गया। अतएव वह शत्रु से मिल गया। जो सेना सीमांत प्रदेशों पर थी उन्हें तराईन में आने का संदेश भेजा गया। पृथ्वीराज की जो सेना तराईन के मैदान में थी। वे संधिवार्ता के भ्रम के कारण बेफ्रिक थी। मुस्लिम स्रोत जामी-उल-हिकायत के अनुसार मोहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज को अधिक भ्रम में रखने के लिए अपने शिविर में लकडियाँ एकत्रित कर जलवायी। ताकि वह समझे की मुस्लिम सेना अपने शिविर में पड़ी है, और दूसरी और वह अपने कुछ सैनिको को शिविर में छोड़कर मुख्य सेना के साथ पलायन करता हुआ। हिन्दू शिविर के पीछे पहुँच कर प्रातःकाल में ही आक्रमण कर दिया। गैर-मुस्लिम स्रोतों के अनुसार जब पृथ्वीराज चौहान सोया हुआ था। उसी समय मोहम्मद गौरी ने उसके शिविर पर आक्रमण कर दिया।[232] ज्योंही प्रभात हुआ राजपूत सैनिक शौचादि कार्यो से निवृत होने बिखरे हुए थे। तभी अचानक तुर्कों ने उन पर आक्रमण कर दिया। वास्तव में यह कोई नियमत युद्ध न रहा चारों और भगदड़ मच गई।[233]

यदि मुस्लिम और गैर-मुस्लिम स्रोतों पर विचार किया जाए तो कहा जा सकता है कि प्रारम्भ दोनों सेनाएं व्यूह रचना करके आमने सामने पड़ी रही होंगी। एक दिन मुस्लिम सेना ने अचानक सूर्योदय पूर्व ही जब हिन्दू लोग अपने दैनिक जीवन की क्रियाओं से निर्वृत हो रहे होंगे। उन पर आक्रमण कर दिया होगा। चूँकि जब हिन्दू सेना जब काफी दूर फैली रही होंगी। अत: उन्हें किसी प्रकार तैयार होने का समय नहीं मिला होगा। इस प्रकार हिन्दूओं ने भूखे पेट मुसलमानों का आक्रमण झेला होगा। यह युद्ध कम से कम दोहपर तक अवश्य चला होगा। तत्पश्चात हिन्दू सेना के थक जाने पर मोहम्मद गौरी ने अपनी सुरक्षित सेना द्वारा उन पर निर्णायक आक्रमण किया। भूखे और थके हिन्दुओं के लिए ये आक्रमण असहनीय रहा होगा। वे अस्त-व्यस्त हो गये होंगे।[234] लगभग एक लाख हिन्दुओं के साथ दिल्ली का तोमर शासक गोविन्दराय रणस्थल में ही शहीद[235] हो गया। मिनहाज के अनुसार पृथ्वीराज जो हाथी पर चढ़ कर युद्ध लड़ने चला था। अपने घोड़े पर बैठकर मैदान में लड़ता रहा। अपनी पराजय को देखते हुए। युद्ध स्थल से बाहर निकल गया और भागता हुआ वीर सिरसा के पास पकड़ा गया और मार दिया गया।[236]

युद्ध के परिणामस्वरूप मोहम्मद गौरी को हिन्दुस्तान में प्रथम और सर्वोधिक महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त मिली। इस युद्ध के परिणामस्वरूप उत्तरी भारत में प्रभुसत्ता हेतु मुख्यता हिन्दू और मुसलमानों में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। तराईन के द्वितीय युद्ध में विजय के परिणामस्वरूप मोहम्मद गौरी का अजमेर, हांसी, सरसुती, समाना, कोहराम, दिल्ली आदि क्षेत्रों[237] पर तुर्कों का अधिकार स्थापित हो गया। पृथ्वीराज चौहान को बंदी बनाकर मोहम्मद गौरी अजमेर ले गया। जहाँ उसे बड़ी मात्रा में धन सम्पति प्राप्त हुई प्रतीत होती है कि पृथ्वीराज ने मोहम्मद गौरी के अधीनता स्वीकार कर ली। फलस्वरूप उसे पुनः अजमेर का शासक[238] नियुक्त कर दिया गया। कुछ समय पश्चात उसे षडयंत्र में लिप्त पाया गया। अत: उसे मार कर उसके पुत्र गोविन्द को अधीनस्थ शासक बनाया गया।

2.3.11 पृथ्वीराज चौहान तृतीय के अंत के बारे में विभिन्न इतिहासकारों के कथन:

पृथ्वीराज चौहान के अन्त के बारे में मुस्लिम स्रोतों और गैर-मुस्लिम स्रोतों में विभिन्न प्रकार के वर्णन प्राप्त होते है। **पृथ्वीराज रासों**[239] में पृथ्वीराज का अन्त गजनी में दिखाया गया है। उसके अनुसार मोहम्मद गौरी पृथ्वीराज चौहान को कैद करके गजनी ले जाता है। वहाँ उसे कैद में डाल दिया जाता। जहाँ उसका दरबारी कवि चन्द्रबरदाई (पृथ्वीभट्ट) भी पहुँच जाता है। जहाँ उससे नेत्रहीन कर शब्द भेदी बाण चलाने की परीक्षा ली जाती है और उसमे मोहम्मद गौरी उसके बाण का शिकार बनता है। इस अवसर पर चंदबर दाई के द्वारा अपने स्वामी

को कविता के माध्यम से लक्ष्य बोध कराया जाता है। इस घटना के बाद दोनों आत्महत्या कर लेते है। रासों की यह कथा मान्यता प्राप्त नहीं है क्योंकि किसी भी दूसरे साधन से इसका अनुमोदन नहीं होता है सिर्फ अबुल फजल लिखता है कि पृथ्वीराज को मोहम्मद गौरी गजनी ले गया जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी। अत: इस पर ऐतिहासिक दृष्टि से विश्वास नहीं किया जा सकता।

पृथ्वीराज प्रबंध के लेखक के अनुसार मोहम्मद गौरी की तराईन में विजय के उपरांत पृथ्वीराज को अजमेर ले जाया गया। वहाँ उसे एक महल में बंदी के रूप में रखा गया। इसी महल के सामने मोहम्मद गौरी अपना दरबार लगता था। जिसको देखकर पृथ्वीराज चौहान बड़ा दुखी होता था। एक दिन उसने मंत्री प्रतापसिंह से धनुष बाण लेने को कहा जिससे की वह मोहम्मद गौरी का अन्त कर सके। प्रतापसिंह ने धनुष बाण तो लाकर दे दिए लेकिन इसकी सूचना मोहम्मद गौरी को दे दी। पृथ्वीराज की परीक्षा लेने के लिए मोहम्मद गौरी की मूर्ति एक स्थान पर रख दी गयी। जिसको पृथ्वीराज ने अपने बाण से तोड़ दिया। अन्त में गौरी ने पृथ्वीराज को गड्ढे में फिकवा दिया गया। जहाँ पत्थरों की चोटों से पृथ्वीराज चौहान की मृत्यु हो गयी। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि पराजय के बाद पृथ्वीराज को अजमेर ले जाया गया। जहाँ उस बंदी बना कर रखा गया। उसके द्वारा षडयंत्र करने के कारण पृथ्वीराज का अन्त कर दिया गया। ताजुल मासिर और प्रबंध चिंतामणि में भी पृथ्वीराज प्रबंध से मिलता जुलता विवरण मिलता है।

घाघरि नदी तीरी सुनीउ साहावदीन सुरताणइ युधि।।203।।

हम्मीर महाकाव्य में पृथ्वीराज को कैद करना और उसको गौरी द्वारा मरवा देने का उल्लेख है।[240]

गतेन्यसंगरे स्कंदे निद्राव्सनन्धी:

व्यापादीतस्तुरर्ष्के: स राजाजीवन्म्रतो युधि ।।23।।

पद्मनाभ कृत कान्हडदे प्रबंध में पृथ्वीराज का बंदी बनाया जाना तत्पश्चात मारे जाने का उल्लेख है।[241]

विरूद्ध विधि विघ्वंश के अनुसार पृथ्वीराज चौहान युद्ध करते हुए मारा गया था। डॉ. अशोक सिंह ने हिस्ट्री ऑफ़ द चौहान में इसी तरह का विवरण दिया है।[242]

इन विभिन्न स्रोतों में अधिकांश वे है जो समसामयिक नहीं है और कहीं को मान्यता प्राप्त नहीं है। अधिकांश काफी बाद के है, उनको अक्षरशः मानने पर हम किसी सही परिणाम पर नहीं पहुँच पाते है। निजामी समकालीन लेखक है, लेकिन वे पृथ्वीराज की मृत्यु के बारे में पूरी जानकारी नहीं देते है, फिर भी हम स्थानीय और फ़ारसी स्रोतों की जाँच पड़ताल के बाद और पुरातात्विय स्रोतों के आधार पर हम किसी अनुमान का

निर्धारण अवश्य कर सकते है। हसन निजामी के अनुसार पृथ्वीराज चौहान को मोहम्मद गौरी द्वारा पकड़ा गया और अजमेर ले जाया गया। वहाँ उसे करद शासक नियुक्त किया गया। अपनी स्थिति को सम्मानित ना पाकर उसने मोहम्मद गौरी के विरूद्ध षडयंत्र किया हो। दोषसिद्ध होने के कारण उसे मार दिया गया हो और यही संकेत पृथ्वीराज प्रबंध के कथानक से मैल खाता है। इस कल्पना का अनुमान मोहम्मद गौरी द्वारा जारी सिक्कों[243] से भी किया जा सकता है जिसके एक तरफ पृथ्वीराज और दूसरी और मोहम्मद साम का नाम लिखा है। मोहम्मद गौरी द्वारा पृथ्वीराज के पुत्र गोविन्द को करद शासक नियुक्त किया जाना भी इसी की और इशारा करता है।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते है कि 1192 ई. के तराईन के युद्ध ने भारतीय इतिहास को नई दिशा प्रदान की है। नि:संदेह यह युग परिवर्तनकारी माना जाता है। क्योंकि इसके बाद ही दिल्ली सल्तनत की स्थापना भारत में हुई। पृथ्वीराज चौहान निश्चय ही एक वीर व साहसी योद्वा योग्य सेनापति और अनेक युद्ध का विजेता रहा था। संयोगिता की रूमानी कथा और तुर्क विजय की युगांतकारी घटना से सबंद्ध होने के कारण भी भारतीय इतिहास में उसका स्थान अद्वितीय है। यहाँ पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि पृथ्वीराज तुर्कों के विरूद्ध अपनी वंशगत महत्वकांक्षा के कारण गुजरात के चालुक्य तथा कन्नौज की सहायता प्राप्त नहीं कर सका था। राजपूतों की वंशगत प्रतिष्ठा तथा अपने राज्य के हित को सर्वोप्रिय मानने के कारण उनकी आपसी वैमनस्य का लाभ मोहम्मद गौरी को प्राप्त हुआ। पृथ्वीराज चौहान ने प्रथम तराईन युद्ध में मोहम्मद गौरी की भागती सेना का पीछा करके उसकी शक्ति को क्षीण करने का भी प्रयास नहीं किया था। इस तथ्य की और भी ध्यान देना चाहिए कि यदि संयोगिता का अपहरण की घटना द्वितीय तराईन युद्ध के पहले की है। पृथ्वीराज चौहान ने संयोगिता के साथ प्रेम प्रंसग में अपनी शक्ति को कमजोर किया। द्वितीय तराईन के युद्ध से पहले गौरी से समझौता वार्ता के सम्पूर्ण काल में पृथ्वीराज चौहान में सैनिक दृष्टि से सतर्कता तथा जागरूकता का न पाया जाना उसकी दूरदर्शिता के अभाव का ही परिचायक है।

2.3.12 हरिराज चौहान का विद्रोह (1193 ई.) अजमेर में चौहान सत्ता की पुनःस्थापना:-

पृथ्वीराज चौहान तृतीय की मुत्यु के बाद मोहम्मद गौरी ने उसके पुत्र गोविन्दराज को अधीनस्थ शासक नियुक्त किया था। जब उसने करद शासक के रूप में शासन करना प्रारम्भ किया। स्वाभिमान चौहानों ने इसे स्वीकार नहीं किया। फलस्वरूप सुअवसर मिलते ही पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने सेनापति स्कन्द की सहायता से गोविन्दराज को भगा कर उस अजमेर पर अधिकार कर लिया। हसन निजामी ने हरिराज[244] का नाम हीरज

लिखा है किन्तु पृथ्वीराज विजय विरूद्ध- विधि-विघ्वंश हम्मीर महाकाव्य[245] और शिलालेखों से पता चलता है कि उसका शुद्ध नाम हरिराज ही था।[246]

हरिराज द्वारा अजमेर से भगा देने के बाद गोविन्दराज चौहान रणथम्भौर पहुँचा। जहाँ किवामुल-मुल्करुद्दीन हमजा गढ़पति था। चौहान लोग अपनी प्रारम्भिक सफलताओं से इतना उत्साहित हुए कि वे हरिराज के नेतृत्व में चौहानों के द्वितीय नगर रणथम्भौर से भी तुर्कों की सत्ता उखाड़ फेकनें के लिए आगे बढ़े। जिससे रणथम्भौर दुर्ग में स्थित मुस्लिम सेना की स्थिति काफी कमजोर हो गयी। किवामुल-मुल्करुद्दीन हमजा ने दिल्ली स्थित ऐबक के पास सहायता के लिए सन्देश भिजवाया। फलस्वरूप चौहानों के कारण उत्पन्न संकट का सामना करने के लिये ऐबक साबिकुलमुक नसरुद्दीन को दिल्ली का प्रशासन सौंपकर शीघ्रता से रणथम्भौर की और रवाना हुआ।[247]

ताजुल मआसिर से मालूम चलता है कि ऐबक के रणथम्भौर पहुँचने पर हरिराज वहाँ से हटकर अजमेर चला गया। कुतुबुद्दीन ऐबक के द्वारा रणथम्भौर के प्रशासनिक कार्यो को सुव्यवस्थित किया। पृथ्वीराज चौहान के पुत्र गोविन्दराज को अब अजमेर के स्थान पर रणथम्भौर का शासक बनाया गया। जिसके बदले में उसे बड़ी धन राशि प्राप्त हुई। ऐबक द्वारा अजमेर जाने का विवरण नहीं है। दिल्ली में विद्रोह की सूचना मिलने पर हरिराज के विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सका। ताजुल मआसिर के वर्णन से स्पष्ट नहीं हो पता है कि हरिराज को रणथम्भौर के साथ-साथ अजमेर से भी खदेड़ दिया था, परन्तु आधुनिक लेखकों का कहना है उसे दोनों स्थलों से हटा दिया गया था। कुछ काल बाद हरिराज ने पुन: विद्रोह किया।[248]

हरिराज का प्रथम विद्रोह दिल्ली-विजय के (1193 ई.) के पश्चात ही हुआ था। अजमेर के समीप तातोली से मिले हरिराज की पत्नी प्रतापदेवी के सं.1251/1194 ई. के अभिलेख से स्पष्ट हो जाता है कि हरिराज ने इन वर्षा में अजमेर का स्वतंत्र शासक बना रहा क्योंकि इस अभिलेख में उसे स्वतंत्र हिन्दू शासक कहा गया है।

यद्यपि ऐबक की शीघ्रता के कारण से हरिराज अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल नहीं हो सका, तथापि अजमेर से मुस्लिम सत्ता को, अल्पकाल के लिये ही सही, उसकी महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इसके साथ ही उसके द्वारा भगाए गये गोविन्दराज को ऐबक द्वारा रणथम्भौर में शासक नियुक्त किये जाने के कारण रणथम्भौर में मुस्लिम सत्ता के स्थान पर पुन: चौहान वंश की नींव पड़ गयी। जिसने आने वाले समय में लगभग एक शताब्दी तक हिन्दूत्व के गौरव का नेतृत्व किया।

2.3.13 मोहम्मद गौरी के अधिकार में रणथम्भौर का दुर्ग:-

वंश भास्कर में रणथम्भौर के चौहानों को महान पृथ्वीराज तृतीय का वंश स्वीकार किया गया है। राव हम्मीर देव के पुत्र रतनसिंह को चित्तौड़ भेजने का उल्लेख है। हम्मीर महाकाव्य[249] में हम्मीर के सम्बंध में पृथ्वीराज के उत्तरोतर वंशज होना अंकित है। सिरोही की बड़ूआ की पुस्तक में रणथम्भौर के चौहानों को पृथ्वीराज के काका सुरसेन की औलाद होना बताया है। मेयो कॉलेज के शिलालेख के आधार पर पृथ्वीराज तृतीय के पुत्र गोविदराज को अजमेर में अपना आश्रित शासक बनाया था। इसके काका हरिराज ने गोविन्दराज को अजमेर से खदेड़ दिया। जिससे वह रणथम्भौर भाग गया।[250] इस प्रकार स्पष्ट है कि तेहरवीं शताब्दी में रणथम्भौर में चौहानों का शासन था। यहाँ के चौहान वंश का पृथ्वीराज तृतीय से निकट का सम्बंध था। गोविन्दराज जो इस वंश का प्रथम संस्थापक पृथ्वीराज का पुत्र था। पृथ्वीराज तृतीय के समय चौहान शक्ति काफी सम्पन हो चुकी थी। परन्तु तराईन के द्वितीय युद्ध में (1192 ई.) पृथ्वीराज की पराजय के बाद चौहान शक्ति छीन-भिन्न होकर बिखर गई थी। इस विजय के उपरांत मोहम्मद गौरी विजित स्थलों को अपने प्रधान सेनानायक कुतुबुद्दीन ऐबक के अधीन छोड़कर गजनी चला गया। कुतुबुद्दीन ऐबक ने इन विजित क्षेत्रों पर अपनी तुर्क सेना रख रखी थी। इसी श्रंखला की कड़ी में ऐबक ने रणथम्भौर दुर्ग पर किवान-उल-मुल्क की अधीनता में तुर्क सेना को स्थापित किया।[251]

भारतवासी अपने देश में तुर्क शासन को सहन नहीं कर सके क्योंकि वह विदेशी और मुस्लिम था। अजमेर में भंयकर विद्रोह हुआ। जिसमें चौहानों ने अपनी स्वाधीनता पुन: प्राप्त करने के लिए तुर्कों को मार भगाने का प्रयत्न किया क्योंकि तुर्क शासकों ने कुछ विशेष कारणों से अजमेर का राज्य पृथ्वीराज चौहान तृतीय के पुत्र गोविन्दराज को वापस लौटा दिया। इस कृतज्ञता के फलस्वरूप गोविन्दराज ने मोहम्मद गौरी की अधीनता स्वीकार कर ली थी। परन्तु अन्य चौहान वंशीय सरदारों को गोविन्दराज की अधीनता वाला शासन और उसका यह निर्णय कतई पसंद नहीं आया। इन सरदारों ने विद्रोह कर दिया और पृथ्वीराज तृतीय के छोटे भाई हरिराज[252] के नेतृत्व में गोविन्दराज को अजमेर से खदेड़ कर अजमेर पर अधिकार कर लिया और रणथम्भौर दुर्ग को घेर लिया जहाँ तुर्क सेना नियुक्त थी।[253]

यह सूचना पाकर कुतुबुदीन ऐबक को दिल्ली से रणथम्भौर आना पड़ा। उसने विद्रोहियों को परास्त करके रणथम्भौर से निकाल दिया। ताजुल मआसिर से पता चलता है कि ऐबक के रणथम्भौर पहुँचने पर हरिराज वहाँ से हटकर अजमेर चला गया। कुतुबुद्दीन ऐबक के द्वारा रणथम्भौर के प्रशासनिक कार्यो को सुव्यवस्थित किया।[254] परन्तु इस बार कुतुबुद्दीन ऐबक ने गोविन्दराज को अजमेर का राज्य ना देकर रणथम्भौर का राज्य दे

दिया। जिसके बदले में ऐबक को काफी धन-सम्पति प्राप्त हुई। रणथम्भौर का दुर्ग गोविन्दराज के अधिकार में आने से कई वर्षों तक यह दुर्ग उसकी राजधानी रहा। गोविन्दराज की मृत्यु के बाद उसका पुत्र बल्हणदेव रणथम्भौर की गद्दी पर बैठा। इस समय तक मोहम्मद गौरी की मृत्यु हो चुकी थी।[255]

2.3.14 चौहान–तोमर सम्मिलित विद्रोह (1194ई.) व अजमेर में तुर्क-सल्तनत की पुर्नस्थापना:-

जिस समय ऐबक जयचंद गाहड़वाल के विरूद्ध चंदवार के युद्ध में व्यस्त था। अजमेर के चौहान शासक हरिराज को अपनी शक्ति को संगठित करने का मौका मिल गया। इसी समय हरिराज ने दिल्ली के तोमर राजकुमार अचलराय या अचलब्रह्म[256] को भी शरण और सहायता देकर अपनी और मिला लिया।

तोमर राजकुमार अचलराय अथवा अचल ब्रह्म के बारे में विभिन्न स्रोतों से भिन्न-भिन्न वर्णन मिलता है। हसन निजामी ने इसका नाम जिहतर लिखा है। फरिस्ता ने इसे हेमराज (सम्भवतः हरिराज) का सेनापति चत्रराय लिखा है। रैवटी और वुल्जले हेग ने भटराय लिखा है। दशरथ शर्मा का कहना है कि यह हरिराज का सेनापति था। इसका वास्तविक नाम जैत्र या जैत्रराय था।[257] [258] हरिहर निवास द्विवेदी के अनुसार जिहतर का तात्पर्य दिल्ली के तोमर राजा द्वितीय तेजपाल के पुत्र अचलराय अथवा अचल ब्रह्म है जो अजमेर के चौहान शासक हरिराज की सहायता से अपने पूर्वजों की राजधानी दिल्ली पर अधिकार करना चाहता था।

यदि निष्पक्ष आलोचना करे तो द्विवेदी महोदय का मत उचित प्रतीत नहीं होता है कि हरिराज अभी तो स्वयं अजमेर में अपनी सत्ता को संगठित कर रहा था। अभी तो चौहान राज्य के खोये हुए बहुत से प्रदेश रणथम्भौर आदि स्वयं उसके अधिकार में नहीं थे। उसके अथवा उसके किसी सेनापति द्वारा दिल्ली विजय की योजना बनाना असम्भव प्रतीत होती है। अजमेर-घेरे के समय हरिराज की कायरता भी इस तथ्य की और संदेह उत्पन करती है कि कदाचित उसने अपने सेनापति को दिल्ली की ओर भेजा हो। इस स्थिति में यह उचित प्रतीत होता है। उसने भगोड़े राजकुमार अचलराय अथवा अचल ब्रह्म को सहायता प्रदान की हो। चौहान सहायता से तोमर राजकुमार ने अपनी पैतृक भूमि दिल्ली को जितने की योजना बनाई हो।

जिहतर चौहान सहायता प्राप्त कर अपने पूर्वजों की राजधानी दिल्ली पर अधिकार करने के लिए रवाना हुआ। किन्तु चौहानों और तोमरों की उपर्युक्त योजना क्रियान्वित होने से पूर्व ही ऐबक कोल-विद्रोह को शांत करके राजधानी दिल्ली पहुँच गया[259] जिससे उनकी योजना की असफलता सुनिश्चित हो गई। ऐबक को जब 1194 ई. में अजमेर के हरिराज और तोमर राजकुमार अचलब्रह्म के बारे में जानकारी मिली। उसने उनसे निपटना उचित

समझा। इसी समय अचलब्रह्म अपनी सेना के साथ दिल्ली की सीमा पर आ धमका। जिससे वहाँ के लोगों पर गम्भीर संकट उत्पन हो गया। ऐबक ने अपनी सेना के एक भाग को राजधानी की सुरक्षा के लिए छोड़कर उस विद्रोह को दबाने के लिए प्रस्थान किया। जब शायद अचलब्रह्म को दिल्ली में ऐबक की उपस्थिति का ज्ञान नहीं था। अत: जब उसे ऐबक के आने का सन्देश मिला, तो वह घबराकर तुर्कों की सेना का सामना करने की अपेक्षा अजमेर[260] आ गया।

अब कुतुबुद्दीन ऐबक ने चौहान शासक हरिराज को समूल नष्ट करने का निश्चय किया। अजमेर पहुँचकर तारागढ़ के नाम से प्रसिद्ध दुर्ग को घेर लिया। तारागढ़ में घिरे चौहान असहाय हो गये। हरिराज अपने को असुरक्षित समझकर अपनी समस्त रानियों के साथ अग्नि को समर्पित हो गया। लेकिन हसन निजामी ने हरिराज का कोई अन्त ना करके अचलब्रह्म द्वारा ही अग्नि में भस्म हो जाने का उल्लेख किया है। परन्तु हम्मीर महाकाव्य[261] से स्पष्ट है कि अग्नि में भस्म होने वाला अचलब्रह्म नहीं बल्कि हरिराज और उसकी समस्त रानियाँ थी। हरिहर निवास द्विवेदी का कहना है कि अचलब्रह्म किसी प्रकार अजमेर से निकलकर तोमरों के प्राचीन स्थान ऐसाह पहुँच गया। जहाँ पर उसने कालान्तर में ग्वालियर में स्थापित होने वाले राजवंश की नींव डाली।[262] इस प्रकार शाकम्भरी के चौहान राजवंश के लगभग पाँच शताब्दियों के उज्ज्वल और गौरवपूर्ण इतिहास का अन्त हो गया। कुतुबुद्दीन ऐबक ने अजमेर पर अधिकार कर लिया। लगभग 2 महीने तक अजमेर नगर में मारकाट तथा अव्यवस्था बनी रही।[263] अजमेर थ्रू इनस्क्रप्संस के अनुसार कुतुबुद्दीन ऐबक ने सैयद हुसैन खिगसवार[264] को अजमेर का गवर्नर जबकि हरविलास शारदा के अनुसार अजमेर का गवर्नर सैयद हुसैन मशेदी[265] को नियुक्त किया है।

2.3.15 मोहम्मद गौरी व मारवाड़:-

सिंध और मारवाड़ की सीमा मिली हुई होने के कारण समय-समय मुसलमानों के अनेक आक्रमण यहाँ पर होते रहते थे। वि.सं.1082/ ई.सं.1025 में जिस समय महमूद गजनवी ने सोमनाथ पर चढ़ाई की थी। उस समय वह नाडोल की तरफ से होता हुआ गुजरात गया था। उसके बाद भी कई मौके पाकर गजनवी वंश के हाकिमों की सेनाएं लाहौर से आगे बढकर मारवाड़ के भिन्न-भिन्न प्रदेशों पर आक्रमण करती थी। उन्हें के एक हमले में सांभर का एक चौहान राजा दुर्लभराज मारा गया था। परन्तु उसका वंशज अजयदेव और उसका पुत्र अन्नोराज इन आक्रमणकारियों को मार भगाने में सफल रहे। अन्नोराज का छोटा पुत्र विग्रहराज(बीसलदेव) चतुर्थ था। देहली

के अशोक स्तम्भ जिसको फिरोजशाह की लाट कहते है। इसका वि.सं.1220 /1163 ई. का एक लेख खुदा है। जिससे ज्ञात होता है कि इसने आर्योंवत मुस्लिम सेनाओं को पराजित किया था।[266]

इस समय तक तो मुसलमानों के पैर नहीं जमे और वो लूट मार कर लौटते रहे। परन्तु इसके बाद मोहम्मद गौरी के आक्रमण शुरू हुए। पहली बार मारवाड़ में नाडोल पर मोहम्मद गौरी का हमला हुआ। परन्तु उसमे उसको सफलता नहीं मिली। जब मोहम्मद गौरी ने (कायद्रा) गुजरात पर चढ़ाई की। परन्तु इसमें उसे घायल होकर लौटना पड़ा। दूसरे वर्ष कुतुबुद्दीन ने इस हार का बदला लेने के लिए गुजरात पर चढ़ाई की। इस बार उसको सफलता मिली। ये दोनों युद्ध आबू के पास कायद्रा में लड़े गये थे। उसकी सेना गुजरात से नाडोल और पाली (बाली) की तरफ होती हुई गयी थी। वहाँ के लोग उसके डर से किले खाली कर भाग गये थे।[267]

आईने अकबरी में लिखा है कि मौहम्मद गौरी ने जब राय पिथोरा की लड़ाई से फुरसत पाई। तब वह कन्नोज के राजा जयचंद से मुकाबले करने को चला गया। जयचंद हार कर भागा और गंगा में डूबकर मर गया। उसका भतीजा सीहा भी जो शम्साबाद में रहता था। बहुत से आदमियों के साथ मारा गया। इसके बाद सीहा के तीन बेटे-सोनग, अश्वत्थामा और अज गुजरात की तरफ जाते हुये पाली में आकर ठहरे कुछ दिनों बाद उन्होंने गोयलों से खेड़ छीन लिया। इसके बाद सोनग ने ईडर में अज ने बगलाने में अपना अधिकार जमाया। परन्तु सीहाजी का उस समय तक मारा जाना सिद्ध नहीं होता।[268] कर्नल जेम्स टॉड ने अपने इतिहास में सीहाजी को कहीं जयचंद का पुत्र कहीं भतीजा और कहीं पौत्र तथा सेतराम का भाई लिखा है। परन्तु मारवाड़ की ख्यातों में और सीहाजी के वि.सं.1330 लेख में इन्हें सेतराम का पुत्र लिखा है।[269] मारवाड़ की ख्यातों में सीहाजी का वि.सं.1212 में मारवाड़ आना लिखा है लेकिन जब कन्नोज नरेश ही वि.सं. 1250 में मारा गया था। तब उसकी संतान का इस घटना से 35 वर्ष पूर्व मारवाड़ में आना कैसे सम्भव हो सकता है। कर्नल टॉड ने अपने ऐनाल्स एंड एक्टिविटीज ऑफ राजस्थान नामक इतिहास में सीहाजी के कन्नोज छोड़कर मारवाड़ में आने का समय वि.सं.1268/1212 ई.लिखा है।[270] जनरल कनिघम इस घटना को वि.सं.1283/ ई.सं.1226 में होना मानते है।[271]

जबकि पंडित विश्वेश्वर नाथ रेउ के अनुसार इतिहास प्रसिद्ध राठौर-नरेश जयचन्द्र के मोहम्मद गौरी के हमले में मारे जाने के बाद भी कन्नोज के आस-पास का प्रदेश उसके पुत्र हरीशचन्द्र के अधिकार में ही रहा। सम्भवतः इसी हरीशचन्द्र की उपाधि या दूसरा नाम बरदायी सेन था परन्तु वि.सं. 1243 के बाद जब मुसलमानों के आक्रमणों

से हरिशचन्द्र का रहा-सहा राज्य भी जाता रहा। तब बरदायी सेन या हरिशचन्द्र का पुत्र सेतराम और सीहाजी खोर (शम्साबाद) की तरफ चले गये। कुछ दिन बाद मोधा की तरफ होते हुए महुई में जा रहे। परन्तु उक्त प्रदेश पर भी मुसलमानों का उपद्रव प्रारम्भ हो गया। तब इन्हें और सेतराम को मारवाड़ की तरफ आना पड़ा। सेतराम ने अपने छोटे भाई को ही अपना दत्तक पुत्र मान लिया।[272]

2.3.16 मोहम्मद गौरी व नागौर:-

वर्तमान बीकानेर राज्य के दक्षिण–पूर्व में स्थित चारलू नामक ग्राम से प्राप्त दो अभिलेखों से ज्ञात होता है कि 1174 ई.में पृथ्वीराज चौहान और चालुक्य नरेश भीमदेव द्वितीय के मध्य नागौर का बड़ा युद्ध हुआ था। इस युद्ध का कारण नागौर पर अधिकार को लेकर था। इस प्रकार मोहिलों की सहायता से इस युद्ध में पृथ्वीराज चौहान ने चालुक्य नरेश पर निर्णायक विजय प्राप्त की थी। उसने नागौर पर पूर्ण रूप से अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।[273] [274] [275] लेकिन पृथ्वीराज चौहान भी नागौर पर अधिक दिनों तक अधिकार नहीं रख सका। क्योंकि उसके नागौर पर अधिकार करने के कुछ वर्षो उपरांत उसे तराईन के द्वितीय युद्ध में पराजित होना पड़ा। यद्यपि राजपूतों ने मुसलमानों के द्वारा खुले युद्ध के मैदान में अपनी कुछ भारी पराजय के बाद भी नागौर और नागौर के अतिरिक्त अनेकों शक्तिशाली दुर्गो की दीवारों के पीछे से जो आशय और प्रतिरक्षा के महत्वपूर्ण साधन थे। निरंतर मुसलमानों का प्रतिरोध किया। इन सभी संघर्षो में वे असफल रहे। परिणामस्वरूप मोहम्मद गौरी ने नागौर पर पूर्णरूप से अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।[276]

नागौर पर अपना अधिकार स्थापित करने के कुछ समय उपरांत मोहम्मद गौरी ने नागौर की जागीर अली को जिसकी उपाधि नागौरी थी, प्रदान की। काजी हमीदुद्दीन को नागौर का काजी नियुक्त किया। काजी हमीदुद्दीन नागौरी का पूरा नाम शेख मोहम्मद हसन आता है जो मोहम्मद बिन साम के राज्य काल में बुखारा से दिल्ली आये थे। यह दोनों व्यक्ति कुतुबुद्दीन ऐबक और आरामशाह के अल्पकालीन शासन काल में यथावत अपने-अपने पदों पर आसीन रहे थे। अमीर अली नागौरी ने मोहम्मद-ए-महमूद जो गजनी की सेना में था। बाद में जिसके साथ उसका भतीजा मोहम्मद बखित्यार भी सम्मिलित हो गया था। जिसने पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध तराई न के द्वितीय युद्ध में भी युद्ध किया था, के कार्यो से संभवतः प्रभावित होकर नागौर की जागीर प्राप्त होने से पूर्व ही रख लिया था। किन्तु जब उसे नागौर की जागीर प्राप्त हुई तो उसने मोहम्मद-ए महमूद को काशमंदी की जागीर तथा एक ताशा और एक निशान भी जो सम्मान सूचक चिन्ह थे प्रदान कर उसे सम्मानित किया गया।

मोहम्मद-ए-महमूद की मृत्यु के बाद उसका भतीजा मोहम्मद बखित्यार उसके स्थान पर काशमंदी का जागीरदार नियुक्त किया गया। काशमंदी उस समय नागौर राज्य के अंर्तगत था। कैलाश चंद जैन के अनुसार 1194 ई. नागौर का शासन मोहम्मद बिन बख्तियार[277] के द्वारा शासित था जो निराधार और असत्य है जिसे किसी भी दशा में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।[278] [279] [280] राजपूताना में नागौर दिल्ली के सुल्तान का महत्वपूर्ण दुर्ग था किन्तु वह उसी के जागीरदार द्वारा शासित होने पर भी पराक्रमी राजपूत सरदारों के अचानक आक्रमण का लक्ष्य बना रहा। यद्यपि उनके यह आक्रमण उनके संगठित न होने के कारण असफल ही रहे। फलस्वरूप 1200 ई. तक राजस्थान के एक भाग पर मुसलमानों ने अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर लिया। सपादलय अथवा शिवालिक में नागौर उनकी शक्ति का मुख्य केन्द्र बन गया। यहाँ से उन्होंने हिन्दू राज्यों पर चढ़ाई कर धीरे-धीरे उन्हें नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया।[281] [282]

2.3.17 मोहम्मद गौरी व आमेर का कछवाहा राजवंश:-

कछवाहा राजा जान्हण के पुत्र पजवनराय का विवाह दिल्ली-अजमेर के यशस्वी पृथ्वीराज चौहान की चचेरी बहिन से हुआ था। जो पृथ्वीराज के चाचा कांह जी की पुत्री थी। पनवनराय चौहानों का सेनापति था। उसकी वीरता का बखान पृथ्वीराज के दरबारी कवि चंदबरदाई ने अपने ग्रंथ पृथ्वीराज रासो में भी किया है। मोहम्मद गौरी के विरुद्ध तराईन के युद्ध में पृथ्वीराज तृतीय के साथ लड़ा। जिसमे राजपूत सेनाओं ने अफगानों के दाँत खट्टे कर दिए थे। जब पृथ्वीराज ने संयोगिता का अपहरण किया। जयचन्द्र के साथ हुय युद्ध में पजवनराय उसके भाईयों और दो पुत्रों ने वीर गति प्राप्त की और पजवनराय 1192 ई. के तराईन के अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज तृतीय का साथ नहीं दे सका। तराईन के द्वितीय युद्ध के समय आमेर के सिंहासन पर मलयसिंह (मले-सी) थे।[283] पंजवनराय के बाद उनके बड़े पुत्र मलयसिंह जी गद्दी पर बैठे। उनकी वीरता कन्नोज के युद्ध विषयक वर्णन में पृथ्वीराज रासो में वर्णित है। कन्नोज के युद्ध के घावों में मलय सिंह जो ठीक नहीं हुये थे। इस कारण से वे पृथ्वीराज और गौरी के तराईन के दूसरे युद्ध में शरीक नहीं हो सके थे। तराईन के द्वितीय युद्ध में उनका छोटा भाई बलभद्र गया था जो वहाँ वीरतापूर्वक लड़कर काम आया था।[284]

2.3.18 मोहम्मद गौरी व बयाना:-

वर्तमान समय में बयाना राजस्थान के भरतपुर जिले में स्थित 26^0 55 ॅउ. एवं 77^0 18’ पूर्व एक तहसील है।[285] मोहम्मद गौरी के आक्रमण के समय बयाना पर यदुवंशी शासक कंवरपाल का शासन था। यादव राज्य करौली

की समस्त ख्यातों में वहाँ के राज्य का उल्लेख है। तत्कालीन शासक का नाम कुंवरपाल लिखा है। एक स्थान पर यह नाम कुमारपाल भी लिखा गया है।[286] हबीबुल्ला ने बयाना के शासक को भ्रम से जादोंभट्टी राजपूत लिख दिया है जिसे बाद के लेखकों द्वारा ज्यों का त्यों दोहरा दिया गया।[287]

मोहम्मद गौरी ने एक बार फिर गजनी से भारत की और रुख किया। 1195-1196 ई. में उसकी और दिल्ली की सम्मिलित सेना ने बयाना की तरफ प्रस्थान किया। उस समय में बयाना पर कंवरपाल का अधिकार था। जब उसे मोहम्मद गौरी के आक्रमण का सन्देश मिला तो वह उसका जमकर प्रतिरोध करने के उद्देश्य से अपने राज्य के एक सुदृढ़ दुर्ग थन्गिर या तहनगढ़ में चला गया। कनिंघम के अनुसार तहनगढ़ को ही मुस्लिम लेखकों ने थन्गिर या थंकिर लिखा है जो बयाना से 14 मील दक्षिण में स्थित है। मोहम्मद गौरी ने यदुवंशी राज्य में प्रवेश कर तहनगढ़ को घेर लिया। किले में घिरे जाने पर जब कुंवरपाल ने अपने को कमजोर और असहाय पाया तो उसने गौरी से क्षमा याचना की फलस्वरूप उसे अभयदान दे दिया गया, लेकिन उससे उसका राज्य छीन लिया गया। वहाँ के निवासियों पर कर निश्चियत कर लगा दिया गया। बयाना दुर्ग एक मुस्लिम अधिकारी बहाउद्दीन तुगरिल के अधिकार में रखा गया। जिसने बाद में यदुवंशी राजा के किले को अपने निवास के अनुरूप ना पाकर उसी राज्य में सुल्तानकोट नामक एक शहर बसाकर उसे अपना निवास स्थल बनाया।[288] बयाना पर मोहम्मद गौरी का अधिकार हो जाने पर कुंवरपाल सहित अनेक यदुवंशी चंबल नदी पार करके सम्बलगढ़ के जंगलों में चले गये। फिर वहाँ पर जादोवटी नाम से अपना क्षेत्र बना लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि मोहम्मद गौरी के अधीन बयाना का राज्य अधिक समय तक कायम नहीं रह सका।[289] बहाउद्दीन तुगरिल की मृत्यु के बाद यदुवंशियों ने 1204 ई. से 1211 ई. के मध्य किसी समय अपने पैतृक भू-भाग पर अधिकार कर लिया। क्योंकि थंकिर की विजय इल्तुतमिश की विजय में शामिल है। अत: यह निश्चियत है कि यदुवंशियों ने बयाना को जीत लिया था। चूँकि बहाउद्दीन तुगरिल का नाम इल्तुतमिश के अमीर वर्ग की सूची में शामिल नहीं है कि वह 1211ई. के पूर्व मर चुका था। कामा भरतपुर जिले से मिले एक फारसी शिलालेख में उसका नाम उत्कीर्ण है।

अत: अनुमान है कि उसकी मुत्यु 1204 ई. से 1211 ई. के बीच हुई होगी और बहुत कुछ सम्भव है कि इसी बीच यदुवंशियों ने पुन: बयाना पर अधिकार कर लिया हो। जिसके कारण इल्तुतमिस को पुन: एक बार थंकोर (बयाना) को जितने की आवश्यकता पड़ी।[290]

2.3.19 अजमेर का मेर विद्रोह कुतुबुद्दीन ऐबक के जीवन का सर्वोधिक कठिनतम का समय:-

मेर जाति के निवास के कारण अजमेर और मेवाड़ के कमलमेर के बीच के पहाड़ी क्षेत्रों का नाम मेरवाडा पड़ा। इसके उत्तर में मारवाड़ और अजमेर दक्षिण में मेवाड़ पूर्व में अजमेर तथा पश्चिम में मारवाड़ है। इसकी स्थिति $26^0 11'$ व $25^0\ 30'\ 33''$ उ. अ. और $73^0 43'\ 3''$ पूर्व. द. के बीच है। कनिंघम ने भी अजमेर के निकट मेर जाति का निवास स्थल बताया है। समकालीन इतिहासकार हसन निजामी ने इस विद्रोह कारणों अथवा राजनीति से विभक्त इस जाति के संगठित होने के कारणों का उल्लेख नहीं किया गया। तथापि कहा जा सकता है कि अजमेर के मुस्लिम गवर्नर के अत्याचार अथवा जबरदस्ती कर की वसूली करना। इसका एक कारण अवश्य रहा होगा। और इन अत्याचारों के कारण ही ये लोग अजमेर के आस-पास से उनकी सत्ता उखाड़ फेंकना चाहते थे।[291]

इस समय मोहम्मद गौरी गजनी में था। इस विद्रोह की सूचना कुतुबुद्दीन ऐबक को ग्वालियर विजय 1196 ई. के पश्चात दिल्ली लौटने पर हुई। हसन निजामी ने मेर जाति के नेता का नाम भी नहीं दिया। तथापि इस असंतोष के वातावरण में जाति के किसी वरिष्ट पुरुष अथवा उनके मुखिया द्वारा इसका नेतृत्व किया जाना समाचीन है। मेर-विद्रोह की व्यापक तैयारी की गयी और इस संघर्ष में शामिल होने के लिए मेर लोगों ने गुजरात के चालुक्यों को आमंत्रित किया। अजमेर के स्वत्रंता प्रेमी लोग भी अवश्य इस संघर्ष में शामिल हुए होंगे। चालुक्य सम्राट भीमदेव द्वितीय ने इस कार्य को उचित समझते हुये अपनी एक सेना की टुकड़ी रवाना की। परन्तु मेर लोगों का ये दुर्भाग्य था कि उन्हें गुजरात द्वारा भेजी गयी सहायता शीघ्र प्राप्त नहीं हो सकी। ब्रिग्स ने फरिश्ता के अंग्रेजी अनुवाद में लिखा है कि नागौर के राजा तथा अन्य राजपूत ने भी सहायता दी थी, किन्तु डे महोदय के अनुवाद में केवल "केवल बहुत से स्वतंत्र भारतीय राजाओं द्वारा सहायता देने का उल्लेख है।[292] [293] [294]

अजमेर के मुस्लिम पदाधिकारियों ने जब अपने को मेरों के विद्रोह के दमन में असमर्थन समझा तो उन्होंने ने शीघ्र दिल्ली में कुतुबुद्दीन ऐबक को इसके विषय में सूचित किया। ऐबक ने अजमेर के इस तृतीय विद्रोह की विकरालता को भाँपते हुए दिल्ली से शीघ्र प्रस्थान किया। प्रचंड गर्मी के महीने में मई-जून 1196 ई. में द्रुत गति से अजमेर पहुँच गया। वहाँ के विद्रोहियों पर टूट पड़ा। अभी गुजरात की सैनिक सहायता मेर लोगों को प्राप्त नहीं हुई थी। अभी उनकी तैयारी भी पूरी नहीं थी। इसी बीच ऐबक का आक्रमण उनके लिए असहनीय हो गया होगा। तथापि मेर में लोग मुस्लिम सेना से प्रात: से सांयकाल तक संघर्ष करते रहे। दूसरे दिन गुजरात की सैनिक टुकड़ी उनकी सहायतार्थ आ पहुंची। फलस्वरूप उनका उत्साह बढ़ गया। वे दुगने उत्साह से मुस्लिम सेना पर

प्रहार करने लगे। इस संघर्ष में अनेक मुस्लिम सेनापति मारे गये। कुतुबुद्दीन ऐबक भी घायल हो गया। मेर लोगों के बढ़ते हुए दबाव को देख कर कुतुबुद्दीन ऐबक ने समस्त सेना के साथ अजमेर के दुर्ग में शरण ली। मेर लोगों ने भी उनका पीछा करके एक फरसंग की दूरी पर अपना शिविर लगा दिया।[295]

हसन निजामी ने मेर लोगों द्वारा किले को लम्बे समय तक घेरे रहने तक के बावजूद उनकी कार्यवाहियों का उल्लेख नहीं किया। प्रतीत होता है कि उनकी योजना किले को लम्बे समय तक घेर कर तुर्कों द्वारा आत्मसमर्पण करवाने की रही होगीं। कुतुबुद्दीन ऐबक के जीवन का यह सबसे कठिन समय था। जब वह स्वयं मेर लोगों से पराजित हो गया था। किले में घिरे रहने से उसका बुरा हाल हो रहा था। उसने अपने एक विश्वस्त व्यक्ति को अपने स्वामी मोहम्मद गौरी के पास गजनी भेजा। अपनी परिस्थितियों से अवगत कराया। मोहम्मद गौरी ने स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए जहाँ पहनवान असदुद्दीन अर्सलान, कालिज नासिरुद्दीन, हुसैन इजुद्दीन तथा शरफुद्दीन मोहम्मद जराह के नेतृत्व में गजनी से एक सेना ऐबक की सहायतार्थ रवाना की। शरद ऋतु अक्टूबर–नवम्बर 1196 ई. में इस सेना के अजमेर में पहुँच जाने से मेर-विद्रोह का दबाव कम हुआ। अंततः 5 महीने के अपार कष्ट के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक के जीवन का कठिनतम संकट समाप्त हो गया।[296]

यद्यपि अजमेर के मेर लोग अपने उद्देश्य में असफल हो गये। गजनी की सहायता से ऐबक ने उनके विद्रोह को कुचल दिया। तथापि आगे कुछ समय तक यहाँ के लोग सक्रिय बने रहे क्योंकि हम इल्तुतमिस[297]की विजय में अजमेर का नाम पाते है। इतना होने पर भी मेर विद्रोह को गौर आक्रमणकारियों के विरूद्ध भारतीय जनता का सबसे बड़ा जन विद्रोह होने का गौरव प्राप्त है।[298]

2.3.20 मोहम्मद गौरी व जालौर:-

वर्तमान में ग्रेनाइट शहर के नाम से विख्यात जालौर राजस्थान का एक जिला है। इसकी स्थिति 24^0 37’ से $25^0$49’ उत्तरी अक्षांश एवं 71^0 11’ से 73^0 05’ पूर्वी देशांतर है।[299] जालौर मारवाड़ राज्य की सीमा का सुदृढ़ किला था। जहाँ से गुजरात और मालवा की और दिल्ली से मार्ग जाते थे। सुल्तानों की दक्षिण विजय की योजना को साकार रूप देने के लिए यह आवश्क था कि वे जालौर जैसे सुदृढ़ दुर्ग को अपने अधिकार में रखे। जिस प्रकार रणथम्भौर के चौहान एक सुदृढ़ शक्ति के रूप में थे। उसी प्रकार जालौर के चौहान भी तुर्क सल्तनत के लिए कंटक के समान थे। इसी कारण समय-समय पर यहाँ के शासकों का और तुर्कों का संघर्ष चलता रहता था। प्रारम्भ में यह दुर्ग परमारों के अधीन था जो परिस्थिति के अनुकूल कभी स्वतंत्र और कभी चालुक्यों के अधीन

सामंत रूप में रहे चुके थे। जालौर तोपखाने के अभिलेख से ऐसे 5 शासकों के नाम उपलब्ध होते है जिसमें बीसल तथा कुन्तपाल के नाम विशेष उल्लेखनीय है। नाड़ौल शाखा के प्रतिभासंपन्न कीर्तिपाल[300] ने 1161 ई. के लगभग जालौर को प्रतिहारों से छीनकर अपने अधिकार में ले लिया। वहाँ का स्वतंत्र शासक बन गया। वह जालौर शाखा के चौहान वंश का प्रथम संस्थापक था। प्राचीन शिलालेखों में जालौर का नाम जाबालीपुर और किले का नाम सुवर्णगिरी मिलता है जिसको अपभ्रंश में सोनगढ़ कहते है। इसी पर्वत के नाम से चौहान की एक शाखा सोनगरा कहलायी। नैणसी ने कीर्तिपाल को 'कीतू एक महान राजपूत' कहकर सम्बोधित किया है।[301]

कीर्तिपाल के उत्तराधिकारी समरसिंह 1182-1204 ई. ने जालौर में सुदृढ़ प्राचीर कोषागार शस्त्रागार व विभिन्न प्रकार के यंत्र तथा अन्य सुरक्षा के साधना का निर्माण कराया तथा कई मन्दिर बनाकर उन्हें सुसज्जित किया। उसने गुजरात के भीमदेव द्वितीय से अपनी पुत्री लीला[302] का विवाह कर गुजरात से मधुर सम्बंध फिर से स्थापित किये। समरसिंह के उत्तराधिकारी उदय सिंह के समय में जालौर की सीमा की अधिक परिवृद्धि हुई और उसकी राजनीतिक प्रतिष्ठा भी बढ़ी। रणथम्भौर और सपाद्लक्ष के चौहानों की शक्ति के पत्तन के बाद तुर्की सल्तनत का नेतृत्व स्थापित करने के प्रयासों पर रोक लगाने वाली उस समय यदि कोई शक्ति थी तो वह जालौर के चौहानों की थी।[303] [304] पुरातन प्रबंध संग्रह के अनुसार कुतुबुद्दीन ऐबक गुजरात अभियान से 1197 ई.में कायन्द्रा के अपमान का बदला लेकर जालौर की सीमा से लौट रहा था। तब जालौर के शासक समरसिंह ने सिवाणा ग्राम के नजदीक मुस्लिम सेना से संघर्ष कर अपनी सीमा की सुरक्षा की थी।[305]

2.3.21 खोखरों का विद्रोह (1206 ई.) व मोहम्मद गौरी:-

ताजुल मआसिर के अनुसार मध्य एशिया में 1204 ई. में अन्धखुद के स्थान पर खिताई तुर्कों द्वारा मोहम्मद गौरी की पराजय एवं पलायन से तराईन के प्रथम व कायन्द्रा युद्ध की पराजय की भाँति उसकी प्रतिष्ठा कम हुई। साथ में उसके विजित प्रदेशों में यह अफवाह फ़ैल गयी कि उसकी मृत्यु हो गयी। फलस्वरूप मुल्तान में उसके एक अमीर ने विद्रोह कर दिया। इसका लाभ पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले खोखारों ने भी उठाया।[306]

खोखर कौन थे इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। खोखर जाति जाटों, राजपूतों, आर्यों और चुडों में पाई जाति है। इनकी उत्पत्ति हिन्दू है जो विशेषतया झेलम व चिनाब की घाटी, सिंध की निचली घाटी, सतलज, लाहौर व सतलज की पहाड़ी और झेलम में पिंड दादरखान क्षेत्रों में बहुतायत से पाए जाते है। ये अपनी उत्पत्ति हिन्दू

बतलाते है। फरिश्ता ने सल्तनत कालीन खोखारों के लिये गक्खर शब्द प्रयोग किया है, जो उचित नहीं क्योंकि गक्खर एक मुस्लिम जाति है जिसका वर्णन मुगल काल में मिलता है।[307]

बकन और सर्की के नेतृत्व में खोखरों का विद्रोह इतना बढ़ गया कि जब मुल्तान के अधीन सांगवान का सूबेदार बहाउद्दीन मोहम्मद सैनिकों के साथ उनका विद्रोह दबाने के लिये आगे बढ़ा तो खोखरों ने उस पर आक्रमण कर बुरी तरह पराजित कर दिया। अनेक मुस्लिम सैनिक मार डाले गये और शेष को भागने के लिए बाध्य कर दिया। अनेक खोखर इस विद्रोह में भाग लेने के लिये एकत्रित होने लगे। मोहम्मद गौरी ने स्थिति की गम्भीरता पर विचार कर अपने अमीर हाजिब सिराजुद्दीन अबुब्रक को कुतुबुद्दीन के पास भेजा ताकि वह शीघ्र उस स्थल पर पहुचें। सुल्तान स्वयं भी वहाँ के लिए रवाना हुआ। ऐबक भी इल्तुतमिस के साथ खोखारों के विद्रोह को दबाने के लिए रवाना हुआ। मोहम्मद गौरी और ऐबक की सेनाओं का झेलम के तट पर खोखारों से भीषण संघर्ष हुआ।, जिसमे अंततः खोखरों पराजित कर दिया गया। अधिकांश मार दिये गये। शेष खोखरों ने भाग कर नमक की पहाड़ी में शरण ली। मोहम्मद गौरी वहाँ भी पंहुच गया और दोनों पक्षों में संघर्ष के उपरांत गौरी ने वहाँ पर भी अधिकार जमा लिया। वहाँ के राय ने आत्मसमर्पण कर दिया। अत्यधिक लूट के पश्चात उसे क्षमा कर दिया।[308] [309]

सम्मिलित सेनाएं लाहौर की और रवाना हुई। जब स्थिति पूर्णरूप से शांत हो गयी। तब मोहम्मद गौरी ने ऐबक को दिल्ली वापस लौटने का आदेश दिया। स्वयं गजनी के लिए रवाना हो गया। मार्ग में धर्मक या धमयक नामक स्थान पर सुल्तान का शिविर लगाया गया। पराजित खोखारों ने मोहम्मद गौरी से बदला लेने के लिये 15 मार्च, 1206 ई. को उसके शिविर पर अचानक आक्रमण कर उसकी हत्या कर दी। इस प्रकार भारत में मुस्लिम साम्राज्य के संस्थापक को इस देश के निवासियों द्वारा ही निर्मम हत्या कर दी गयी। शेष लोग उसके शव के साथ गजनी रवाना हो गये। यह विजय यात्रा अन्त में शव-यात्रा में बदल गयी। मोहम्मद गौरी के हत्यारे के विषय में विद्वान लेखक एक मत नहीं है। वे उसे खोखर मुलाहिद, धर्महीन, फिदाई मुल्लाहिद, फिदाई खोखर आदि लिखते है।[310] [311] जबकि ए.बी.एम. हबीबुल्ला तथा खलिक अहमद निजामी के अनुसार मोहम्मद गौरी का खोखर तथा इस्माईली या करामतियों दोनों से शत्रुता थी अत: उन दोनों ने इस हत्या में भाग लिया था।[312]

निष्कर्ष:-

तराईन की पराजय के बाद भारत में दिल्ली सल्तनत की स्थापना का सूत्रपात हुआ। लेकिन अभी भी उनके लिए राजपूताना विजय की राह आसन थी। मोहम्मद गौरी के गजनी लौटने पर भारतीय प्रदेशों का प्रशासक

कुतुबुद्दीन ऐबक को नियुक्त किया। इस दौरान कुतुबुद्दीन को राजपूताना में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। तुर्कों के करद शासक के रूप गोविन्दराज को चौहान राजपूतों ने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने हरिराज के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। परिणामस्वरूप कुछ समय के लिए सही अजमेर में पुन: पृथ्वीराज तृतीय के वंशज व भाई हरिराज का राज्य स्थापित हो गया। अजमेर के मेर लोगों ने विद्रोह कर दिया। यह भारत में तुर्की शासन की स्थापना करने वालों के विरूद्ध भारतीय जनता द्वारा किये गये सबसे बड़े एवं व्यापक विद्रोह के रूप में अजमेर के मेर विद्रोहों को स्वीकार किया जाता। रणथम्भौर पर भी मोहम्मद गौरी की विजय स्थायी सिद्ध नहीं हो सकी। परन्तु इस बार कुतुबुद्दीन ऐबक ने गोविन्दराज को अजमेर का राज्य ना देकर रणथम्भौर का राज्य दिया। रणथम्भौर का दुर्ग गोविन्दराज के अधिकार में आने से कई वर्षों तक यह दुर्ग उसकी राजधानी रहा। गोविन्दराज की मृत्यु के बाद उसका पुत्र बल्हणदेव व उसके उत्तराधिकारियों ने कुछ वर्ष बाद रणथम्भौर को स्वतंत्र करा लिया। तराईन के द्वितीय युद्ध के बाद पृथ्वीराज तृतीय या अजमेर व दिल्ली के चौहान वंश का अंत नहीं हुआ बल्कि वह दिल्ली व अजमेर की जगह रणथम्भौर में स्थापित हो गया। जालौर में इनको कोई निर्णायक विजय प्राप्त ना कर सके। नागौर में 1200 ई. तक मोहम्मद गौरी ने अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर लिया। शेष राजपूताना में तुर्कों का विरोध जारी था।

मोहम्मद गौरी और उसके सेनापतियों के नेतृत्व में हुए भारतीय अभियानों का फल यह हुआ कि महमूद गजनवी द्वारा स्थापित हिन्दू और मुस्लिम साम्राज्य की सीमा रावी नदी से हटकर ब्रहा पुत्र की घाटी तक पहुँचीं। इस बीच के समस्त भू-भाग को उन्होंने स्थायी न सही आँधी की भाँति ही झनझौर अवश्य दिया। लाहौर में स्थापित नया राजवंश कालान्तर में इन्हीं भू-भागों पर अपना स्थायी अधिकार स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील हो गये। कायद्रा एवं तराईन के प्रथम युद्ध में शर्मनाक पराजय झेलनी पड़ी थी। इसके पश्चात भी तराईन दिल्ली, मेरठ, बरन, कोल, चन्दवार, अजमेर, रणथम्भौर, जालौर, जैसलमेर, बयाना, ग्वालियर, कालिंजर, बदायूं, हांसी आदि में प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा। हांसी, दिल्ली, अजमेर में मोहम्मद गौरी के विरूद्ध पुन: विद्रोह स्पष्ट करता है कि विजित प्रान्तों में भी आसानी से विदेशी अधीनता को बर्दाश्त करने वाले नहीं थे। यही अनेक राज्यों ने तो अल्पकाल में ही विदेशी अधीनता के जुआ को उतार फेका।

गुलाम वंश व राजपूताना (1206-1290 ई.)

1192 ई. में जब तराईन के द्वितीय युद्ध में चौहान शासक पृथ्वीराज तृतीय को पराजित कर मोहम्मद गौरी ने अजमेर पर अपना अधिकार कर लिया था। तब अपनी अनुपस्थिति में भारतीय प्रदेशों का शासन चलाने के लिए मोहम्मद गौरी ने कुतुबद्दीन ऐबक को भारतीय प्रदेशों का गवर्नर नियुक्त कर दिया। 1192-1206 ई. तक कुतुबद्दीन ऐबक ने गवर्नर के रूप में भारतीय प्रदेशों का शासन संचालन किया। किन्तु 1206 ई.में मोहम्मद गौरी की मृत्यु के बाद उसका राज्य उसके तीन सेनानायकों में विभाजित हो गया। ताजुद्दीन यल्दौज ने स्वयं को गजनी का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। कुबाचा ने स्वयं को सिंध का शासक घोषित कर दिया। जबकि कुतुबद्दीन ऐबक ने स्वयं को भारत का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया।[313]

मोहम्मद गौरी की मृत्यु के बाद उसके भतीजे तथा फिरोजकोह के सुल्तान गयासुद्दीन महमूद ने कुतुबुद्दीन ऐबक को शाही छत्र के साथ सुल्तान की उपाधि प्रदान की। ऐबक दिल्ली से लाहौर पहुँच कर 25 जून, 1206 ई. को लाहौर की गद्दी पर बैठा।[314] तबकाते नासिरी[315] में कुतुबुद्दीन ऐबक के सिन्हासनारोहण की तारीख 26 जून, 1206 ई. तथा तारीखे फखरुद्दीन मुबारक़शाह में 19 जून दी गयी है। इस प्रकार उसके सिन्हासनारोहण से भारत पर विदेशियों के आक्रमणों का दौर समाप्त हो गया। इसी भूमि पर एक नये और स्वतंत्र राजवंश की स्थापना हुई, जिसे आधुनिक लेखकों ने दास, गुलाम अथवा ममलुक वंश की संज्ञा दी है।

गजनी के महत्वाकांक्षी शासक मोहम्मद गौरी के कार्यकाल में ही भारतवर्ष की पश्चिम सीमा से ब्रहापुत्र नदी तक गौर वंश की स्थापना हो गयी थी। राजस्थान तथा गुजरात तथा मालवा तक अभियान किये गये थे, किन्तु कुछ समय के उपरांत ही राजस्थान तथा उसके बाद के राजपूत शासकों की प्रतिरोध की नीति के कारण अधिकांश भाग पुन: मुस्लिम आधिपत्य से स्वतंत्र हो गये थे। इस समय मात्र दिल्ली, आगरा व लाहौर तथा बदायूं के आस पास का क्षेत्र ही मुसलमानों के अधीन रह गया था।

इस प्रकार भारत में स्थापित होने वाले नव मुस्लिम राजवंश (दास, गुलाम अथवा ममलुक वंश) को पुन: विद्रोही राजपूत शासकों के विरूद्ध कार्यवाही करना आवश्यक हो गया। गद्दी प्राप्त होने बाद ऐबक अपने प्रतिद्धन्दियों में उलझा रहा और उसने मुसलमानों द्वारा जीते गये प्रदेशों को, जो पुन: राजपूत शासकों के हाथों में चले गये थे, अन्य नये प्रदेशों में राज्य विस्तार के लिए प्रयत्न किया।[316]

2.4 कुतुबुद्दीन ऐबक व राजपूताना (1206-1210 ई.)

कुतुबुद्दीन ऐबक व अजमेर:

तेहरवीं शताब्दी में राजपूताना की स्थिति में काफी परिवर्तन आ गया था। पहली बार राजस्थान के मध्य में दिल्ली सल्तनत के अंतर्गत अजमेर मुस्लिम सत्ता का केन्द्र बन गया। अजमेर के इस मुस्लिम केन्द्र की सीमाएँ घटती बढ़ती रही। परन्तु अजमेर बयाना, मेवात, सांभर और नागौर पर मुसलमानों का नियन्त्रण बना रहा। जब कुतुबुद्दीन ऐबक 1192 से 1206 ई. तक मोहम्मद गौरी के प्रतिनिधि के रूप में उत्तरी भारत के प्रदेशों पर शासन कर रहा था। पृथ्वीराज तृतीय की हत्या के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक उसके वंश को देश के राजनीतिक जीवन से अलग नहीं करना चाहता था। उसके पुत्र को इस शर्त पर अजमेर का शासन प्रदान कर दिया कि वह अधीनस्थ शासक रहेगा । ऐसा प्रतीत होता है कि हरिराज व उसके समर्थक ने उसके पुत्र को अजमेर से मार भगाया। तब ऐबक ने हरिराज के विरूद्ध बडा सैनिक दबाव डाला और उसे इन स्थलों पर से अधिकार छोड़ने पर विवश कर दिया, किन्तु उसे पूर्ण रूप से कुचला नहीं जा सका। जब हरिराज ने अजमेर पर अधिकार कर लिया तो उसका साहस और बढ़ गया। वह गोविन्दराज का पीछा करता हुआ रणथम्भौर तक चला गया और वहाँ से भी उसने गोविन्दराज को भगा दिया । तत्पश्चात हरिराज दिल्ली आक्रमण की तैयारी करने लगा। इस नियोजित आक्रमण का नेतृत्व सेनापति झतराय कर रहा था। कुतुबुद्दीन ऐबक तुरंत उसकी प्रगति को रोकने के लिए बढ़ा। दिल्ली में इस अकस्मात सैनिक गतिविधि से हरिराज और उसका साहसी सेनापति झतराय भयभीत हो गये। झतराय ने अजमेर में शरण ली और हरिराज ने जौहर कर आत्महत्या कर ली ।[317] [318] [319]

अब ऐबक ने राजपूताना में तुर्क साम्राज्य के प्रशासकीय संगठन करने का निश्चय किया। अजमेर में मुस्लिम अधिकारी नियुक्त किया गया। गोविन्दराज को रणथम्भौर भेज दिया गया।

कुतुबुद्दीन ऐबक और रणथम्भौर:

रणथम्भौर का दुर्ग गोविन्दराज के अधिकार में आने के बाद कई वर्षों तक यह किला उसकी राजधानी रहा। गोविन्दराज की मृत्यु के बाद उसका पुत्र बल्हनदेव उसका उत्तराधिकारी बना। इस समय तक मोहम्मद गौरी की मृत्यु हो चुकी थी। भारत पर स्वतंत्र शासक के रूप में कुतुबुद्दीन ऐबक का शासक था। इस समय राजपूताना पर तुर्कों का नियंत्रण कुछ ढीला हो गया था। एक बार पुन: राजपूतों ने अपनी दासता का अन्त करने का प्रयास

किया और वे सफल रहे। रणथम्भौर का दुर्ग जो तुर्कों के अधिकार में था । चौहानों ने तुर्कों से छीन लिया । चौहान सेना ने मारपीट कर तुर्क सेना को किले से बाहर निकाल दिया । वे स्वतंत्र शासक हो गये। बल्हणदेव ने रणथम्भौर की सीमाओं को बढ़ाकर अपने राज्य का विस्तार किया । परन्तु बल्हणदेव व उसके बाद उसका पुत्र प्रहलादनारायण अधिक लम्बे समय तक रणथम्भौर पर राज्य नहीं कर सके । प्रहलादनारायण शेर का शिकार करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुआ । उसके उपरांत वीरनारायण रणथम्भौर का शासक बना ।[320] [321] [322]

कुतुबुद्दीन ऐबक, आरामशाह व जालौर:

जालौर पर चौहान वंश का अधिकार था जिसके संस्थापक कीर्तिपाल ने 1178 ई. के कायन्द्रा के संघर्ष में मोहम्मद गौरी के विरूद्ध गुजरात के चालुक्य शासक कुमारपाल का साथ दिया था। कीर्तिपाल के पश्चात् समर सिंह शासक बना जिसने 1197 ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक की सेना जब गुजरात अभियान से वापस जालौर की सीमा से गुजर रही थी। तब समरसिंह ने मुस्लिम सेना से अपने राज्य की सुरक्षा की थी, जबकि पुरातन प्रबंध संग्रह के अनुसार कुतुबुद्दीन ऐबक गुजरात अभियान से 1197 ई.में कायन्द्रा के अपमान का बदला लेकर जालौर की सीमा से लौट वापस रहा था। तब जालौर के शासक उदयसिंह ने सिवाणा ग्राम के नजदीक मुस्लिम सेना से संघर्ष कर अपनी सीमा की सुरक्षा की थी। गोपीनाथ शर्मा ने उदय सिंह का कार्यकाल 1205 ई. से 1257 ई. बताया है।[323] तथा नैंणसी की ख्यात के अनुसार उदयसिंह का कार्यकाल वि.सं.1262 से वि.सं 1314 तक माना गया है।[324] अत: कुतुबुद्दीन ऐबक के समकालीन जालौर का शासक समरसिंह होगा।

जालौर की गद्दी पर समरसिंह के बाद उसका पुत्र उदयसिंह(1205-1257 ई.) बैठा। वि.सं.1319 के सुंधा पहाड़ी अभिलेख में उदयसिंह को नाडोल, जबालिपुर, जालौर, मांडव्यपुर(मण्डोर), वाग्भटमेर (बाड़मेर), सुराचंद रतह्हद खेड़, रामसेन्य श्रीमाल, रतनपुर, सत्यपुर (सांचौर) इत्यादि का शासक और "तुरुष्क के गर्व को दलन करने वाला" कहा गया है । पुरातन प्रबंध संग्रह और नैणसी की ख्यात से भी ज्ञात होता है कि उदयसिंह का मुसलमानों से संघर्ष हुआ था ।[325] उपर्युक्त विवरणों से यह निष्कर्ष निकला जा सकता है कि उदयसिंह ने आरामशाह अथवा उसके किसी सेनापति को पराजित किया होगा। इस बात का अस्पष्ट समर्थन समकालीन ग्रन्थ ताजुल मआसिर के इस कथन से भी होता है कि जालौर के निवासी एक-दो बार बड़े अनुचित काम कर चुके है ।[326] [327]

कुतुबुद्दीन ऐबक और बयाना:- गौरी के गजनी जाने के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक ने अनेक प्रान्तों पर सैनिक अभियान प्रारम्भ कर दिया। तिमनगढ़ के शासक कुँवरपाल, महाराज धर्मपाल के पुत्र ने बयाना के शासक दाहिमा राजा को पराजित करके इसे अपने अधिकार में कर लिया। फारसी स्रोतों के अनुसार जब कुतुबुद्दीन ऐबक ने कुँवरपाल पर आक्रमण किया तो वह भयभीत होकर वहाँ से भाग गया। जबकि स्थानीय स्रोतों के अनुसार कुँवरपाल ने बहादूरी के साथ कुतुबुद्दीन ऐबक का मुकाबला किया। युद्ध में अपनी पराजय देख कर युद्धोपरांत दुर्ग से पलायन कर गया। कुतुबुद्दीन ऐबक ने इस दुर्ग को अपने योग्य सेनापति बहाउद्दीन तुगरिल के अधिकार में रखा।[328]

बहाउद्दीन तुगरिल ने अपने शासन काल में बयाना का सबसे ज्यादा विकास किया। इसने उस समय देश के ही नहीं अपितु खुरासान तक के प्रतिष्ठित लोगों को बुला कर यहाँ बसाया। उन सबको उसने भूमि मकान और सामान उपलब्ध कराया। हसन निजामी इस आक्रमण के बारे में बताता है कि थंकर पहले मूर्ति पूजा और अन्यत मृत्यु का केन्द्र था, किन्तु अब यह वैभव का निवास बन गया है। बहाउद्दीन तुगरिल को दुर्ग में रहना पसंद नहीं आया तो इसने पहाड़ी के नीचे तक नगर स्थापित कर वहाँ पर अपना निवास बनाया। बाद में इसी नगर को सुल्तानकोट का नाम दिया गया। इसने बयाना के सुल्तानकोट को अपनी शक्ति का केन्द्र बयाना। वहीं सुल्तानकोट को बाज़ार, बावड़ी, मस्जिद आदि के साथ एक मुस्लिम बस्ती के रूप में विकसित किया। डॉ. सत्यकेतु विधालंकार तथा अवध विहारी पांडे का मानना है कि सन् 1195-96 में बयाना पर आक्रमण करने वाला मोहम्मद गौरी था । कुतुबुद्दीन ऐबक ने मात्र चार वर्ष शासन किया था । इसकी कोई औलाद नहीं होने के कारण दास अल्तमश को उत्तराधिकारी घोषित किया गया। जिसे बाद में शम्सुद्दीन इल्तुतमिश कहा गया।[329] [330]

कुतुबुद्दीन ऐबक और नागौर:- तराईन की विजय के बाद मोहम्मद गौरी ने अली नागौरी को नागौर का प्रान्तपति (मुक्ता) और काजी हमीदुद्दीन नागौरी को वहाँ का काज़ी नियुक्त कर दिया था। ये दोनों ही व्यक्ति कुतुबुद्दीन ऐबक और तथा आरामशाह अल्पकालीन शासनकाल में भी यथावत अपने-अपने पदों पर आसीन रहे।[331] अपने प्रारम्भिक काल से ही तुर्की राजनीति का केन्द्र नागौर बना रहा।

कुतुबुद्दीन ऐबक व गागरोन का शासक देवनसिंह:- देवनसिंह ने गागरोन पर बारह वर्ष तक पर शासन किया। चौहान कुल कल्पद्रुम में वर्णन है कि वि.सं.1262/1205 ई. में देवनसिंह ने दिल्ली के सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक की अधीनता स्वीकार कर ली थी। वि.सं. 1266/1209 ई. में उसे सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक से एक हजारी की

पदवी व सन्द मिली थी। इसके पश्चात गागरोन की गद्दी पर राव जीतराव (1270-1300 ई.) राव कल्याण (1300-1335 ई.) राव कड़वाराव (1335-1360 ई.) तक गागरोन पर शासन किया।[332]

कुतुबुद्दीन ऐबक व सिरोही व चंद्रावर्ती क्षेत्र :-

डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा के अनुसार चंद्रावर्ती जैसे प्राचीन व प्रसिद्ध नगर पर दिल्ली के सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक ने प्रथम बार चंद्रावर्ती पर आक्रमण कर उसको नष्ट-भष्ट कर दिया था।

2.5 शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (1211-1236 ई.) व राजपूताना

कुतुबुद्दीन ऐबक की 1210 ई. में मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी आरामशाह बना। लेकिन कुछ समय बाद ही जुद्ध के युद्ध में दिल्ली के निकट इल्तुतमिश और आरामशाह के मध्य युद्ध हुआ। जिसमें इल्तुतमिश विजय रहा और आरामशाह की हत्या कर दी गयी। इस प्रकार आरामशाह का शासन केवल आठ माह में समाप्त हो गया। इल्तुतमिश दिल्ली सल्तनत का सुल्तान बना। एक लम्बे समय तक उसे अपनी सत्ता को संगठित करने के लिए संघर्ष करना पड़ा। इस वजह से वह राजपूताना की तरफ विशेष ध्यान नहीं दे पाया। राजपूतों ने इस स्थिति का लाभ उठाकर अपनी शक्ति को पुन: संगठित करने तथा अपने राज्यों की सीमाओं को बढ़ाने का प्रयास किया। जालौर के चौहान शासक उदयसिंह ने तुर्क अधिकारियों को खदेड़कर अपने राज्य की सुरक्षा की। रणथम्भौर का दुर्ग, जो थोड़े समय के लिए तुर्कों के अधिकार में चला गया था, को चौहानों ने छीन लिया। इस समय रणथम्भौर पर चौहान शासक वल्लनदेव का शासन था। जिसने मण्डोर तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों तक अपना शासन स्थापित कर अपनी सत्ता का काफी विकास कर लिया था। कुछ दिनों तक अजमेर पर भी चौहानों का अधिकार बना रहा। अलवर और बयाना के क्षेत्रों में भी तुर्क शासन लड़खड़ाने लग गया था।[333] सुल्तान इल्तुतमिश को अपनी सत्ता के लिये सबसे बड़ा खतरा राजपूतों से ही था। अत: अपनी प्रारम्भिक कठिनाइयों से मुक्त होते ही इल्तुतमिश ने रणथम्भौर, मंडोर (मारवाड़) जालौर, बूंदी, अजमेर, सांभर, तहनगढ (बयाना), मेवाड़ आदि के राजपूतों के विरूद्ध दृढ़ और आक्रामक नीति अपनाने का निश्चय किया।

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश व जालौर:-

उदयसिंह चौहान, जो इल्तुतमिस का समकालीन और एक प्रबल शासक था। उसने अपने सीमावर्ती शासकों से संघर्ष कर, राज्य विस्तार की नीति का अवलम्बन किया था।[334] इल्तुतमिश के लिये ऐसी विस्तारवादी नीति

एक चुनौती थी। अत: सर्वप्रथम इल्तुतमिस ने जालौर के शासक उदयसिंह से निपटने के लिये 1215 ई. में राज्य के प्रसिद्ध व्यक्तियों रुकनुद्दीन हमजा, इज्जुद्दीन, बख्तियार नासिरुद्दीन मर्दानशाह, नासिरुद्दीन अली, बजरुद्दीन शौकरतिगी तथा अन्य व्यक्तियों के साथ रेगिस्तानी क्षेत्र में अनेक कष्ट सहन करता हुआ जालौर की ओर रवाना हुआ।[335] [336]

उदयसिंह ने दुर्ग की द्दढता को देखते हुए दुर्ग में ही रह कर इल्तुतमिश की सेना का प्रतिरोध करने का निश्चय किया। गोपीनाथ शर्मा के अनुसार उदयसिंह ने इल्तुतमिश की शक्ति को नीचे दिखाने का प्रयत्न किया।[337] विद्वान् इतिहासकारों ने किले के घेरे का विस्तृत वर्णन नहीं किया है। उन लेखकों के अनुसार उदयसिंह स्वयं को दुर्ग में घिरा देखकर क्षमा याचना का प्रयत्न करने लगा। उसके आत्मसमर्पण के उपरांत इल्तुतमिश ने उसके साथ समझौता कर लिया। दो सौ ऊँट एवं एक सौ घोड़े सुल्तान को प्रदान किये। बदले में सुल्तान ने उसका राज्य वापस कर दिया और तत्पश्चात वह राजधानी लौट गया।[338]

संधि की शर्तो और स्थिति को देखते हुए कहा जा सकता है कि उदयसिंह पराजित नहीं हुआ था वरन् दोनों पक्षों में समझौता किया गया था। कदाचित रेगिस्तान में इल्तुतमिश की सेना को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ रहा था। उदयसिंह को भी दुर्ग में कष्ट सहन करना पड़ रहा होगा। अत: दोनों पक्षों ने समझौता कर लिया। तुच्छ उपहार लेकर सुल्तान द्वारा दुर्ग को लौटा देना इसका सबसे बड़ा प्रणाम है। यदि उदयसिंह पराजित हुआ होता अथवा आत्मसमर्पण करता तो समझौते की शर्ते अपेक्षाकृत कठोर होती और उसे अत्यधिक भेंट देने अथवा कर देने के लिये विवश किया जाता। इल्तुतमिश के जीवन की यह एकमात्र घटना है। जब एक हिन्दू शासक को उसका राज्य वापस कर दिया। यह इस बात का प्रमाण है कि इल्तुतमिश अपने उद्देश्य में अंतत: पराजित होकर लौटा।

विषम परिस्थितियों में उदयसिंह ने अवश्य समझौता कर लिया था। किन्तु 6 वर्ष बाद ही 1222 ई. में जब इल्तुतमिश नागदा (मेवाड़)[339] पर आक्रमण करने के पश्चात् गुजरात की और बड़ा तो उदयसिंह मारवाड़ प्रदेश के अन्य शासकों सोमसिंह, धारासिंह के साथ धोलका के वीरधवल और उसके मंत्री वस्तुपाल के साथ संघ बना कर इल्तुतमिश से संघर्ष को तैयार हो गया।[340] परन्तु इल्तुतमिश इस संघ से बिना मुकाबला किये ही अपनी राजधानी लौट गया क्योंकि 1221 ई. में मंगोल नेता चंगेज खाँ के भय से ख्वारिज्म का शाह जलालुद्दीन माँगबरनी इल्तुतमिश के साम्राज्य की पश्चिमोत्तर सीमा पर पहुँच कर, उसके राज्य के लिए संकट पैदा कर दिया

था।[341] इस प्रकार इल्तुतमिश अपने पूरे राज्यकाल में जालौर के शासक उदयसिंह के साथ कोई निर्णायक विजय नहीं प्राप्त कर सका।

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश व रणथम्भौर:-

इल्तुतमिश के समकालीन रणथम्भौर के शासक गोविन्दराज का पुत्र बल्हणदेव 1215-1217 ई. और उसका पुत्र प्रहलाद नारायण 1217-1220 ई. और उसके उपरांत वीरनारायण 1220-1226 ई. रणथम्भौर का शासक बना। डॉ. दशरथ शर्मा (राजस्थान थ्रू दी एजेज खंड 1, पृ. 615) के अनुसार बल्हणदेव और प्रहलाद नारायण ने दिल्ली सल्तनत की समान अधीनता की नीति को जारी रखा। लेकिन रणथम्भौर और दिल्ली सल्तनत के मध्य सम्बन्धों में परिवर्तन तब आया जब इल्तुतमिश के द्वारा प्रहलाद नारायण के पुत्र वीरनारायण को मार डाला व रणथम्भौर पर अधिकार कर लिया।[342] [343] उसके अल्पवयस्क होने के कारण उसका चाचा वाग्भट उसका संरक्षक बना।[344] इल्तुतमिश को अपनी आंतरिक समस्याओं में उलझा देखकर वीरनारायण ने अपने को स्वतंत्र करनें का प्रयत्न किया। इस कारण इल्तुतमिश ने रणथम्भौर के विरूद्ध 1226 ई. सैनिक अभियान किया ।[345] [346] हसन निजामी केवल विजय का उल्लेख करता है।[347] तबकाते-ए-नसीरी के अनुसार (रैवती, मेजर एच.जी.,तबकात-ए-नसीरी,पृ.610-611.) भगवान की कृपा से 1226 ई. में रणथम्भौर के सुदृढ़ दुर्ग पर अधिकार हो गया। जिसे लेने में 70 बादशाह असफल हो गये थे।[348]

हम्मीरमहाकाव्य के अनुसार जब वीरनारायण कछवाहा राजकुमारी से विवाह करने अम्रपुरि गया। तब मार्ग में ही सुल्तान इल्तुतमिश से मुठभेड़ हो गयी। फलस्वरूप वीर नारायण रणथम्भौर आकर उसका मुकाबला करने लगा। इल्तुतमिश जब शक्ति से दुर्ग को लेने में असफल रहा। तब उसने वीरनारायण से मित्रता करके दिल्ली बुलाया। वाग्भट के विरोध के बावजूद वह दिल्ली चला गया और वाग्भट नाराज होकर मालवा चला गया। मुसलमानों ने धोखे से वीर नारायण का दिल्ली में ही वध करवा दिया और फिर रणथम्भौर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया।[349] [350]

हम्मीरमहाकाव्य, जगदीश सिंह और हेग के इस कथन पर पूर्णयता विश्वास नहीं किया जा सकता कि इल्तुतमिश ने वीरनारायण को धोखे से दिल्ली बुलाकर उसका वध कर दिया होगा। लेकिन मिनहाज के इस कथन से की "किसी प्रकार" या "भगवान की कृपा" से रणथम्भौर के दुर्ग पर अधिकार हो गया। इससे यह अनुमान लगाया सकता है कि दुर्ग को जीतने के लिए इल्तुतमिश को छल-कपट करना पड़ा होगा। वीरनारायण को दिल्ली

बुलाकर मित्रता का भुलावा देना कोई बड़ी बात नहीं थी क्योंकि उसके पूर्वज भी दिल्ली के अधीनस्थ शासक रहे चुके थे।

किन्तु इस तर्क पर विश्वास करना एकदम तर्क-संगत नहीं होगा। फारसी साहित्यिक स्रोत में इस प्रकार की किसी घटना का विवरण प्राप्त नहीं होता है। जिस समय इल्तुतमिश ने राजपूताने में प्रवेश किया। उस समय उसके पास एक विशाल सेना थी। वह अपने खोये हुए प्रान्तों को पुन: जीतने का दृढ़ संकल्प लेकर निकला था। 1228 ई. में जालौर अभियान, मण्डोर अभियान और 1236 ई. में ग्वालियर विजय आदि से लगता है कि वीरनारायण ने इल्तुतमिश से पराजय आसानी से स्वीकार कर ली होगी। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि रणथम्भौर दुर्ग पर इल्तुतमिश का अधिकार हो गया था।

लगभग एक दशक तक चौहानों को अपने पैतृक राज्य रणथम्भौर से वंचित रहना पड़ा। जब 1236 ई. में इल्तुतमिश की मृत्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकारियों का अराजकतापूर्ण शासन प्रारम्भ हुआ तो मालवा में निवास के रहे वाग्भट ने अपने पैतृक राज्य पर पुन: विजय का सुनहरा अवसर देखा और मालवा से प्रस्थान कर रणथम्भौर को घेर लिया। कुछ समय पश्चात उसने रणथम्भौर दुर्ग पर अधिकार कर लिया।[351]

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश व मण्डोर:

जोधपुर शहर के उत्तर में 6 मील पर मारवाड़ की पुरानी राजधानी मंडोवर है। प्राचीन काल में मांडव्य ऋषि इस पहाड़ पर तपस्या करते थे। जिससे इसका नाम मांडव्यपुर पड़ा। कालान्तर में इसी का अपभ्रंश मंडोवर प्रसिद्ध हुआ। मंडोवर से तीन मील दूर मण्डलेश्वेर महादेव का एक मन्दिर है उसमें वि.सं.1788 का एक शिलालेख है। कहा जाता है इसी मंडोवर के पास मांडव्य आश्रम था और यहाँ ही मेड़ता नगर के प्राचीन अधिपति परिहार राजा तात ने अपने छोटे भाई भोज को राजपाट सम्भलाकर तपस्या की थी। अंतिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान तृतीय के समकालीन राव नाहरराव परिहार की सातवीं पीढ़ी में इंद्रा परिहार हुआ। जिसके वंशज इंद्रा कहलाये। इन्हीं इंद्रा परिहारों से वि.सं. 1451 में राठौड़ों के हाथ मण्डोर लगा।[352] पंडित विश्वेश्वर रेऊ के अनुसार मारवाड़ का इतिहास, भाग प्रथम, पृष्ट 15 1217 ई. में (वि.सं.1274) में लाहौर के सूबेदार नासिरुद्दीन महमूद ने मण्डोर पर अधिकार कर लिया। परन्तु कुछ ही महीनों में वह उसके हाथ से निकल गया। इस पर उसके पिता शम्सुद्दीन अल्तमश ने 1227 ई. में उसे दुबारा जीत लिया।[353] परन्तु शोधार्थी को किसी भी मौलिक ग्रन्थ में नासिरुद्दीन महमूद द्वारा मण्डोर पर विजय का उल्लेख नहीं मिला।

इल्तुतमिश के मण्डोर आक्रमण 1227 ई.[354] के समय मण्डोर पर किस का शासन था, यह स्पष्ट नहीं है। वि.सं.1319 के सुंधा पहाड़ी अभिलेख में जालौर के शासक उदयसिंह को मण्डोर का शासक कहा गया है, लेकिन इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि इल्तुतमिश के आक्रमण से पूर्व मण्डोर उदयसिंह के अधिकार में था। दशरथ शर्मा (ई.सी.डी. पृ.167.) के अनुसार जालौर के चौहान शासक उदयसिंह ने आराम शाह के समय नाडोल के साथ मण्डोर को भी मुसलमानों से जीत लिया था। यदि मण्डोर पर इल्तुतमिश के आक्रमण से पूर्व ही उदयसिंह का शासन था, तो वह रणथम्भौर विजय से प्रोत्साहित होकर इल्तुतमिश जालौर-राज्य के कुछ भू-भाग पर अधिकार करना चाहता था, क्योंकि 1215 ई. के जालौर अभियान के समय उसे 100 ऊँट और 20 घोड़े से संतोष करना पड़ा था।[355] मिन्हाज के अनुसार (तबकात-ए-नासिरी, रैवटी, भाग 1, पृ. 611) " भगवान की कृपा से" उस किले पर अधिकार हो गया। इससे अनुमान लगया जा सकता है कि मण्डोर[356] की रक्षक सेनाओं ने इल्तुतमिश की सेना से जमकर लोहा लिया होगा।[357] इल्तुतमिश का मंडोर पर अधिकार भी क्षणिक ही सिद्ध हुआ। उसकी मृत्यु के बाद उसके दुर्बल उत्तराधिकारियों के शासन काल में 1242 ई. के पूर्व ही सोनगरा चौहानों ने मण्डोर पर पुन: अधिकार जमा लिया। इसका स्पष्ट उल्लेख वि.सं.1319 के सुंधा पहाड़ी अभिलेख में है। दशरथ शर्मा के अनुसार 1242 ई. तक मुसलमानों के अधिकार में रहने के बाद मंडोर पुन: चौहानों के अधिकार में आ गया।

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश व मेवाड़ : नागदा-मेवाड़ में सुल्तान की पराजय:-

मेवाड़ में गुहिलवंश का राज्य लगभग छठीं शताब्दी से चला आ रहा था।[358] मेवाड़ प्रदेश अब तक मुस्लिम आक्रमण से सुरक्षित ही रहा था। इल्तुतमिश का समकालीन मेवाड़ का शासक जैत्रसिंह था। अनिल चन्द्र बनर्जी के अनुसार इसका शासन काल 1213 ई. से 1236 ई. तक था।[359] अपने प्रारम्भिक काल में गुहिलवंशी राजाओं की राजधानी नागदा में थी।

गौरी शंकर हीराचंद ओझा के अनुसार गुजरात के शासक वीरधवल के मंत्री वस्तुपाल व तेजपाल ने चाहा था कि किसी प्रकार गुजरात और मेवाड़ के सम्बंध अच्छे हो जाये। जिससे बढ़ती हुई तुर्कों की ताकत इन राज्यों के लिए घातक ना हो। परन्तु इस प्रकार के संधि प्रस्ताव को जैत्रसिंह ने अस्वीकार कर दिया था। समस्त गैर-मुस्लिम स्रोतों में जैत्रसिंह से हारने वाले मुस्लिम शासक का नाम नहीं लिखा है। हम्मीरमदमर्दन में "भीलच्छिकार" एवं अभिलेखों में तुरुष्क, सुरत्राण, म्लेच्छाधिनाथ ही लिखा है। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के मतानुसार म्लेच्छाधिनाथ अमीरे शिकार का संस्कृत का रूप है। जो इल्तुतमिश को ऐबक द्वारा दी गई उपाधि थी।[360] [361]

इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम मेवाड़ प्रदेश पर आक्रमण करने का प्रयास किया। गोपीनाथ शर्मा ने भी लिखा है कि इल्तुतमिश नामी एतद् कथित दास ने मेवाड़ पर अपना अधिकार स्थापित की योजना बनाई।[362] इसके फलस्वरूप उसकी सेना सुदूर नागदा तक पहुँच गयी। नागदा को नष्ट किया गया और आस-पास के बस्तियों को हानि पहुँचायी गयी। परन्तु जैत्रसिंह के द्वारा स्थान-स्थान पर इल्तुतमिश की सेना का विरोध किया गया। चिरवा के शिलालेख के अनुसार तलारक्ष योगराज का जेष्ठ पुत्र भुताला की लड़ाई इल्तुतमिश की सेना से लड़कर काम आया।[363] जैत्रसिंह ने इस तरह प्रतीत होता है कि इल्तुतमिश को भागने के लिय विवश किया। चिरवा और धाधसे के शिलालेख में इस आक्रमण की उपलब्धियों के सम्बंध में यह लिखा है कि म्लेच्छों का स्वामी भी जैत्रसिंह का मानमर्दन ना कर सका।[364] इस लेख की पुष्टि समरसिंह के आबू के शिलालेख से होती है। जिसमे यह वर्णन है कि जैत्रसिंह उस तुरुष्क रूपी समुद्र का पान करने के लिए अगस्त्य के समान है।[365] मुस्लिम स्रोतों में इल्तुतमिश का मेवाड़ के गुहिल राज्य पर आक्रमण का उल्लेख नहीं है।

तथापि समकालीन संस्कृत ग्रन्थ हम्मीरमदमर्दन में इसका उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार मुस्लिम अधिपति ने मेवाड़ प्रदेश पर आक्रमण किया और उसकी राजधानी तक पहुँच उसे नष्ट-भष्ट कर दिया। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी। वहाँ का शासक जयतल(जैत्रसिंह) कुछ नहीं कर सका। जब मुस्लिम सेना वहाँ संहार में व्यस्त थी। तभी उसे गुजरात के वीरधवल का सेना के साथ आगमन का समाचार सुनाई पड़ा। मुस्लिम सेना भयाक्रांत होकर भागने लगी। वीर धवल के आगमन के समाचार से मेवाड़ वालों में साहस बंध गया। उन्होंने भागती हुई मुस्लिम सेना का पीछा किया। वीरधवल के नाम का उच्छारण-मात्र से तुर्क सेना को भगाने का श्रेय अपने स्वामी को दिया जाए। यह अस्वाभाविक लगता है परन्तु यदि स्थिति को देखा जाए तो यह पूर्णतया असंगत मालूम होता है कि वीरधवल की, जिसके साथ मैत्री करने में भी जैत्रसिंह अपनी मान हानि समझता था,[366] इसका स्तर एक सामंत के रूप में था, दुहाई का मेवाड़ पर ऐसा प्रभाव पड़े कि तुर्क सेना उसके नाम के भय से भाग खड़ी हो। वास्तविक घटना का स्वरूप चिरवा, धाधसा, तथा आबू के शिलालेखों से स्पष्ट होता है। इसी को आधार मानकर कर डॉ. ओझा व डॉ. शर्मा की भी यही मान्यता है कि जैत्रसिंह ने मेवाड़ से तुर्की सेना को भगाया था।[367] [368] [369]

इन समसामयिक लेखों से स्पष्ट है कि तुर्कों का यह मेवाड़ प्रवेश एक क्षणिक चिंगारी थी जो स्थायी रूप से मेवाड़ पर कोई प्रभाव स्थापित ना कर सकी। अलबत्ता इस प्रारम्भिक प्रवेश का प्रभाव भावी तुर्कों की नीति पर पड़ा जिससे राजस्थान के कई सुदृढ़ शक्ति के केन्द्रों को हानि उठानी पड़ी। इस युद्ध के सम्बंध में फारसी

तवारीखों में उल्लेख ढूंढना व्यर्थ है, क्योंकि फारसी तवारीखों के लेखों ने, जो विजय के इतिहास लिखने में अधिक रूचि रखते थे, तुर्की सेना के पराभवों के उल्लेख की उपेक्षा की, परन्तु स्थानीय और आस-पास के प्रदेशों के समसामयिक साहित्य के पर्यवेक्षण हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि इल्तुतुमिश कालीन यह अभियान परिक्षणार्थ अपनाया गया था। जिसमे तुर्की सेना को पग-पग पर आपत्ति का सामना करना पड़ा। डॉ. दशरथ शर्मा की भी यही मान्यता है कि जैत्रसिंह के शौर्ये ने तुर्की सेना को तो पीछे हटाया, परन्तु मेवाड़ को तथा विशेष रूप से नागदा को जो मेवाड़ की राजधानी थी। इस अभियान से हानि उठानी पड़ी।[370]

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश व नागौर:-

ए.बी.एम्. हबीबउल्ला के दी फाउंडेशन ऑफ़ मुस्लिम रूल इन इंडिया के अनुसार जोधपुर राज्य में स्थित नागौर की शासन व्यवस्था कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के बाद अस्तव्यस्त हो गयी थी। वह इल्तुतमिश के शासन काल में ठीक हो गयी थी।[371] शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के सिंहासनोहण के समय नागौर प्रान्त का मुक्ता या प्रान्तपति मलिक इज्बुद्दीन अली नागौरी और न्यायधीश/काज़ी हमीदुद्दीन नागौरी थे और सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के प्रारम्भिक शासनकाल भी ये इन पदों पर आरूढ़ रहे, किन्तु इसके कुछ समय उपरांत इल्तुतमिश ने आवश्यकता वश इज्बुद्दीन अली नागौरी के स्थान पर मलिक करीमुद्दीन हमजह को नागौर का नया प्रान्तपति नियुक्त किया।[372] काज़ी हमीदुद्दीन नागौरी अपने पद पर बने रहे। इल्तुतमिश उनका बड़ा आदर करता था। सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम अपने टंकों पर टकसाल का नाम लिखने की प्रथा शुरू की थी।[373] उसके शासन काल में सिक्के ढ़ाले जाने वाले नगरों में नागौर भी एक नगर था। नागौर में जो सिक्के डाले गये। उनमें सोने का एक अद्वितीय सिक्का भी था। यह सिक्का इल्तुतमिश के सिंहासन्रोहण के द्वितीय वर्ष 1211 ई. में डाला गया था। इसके अतिरिक्त अन्य अनुपम सिक्का चाँदी का था जो नागौर में ढ़ाला गया था।[374] [375] इस काल में नागौर में सिक्कों का डाला जाना इस बात का समुचित प्रणाम है कि इल्तुतमिश के शासन काल में नागौर दिल्ली सल्तनत के प्रमुख प्रान्तों में से एक था। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि जब 36वें अब्बासी खलीफा अलमुस्तानसिर बिल्लाह के दरबार के दूतों ने बहुत सी शानदार खिलअतें तथा मूल्यवान उपहार, जो खलीफा के द्वारा इल्तुतमिश, उसके मलिकों, पुत्रों तथा सेवकों के लिए भेजे गये थे, लेकर हिंदुस्तान की और प्रस्थान किया तब वे सर्वप्रथम अगस्त,1228 ई. में नागौर तदुपरान्त फरवरी 1229 ई. में राजधानी दिल्ली पहुंचे।[376]

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश व बयाना:-

कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के बाद राजपूताना के शासकों ने अपने को एक बार पुन: स्वतंत्र राज्य घोषित कर दिया। इस क्रम में बयाना के शासक ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया। शम्सुद्दीन इल्तुतमिश ने इन्हें दुबारा मुस्लिम शासन के अंर्तगत रखने के वास्ते सन् 1228 ई. में पर चढ़ाई की और उससे अधीनता स्वीकार कराई। मलिक तयासी को जो बयाना और ग्वालियर का मलिक था, को 1233 में कालिंजर अभियान में लिए इल्तुतमिश द्वारा निर्देशन दिया गया था। [377] [378] [379]

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश ने बयाना पर अधिकार करने के बाद, सबसे पहले उषा मंदिर कहलाने वाले विशाल मंदिर भवन पर नजर डाली। जो समय बयाना में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण, भव्य, वृहत और कलात्मक देवालय था जिसकी दीवारों पर सोने चाँदी की परतें लगी हुई थी। उषा मन्दिर को नष्ट कर स्थानीय मुसलमानों के लिए मस्जिद के रूप में परिवर्तित कर दिया।

2.6 शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के उत्तराधिकारी व राजपूताना (1236-1266 ई.)

इन्हीं परिस्थितियों में शम्सुद्दीन इल्तुतमिश की मृत्यु 1236 ई. में हो गयी। इसके बाद कमश: उसकी पाँच संतानों- रुकनुद्दीन फिरोजशाह 1236 ई. रजिया सुल्तान 1236-1240 ई. मुईनुद्दीन बहरामशाह 1240-1242 ई. सुल्तान अल्लाउद्दीन मसूदशाह 1242-1246 ई. नासीरुद्दीन महमूद 1246-1266 ई. का दुर्लब शासन प्रारम्भ हुआ। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यही रही कि दिल्ली सुल्तानों द्वारा विजित प्रदेशों में छोटे-बड़े राजपूताना के राज्यों के शासकों का निरन्तर विद्रोह दिल्ली शासकों के लिए सर दर्द बना रहा। इसी कारण से ये सुल्तान कोई नई महत्वपूर्ण विजय प्राप्त नहीं कर सके।

रुकुनुद्दीन फिरोजशाह व रजिया व रणथम्भौर:-

वीरनारायण को मार कर शम्सुद्दीन इल्तुतमिश ने 1226 ई. में रणथम्भौर पर अधिकार कर लिया था। वीरनारायण से नाराज होकर उसका चाचा वाग्भट मालवा चला गया था। इल्तुतमिश के कहने पर मालवा के राजा ने वाग्भट को मारने का प्रयत्न किया, किन्तु वह वाग्भट के हाथों मारा गया। मालवा का राज्य वाग्भट के हाथों में आ गया। इल्तुतमिश के राज्यकाल में रणथम्भौर पर उसका अधिकार बना रहा। लेकिन उसकी मृत्यु के

बाद उसके उत्तराधिकारी उस पर अपना अधिकार नहीं रख सके। रुकुनुद्दीन फिरोजशाह के अराजकतापूर्ण शासन की परिस्थितियों का वाग्भट पूरा फायदा उठाना चाहता था।

अत: रुकुनुद्दीन फिरोजशाह के शासन काल में वाग्भट ने रणथम्भौर पर आक्रमण कर दिया। जिससे दुर्ग में निवास कर रहे अमीर और रक्षक संकट में पड़ गये। इसी समय अपने भाई रुकुनुद्दीन फिरोजशाह को हटा कर रजिया दिल्ली गद्दी पर आसीन हुई। इस समय रणथम्भौर की संकटपूर्ण स्थिति को देखकर रजिया ने नायब कुतुबुद्दीन हुसैन गौरी को रणथम्भौर अभियान पर भेजा। कुतुबुद्दीन हुसैन गौरी ने रणथम्भौर पर आक्रमण कर दिया। जिससे दुर्ग में फसें अमीर और रक्षकों को दुर्ग से बाहर निकलने का अवसर मिल गया, किन्तु वाग्भट के नेतृत्व में चौहानों को अपने पैतृक दुर्ग पर लगभग 1236 ई. में पुन: अधिकार हो गया। कुतुबुद्दीन हुसैन गौरी अन्न-पानीदि की कमी से पीड़ित होकर आस-पास के स्थलों आदि को बंजर कर लगभग तीन महीने बाद वापस दिल्ली लौट गया। हम्मीरमहाकाव्य के अनुसार वाग्भट रणथम्भौर का स्वामी हुआ। उसने वह 12 वर्ष तक अर्थात 1248 ई. तक राज्य किया। ये दिल्ली सल्तनत के खिलाफ नित्य संघर्ष के वर्ष थे। इस दौरान दिल्ली पर रजिया सुल्तान 1236-1240 ई.मुईनुद्दीन बहरामशाह 1240-1242 ई. सुल्तान अल्लाउद्दीन मसूऊद शाह (1242-1246 ई. नासिरुद्दीन महमूद 1246-1266 ई. का शासन था।[380] [381] [382] [383]

रणथम्भौर विजय की कथा प्रायः सत्य है । नयनचन्द्र ने षर्पर शब्द का प्रयोग अनेकश: मुगलों के लिए किया है । वि.सं.1260 के आसपास मुगल-तुर्क ख्वारिज्मी आदि भारत आ चुके थे, किन्तु इनमें से शायद ही कोई रणथम्भौर तक पहुँचा हो । अत: इस दुर्ग की विजय का वास्तविक श्रेय स्वयं वाग्भट को है । मुसलमान इतिहासकार स्वीकार करते है कि बुरी तरह घिर जाने तरह के कारण रजिया के राज्य के प्रारम्भ में मुसलमानों को रणथम्भौर छोड़ना पड़ा था। वाग्भट एक महान निर्माणकर्ता था । उसने झाझन में एक शानदार मंदिर का निर्माण करवाया था । मुस्लिम इतिहासकरों ने मुस्लिम विरोध की निंदा ही नहीं बल्कि उसकी प्रसंशा भी व्यक्त की है।

नासिरुद्दीन महमूद (1246-1266 ई.) व रणथम्भौर:-

नासिरुद्दीन महमूद के शासनकाल में (1246-1266 ई.) रणथम्भौर पर पुन: अधिकार स्थापित करने के लिए दो अभियान उलुग खाँ (बलबन) और एक अभियान मलेकन नायब ऐबक के नेतृत्व कुल तीन अभियान किये गये।

प्रथम आक्रमण:- हम्मीर महाकाव्य के अनुसार वाग्भट ने रणथम्भौर पर 12 वर्षों अर्थात 1236 -1248 ई. तक शासन किया। वाग्भट के बाद रणथम्भौर की गद्दी पर उसका पुत्र जैत्रसिंह आसीन हुआ। जिसका नाम मिनहाज ने तबकात-ए-नासिरी, रैवटी, वॉल्यूम 2, पृ. 818. में नाहरदेव[384] लिखा है। हम्मीर महाकाव्य के अनुसार जैत्रसिंह ने 1282 ई. और प्रबंधकोस के अनुसार 1285 ई. तक रणथम्भौर का शासक रहा। जैत्रसिंह की नीति कई तरीकों से वाग्भट की तरह थी। उसने दिल्ली के साथ-साथ मालवा से भी संघर्ष जारी रखा।[385]

इस समय दिल्ली पर सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद का शासन था। वह चाहता था किसी तरह रणथम्भौर को दिल्ली सल्तनत में मिलाकर पुन: उस पर अधिकार किया जावे। इसके लिए उसने उलुग खाँ (बलबन) को फरवरी-मार्च 1249 ई. में रणथम्भौर अभियान पर भेजा। बलबन ने वहाँ पहुँचकर दुर्ग को घेर लिया। इस समय रणथम्भौर का शासक जैत्रसिंह मिनहाज के अनुसार नाहरदेव था। जिसके बारे में जानकारी 1288 ई. के शिलालेख से प्राप्त होती है। उसने अपने सैनिक अभियानों में राजा जयसिंह को पराजित किया। कुर्मराज तथा कर्करालगिरी के राजा को मारा। झम्फाई घाटे में उसने मालवा के राजा के सैकंडों वीर सेनानायकों को पराजित करके रणथम्भौर के दुर्ग में बंदी बना लिया।[386] [387] तबकात-ए-नासिरी के अनुसार रणथम्भौर को हिन्दुस्तानी राज्यों में सबसे बड़ा समझा जाता था।[388] इस चौहान शासक के नेतृत्व में हिन्दू लोगों ने मुसलमानों का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया। इस द्विपक्षीय संघर्ष में नासिरुद्दीन सेना का एक प्रसिद्ध व्यक्ति मलिक बहाउद्दीन ऐबक ख्वाजा मार्च 1249 ई.को मारा गया। मिन्हाज इस स्थान पर अत्यधिक हिन्दुओं के मारे जाने और उलुग खाँ द्वारा अपर सम्पति पाने का उल्लेख करता है। निश्चियत तौर पर यह सम्पति दुर्ग के बाहर निवास करने वाले जन साधारण को लूट कर प्राप्त की गयी होगी। तथापि उलुग खाँ रणथम्भौर के किले को लेने में असफल रहा। लगभग दो माह के प्रयास के बावजूद उलुग खाँ की सेना मई 1249 ई. में वापस दिल्ली लौट गयी। इस प्रकार शक्तिशाली सेनापति बलबन के नेतृत्व में यह रणथम्भौर का अभियान पूर्ण रूप से असफल रहा।[389]

द्वितीय आक्रमण:- नासिरुद्दीन महमूद के शासन काल में रणथम्भौर पर दूसरा आक्रमण उलुग खाँ (बलबन) के नेतृत्व में सितम्बर 1253 ई. से नवम्बर 1254 ई. में हुआ। इस अवधि के दौरान उलुग खाँ नागौर गया था। उसने रणथम्भौर, चित्तौड़ व बूंदी अभियान की योजना बनाई। इस समय भी रणथम्भौर का शासक नाहरदेव/जैत्र सिंह था। मिनहाज के अनुसार इस बार जैत्रसिंह ने दुर्ग से बाहर निकल कर दुर्ग की तलहटी में बलबन का मुकाबला किया। उलुग खाँ की विजय और लूट की सम्पति प्राप्त करने का उल्लेख करता है। रणथम्भौर दुर्ग की विजय का उल्लेख नहीं करता है। इससे ज्ञात होता है कि जैत्रसिंह अपने विशाल सैन्य बल पर

विश्वास कर मैदानी युद्ध में दिल्ली सल्तनत की सेना को पराजित कर निर्णायक विजय की योजना बना रहा था किन्तु मैदानी भागों में शाही सेना द्वारा पराजित होने अथवा उसके प्रतिरोध में अपने को असमर्थन पाकर पुन: दुर्ग में रहकर निश्चय के साथ संघर्ष करने के लिए वह ससैन्य दुर्ग में वापस आ गया। इस प्रकार उलुग खाँ द्वारा दुर्ग लेने का यह द्वितीय अभियान भी असफल ही रहा। चित्तौड़ और बूंदी अभियान को स्थगित करके वह वापस नागौर लौट गया।[390]

तृतीय अभियान:- सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के शासन काल में 1259 ई. में मलेकुन नायब ऐबक को पुन: रणथम्भौर पर अधिकार करने के लिय भेजा गया।[391] इसके बाद इतिहासकार मिनहाज द्वारा आगे घटना का कोई उल्लेख नहीं करता है। जावेद अनवर ने अपनी रचना ए हिस्ट्री ऑफ़ रणथम्भौर में लिखा है कि राजपूत सेना ने शाही सेना का प्रतिरोध किया। अत: मलेकुन नायब ऐबक को असफल होकर वापस लौटना पड़ा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मिनहाज के द्वारा आगे की घटना पर मौन रहना और जावेद अनवर के वर्णन से स्पष्ट होता है कि नासिरुद्दीन महमूद के शासन काल में किया गया तृतीय अभियान भी असफल ही रहा।

इस प्रकार रणथम्भौर को बचाने का एक प्रयास और उस पर अधिकार करने के लिए तीन सैन्य अभियानों की असफलता ने गुलाम शासकों के हौसलों को इतना पस्त कर दिया था कि खिलजी वंश का शासन प्रारम्भ होने से पूर्व दिल्ली सल्तनत के किसी शासक ने रणथम्भौर के विरूद्ध सैनिक अभियान करने का साहस नहीं किया।

नासिरुद्दीन महमूद और नागौर-मलिक हज्जुद्दीन बलबन-ए-किशलू खाँ का नागौर में विद्रोह:

जिस समय नासिरुद्दीन महमूद दिल्ली सल्तनत का स्वामी बना। जिस समय नागौर प्रान्त मलिक हज्जुद्दीन बलबन-ए-किशलू खाँ, जिसके अधिकार में इस समय मण्डोर, अजमेर तथा मुल्तान के प्रान्त भी थे। राजदरबार में उपस्थित होकर प्रार्थना की, कि उसे मुल्तान के साथ-साथ उच्छ भी प्रदान कर दिया जाये। सुल्तान ने उसकी ये प्रार्थना इस शर्त पर स्वीकार कर ली कि वह शिवालिक और नागौर पर से अपना अधिकार छोड़ दे ताकि वे प्रान्त अन्य मलिकों को प्रदान कर दिये जाये। उपरोक्त शर्त के अनुसार मलिक हज्जुद्दीन बलबन-ए-किशलू खाँ ने उच्छ पर तो अधिकार कर लिया लेकिन वह शिवालिक और नागौर प्रान्तों को छोड़ने के लिये तैयार नहीं हुआ। इस प्रकार उसने सुल्तान की आज्ञा को ना मानकर अपने व सुल्तान के बीच हुए शर्तो की अवहेलना करके 1241 ई. में नागौर में विद्रोह कर दिया। परिणामस्वरूप सुल्तान ने उलुग खाँ तथा कुछ अन्य मलिकों के साथ शाही

सेना लेकर दिल्ली से नागौर की और प्रस्थान किया। जब शाही सेना नागौर पहुँची तो नागौर का प्रान्तपति मलिक हज्जुद्दीन बलबन-ए-किशलू खाँ विशेष रूप से अधीनता प्रकट करते हुए सुल्तान की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने नागौर पर से अपना अधिकार छोड़ दिया। इस प्रकार अब नागौर पर सुल्तान का आधिपत्य स्थापित हो गया। मलिक हज्जुद्दीन बलबन-ए-किशलू खाँ को उच्छ भेज दिया किन्तु अवध बिहारी पाण्डेय के अनुसार उसे नागौर से हटाकर बदायूं[392] भेज दिया जो सही नहीं है। इसके बाद सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद ने मलिक सेफुद्दीन ऐबक-ए-किशली खाँ को जो उलुग खान-ए-आजम का सगा भाई था, को नागौर का प्रान्तपति निर्युक्त किया।[393]

नासिरुद्दीन महमूद व मेवाड़ और बूंदी:-

सुल्तान इल्तुतमिश के शासन काल में मेवाड़ और बूंदी के विरूद्ध सैनिक अभियान ले जाया गया था, किन्तु दोनों अभियान असफल ही रहे। इल्तुतमिश के उत्तराधिकारियों के शासन काल में फरिश्ता को छोड़कर किसी अन्य मुस्लिम लेखक ने मेवाड़ और दिल्ली के बीच संघर्ष का उल्लेख नहीं किया है। फरिश्ता का कहना है कि जब 1247 ई. में नासिरुद्दीन महमूद के शासन काल में उसके भाई जलालुद्दीन को उसकी अक्ता कन्नौज से जब दिल्ली बुलाया गया। वह अपनी जीवन की सुरक्षा को देखते हुए अपने सेवकों के साथ चित्तौड़ की पहाड़ियों में भाग गया। सुल्तान ने उसका पीछा किया। परन्तु आठ महीनों के प्रयास के बावजूद वह असफल होकर वापस आ गया।[394] एक अन्य स्थान पर फरिश्ता लिखता है कि 1256 ई. में अवध के प्रान्तपति कुतलुग खाँ विद्रोह करने के उपरांत जीवन की सुरक्षार्थ चित्तौड़ भाग गया। वजीर बलबन ने कुतलुग खाँ के निवास स्थल को नष्ट कर दिया, परन्तु उसे पकड़ने में असफल होकर दिल्ली वापस लौट आया।[395]

फरिश्ता के उपर्युक्त कथन का किसी भी अन्य मुस्लिम इतिहासकार द्वारा समर्थन नहीं किया है। फरिश्ता द्वारा वर्णित दूसरे घटना क्रम के सम्बंध में तो मिनहाज ने स्पष्टता कहाकि कुतुलुग खाँ ने भागकर सन्तूर की पहाड़ियों में शरण ली थी।[396] इस प्रकार फरिश्ता के कथन पर विश्वास करना कठिन है। अनेक आधुनिक लेखकों ने फरिश्ता के कथन का उल्लेख अपनी पुस्तक और लेखों में किया है। उसमें से कुछ लेखकों ने तो इसके समर्थन के लिये मेवाड़ के तत्कालीन शासक जैत्रसिंह के बारे में शिलालेखों में वर्णित तुरुष्क-पराजय का प्रणाम भी दिया है।[397] [398] किन्तु शिलालेखों का यह वर्णन इल्तुतमिश के नागदा अभियान के संदर्भ में उचित एवं ऐतिहासिक घटनाक्रम के अनुकूल प्रतीत होता है।

उलुग खाँ (बलबन) ने अपने नागौर प्रवास के दौरान 1253 ई. में रणथम्भौर बूंदी और चित्तौड़ पर अधिकार के लिये अभियान शुरू किया था। मिनहाज ने उसका केवल रणथम्भौर के शासक से संघर्ष का उल्लेख किया है। ऐसा लगता है कि रणथम्भौर के चौहानों के कुशल प्रतिरोध के कारण ही उसे रणथम्भौर के आगे बूंदी और चित्तौड़ तक अभियान ले जाने की योजना को स्थगित कर नागौर वापस लौट जाने के लिये विवश हो जाना पड़ा।[399] दूसरी और गोपीनाथ शर्मा ने लिखा है कि चित्तौड़ के शासक जैत्रसिंह की भाँति तेजसिंह को तुर्कों के विरूद्ध भी लड़ने का अवसर मिला। 1253-1254 ई. में जब बलबन इधर-उधर के प्रदेशों को जीत कर अपनी शक्ति को बढ़ाना चाहता था तो उसने रणथम्भौर बूंदी और चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। तेजसिंह की शक्ति ने उसे पीछे धकेल दिया।[400] इस प्रकार दिल्ली सल्तनत के दौरान अब तक चित्तौड़ और बूंदी विजय की योजनाएं बनायी गयीं थी। वह पूर्ण रूप से विफल रही।

नासिरुद्दीन महमूद और मेवात (मेवातियों का आंतक) :

जादोन भाटी राजपूतों की एक शाखा ही उत्तरी अलवर के एक भाग में कोहपाया के रूप में वर्णित है। इनकों आम तौर पर राजपूत स्वीकार किया जाता है, जो 16 वीं शताब्दी के शुरुआत में प्रमुखता से आये थे। कनिंघम के अनुसार तेहरवीं शताब्दी में फिरोज तुगलक के शासन काल के पूर्व तक ये हिन्दू ही बने रहे। इसलिए पूरे मेवात में जादोन हिन्दू भाटी बयाना के मुलिस्म गढ़ से अलगाव रखते थे। राजपूताना के भरतपुर और अलवर मथुरा के गुडगाँव जिले के आसपास के क्षैत्रों में मेव जाति के निवास के कारण मुस्लिम इतिहासकारों ने इसे "मेवात" अथवा "मेवात का कोहपाया" नाम से जाना जाता है। मेव एक उपद्रव जाति थी, जो अपने को मथुरा के यदुवंशी राजाओं का वंशज मानती रही है। ये दिल्ली सल्तनत के तमाम आक्रमण तथा शोषण को सहन करते।[401]

मेव लोग अपने निकटवर्ती स्थलों में लूटपाट किया करते थे। दिसम्बर 1257 ई. में जब नुईनसारी के नेतृत्व में मंगोलों का भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर आक्रमण हुआ। दिल्ली सल्तनत के लिये गम्भीर संकट उत्पन हो गया। जिसका मेव लोगों ने लाभ उठाया। मल्का नामक व्यक्ति के नेतृत्व में मेव लोगों ने हांसी की तरफ से सेना के लिये ले जाये जाने वाले गल्ले को "भूतों के सम्मान झपट कर ऊँटों एवं दासों को छीन लिया और उन्हें कोहपाया से लेकर रतनपुर-रणथम्भौर तक के हिन्दुओं में बांट दिया" मंगोलों के आक्रमण से उत्पन गम्भीर परिस्थितियों को देखते हुए इन विद्रोही लोगों के विरूद्ध तत्कालीन कोई कार्यवाही नहीं की जा सकी। लेकिन बलबन को जब राज्य के अन्य कार्यों से अवकाश मिला तो उसने जनवरी 1260 ई. में दस हजार सवारों के साथ

जिसमें 3 हजार अफगान सवार व प्यादे थे, बड़ी तीव्र गति से मेवात-निवासियों पर आक्रमण किया। 20 दिन तक निरन्तर उबड-खाबड़ प्रदेशों में वह मेवातियों का सफाया करता रहा। बलबन मेव-उपद्रव में इतना उब गया था कि उसने अपने सैनिकों को आदेश दिया जो कोई भी एक जीवित मेवाती लायेगा। उसे दो चाँदी के टंके इनाम दिये जायेगे। मिनहाज के अनुसार अफगान सैनिकों में जिनकी संख्या तीन हजार थी। प्रत्येक ने सौ-सौ मेवातियों को पकड़ लाये। मल्का को भी उसके परिवार तथा 250 विशिष्ट विद्रोहियों के साथ बंदी बना लिया। बलबन को 142 घोड़ों के अतिरिक्त तीस हजार टके हाथ लगे। इस प्रकार मेवातियों के उपद्रव को दबाकर मार्च 1260 ई. को वह राजधानी वापस लौट आया। हौजेरानी के निकट कुछ बंदी मेवातियों को हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया। कुछ को कटवाया तथा कुछ की खाल खिंचवा कर भूसा भरवा दिया गया।[402] [403] [404] बलबन के इस निर्दयतापूर्ण दमन के उपरांत भी मेव लोग शांत नहीं हुए। इस कार्यवाही के कुछ ही दिनों पश्चात् ही बलबन के शासनारम्भ में उनका उपद्रव इतना बढ़ गया कि वे दिल्ली तक धावा मारने लगे।

1236 ई.में इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद उसके पाँच उत्तराधिकारियों ने 1236-1266 ई. तक शासन किया। इन तीस वर्षों की प्रमुख विशेषता यही रही कि दिल्ली सुल्तानों द्वारा विजित प्रदेशों में छोटे-बड़े राजपूताना के राज्यों के शासकों का निरन्तर विद्रोह दिल्ली सल्तनत के शासकों के लिए सिर दर्द बना रहा। इसी कारण से ये सुल्तान कोई नई महत्वपूर्ण विजय प्राप्त नहीं कर सके। इस काल की राजपूताना की प्रमुख घटना रणथम्भौर का 1236 ई. में रुकनुद्दीन फिरोजशाह के शासन काल में वाग्भट के नेतृत्व स्वतंत्र होना था वाग्भट के नेतृत्व में चौहानों को अपने पैतृक दुर्ग पर लगभग 1236 ई. में पुन: अधिकार हो गया। सुल्तान रजिया ने 1236 ई. में कुतुबुद्दीन हुसैन गौरी को रणथम्भौर पर अधिकार करने के लिए भेजा, किन्तु वह असफल रहा अन्न-पानादि की कमी से पीड़ित होकर आस-पास के स्थलों आदि को बंजर कर लगभग तीन महीने बाद वापस दिल्ली लौट गया। नासिरुद्दीन महमूद के शासनकाल में (1246-1266 ई.) रणथम्भौर पर पुन: अधिकार स्थापित करने के लिए दो अभियान उलुग खाँ (बलबन) और एक अभियान मलेकन नायब ऐबक के नेतृत्व कुल तीन अभियान किये गये। लेकिन उसका कोई भी अभियान सफल नहीं हो सका। इसी सुल्तान के समय मेवाड़ और बूंदी के विरूद्ध सैनिक अभियान भेजा गया था किन्तु दोनों अभियान असफल ही रहे। ये दिल्ली सल्तनत के खिलाफ नित्य संघर्ष के वर्ष थे। इस दौरान कोई विशेष सम्बंध राजपूताना के साथ नहीं रहा।

2.7 गयासुद्दीन बलबन (1266-1287 ई.) व राजपूताना:-

इन्हीं परिस्थितियों में सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद की मृत्यु हो गयी। बलबन का 1266 ई. में सिंहासनारुढ हुआ। प्रधानमंत्री के रूप में वह आधुनिक उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान के रणथम्भौर, मेवाड़ बूंदी, मेवात तथा पहाड़ी क्षेत्रों पर सैनिक अभियान पर जाता रहा। इन अभियानों के बावजूद राजपूताना में मेवातियों का विद्रोहों शांत नहीं हुआ। बलबन ने अनुभव किया कि सुल्तान होने के नाते उसका मूल्यांकन देश में शांति अर्थात वह कहा करता था कि न्याय स्थापित करने से किया जायेगा। जहाँ तक कानून व्यवस्था का सम्बंध है। बलबन के समक्ष चार समस्याग्रस्त प्रदेश थे। जिनमें से एक प्रदेश दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेश व राजपूताना के मेवात क्षेत्र में व्याप्त मेवातियों का उपद्रव भी था।

सर्वप्रथम, बलबन ने विद्रोहियों के प्रति अत्यंत कठोर यहाँ तक कि अमानुषिक रास्ता अपनाया। द्वितीय, उसने राजपूताना आदि के शक्तिशाली राज्यों से व्यर्थ में छेड़छाड़ न करने और उनके प्रति आक्रमणात्मक नीति की अपेक्षा अपने राज्य को मंगोलों से बचाने के प्रयत्न को ही श्रेयकर समझा। यह उसकी बुद्धिमत्तापूर्ण नीति थी। वास्तव में, तत्कालीन परिस्तिथियों में बलबन की नीति के आलोचक लोग जितनी भी आलोचना करें। यह नीति सर्वोत्तम थी। इस नीति के चलते एक तरफ वह शक्तिशाली राजपूत राजाओं के साथ अनवरत संघर्ष से बचा रहा। दूसरी और अपना समस्त ध्यान पश्चिमोत्तर सीमा पर लगाकर नवस्थापित मुस्लिम सल्तनत को मंगोलों के आक्रमण से बचाने का श्रेय प्राप्त किया। बलबन ने अपने शासनकाल के प्रारम्भ में निरन्तर विद्रोह और आंतक फ़ैलाने वाले मेवात के विद्रोहियों को कठोर दण्ड देने का निश्चय किया।

मेवातियों का विनाश:

प्रधानमन्त्री के रूप में 1260 ई. में बलबन ने मेवातियों के विद्रोहों का दमन करने का प्रयास किया था, किन्तु उसने वह पूर्ण रूपेण सफल नहीं हो सका था। शीघ्र ही 1260 ई. से लेकर 1266 ई.तक के अल्पकाल में मेव लोगों ने अब मेवात के परे दिल्ली तक अपने उपद्रव तथा आतंक का जाल फैला दिया था। दिल्ली के समीपस्थ जंगलों से उन्हें भरपूर सुरक्षा मिलती रही थी। उन लोगों ने व्यापारियों के साथ ही साथ दिल्ली निवासियों को भी इतना परेशान कर दिया था कि उनकी नींद हराम हो गयी थी।

जियाउद्दीन बरनी के अनुसार शम्सुद्दीन के जेष्ठ पुत्रों की युवावस्था असावधानी मदिरापान और भोग विलासिता एवं सुल्तान के लघु पुत्र सुल्तान नासिरुद्दीन की अयोग्यता तथा निर्बलता के कारण देहली के निकट के मेव बड़े

शक्तिशाली बन बैठे थे। अधिकतर तो यह होता था कि वे रात्रि में नगर में धावा बोल देते और घरों को नहस-नहस कर डालते। वे सर्वसाधारण को बड़ा कष्ट पहुँचते। लोगों को मेवों के उत्पात के भय से रात में नींद न आती। देहली के आस-पास के मेवों की लूटमार के भय से पश्चिम दिशा के द्वार संध्या की नमाज़ के पश्चात बंद हो जाते। किसी को इस बात का साहस न था कि शाम की नमाज़ के पश्चात निकल सके। बहुत से मेव संध्या की नमाज़ के बाद सुल्तानी के निकट पहुँच जाते भिश्तियों, पानी भरने वाली दासियों को परेशान करते और उन्हें नंगा कर देते, उनके वस्त्र छीन लेते। आस-पास के मेवों के भय के कारण दिल्ली में हलचल मच गयी थी"[405]

बलबन ने अपने राज्यकाल के प्रथम वर्ष (1166-67 ई.) में ही उन उपद्रवी मेवातियों से निपटने का निश्चय किया। उनके प्रति अत्यंत कठोर नीति का आश्रय लिया। सर्वप्रथम उसने मेवात और दिल्ली के बीच के उन जंगलों का पूर्णतया सफाया करवा दिया। जिसमें प्राय: ये छिपते थे। बलबन की इस कार्यवाही से उनके दमन का रास्ता साफ़ हो गया। बरनी के अनुसार बलबन को इस विद्रोहों का दमन करने में अपने एक लाख सिपाहियों से हाथ दोनों पड़ा। इससे स्पष्ट है कि मेवातियों ने भी मुस्लिम सेना का जमकर प्रतिरोध किया होगा। परन्तु बलबन उनके दमन पर आमादा हो गया था। अंततः उसे सफलता भी मिली। भविष्य में भी उनके उपद्रव पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए उसने एक तरफ गोपालगोर का किला निर्मित करवाना और दूसरी तरफ दिल्ली के निकट अनेक पुलिस थानों का निर्माण करवा कर उसमे अफगान सैनिकों की नियुक्ति की, ताकि वे इन उपद्रव पर नजर रखा करें।[406] बलबन की दूरदर्शिता एवं कठोर नीति और लाख मुस्लिम सिपाहियों के बलिदान के फलस्वरूप मेव लोगों का विद्रोह समाप्त हो गया। इनका विद्रोह अस्थाई तौर पर ही समाप्त नहीं हुआ, वरन् हिन्दू मेवातियों का विद्रोह का अस्तित्व भी समाप्त हो गया। तुगलक़ वंश के पतन के समय मेवात प्रदेश में जिन प्रमुख मेवातियों ने दिल्ली सल्तनत के विरूद्ध विद्रोह का स्वर बुलन्द किया था। वे अब हिन्दू के स्थान पर धर्म परिवर्तित मुसलमान बन चुके थे।

गयासुद्दीन बलबन व नागौर:

1243 ई. में दिल्ली सल्तनत के वकील-ए-दर इमादुद्दीन रेहान के परामर्श पर सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद ने उलुग खान-ए-आजम को हांसी से नागौर का प्रान्तपति नियुक्त किया गया। तब से लेकर फरवरी 1266 तक सुल्तान नासिरुद्दीन महमूदशाह की मृत्यु तक नागौर प्रान्त उलुग खान–ए-आजम की ही जागीर में रहा। तदुपरांत उलुग खान-ए-आजम जब सुल्तान गयासुद्दीन बलबन के नाम से स्वयं दिल्ली के सिंहासन पर

विराजमान हुआ। तब से लेकर सन् 1287 ई. में उसकी मृत्यु तक उसके पूर्ण शासन काल में किसी भी फारसी स्रोत में तथा अब तक प्राप्त अभिलेखों से नागौर में किसी प्रान्तपति की नियुक्ति के विषय में कोई सूचना प्राप्त नहीं होती। इससे स्पष्ट है कि नागौर को जो कि अब तक विशेषकर अपनी सामरिक स्थिति के कारण उसके साम्राज्य का महत्वपूर्ण प्रान्त बन चुका था। उसने वहाँ अपने प्रान्तपति रहने के समय में ही अत्यधिक गौरव प्रदान किया था।[407] प्रत्यक्ष रूप से अपने शासन काल में अपने ही अधिकार में रखा होगा।

बलबन ने भी इल्तुतमिश की तरह अपने सिक्के नागौर में ढलवाए, किन्तु श्यामलदास[408] कर्नल जेम्स टॉड[409] और कैलाश चन्द जैन के अनुसार इस काल में नागौर के प्रान्तपति मुजफ्फर खान जबकि बी.एन.शर्मा के अनुसार हज्जुद्दीन ने एक विरह राजपूत भगवती दास झाला की पुत्री से बलपूर्वक विवाह की चेष्टा की और इस वैवाहिक सम्बंध को उसके अस्वीकृत करने पर उसने उसकी भू-सम्पति भी जब्त कर ली। इस पर रावल कर्णसिंह ने जो खरतरगच्छवृहत गुखावली के अनुसार 1283 ई. में जैसलमेर का शासक था।[410] नागौर पर आक्रमण कर नागौर के प्रान्तपति को न केवल पराजित ही किया वरन् उसका वध भी कर डाला, किन्तु उपरोक्त कथन निराधार है क्योंकि इस समय तक नागौर में मुजफ्फर खान नाम का कोई प्रान्तपति नहीं था। उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि इज्जुद्दीन बलबन-ए-किशलू खाँ कुछ समय तक नागौर का प्रान्तपति अवश्य रहा, किन्तु उसके शासन काल में किसी भी जैसलमेर के राजपूत शासक ने नागौर पर आक्रमण नहीं किया। अतएव जैसलमेर के रावल कर्णसिंह के द्वारा इज्जुद्दीन की पराजय एवं उसके वध का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। बलबन की मृत्यु से लेकर 1290 ई. में खिलजी वंश की स्थापना तक नागौर प्रान्त निरन्तर दिल्ली शासन के अंतर्गत ही रहा।[411]

गयासुद्दीन बलबन और चित्तौड़ :

तेजसिंह के बाद उसका पुत्र समरसिंह (1267-1302 ई.) मेवाड़ के राज- सिंहासन पर बैठा । समरसिंह के समय के आबू के शिलालेख में लिखा है कि-

आघक्रोड़वपु: कृपाणविलसद्दष्ट्राकुरो य:
क्षणान्मगन्नामुद्धरति स्म गुर्जरमहीमुच्चैस्तुरुश्कार्णवात
तेज:सिंहसुत: स एष समर:क्षोणीश्वरग्रामणी-
रात्तेबलिकरायोर्धुरमिलागोले वदंयोश्धुना।

अर्थात समरसिंह ने तुरुष्क (मुसलमान) रूपी समुद्र में गहरे डूबे हुए गुजरात देश का उद्धार किया अर्थात मुसलमानों से गुजरात की रक्षा की। वह लेख वि.सं.1242/1285 ई. का है। अतएव उस घटना का उक्त संवत से पहले होना निश्चित है। 1266-1287 ई. तक गयासुद्दीन बलबन दिल्ली का सुल्तान था, इसलिए गुजरात की चढ़ाई उसके किसी सेनापति द्वारा की गयी हो।[412] बलबन के शासनकाल का यह चित्तौड़ अभियान एक अपवाद का विषय है। बलबन ने अपने शासन काल के दूसरे वर्ष 1267-68 ई. में चित्तौड़ के विरूद्ध एक अभियान ले गया था। जिसका उल्लेख एसामी ने अपनी पुस्तक में किया है, किन्तु एसामी ने इस अभियान के परिणाम के विषय में कुछ नहीं लिखा है। आगा मेहँदी हुसैन का कहना है कि बलबन ने अपने राज्यकाल में चित्तौड़ के विरूद्ध कोई अभियान नहीं किया था।

अभिलेखीय प्रणामों से एसामी के कथन की पुष्टि होती है। चित्तौड़ के शासक समरसिंह के 1285 ई. के आबू अभिलेख में वर्णित है कि उसने तुरुष्क रूपी समुद्र में गहरे डूबे हुए गुजरात देश का उद्धार किया। यद्यपि 1285 ई. के पूर्व समरसिंह के शासन काल में मुसलमानों द्वारा गुजरात अभियान का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। तथापि इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि बलबन या उसके किसी सेनापति द्वारा गुजरात की तरफ सैनिक अभियान किया गया हो और बीच में ही चित्तौड़ के शासक समरसिंह से पराजित होकर वापस लौट गया हो। सम्भव है कि इसी अभियान को एसामी ने चित्तौड़ अभियान लिखा हो। आबू के शिलालेख में इसे गुजरात अभियान लिखा गया हो। गोपीनाथ शर्मा के अनुसार वैसे तो मुस्लिम इतिहासकारों ने समरसिंह के होने वाली किसी गुजरात की लड़ाई का वर्णन नहीं किया। परन्तु आबु लेख में दिये गये अंकन की सत्यता पर संदेह भी नहीं किया जा सकता।[413]

इस प्रकार यदि चित्तौड़ अभियान को अपवाद मान लिया जाए तो कहा जा सकता है कि बलबन ने राजपूताना के शक्तिशाली राज्यों से संघर्ष न करने का जो निर्णय लिया था। उसी के परिणाम स्वरूप एक तरफ वह अपने राज्य में होने वाले छोटे-छोटे हिन्दू विद्रोह एवम् उपद्रव का दमन करने में सफल हो सका। दूसरी और मंगोलों के आक्रमण से अपने राज्य को सुरक्षित रख सका। इसी मंगोल आक्रमण से सुरक्षा करते समय सुल्तान का जेष्ट पुत्र मोहम्मद सुल्तान की पश्चिमोत्तर सीमा में मार्च 1285 ई. में मृत्यु हो गयी थी। बूढ़े सुल्तान पर इसका घातक प्रभाव पड़ा और कुछ दिनों उपरांत ही उसकी भी 1287 ई. मृत्यु हो गयी। बलबन की मृत्यु के साथ ही उसके वंश की मृत्यु भी निकट आ पहुँची। सल्तनत की गद्दी बैठने वाला उसका पौत्र कैकुबाद एक कमजोर व निकम्मा सुल्तान था। जिसका अधिकांश समय आमोद-प्रमोद में ही बीतने लगा। फलस्वरूप दरबार में अमीरों का प्रभुत्व बढ़ने लगा। एक दिन उन्होंने सुल्तान को गद्दी से पदच्युत कर उसके पुत्र कैयुमार्स को गद्दी पर बैठा दिया। यह

स्थिति भी अधिक दिनों तक नहीं चल सकी। कुछ महीनों पश्चात ही 1290 ई. में जलालुद्दीन फिरोज खिलजी ने उसे गद्दी से हटाकर एक नये राजवंश की नींव डाली। बलबन के उत्तराधिकारियों का तीन वर्ष 1287-1290 ई. इनका राजपूताना के संदर्भ में कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

निष्कर्ष:- कुतुबुद्दीन ऐबक 1206 ई. में दिल्ली सल्तनत की गद्दी पर बैठा। गवर्नर के रूप में इसका शासन 1192-1206 ई. व स्वतंत्र रूप से दिल्ली सल्तनत पर इसका शासन काल मात्र चार वर्ष तक रहा। इस दौरान इसका कुल 14 वर्ष तक राजपूताना के अजमेर, रणथम्भौर, नागौर, बयाना व जालौर से प्रत्यक्ष सम्बंध रहा। अजमेर में उसने हरिराज के विद्रोहों का दमन कर पुन: तुर्क सत्ता की स्थापना की। अजमेर के मेर या मेढ विद्रोह के समय कुतुबुद्दीन की स्थिति अत्यंत सोचनीय हो गयी थी। यदि उसे मोहम्मद गौरी के द्वारा गजनी से समय पर सहायता प्राप्त नहीं होती तो स्थिति और कुछ होती। कुतुबुद्दीन ऐबक ने सैयद हुसैन खिगसवार को अजमेर का गवर्नर जबकि हरविलास शारदा के अनुसार अजमेर का गवर्नर सैयद हुसैन मशेदी को नियुक्त किया है। गोविन्दराज के अजमेर से रणथम्भौर जाने के कारण वहाँ की शासन व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी थी। यहाँ पर चौहानों की शक्ति का दमन कर ऐबक ने द्वारा रणथम्भौर के प्रशासनिक कार्यो को सुव्यवस्थित किया। लेकिन गोविन्द राज की मृत्यु के बाद बल्हणदेव रणथम्भौर का शासक बना। चौहानों ने तुर्क सेना को मारपीट कर किले से बाहर निकाल दिया। वे स्वतंत्र शासक हो गये। जालौर में कुतुबुद्दीन ऐबक के समकालीन शासक समरसिंह व उदयसिंह थे। इनके विरूद्ध वह कोई निर्णायक नीति नहीं बना सका। थंगीर के शासक कंवरपाल के विरूद्ध कार्यवाही करके कुतुबुद्दीन ऐबक ने इस दुर्ग को अपने योग्य सेनापति बहाउद्दीन तुगरिल के अधिकार में रखा। राजपूताना के नागौर पर ऐबक के समय भी दिल्ली सल्तनत का अधिकार बना रहा। अत: कुतुबुद्दीन ऐबक के समय राजपूताना पर तुर्कों का नियंत्रण कुछ ढीला हो गया था। एक बार पुन: राजपूतों ने अपनी दासता का अन्त करने का प्रयास किया, वे इसमें सफल भी रहे।

इल्तुतमिश का राजपूताना के रणथम्भौर, मंडोर (मारवाड़) जालौर, बूंदी, अजमेर, सांभर, तहनगढ (बयाना), मेवाड़ आदि के राजपूत शासकों से साथ विशेष सम्बंध रहा। सर्वप्रथम इल्तुतमिस ने जालौर के शासक उदयसिंह से निपटने के लिये 1215 ई. में सेना भेजी। जालौर के शासक उदयसिंह ने इल्तुतमिश की सेना को कड़ी टक्कर दी। अत: जालौर के चौहान वंश का वह पूर्णत: दमन नहीं कर सका। इल्तुतमिश को अपनी आंतरिक समस्याओं में उलझा देखकर वीरनारायण ने अपने को स्वतंत्र करने का प्रयत्न किया। इस कारण इल्तुतमिश ने रणथम्भौर के विरूद्ध 1226 ई. सैनिक अभियान किया। तबकाते-ए-नसीरी में उल्लेख मिलता है कि भगवान की कृपा से 1226 ई.में रणथम्भौर के सुदृढ़ दुर्ग पर अधिकार हो गया। इल्तुतमिश के द्वारा मण्डोर पर आक्रमण कर 1227

ई. उस पर अधिकार कर लिया। बयाना भी स्वतंत्र हो गया था। शम्सुद्दीन इल्तुतमिश ने इन्हें दोबारा मुस्लिम शासन के अंर्तगत रखने के वास्ते सन् 1228 ई. में पर चढ़ाई की। इल्तुतमिश के शासन काल में नागौर दिल्ली सल्तनत के प्रमुख प्रान्तों में से एक था। अपने उत्तराधिकार में मिले राज्य की सीमाओं को शक्तिशाली सुल्तान इल्तुतमिश ने शक्ति के बल पर विस्तार का जी तोड़ प्रयास किया। उनमें वह आंशिक रूप से सफल भी रहा। रणथम्भौर, मंडोर, नागौर, बयाना, जालौर, थंन्गीर, अजमेर, सांभर, बूंदी, जीतते हुए वह नागदा तक जा पहुँचा। राजपूताना के रेगिस्तानी प्रदेशों में कुछ सफलता अर्जित की, किन्तु मेवाड़ के गुहिल शासकों के विरूद्ध वह सफल नहीं हो सका।

अपने राजपूताना अभियान के दौरान इल्तुतमिश के काल में एक हिन्दू मंदिर व एक संस्कृत पाठशाला के अवशेषों पर मस्जिदों का निर्माण कार्य पूर्ण करवाया। एक अजमेर में ढ़ाई दिन का झौपड़ा और दूसरा बयाना में उषा मस्जिद का निर्माण करवाया। सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम अपने टंकों पर टकसाल का नाम लिखने की प्रथा शुरू की थी। उसके शासन काल में सिक्के ढ़ाले जाने वाले नगरों में नागौर भी एक प्रमुख नगर था। नागौर में जो सिक्के डाले गये। उनमें सोने का एक अद्वितीय सिक्का भी था। यह सिक्का इल्तुतमिश के सिंहासन्रोहण के द्वितीय वर्ष 1211 ई. में डाला गया था। इसके अतिरिक्त अन्य अनुपम सिक्का चाँदी का था जो नागौर में ढ़ाला गया था। इस काल में नागौर में सिक्कों का डाला जाना इस बात का समुचित प्रणाम है कि इल्तुतमिश के शासन काल में नागौर दिल्ली सल्तनत के प्रमुख प्रान्तों में से एक था। चित्तौड़ के गुहिल, जैसलमेर के भाटी शासक स्वतंत्र रूप से शासन करते रहे किन्तु अजमेर, बयाना, मेवात, सांभर और नागौर पर इल्तुतमिश का नियन्त्रण बना रहा।

1236 ई.में इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद उसके पाँच उत्तराधिकारियों ने 1236-1266 ई. तक शासन किया। इन तीस वर्षों की प्रमुख विशेषता यही रही कि दिल्ली सुल्तानों द्वारा विजित प्रदेशों में छोटे-बड़े राजपूताना के राज्यों के शासकों का निरन्तर विद्रोह दिल्ली सल्तनत के शासकों के लिए सर दर्द बना रहा। इसी कारण से ये सुल्तान कोई नई महत्वपूर्ण विजय प्राप्त नहीं कर सके। इस काल की राजपूताना की प्रमुख घटना रणथम्भौर का 1236 ई. में रुकनुद्दीन फिरोजशाह के शासन काल में वाग्भट के नेतृत्व स्वतंत्र होना था। सुल्तान रजिया ने 1236 ई. में कुतुबुद्दीन हुसैन गौरी को रणथम्भौर पर अधिकार करने के लिए भेजा, किन्तु वह असफल रहा। नासिरुद्दीन महमूद के शासनकाल में (1246-1266 ई.) रणथम्भौर पर पुन: अधिकार स्थापित करने के लिए दो अभियान उलुग खाँ (बलबन) और एक अभियान मलेकन नायब ऐबक के नेतृत्व कुल तीन अभियान किये गये।

लेकिन उसका कोई भी अभियान सफल नहीं हो सका। इसी सुल्तान के समय मेवाड़ और बूंदी के विरूद्ध सैनिक अभियान भेजा गया था, किन्तु दोनों अभियान असफल ही रहे। ये दिल्ली सल्तनत के खिलाफ नित्य संघर्ष के वर्ष थे। इस दौरान कोई विशेष सम्बंध राजपूताना के साथ नहीं रहा।

सुल्तान गयासुद्दीन बलबन का राजपूताना के नागौर से विशेष सम्बंध रहा। 1243 ई में दिल्ली सल्तनत के वकील-ए-दर इमादुद्दीन रेहान के परामर्श पर सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद ने उलुग खान-ए-आजम को हांसी से नागौर का प्रान्तपति नियुक्त किया गया। तब से लेकर फरवरी 1266 तक सुल्तान नासिरुद्दीन महमूदशाह की मृत्यु तक नागौर प्रान्त उलुग खान ए आजम की ही जागीर में रहा। बलबन का राजपूताना में सबसे प्रमुख कार्य मेवातियों के विद्रोहियों को समाप्त करना था। चित्तौड़ अभियान को अपवाद मान लिया जाय तो कहा जा सकता है कि बलबन ने राजपूताना के शक्तिशाली राज्यों से संघर्ष न करने का जो निर्णय लिया था। उसी के परिणामस्वरूप एक तरफ वह अपने राज्य में होने वाले छोटे-छोटे हिन्दू विद्रोह एवम् उपद्रव का दमन करने में सफल हो सका। दूसरी और मंगोलों के आक्रमण से अपने राज्य को सुरक्षित रख सका। बलबन के उत्तराधिकारियों का तीन वर्ष 1287-1290 ई. इनका राजपूताना के संदर्भ में कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

अध्याय–तृतीय

3. खिलजी वंश (1290-1320 ई.) व राजपूताना

खिलजी वंश की स्थापना के समय राजपूताना में रणथम्भौर, जालौर, सिवाना के चौहान, मेवाड़, डूंगरपुर-बासंवाडा व खेड़ के गुहिल, जैसलमेर के भाटी, पूर्वी राजपूताना के यदुवंशी, आमेर के कच्छवाहों, मारवाड़ के राठौड़, कोटा-बूंदी, खेड़, सांचौर व मण्डोर के शासक आदि इसके अतिरिक्त उत्तरी भारत में गुजरात के चालुक्य, मालवा के परमार, नरवर के जज्वपेल, महोबा के चन्देल एवं अवध और दोआब प्रदेश के शासक आदि दिल्ली सल्तनत के समानांतर ही उत्तरी भारत में स्वतंत्र रूप से शासन कर रहे थे। अपने पतन के अंतिम दौर में सही पर विधमान थे। भारत में मुस्लिम आक्रमण के प्रारम्भ होने के साथ ही राजपूताना के राज्यों द्वारा जो प्रतिरोध किया जा रहा था, उसका अंतिम चरण दिल्ली सल्तनत के खिलजी वंश (1290-1320 ई.) के प्रारम्भ होने के साथ शुरू हुआ और उसका अंत भी लगभग इसी वंश के साथ हो गया। इस काल में राजपूताना के राज्यों ने और शेष भारत के शासकों ने अपने अस्तित्व को बनाएं रखने के लिए अन्त तक प्रयास किया। किन्तु लगभग छठी शताब्दी तक मुस्लिम साम्राज्यवाद का प्रतिरोध कर उत्तरी भारत में अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखने वाले राजपूत राज्यों का अंततः दिल्ली सल्तनत में विलय हो गया। संघर्ष के इस अंतिम चरण में अस्थायी रूप से ही सही राजपूताना के राज्यों का अस्तित्व समाप्त हो गया। अनेक राज्यों का सदैव के लिए दिल्ली सल्तनत में विलय हो गया। शेष उन रेगिस्तानी तथा पहाड़ी भागों में जा पहुंचे,जहाँ दिल्ली सल्तनत के शासकों का पहुँचना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। जब कालान्तर में दिल्ली सल्तनत का पतन प्रारम्भ हुआ तो इन्हीं रेगिस्तानी तथा पहाड़ी भागों से निकल कर पुन: राजपूतों ने राज्य प्राप्ति के लिये संघर्ष प्रारम्भ कर दिया।

3.1 खिलजी वंश 1290-1320 ई.

खिलजी वंश की स्थापना जलालुद्दीन फिरोजशाह ने की थी। इस वंश के कुल चार शासक, जलालुद्दीन फिरोजशाह खिलजी (1290-1296 ई.), अलाउद्दीन खिलजी (1296-1316ई.), कुतुबुद्दीन मुबारक शाह और नासिरुद्दीन खुसरोशाह ने 1290 ई. से 1320 ई. तक अर्थात 30 वर्षों तक दिल्ली सल्तनत पर शासन किया। दिल्ली सल्तनत के वंशों में खिलजी वंश के शासकों ने सबसे कम समय तक शासन किया किन्तु यह राजपूताना को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला वंश था। खिलजी वंश की स्थापना से दिल्ली सल्तनत और साथ ही

राजपूताना में अनेक सामाजिक आर्थिक बदलाव के साथ-साथ भारत के तत्कालीन राज्य एवं राजनीतिक स्वरूप में भी परिवर्तन हुए।

खिलजी वंश (1290 -1320 ई.) व राजपूताना

तेरहवीं सदी के राजपूताना का राजनीतिक परिदृश्य काफी बदल गया था। पहली बार राजपूताना के मध्य में दिल्ली सल्तनत के अंतर्गत अजमेर मुस्लिम सत्ता का केंन्द्र बन गया था। अजमेर के इस मुस्लिम केन्द्र की सीमाएं घटती बढ़ती रही। परन्तु अजमेर, बयाना, मेवात (अलवर का क्षेत्र), सांभर और नागौर पर दिल्ली सल्तनत का नियन्त्रण बना रहा। रणथम्भौर भी लम्बे समय तक दिल्ली सल्तनत के अधिकार में नहीं रहा। बाद में चौहानों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता का विकास किया। पृथ्वीराज तृतीय के बाद चौहानों के शक्तिशाली राज्य का अन्त हो गया। परन्तु राजपूताना के विभिन्न क्षेत्रों में चौहानों ने अपनी शक्ति को कायम रखा। रणथम्भौर के अलावा जालौर, सिवाना, सांचौर, नाड़ौल आदि पर चौहानों का शासन रहा। तेरहवीं सदी के मध्य में चौहानों की एक शाखा हाड़ा चौहानों ने बूंदी में एक नया राज्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। आगे चलकर हाड़ौती क्षेत्र में चौहानों की शक्ति का काफी विस्तार हुआ। उन्होंने अपने समय की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इस सर्दी की सबसे महत्वपूर्ण घटना मेवाड़ के गुहिलों की शक्ति का उत्कर्ष है। मेवाड़ के गुहिल राजवंश ने शीघ्र ही अपनी सत्ता का सुदृढ़ीकरण कर अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार किया और तुर्कों से निरन्तर संघर्ष भी किया। सिरोही क्षेत्र में परमार राजपूतों ने अपनी सत्ता को बनाये रखा। 1311 ई. में देवड़ा चौहानों ने उनको परास्त करके सिरोही राज्य को अधिकृत कर लिया। जैसलमेर क्षेत्र में भाटियों ने अपनी सत्ता को कायम रखा। इसी सदी की एक महत्वपूर्ण घटना मारवाड़ में राठौड़ सत्ता का उदय है। राव सीहा के नेतृत्व में राठौड़ों ने अपने राज्य की आधारशिला रखी। यद्यपि एक लम्बे समय तक राठौड़ राजपूताना की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने सक्षम में नहीं हो पाये। यह काम बाद के शासकों राव जोधा आदि ने किया।

इस प्रकार तेरहवीं सदी में राजपूताना में मुस्लिम सत्ता के अलावा विभिन्न राजपूत राजवंश अलग-अलग क्षेत्रों में शासन कर रहे थे। कोई भी राजवंश इतना शक्तिशाली नहीं था, कि दूसरे राजवंश उसकी सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार करते अथवा उसके नेतृत्व में एकजुट होकर तुर्कों का प्रतिरोध करते। विभिन्न राजपूत वंशों में एकता के अभाव के कारण ही तुर्कों को उन्हें पृथक-पृथक रूप में परास्त करने का अवसर मिल गया। अलाउद्दीन खिलजी के पूर्व दिल्ली सुल्तानों और राजपूत राज्यों में निरन्तर संघर्ष चलता रहा। इस संघर्ष में रणथम्भौर के चौहान, जालौर के चौहान और मेवाड़ के गुहिल की विशेष भूमिका रही।

3.2 जलालुद्दीन फिरोजशाह खिलजी (1290-1296 ई.) व राजपूताना:

दिल्ली के तुर्क सुल्तानों को अपनी सत्ता के लिय सबसे बड़ा खतरा राजपूतों से ही रहा। अत: अपनी प्रारम्भिक कठिनाइयों से मुक्त होते ही जलालुद्दीन फिरोजशाह खिलजी ने राजपूतों के विरूद्ध आक्रामक नीति अपनाने का निश्चय किया।

3.2.1 जलालुद्दीन फिरोजशाह खिलजी का रणथम्भौर पर प्रथम आक्रमण

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के दौरान कुछ समय के लिए रणथम्भौर पर सल्तनत के प्रारम्भिक शासकों का अधिकार रहा। वह अधिक समय के लिए इस पर अपना अधिकार नहीं रख सके। क्योंकि चौहानों ने वहाँ पर अपनी स्वतंत्र सत्ता का विकास कर लिया था। रुकुनुद्दीन फिरोज शाह के शासन काल में 1236 ई. में वाग्भट ने रणथम्भौर को तुर्कों से स्वतंत्र करा लिया था। आगे सुल्तान रजिया व नासिरुद्दीन महमूद शाह इस पर अधिकार करने में असफल रहे। जबकि दिल्ली के सुल्तानों की यह हार्दिक इच्छा थी कि वे हमेशा इसे अपने अधीन रखे। इसलिए उन्होंने इसके लिय अनेक बार प्रयास भी किया, किन्तु वे रणथम्भौर को लेने में असफल रहे। जलाजुद्दीन फिरोजशाह खिलजी के समकालीन रणथम्भौर का शक्तिशाली शासक हम्मीरदेव था। जिसका राज्याभिषेक हम्मीर महाकाव्य[414] के अनुसार 1282 ई. व प्रबंधकोश के अनुसार 1285 ई में हुआ । नयनचन्द सूरी के अनुसार हम्मीर देव शक्ति और सत्ता प्राप्त करने की दृष्टि से अपने समीपवर्ती देशों पर दिग्विजय करने निकलता है। उसने भीम रस, माण्डलगढ़, धार, उज्जैन, चित्तौड़, आबू, वर्धनपुर,चंगा, अजमेर, शाकम्भरी, महाराष्ट्र, खण्डिल, चम्पा, और ककराला पर विजय प्राप्त की थी। ये अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन दिया है, पर उसे अपने समय का राजपूताना का शक्तिशाली राजाओं में जाना जाता था।

रणथम्भौर पर आक्रमण के कारण:- जलालुद्दीन फिरोजशाह खिलजी के रणथम्भौर पर आक्रमण के कारणों पर अमीर ख़ुसरो और बरनी ने कोई प्रकाश नहीं डाला है जबकि किशोरीसरण लाल के अनुसार वह हम्मीरदेव की दिग्विजय से इतना भयभीत हो गया था कि उसने रणथम्भौर पर आक्रमण करने का निश्चिय किया जो तर्कसंगत मालूम नहीं होता है क्योंकि अपने समय के विद्रोहों का दमन करने के बाद, उसके पास पर्याप्त समय था जोकि राज्य विस्तार के लिए आवश्यक था।[415] गुलाम सुल्तानों द्वारा रणथम्भौर पर स्थायी अधिकार रखने के प्रयत्न में असफलता को सफलता में बदलना चाहता था । दूसरा तर्कसंगत कारण यह लगता है कि रणथम्भौर विजय के साथ ही राजपूताना, मालवा और गुजरात विजय का मार्ग प्रशस्त हो जाता।

अमीर खुसरो ने मिफताहुल फुतूह में जलालुद्दीन खिलजी के रणथम्भौर अभियान के बारे में लिखा है कि मार्च, 1291 ई. में अपने पुत्रों और मलिकों को उपहार देने के बाद रणथम्भौर अभियान के लिए रवाना हुआ। वह सीरी से लहरावत, चंदावल, रैवाड़ी और नारनौल होता हुआ भिवानी पहुँचा। आगे रेगिस्तान मार्गो तथा उनमें जल की कमी के कारण वहाँ से सौ ऊँटों में पर पानी लाद कर 15 दिन में रणथम्भौर के निकट पहुँच गया। तुर्की सेना ने ग्रामीणों का विनाश करना शुरू किया। अग्रिम दल के सैनिकों को भेजा गया और हिन्दुओं की हत्या होने लगी। जलालुद्दीन झायन से चार फरसंग की दूरी पर रहा और कुछ सवारों को शत्रुओं की जानकारी लेने के लिए भेजा गया। वे पहाड़ियों में शत्रुओं को शिकारियों की भाँति खोज करने लगे। इसी बीच उन्हें 500 हिन्दू सवार मिले। दोनों के बीच में युद्ध हुआ और हिन्दुओं को मारों-मारों का नारा लगाने लगे। इस घावे में 70 हिन्दू मारे गये। ये पराजित होकर भागने लगे । शाही सेना विजय होकर अपने शिविर में वापस आ गयी। सुल्तान को इसकी सूचना दी गयी। इन प्रारम्भिक विजय से सुल्तान का साहस और बढ़ गया। दूसरे दिन उसने एक हजार सैनिक ओर भेजें। जिसमें प्रसिद्ध सैनिक योद्धा थे- मलिक खुर्रम वकीलदर, आरिजे मुल्क कुरबेगे आजम, मलिक कुतलग तिगिन, अमीर नारनोल, अहमद सर जानदार, मीर शिकार अहमद, अबाजी आखुर बक उल्लेखनीय थे। शाही सेना इस समय झायन से दो फरसंग की दूरी पर थी। सेना एक ही घावे में पहाड़ियों में प्रविष्ट हो गयी। राय को जब इसकी सूचना मिली तो उसने प्रसिद्ध सेनापति साहिनी को बुलाया जो हिन्दू नहीं बल्कि लोहे का पहाड़ था। उसके अधीन चालीस हजार सैनिक थे, जो मालवा और गुजरात तक अभियान में जा चुके थे। उसने दस हजार सैनिक एकत्रित किये। वे लोग झायन से अतिशीघ्र चल पड़े। तुर्क धनुधार्रियों ने वाणों की वर्षा प्रारम्भ कर दी। दोनों के बीच घमासान युद्ध हुआ। साहिनी भाग गया और बहुत से रावत मारे गये। तुर्कों की सेना का केवल एक खासदार मारा गया। झायन को पूरी तरह से लूटा गया। वहाँ कोलाहल मच गया। रातोंरात राय और उसके पीछे से बहुत से हिन्दू रणथम्भौर की पहाड़ियों की ओर भाग गये। शाही सेना विजय प्राप्त करके रणभूमि से सुल्तान की सेवा में उपस्थित हुई। बंदी रावतों और लूट की सम्पति को पेश किया गया। इससे सुल्तान बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सैनिकों को धन व खिलअत देकर सम्मानित किया।[416]

इस विजय के बाद सुल्तान झायन राय के महल में गया और महल देखकर उसे लगा कि यह हिन्दुओं का स्वर्ग है। चूने की दीवारें आइने के सम्मान दिख रही थी और उनमें चन्दन की लकड़ी लगी हुए थी। इसके बाद उसने उधानों और मंदिर की सैर की और कुछ समय तक महल में रुक कर बड़ा खुश हुआ। दूसरे दिन उसने महल, किला, मन्दिर आदि को नष्ट करवा दिया। सोनें की मूर्तियों को तुड़वा दिया। लकड़ी के खम्भों को जलवा दिया। झायन को इस प्रकार लूटा गया कि सैनिक मालामाल हो गये और ऐसा लगने लगा कि महमूद द्वितीय आ गया।

इसके पश्चात सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी के दो सैनिक अभियान एक सरदार मलिक खुर्रम के नेतृत्व में और दूसरा सरदार महमूद सर जानदार, जो सैनिक झायन से भाग कर पहाड़ियों में भाग गये थे उनकों मलिक खुर्रम ने पकड़ कर सुल्तान के समक्ष उपस्थित किया और सरजानदार ने चम्बल और कँवारी नदी पर कर मालवा की सीमा पर धावा मारा और वहाँ बहुत लूटमार की। सुल्तान ने भी झायन से प्रस्थान किया और यह सेना चम्बल पर सुल्तान से आकर मिली और वह दिल्ली की और लौट गये।[417]

अमीर खुसरो और जियाउद्दीन बरनी दोनों ही रणथम्भौर के तत्कालीन शासक का नाम नहीं बताते है । अमीर खुसरो झायन के आगे रणथम्भौर विजय किस कारण नहीं करता है और वापस दिल्ली क्यों लौट जाता। मुख्य उद्देश्य तो रणथम्भौर विजय था, आदि पर मौन है। तुर्की सेना का केवल एक ही (खासादार) सैनानी का मारा जाना ये कैसे संभव हो सकता है। परन्तु बरनी इस सब कारणों को स्पष्ट करता है।

अमीर खुसरो जलालुद्दीन खिलजी द्वारा झायन से आगे रणथम्भौर पर आक्रमण का उल्लेख नहीं करता है। उसने रणथम्भौर के सेनापति का नाम साहिनी[418] बताया है। हम्मीर महाकाव्य में जलालुद्दीन के नाम से आक्रमण का कोई उल्लेख नहीं है। डॉ. दशरथ शर्मा के अनुसार जिस आक्रमण में भीमसिंह मारा गया था। वह आक्रमण अलाउद्दीन का नहीं, बल्कि सुल्तान जलालुद्दीन का था। इलियट ने सेनापति का नाम गुर्दान सैनी[419] लिखा है। दशरथ शर्मा के अनुसार हम्मीरकाव्य का सेनानी भीमसिंह[420] ही अमीर खुसरो के मिफतहा-उल-फुतूह का साहिनी है।[421]

अमीर खुसरो के विपरीत **जियाउद्दीन बरनी** ने अपने ग्रन्थ तारीखे फिरोज शाही में झायन पर अधिकार के बाद रणथम्भौर पर जलालुद्दीन खिलजी के आक्रमण का उल्लेख किया है। उसके अनुसार सुल्तान ने अपने मंझले पुत्र अर्केली खाँ को छत्र देकर अपनी अनुपस्थिति में किलाखेडी का नायब निर्युक्त करके रणथम्भौर अभियान के लिए रवाना हुआ। झायन पहुँच कर उसने उस पर अधिकार कर लिया। वहाँ के मन्दिरों को तोडा और मूर्तियों को नष्ट करवा दिया। झायन और मालवा के प्रदेशों को लूट कर उसने प्राप्त धन को अपने सैनिकों में बांट दिया। रणथम्भौर का राय, राजकुमार, मुकद्दम आदि अपने परिवार सहित रणथम्भौर के किले में चले गये। बरनी के अनुसार सुल्तान की इच्छा थी कि रणथम्भौर के किले पर विजय प्राप्त की जाये और इसके लिए उसने किले को घेर लेने का आदेश दिया। मगरबी, साबत, साबात, गरगच लगाये गये। अभी किले पर अधिकार की तैयारी चल ही रही थी कि सुल्तान झायन से रणथम्भौर पँहुच कर, किले का निरीक्षण करके चिन्ता में पड़ गया और वापस झायन लौट आया।

दूसरे दिन अपने अधिकारियों से कहा कि मेरी इच्छा थी कि इस किले पर अधिकार किया जाये। लेकिन किले के निरीक्षण के बाद मुझे लगता है इस किले को विजित करने में हजारों की संख्या में मुसलमानों की जानें चली जायेगी। मैं इस प्रकार के दस किलों को भी मुसलमानों के एक बाल को भी हानि पहुँचा कर लेने के पक्ष में नहीं हूँ। इस पर अहमद चप ने सुल्तान से निवेदन किया था कि जब कभी भी आक्रमणकारी किसी स्थान पर आक्रमण करने का संकल्प के लेता है। तब वह उस स्थान को विजित न कर लेते थे, कदापि वापस नहीं होते थे। यदि संसार के अन्न देता किले को विजय करने से पूर्व लौट जायेगें तो इस स्थान का राजा अभिमानी हो जायेगा। दूसरे स्थान पर विजय करने से जो भय लोगों में बैठ गया है, वह कम हो जायेगा। सुल्तान ने उत्तर दिया कि जैसे तू ही सब जानता है और मैं कुछ नहीं जानता। यह कहकर किले पर विजय का विचार त्याग दिया और 22 जून, 1290[422] ई.को अपनी राजधानी लौट गया।[423]

सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी का यह निर्णय परिस्थिति वंश ही था। रणथम्भौर जैसे सुदृढ़ दुर्ग पर विजय आसान नहीं थी। जब सुल्तान ने किले की दुर्भेघता, वर्षा ऋतु की निकटता और दुर्ग में से किये जा रहे चौहानों के प्रतिरोध पर विचार किया होगा तो उसे अपनी सफलता संदिग्ध लगी होगी। अन्तत: वह इतना निराश हो गया कि अपनी झायन की सफलता को बिना स्थायी रखने के लिए बिना कोई उपाय किये। लगभग तीन महीने के परिश्रम के बावजूद वह गुलाम सुल्तानों की तरह वापस अपनी राजधानी को लौट गया।[424] [425]

मुस्लिम सेना द्वारा राजधानी की और प्रस्थान करते ही उनकी सफलता भी असफलता में बदल गयी क्योंकि चौहानों ने झायन पर पुन: अधिकार कर लिया। दरबारी कवि और इतिहासकार अमीर खुसरो ने बड़ी निपुणता से सुल्तान की इस असफलता को सुल्तान की आरम्भिक सफलताओं में सम्मिलित कर उसके सर पर सफलता का सेहरा बांधने का अवश्य प्रयत्न किया।

रणथम्भौर पर द्वितीय असफल आक्रमण:- सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी ने रणथम्भौर पर अधिकार करने की अपनी अतृप्त तृष्णा को शान्त करने के लिये पुन: 1292 ई. के अंत में झाइन पर आक्रमण किया और उसे तहस-नहस कर डाला। यद्यपि बरनी झाइन से आगे बढ़ने का उल्लेख नहीं करता किन्तु इतना तो स्पष्ट रहा है कि झाइन तो इसके पूर्व अभियान के समय ही रौद डाला गया था। अत: स्पष्ट है कि सुल्तान को रणथम्भौर के द्वितीय अभियान में भी असफलता ही हाथ लगी होगी। इस प्रकार एक बार फिर सुल्तान झाइन और आसपास के स्थलों पर लूटपाट कर धन सम्पति लेकर वापस राजधानी लौट गया।[426]

सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी के रणथम्भौर-अधिकृत करने के दोनों अभियान दुर्ग की अभेघता और चौहानों के कुशल प्रतिरोध के कारण गुलाम वंश के शासकों की भाँति असफल ही रहे। रणथम्भौर के पराक्रमी शासक हम्मीरदेव के नेतृत्व में अगले एक दशक तक अपनी स्वंत्रता का स्वछन्द रूप से उपभोग करते रहे।

3.2.2 जलालुद्दीन फिरोज खिलजी का पाली, सांचौर और मण्डोर पर आक्रमण

राठौड़ राव सीहा के बाद उसका जेष्ट पुत्र आस्थान खेड़ की गद्दी पर आसीन हुआ। सुल्तान फिरोज का पाली पर आक्रमण सुनकर वह वहाँ आया और सुल्तान से संघर्ष करता हुआ, 140 राजपूतों के साथ मारा गया। विश्वनाथ रेऊ के अनुसार यह घटना वि.सं.1348/ 15 अप्रैल 1291 की है।[427] जगदीश सिंह गहलोत के अनुसार इस समय मुसलमानों ने हिन्दुओं को न जीत सकने के कारण वैशाख सुदी 15 के दिन गायों को मार कर कुए और तालाबों में डालकर कत्ले आम बोल दिया। इसी से पालीवाल ब्रहाम्णों धर्मरक्षार्थ यहाँ से गुजरात, आगरा, दिल्लीकी तरफ भाग गये और लेनदेन बोहरागत करने से नन्दवाना और बोहरे ब्राहम्ण कहलाने लगे।[428] गौरीशंकर हिराचंद ओझा इसे अविश्वसनीय मानते है।[429] गोपीनाथ शर्मा[430], नैणसी री ख्यात[431], गौरीशंकर हिराचंद ओझा[432] आदि ने भी उल्लेख किया है कि 1291 ई. में जलालुद्दीन फिरोजशाह खिलजी की शाही फौजों से मुठभेड़ में की आसथान अपने 140 साथियों के साथ वीरगति को प्राप्त हुआ।

विविधातीर्थकल्प के अनुसार वि.सं.1348/1291 ई. को मुगलों (मुसलमानों) की सेना ने सांचौर[433] पर आक्रमण किया। परन्तु महाराय सारंगदेव की सेना का आगमन सुनकर मुस्लिम सेना भाग निकली।[434] इस समय सांचौर पर चौहान नरेश सामंतसिंह का अधिकार था। सामंतसिंह की सहायतार्थ आने वाला सारंगदेव बघेल गुजरात का शासक था। जिसने सम्भवतः सांचौर के बाद गुजरात पर मुसलमानों के आक्रमण का अनुमान करके सहायता देने का विचार कर लिया था। डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने भी लिखा है कि खिलजी शासक फिरोज जो 1291 ई. में सांचौर तक बढ़ आया था। उसे बाघेला शासक सारंगदेव की सहायता से वापस धकेला गया।[435]

एसामी के अनुसार हि. 691/1292 ई. के अन्त में सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज खिलजी ने मन्दुवर (मण्डोर) पर आक्रमण किया। विश्वनाथ रेऊ के अनुसार वि.सं.1351/1293 ई. में मण्डोर पर फिरोज शाह द्वितीय का आक्रमण हुआ। इस पर सोनगरा चौहान सामंतसिंह का अधिकार था।[436] एसामी की फुतुह्सलातीन के अनुसार चार माह के युद्ध उपरांत सुल्तान ने मण्डोर पर अधिकार कर लिया।[437] इसी समय सुल्तान ने मण्डोर में एक

मस्जिद का निर्माण करवाया[438] जिस पर 1293 ई. का फिरोजशाह द्वितीय का एक अभिलेख है।[439] सुल्तान धन सम्पति एकत्रित करके कुछ माह उपरांत राजधानी लौट गया।

मुस्लिम लेखकों ने मण्डोर से वापस लौटते हुए सुल्तान द्वारा मण्डोर की व्यवस्था के लिए किसी भी अधिकारी की नियुक्ति का उल्लेख नहीं किया है। इससे प्रतीत होता है कि सुल्तान इस स्थिति में नहीं रहा होगा कि मण्डोर को दिल्ली सल्तनत के अधीन रख सके क्योंकि उसके आसपास ही शक्तिशाली राजाओं का अधिकार था। इस स्थिति में मण्डोर विजय को सुरक्षित नहीं रख सकता था। सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी द्वारा मारवाड़ प्रदेश में अनेकानेक अभियान से मात्र धन सम्पति ही प्राप्त हो सकी। शक्तिशाली शासकों के प्रतिरोध एवं निकटस्थ स्थानों में उनकी उपस्थिति के कारण ही वह अपनी उपलब्धियों को स्थायी बनाने में असफल रहा। जब उनके शक्तिशाली उत्तराधिकारी अलाउद्दीन खिलजी ने शक्तिशाली शासकों को पराजित कर दिया। तब ही उन प्रदेशों पर कुछ काल के लिए अधिकार किया जा सके।

सुल्तान जलालुद्दीन के सम्पूर्ण शासनकाल को देखकर यह कहाँ जा सकता है कि उसने राजपूताना के अनेक राजपूत राज्यों यथा- रणथम्भौर, मण्डोर, सांचौर पर अनेक बार आक्रमण किया, किन्तु इन समस्त अभियानों में, उसे मात्र कुछ धन सम्पति के अतिरिक्त असफलता ही हाथ लगी। लगभग उसी समय राजपूताना के सभी राजपूत राज्य शक्तिसाली बन गये थे। यद्यपि झाइन पर हम्मीर की सेना को दो बार परास्त अधिकार करना, आसथान की वीरगति, मण्डोर पर अस्थायी सफलता प्राप्त करना उसकी राजपूताना के प्रति अग्रसर नीति का परिचायक है। किन्तु सुल्तान में दृढ निश्चय का अभाव था। इसी का लाभ उठा कर रणथम्भौर के शासकों ने जलालुद्दीन की प्रारम्भिक सफलताओं को भी असफलता में बदल दिया।

3.3 अलाउद्दीन खिलजी व राजपूताना (1296-1316 ई.)

जलालुद्दीन खिलजी के भतीजे एवं दामाद अली गुर्शस्प ने सुल्तान को कड़ा से बुलाकर धोखे से उसकी हत्या कर दी। दिल्ली आकर अपने शत्रुओं को खत्म करने के बाद हि. 695/21 अक्टूबर 1296 ई. दिल्ली के राजसिंहासन पर विराजमान हुआ।[440] एक नये धर्म की संस्थापना व विश्व विजय की योजना अलाउद्दीन को आकर्षित कर रही थी। उसने सिकन्दर सानी की उपाधि भी धारण की थी जो उसके कुछ सिक्कों पर अंकित है। विश्व विजय की योजना पर अलाउलमुल्क ने सलाह दी कि पहले हिंदुस्तान की समस्त इक्लीमों को अपना आज्ञाकारी और राजभक्त बना लिया जाये। इस प्रकार रणथम्भौर, चित्तौड़, धार, उज्जैन, मालवा, चंदेरी और पूरब दिशा में

सरयू तट तक, शिवालिक प्रदेश, जैसलमेर, जालौर, सिवाना मुल्तान से भरिला तक और पालम से लाहौर तथा दीपालपुर तक के सभी प्रदेश को आज्ञाकारी बनाने की सलाह मिली तो अलाउद्दीन ने विश्व विजय के स्थान पर सर्वप्रथम हिन्दुस्तान की विजय का संकल्प लिया।[441]

समस्त भारत को दिल्ली सल्तनत के अधीन करने के लिए आवश्यक था। पहले राजपूताना और उत्तरी भारत के राजपूत राज्यों जैसे– जैसलमेर, रणथम्भौर, मेवाड़, जालौर, सिवाना, मण्डोर, मारवाड़, मालवा और गुजरात आदि राज्य थे जो सदियों से मुस्लिम आक्रमणकारियों का प्रतिरोध कर रहे थे। अत: इन्हें अधीन करना अति आवश्यक था। इसी कारण सुल्तान अलाउद्दीन ने सर्वप्रथम उत्तरी भारत के राजपूत राज्यों को दिल्ली सल्तनत में मिलाने की योजना बनायी।

अलाउद्दीन खिलजी जैसे शक्तिशाली और महत्वकांक्षी सुल्तान का दिल्ली सल्तनत का शासक बनते ही उत्तरी भारत के राजपूत राज्यों का 700 वर्षो से भी अधिक समय से मुसलमानों का प्रतिरोध कर रहे थे, का अंतिम अध्याय प्रारम्भ हुआ। जिसका पटाक्षेप भी उसी महत्वकांक्षी सुल्तान की जीवन-लीला के पटाक्षेप के साथ ही हो गया। यद्यपि इस समय राजपूताना के राज्य अपनी शक्ति बल में अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक शक्तिसम्पन थे किन्तु उनका शत्रु भी पूर्व के सुल्तानों से अधिक शक्तिशाली था। अलाउद्दीन खिलजी की दृढ निश्चयता व शक्तिशाली, हिन्दू राज्यों द्वारा अकेले संघर्ष करने की प्रवृति व उनकी दोषपूर्ण प्रणाली के कारण ही सल्तनत कालीन राजपूताना के राज्य प्रतिरोध का पूर्व भाग, जिसे हम उनके "अस्तित्व के लिए संघर्ष-काल" कह सकते है, उल्लेखनीय, किन्तु निष्फल प्रयत्नों के बावजूद समाप्त हो गया। सचमुच चन्द समय के लिए ही सही उत्तरी भारत में तिरहुत व कश्मीर को छोड़कर स्वतंत्र सत्ता के रूप में राजपूत राज्यों का अस्तित्व समाप्त हो गया। फिर अगले राजवंश के दुर्बल शासन के दौरान जब पुन: उनका उदय हुआ, तो हम उस काल को उनके "अस्तित्व के लिये संघर्ष काल" न कह कर अपितु उनके " स्वतंत्र ता, पुनर्जन्म एवं पुनर्गठन के लिये संघर्ष का काल" कह सकते है।

मुल्तान और गुजरात पर अधिकार के पश्चात अलाउद्दीन ने राजपूताना को तीनों और से घेर लिया था। अब राजपूताना में सैनिक अभियान सुगम हो गये थे। राजपूताना के कुछ भाग ऐबक और इल्तुतमिश द्वारा पहले जीते जा चुके थे। मगर समय बीतने पर राजपूताना में तुर्क सत्ता का आधार कमजोर पड़ गया था। इन राज्यों पर अधिकार अलाउद्दीन की राजनीतिक महत्वकांक्षा की पूर्ति के लिए अनिवार्य थी। अलाउद्दीन ने सर्वप्रथम जैसलमेर पर आक्रमण किया। संभवतः यह घटना गुजरात अभियान के बीच में घटी थी।

3.3.1 अलाउद्दीन खिलजी व जैसलमेर:-

जैसलमेर पर प्रथम खिलजी अभियान:- रावल कर्णसिंह की मृत्यु के उपरांत नैणसी ने जैत्रसिंह (1284-1300 ई.) का शासक बनने का उल्लेख किया है।[442] जबकि अन्य सूत्रों में रावल कर्णसिंह का उत्तराधिकारी रावल लखनसेन को बताया गया है। तारीख ए मासूमी के अनुसार जैसलमेर पर प्रथम खिलजी अभियान सन् 1299 ई. में किया। इस वर्ष सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात पर आक्रमण किया था। अत: मुल्तान सिंध के रास्ते गुजरात जाते समय जैसलमेर की सीमा से गुजरते हुए आक्रमण कार्यवाही की होगी। इसका उल्लेख तारीख ए मासूमी के अतिरिक्त अन्य किसी भी फारसी अथवा अन्य राजपूत स्रोत मारवाड़ व बीकानेर की ख्यात आदि में नहीं हुआ है। अन्य स्रोतों में उल्लेख नहीं होने का मुख्य कारण शायद यह रहा। शाही सेना का आक्रमण सिंध के रास्ते गुजरात मार्ग पर पड़ने वाले राज्यों पर किया जाने वाला सामान्य अभियान रहा। यह आक्रमण जैत्रसिंह प्रथम के राज्यकाल में हुआ था।[443]

सर हुल्सले हेग का कथन है कि 1286 से 1295 ई. तक आठ वर्षों तक अलाउद्दीन खिलजी की सेनाओं द्वारा जैसलमेर को घेरे जाने का वर्णन जो स्थानीय स्रोतों में दिया है। जबकि अलाउद्दीन खिलजी 1296 तक शासक ही नहीं बना, अत: ऐसा कोई भी आक्रमण जैसलमेर में नहीं हुआ था।

डॉ. के.एस.लाल का कथन है कि जैसलमेर पर प्रथम तुर्की आक्रमण बलबन के समय हुआ था। जबकि तारीख-ए-मासूमी के आधार पर जैसलमेर पर प्रथम तुर्क आक्रमण अलाउद्दीन खिजली ने 1299 ई. में किया था। इस वर्ष सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात पर आक्रमण किया था। अत: जैसलमेर पर यह आक्रमण गुजरात अभियान के दौरान किया गया था। लेकिन सर्वप्रथम भारतीय इतिहासकार डॉ. दशरथ शर्मा ने स्थानीय स्रोतों की महत्ता को स्वीकार करते हुए शिलालेखों साक्ष्यों से उसकी पुष्टि करते हुए यह सिद्ध किया है। जैसलमेर और खिलजी सल्तनत का संघर्ष अवश्य हुआ था। इस संघर्ष के तिथिक्रम में थोड़ी समस्या है क्योंकि स्थानीय स्रोतों की तिथियों में व अन्य साक्ष्यों में थोड़ा अन्तर प्रारम्भ से ही चला आ रहा है।[444] [445] राजस्थानी के अतिरिक्त जैसलमेर से मिले कुछ शिलालेखों से भी ज्ञात होता है। जिसमें म्लेच्छों के साथ संघर्ष का उल्लेख किया गया है।[446]

मूलरूप से राजस्थानी ख्यातों में दिया गया वर्णन सत्य है। यदि हम समस्त उपलब्ध स्रोतों यथा तारीखें मासूमी, राजस्थानी ख्यातों एवं शिलालेखों को ध्यान में रखें। समस्त अभियान का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है :

अल्लाउद्दीन खिलजी का जैसलमेर पर प्रथम आक्रमण1299 ई.में हुआ।[447] उस समय जैसलमेर पर भाटी शासक जैत्रसिंह प्रथम का शासन था।[448] सुल्तान ने उलुग खाँ को गुजरात अभियान का आदेश दिया। वह सिंध की आधी सेना के साथ जैसलमेर के रास्ते रवाना हुआ। रास्ते में भाटी सेना द्वारा शाही सेना से छेड़छाड़ अथवा उसे तंग किये जाने के कारण उलुग खाँ ने भाटियों को दण्ड देने के लिए उन पर आक्रमण कर दिया। अनेक हिन्दुओं को दण्ड देकर उस पर अधिकार कर लिया। चूँकि सुल्तान का स्पष्ट आदेश गुजरात के विरूद्ध अभियान था। अत: उलुग खाँ वहाँ पर कुछ सैनिक अधिकारियों को नियुक्त करके सीधा गुजरात रवाना हो गया। सम्भवतः इस समय शाही सेना की विजय का कारण लम्बें समय तक घेरा नहीं बल्कि जैसलमेर पर अचानक आक्रमण ही था।

जैत्रसिंह प्रथम के बाद उसका उत्तराधिकारी रावल लखनसेन1300-1304 ई. हुआ। नैणसी के अनुसार इसका विवाह जालौर के चाहमान शासक कान्हडदेव की पुत्री के साथ हुआ था। नैणसी ने इसका कार्यकाल 18 वर्ष दिया है।[449] जबकि अन्य स्थानीय स्रोतों से ज्ञात होता है कि इसका राज्यकाल चार वर्ष का ही था।[450] ऐसा प्रतीत होता है कि नैणसी ने रावल जैत्रसिंह और लखनसेन दोनों का कार्यकाल सम्मिलित कर दिया है। रावल लखनसेन के बाद उसका पुत्र पुण्यपाल (1304 -05 ई.) जैसलमेर का शासक बना। इसके सामंतों से इसकी बनती नहीं थी इसलिए उन्होंने चाचिगदेव के पौत्र जैत्रसिंह द्वितीय को सन्देश भेजा जो गुजरात के पाटन में रहता था। उसको जैसलमेर का शासक बनाया था।

जैत्रसिंह द्वितीय (1304-1313 ई.):-

जैत्रसिंह द्वितीय चाचिगदेव का पौत्र व तेजराव का पुत्र व पुण्यपाल उसका चाचा था। कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार सामंतों ने उसे गुजरात के पाटन से बुलाकर जैसलमेर का शासक बनाया था। नैणसी के अनुसार इसका कार्यकाल 18 वर्ष 6 माह और 6 दिन था।[451] किन्तु ख्यात लेखकों ने जैत्रसिंह प्रथम और जैत्रसिंह द्वितीय के शासन काल को मिश्रित कर दिया है।

जैसलमेर पर द्वितीय खिलजी अभियान:-

जैसलमेर पर दिल्ली सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का सउद्देश्य आक्रमण रावल जैत्रसिंह द्वितीय (1305-1313 ई.) के समय में हुआ। रावल जैत्रसिंह को उनकी वृद्धावस्था में जैसलमेर का शासक बनाया गया था। अत: शासन का कार्य भार उसके पुत्र मूलराज व रतनसिंह ही मुख्य रूप से संभालते थे। इसके समय प्रधानमंत्री सिहड़ बीकमसी था। जिससे भाटी सरदार ईर्ष्या करते थे। विक्रमसिंह को एक झूठे गबन के मामले में फंसा कर राज्य से

निर्वासित करवा दिया। अब राज्य की वास्तविक सत्ता रावल जैत्रसिंह के पुत्र मूलराज व रतनसिंह के हाथों में आ गयी। दोनों भाटी सामंतों के बहकावे में आकर दिल्ली सल्तनत के विरूद्ध कार्यवाही करने लगे।[452]

तवारीख जैसलमेर के अनुसार दोनों ने शाही खजाना व सुल्तान की माँ जो मक्का जा रही थी, को लूट लिया। जैसलमेर की ख्यात के अनुसार थट्टा से मुल्तान जा रहे बादशाह के खजाने को लूट लिया।[453] अत: ख्यात में दिया गया वर्णन तवारीख से मैल खा रहा। इसमें सुल्तान की माँ को लूटने का वर्णन नहीं दिया गया। नैणसी री ख्यात के अनुसार शाह का पीरजादा रूम गया था। वहाँ के सुल्तान ने उसको एक करोड़ रूपये का माल दिया था । वह वापस आते समय जैसलमेर से आया। शेख की रक्षा हेतु 200 पादशाही सवार उसके साथ थे। मूलराज व रतनसिंह ने उन सबको मार कर उनका सारा माल असबाब लूट लिया और घोड़े भी ले लिये। कर्नल टॉड के अनुसार भाटियों ने शाही खजाने पर आक्रमण कर चार सौ मुगल और इतने ही पठानों की हत्या कर खजाना लूट लिया और जैसलमेर ले आये। यह सूचना जब सुल्तान के पास पहुंची तो उसने कमालुद्दीन गुर्ग को सात हजार सैनिकों के साथ जैसलमेर अभियान पर भेजा। जब दो या तीन साल बाद भी उसको सफलतानहीं मिली तो अलाउद्दीन खिलजी ने एक बड़ी सेना के साथ मलिक काफूर को भाटियों के विरूद्ध भेजा। मलिक काफूर चाहता था कि दुर्ग पर सीधा हमला किया जावें। जबकि कमालुद्दीन गुर्ग परम्परागत नीति से चलना चाहता था।[454] जिसके तहत दुर्ग को जब तक घेरे रखना था। जब तक कि रसद खत्म होने पर शत्रु निर्बल होकर बाहर आने पर बाध्य न हो जायें। मलिक काफूर ने कमालुद्दीन गुर्ग की बात न मानकर सीधे दुर्ग पर हमला कर दिया। दुर्ग के मुख्य द्वार तक आसानी से पहुँच गया। उसे तोड़ने हेतु हाथियों का सहारा भी लिया। उधर मूलराज व रतन सिंह ने अपने सैनिकों को समझाया कि जब तक शत्रु दुर्ग की प्राचीन के कंगूरे तक ना आ जावें। तब तक उन पर आक्रमण नहीं करना। अत: सुल्तान की सेना बड़े ही आत्मविश्वास के साथ दुर्ग की प्राचीर के ऊपरी छोर पर पहुँच गयी। जैसे ही सेना वहाँ तक पहुंची। राजपूतों ने रणभेरी का घोष कर शत्रु पर आक्रमण कर दिया। इस हेतु उन्होंने पूर्व में ही बड़े बड़े पत्थरों के गोले बना कर रखे थे। उन्हें कंगुरों पर से नीचे लुढकाना शुरू कर दिया। ये पत्थर उस स्मृति स्वरूप दुर्ग की प्राचीर पर आज भी सहेज कर रखे है। इस आकस्मिक एवं अप्रत्याशित हमले से सुल्तान की फौज में भगदड़ मच गई। दुर्ग के द्वार तोड़ने वाले समस्त हाथियों सहित मलिक केसर सुल्तान का भांजा और दामाद तथा सिराजुद्दीन मारे गये तथा मलिक काफूर पराजित होकर भाग गया।[455]

मलिक काफूर की पराजय से सुल्तान ने पुन: कमालुद्दीन को ही जैसलमेर के दुर्ग पर आक्रमण हेतु नियुक्त किया। वह सेना लेकर जैसलमेर पहुँचा। अपनी रणनीति के अनुसार उसने दुर्ग को घेर लिया। ख्यात और नैणसी के

अनुसार यह घेरा 12 वर्ष तक चला।[456] इसे अन्य साक्ष्यों के अनुसार यथावत स्वीकार नहीं किया जा सकता है किन्तु यह सत्य की घेरा एक लम्बे समय तक चला। क्योंकि राजपूतों को सुल्तान की सेना के वापिस जाकर लौटकर आने तक के समय में किले में पर्याप्त मात्रा में रसद आदि एकत्रित करने का समय मिल गया होगा। इसी दौरान विक्रमसिंह जो ईडर में निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहा था। जैसलमेर को सुल्तान की सेना द्वारा घेरे जाने का समाचार पाकर वापस लौट आया। अपनी सेवा अर्पित करने हेतु जैतसी से प्रार्थना की, उसके ऊपर लगाये गये गबन के आरोपों की जब गहराई से जाँच कराई गयी तो उसे निर्दोष पाया गया। फलस्वरूप मूलराज व रतनसिंह को नीचा देखना पड़ा व वे नाराज हो गये। दुदा को अपने भाइयों व सहायकों सहित जैसलमेर से पलायन करना पड़ा। वह अपने ससुराल पारकर चला गया। इसी बीच रावल जैत्रसिंह द्वितीय की मृत्यु हो गयी। इस प्रकार जैसलमेर की आंतरिक राजनीति में यकायक परिवर्तनों ने उसे तोड़ा और निर्बल बना दिया । फलस्वरूप मूलराज जो जैत्रसिंह द्वितीय की मृत्यु के बाद जैसलमेर का रावल बना था, ने दुर्ग के अंदर रहकर रक्षात्मक रणनीति का पालन करते हुए युद्ध जारी रखा। दुर्ग में रसद खत्म होने के कारण रावल मूलराज व रतनसिंह ने अपने साथियों से विचार-विर्मश करके साका करने का निश्चय किया।[457]

समस्त स्त्रियों द्वारा जौहर किया गया। दूसरे दिन मूलराज ने अपने भाई रतनसिंह सहित 120 सैनिकों सहित दुर्ग के फाटक खोलकर सुल्तान की सेना पर आक्रमण कर दिया। युद्ध करते हुए सभी व्यक्तियों सहित वीरगति को प्राप्त हुआ।[458] [459]

इस विस्तृत युद्ध का वर्णन **नैणसी** ने किया है। इसके अलावा जैसलमेर की ख्यात जैसलमेर की तवारीख में भी थोडा बहुत अन्तर सहित वर्णन प्राप्त होता है। कर्नल टॉड ने भी किचिंत अन्तर सहित इस घटना का विस्तार से वर्णन किया है। हांलाकि इन सभी स्रोतों के मूल तथ्यों में एकरूपता है। किसी मुस्लिम इतिहासकार ने इसका वर्णन नहीं किया। इसी आधार पर हुल्जले हेग जैसे इतिहासकार ने इस युद्ध की सत्यता को नकारते रहे है। आधुनिक इतिहासकार डॉ. दशरथ शर्मा ने इस घटना की पुष्टि में जैसलमेर स्थित संभवनाथ जैन मंदिर में उपलब्ध वि.सं.1497 के अभिलेख का उल्लेख किया है। इस लेख में जैसलमेर में हुये किसी मुस्लिम आक्रमण का उल्लेख है। इसी प्रकार का एक लेख जैसलमेर के पाशर्वनाथ जैन मंदिर में वि.सं. 1473 के अभिलेख में रतनसिंह के पुत्र घडसी द्वारा मलेच्छों से जैसलमेर के दुर्ग के अधिकरण का उल्लेख है। इन दोनों अभिलेखों में वि.सं.1497 के पूर्व जैसलमेर पर किसी मुस्लिम आक्रमण का संकेत है। पर किसी आक्रमणकारी के नाम का उल्लेख नहीं है।[460] मुजालदेव नामक व्यक्ति के स्मारक शिलालेख में लिखा है कि उसने मुसलामानों द्वारा गृहीत अश्वों, स्त्रियों

ऊँटों की रक्षा करते हुए मुजालदेव ने अपने प्राणों की आहुति दी। डॉ. दशरथ शर्मा के अनुसार यह मुस्लिम संघर्ष अलाउद्दीन के घेरे से ही सम्बंध रखता है। अत: इस युद्ध की तिथि भट्तिक संवत 685/ वि.सं.1365/ 1308 ई. होना चाहिए।[461]

जैसलमेर के दुर्ग से प्राप्त कुछ शिलालेखों में से एक भट्टीक संवत 688 में हेमा की मृत्यु और उसकी पत्नी 'घरुआ' के सती होने का उल्लेख है। इस लेख से स्पष्ट है कि भट्तिक संवत 688/वि.सं.1368/1311 ई. में दुर्ग में मुसलामानों का अधिकार नहीं हुआ था। अन्य दो स्मारक शिलालेख जो भट्तिक संवत 691 के है। चौहान जाति के साहूकार का पुत्र अपने स्वामी महाराजाधिराज मूलराज सहित दुर्ग भंग होने के समय स्वर्गवासी हुए थे। इस लेख के अनुसार जैसलमेर दुर्ग पर खिलजी सेना का अधिकार भट्टीक संवत 691/वि.सं.1371/सन् 1314 ई. में हुआ होगा।

अलाउद्दीन खिलजी की फौजों द्वारा जैसलमेर दुर्ग पर अंतिम व पूर्ण आधिपत्य की तिथि वि.सं.1372/1314 ई. ही माना जाना उचित प्रतीत होता है। इस आधार पर रावल मूलराज ने एक वर्ष सात माह शासन किया। रावल जैत्रसिंह द्वितीय की मृत्यु वि.सं. 1370 में हुई होगी। जिन लोगों की मृत्यु का उल्लेख तिथि निर्धारण हेतु किया गया है। उनकी मृत्यु सम्भवतः जैसलमेर के दुर्ग को घेरे जाने के दौरान हुई होगी। अत: 1308 ई. को आक्रमण की तिथि माने तो घेरा कम से कम 6 वर्ष अवश्य रहा होगा। इस प्रकार इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि दिल्ली सल्तनत के फारसी इतिहासकारों द्वारा रचित तवारीखों व इतिहास में जैसलमेर दुर्ग पर अलाउद्दीन खिलजी की फौजों द्वारा किये गये हमले व उसके परिणामों का उल्लेख किन्हीं कारणों से नहीं किया गया। लेकिन स्थानीय साक्ष्य इस बात की पुष्टि करते है कि जैसलमेर पर शाही हमला हुआ। उसके परिणाम भी निकले। यदि केवल इस आधार पर स्थानीय ख्यातों और तवारीखों की उपेक्षा भी की जावें कि वे केवल भाटों व चारणों द्वारा किये गये। तथाकथित राजाओं की शौर्ये गाथाओं की प्रशस्ति पत्र एवं विरदावली तथा वंशावली मात्र है तो इन ख्यातों व तवारीखों में जैसलमेर की पराजय की शर्मनाक स्वीकृति के स्थान पर सुल्तान की फौजों पर विजय का उल्लेख किया गया होता।

3.3.2 अलाउद्दीन खिलजी व रणथम्भौर

अलाउद्दीन खिलजी अपने समय का बहुत ही साहसी, पराक्रमी, महत्वकांक्षी और क्रूर प्रवृति का शासक था। उसने महमूद गजनवी व मोहम्मद गौरी दोनों मुसलमान आक्रान्ताओं के भारतीय राज्यों पर किये गये आक्रमणों

का अच्छी तरह अवलोकन किया। सम्पूर्ण राजपूताना को विजित करने का संकल्प लिया किया कि उसकी महत्वकांक्षा केवल दिल्ली का सुल्तान ही बने रहने की नहीं थी अपितु सारे भारत का वह सार्वभौम सम्राट बनाना चाहता था। वह बहुत बुद्धिशाली चतुर और युद्ध निपुण था। उसने देखा की उसके आसपास के प्रदेशों में शासन करने वाले राजपूत शासक समाप्त नहीं हो जाते। तब तक सारे भारत का सार्वभौमत्व तो दूर की बात है। दिल्ली की सल्तनत भी सही सलामत नहीं मानी जा सकती है। इसलिये उसने सबसे पहले अपने निकटस्थ प्रदेशों के राजपूत राज्यों पर आक्रमण शुरू कर दिया। इस क्रम में अलाउद्दीन की राजपूताना में सबसे पहली महत्वपूर्ण विजय रणथम्भौर की रही।

गोविन्दराज से लेकर हम्मीरदेव तक के राजाओं पर दिल्ली के सुल्तानों के सतत आक्रमण होते रहे हैं । रणथम्भौर का दुर्ग सैनिक दृष्टि से सामरिक व बड़े महत्व के स्थान पर स्थित है। दिल्ली के नजदीक वह ही सबसे दुर्गम दुर्ग था। चाहमान वंश जैसे मुस्लिमों के सबसे प्रबल वैरिवंश की संतानों ने उस पर अधिकार कर रखा था। इसलिए दिल्ली के सुल्तान को अपने सर पर लटकती तलवार जैसी वह सत्ता खतरनाक लगती थी। अत: दिल्ली के शासकों ने उस सत्ता को नष्ट करने का सतत प्रयत्न चालू रखा। बार-बार वह रणथम्भौर पर आक्रमण करते रहे। चाहमान भी उनका सामना अपने पूर्वजों के समान वैसे ही करते रहे। वे कभी हारते कभी जीतते पर संघर्ष सदा ही चालू रखते। वे अपनी तलवार को सिरहाने रखकर कभी सुख की नींद नहीं सोते थे।

हम्मीर देव (1282-1301 ई.) :-

गोविन्दराज की सातवीं पीढ़ी में वाग्भट्ट का पौत्र व जैत्र सिंह व उसकी पत्नी हीरादेवी का सबसे छोटा पुत्र हम्मीरदेव रणथम्भौर की गद्दी पर बैठा। जैत्रसिंह के दो पुत्र और थे जिनमें एक का नाम सुरत्राण और दूसरे का नाम वीरम था।[462] हम्मीरदेव को सर्वथा राज्य-योग्य देखकर जैत्र सिंह ने अपने जीवनकाल में ही अपना उत्तराधिकारी तथा रणथम्भौर का शासक बना दिया था। हम्मीर का राजसिंहासन उसके पिता के जीवन काल में ही वि.सं.1336/1282 ई. को हुआ था। फिर शक्ति और सत्ता प्राप्ति करने की दृष्टि से अपने समीपवर्ती देशों पर अधिकार करने के लिए निकल गया।[463]

उसने सर्वप्रथम भीमरस के राजा अर्जुन को परास्त किया। इसके बाद मांडलगढ़ या मांडलकुता से कर वसूल किया। हरविलास शारदा के अनुसार मांडलगढ़ 'गघामंडला' क्षेत्र में था। डॉ गोपीनाथ शर्मा और डॉ.दशरथ शर्मा के अनुसार मांडलकुता का समन्वय उदयपुर क्षेत्र के मांडलगढ़ से किया जाना चाहिए। इसके बाद हम्मीर दक्षिण

की और गया। अपनी विजय सेना के साथ उज्जैन और धार तक पहुँच गया। यहाँ उसने परमार शासक भोज द्वितीय को पराजित किया। उज्जैन में महाकाल की पूजा अर्चना की। यहाँ से वह उत्तर की और आया चित्तौड को दंडित करके आबू आकर अपनी सेना का पड़ाव डाला। उसने विमल–वसही में ऋषभदेव को प्रणाम किया। वस्तुपाल के मंदिर को देखकर उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उसने अबुर्दादेवी की अर्चना की और वशिष्ठ आश्रम में कुछ समय तक विश्राम कर मन्दाकिनी में स्नान किया। आबू के राजा ने उसे बहुत सा धन दिया। वहाँ से उत्तर कर वह वर्धनपुर, चंगा, अजमेर होता हुआ व पुष्कर में उसने भगवान वराह की पूजा अर्चना की। फिर शाकम्भरी, महाराष्ट्र, खंडीला, चम्पा, कंकरीला आदि[464] कंकरीला पर त्रिभुवन नगरी के राजा ने हम्मीर देव का बहुत आदर सत्कार किया। विद्वानों ने त्रिभुवन नगरी का समीकरण यादवों की राजधानी करौली से किया है।[465] को विजित कर हम्मीर रणथम्भौर लौटा ।[466]

हम्मीर ने कम समय में ही रणथम्भौर की सीमाओं को काफी विस्तारित कर दिया था। जिससे शिवपुर जिला (ग्वालियर) बलबन, कोटा राज्य में, मेवाड़ के शासक समरसिंह को परास्त कर अपनी धाक राजपूताना में जमा ली थी। आबू के शासक प्रतापसिंह को दबाकर जो गुजरात के बाघेला सारंगदेव का सामंत था। हम्मीर ने अपनी शक्ति का परिचय कराया था।[467] इस प्रकार हम्मीरदेव ने राजपूताना में अपना दबदबा स्थापित कर लिया था। हम्मीरदेव की विजय ने राजपूताना में जालौर के स्थान पर रणथम्भौर के चाहमानों की राजनीतिक पद-प्रतिष्ठा को बढ़ा दिया था। परन्तु यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रह सकी। इस विजय अभियान से लौटने के बाद हम्मीर ने 'कोटीयजन'[468] का आयोजन किया। अश्वमेघ यज्ञ का भी आयोजन किया था। यज्ञ का निदेशन हम्मीर के राजपुरोहित विश्वरूप ने किया।[469]

हम्मीर महाकाव्य में वर्णित उपर्युक्त ' दिग्विजय' एक प्रकार से हम्मीरदेव द्वारा अलग-अलग समय में किये गये सैनिक अभियान मात्र थे जिन्हें कवि ने एक सूत्र में पिरोकर दिग्विजय का रूप प्रदान किया। उपर्युक्त सभी अभियान 1288 ई. के पूर्व ही किये गये होंगे। हम्मीरदेव के बलवान शिलालेख में एक स्थान पर दो कोटि-यजनों का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि कोटि यजन का महत्व अश्वमेघ जैसा नहीं रहा होगा। इसी शिलालेख में हम्मीर द्वारा मालव नरेश अर्जुन की हस्ति सेना को बलपूर्वक छिनने का उल्लेख भी किया गया है। हम्मीर ने भोज को धार स्थल पर पराजित किया था। कुल मिलाकर हम्मीर ने जीवन काल में 17 युद्ध लड़े थे जिनमें से 16 में वह विजयी रहा। 17 वें और अंतिम युद्ध में वह दिल्ली सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की सेना से लड़ता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ।[470]

अलाउद्दीन खिलजी और रणथम्भौर:-

रणथम्भौर के चौहानों और दिल्ली सल्तनत के आपसी सम्बधों में अलाउद्दीन खिलजी के सुल्तान बनने के साथ ही एक नये दौर की शुरुआत हुई। अलाउद्दीन एक अत्यंत ही महत्वकांक्षी शासक था। वह सम्पूर्ण भारत को अपने शासन के अंतर्गत लाना चाहता था। बलबन के बाद उसके कमजोर उत्तराधिकारियों की कमजोरी का लाभ उठाकर रणथम्भौर के चौहानो ने बल्हणदेव जैत्रसिंह व हम्मीर के नेतृत्व में अपनी शक्ति को काफी सुदृढ़ बना लिया था। अलाउद्दीन चौहानो की इस नवोदित शक्ति को सहन नहीं कर सकता था। अत: उसने रणथम्भौर के चोहानों को जीतने का निश्चय किया।

अलाउद्दीन खिलजी द्वारा रणथम्भौर पर आक्रमण के कारण:-

समकालीन इतिहासकार अमीर खुसरो ने रणथम्भौर पर आक्रमण के कारण के बारे में कुछ नहीं लिखा है। वह यह लिखते हैं कि रणथम्भौर का शासक राय पिथौरा के वंशज था।[471] लेकिन बरनी ने तारीखे फिरोज शाही में स्पष्ट लिखा है कि सर्वप्रथम सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने रणथम्भौर दुर्ग पर विजय करना आवश्यक समझा क्योंकि वह दिल्ली के बहुत निकट था।[472] अलाउद्दीन अपने पूर्ववर्ती सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिलजी द्वारा रणथम्भौर अपने अधीन करने के दोनों अभियानों में प्राप्त असफलता से खिलजी राजवंश की प्रतिष्ठा में जो कलंक लगा था उसे धोना आवश्यक था।

अलाउद्दीन यह भलीभाँति जानता था यदि वह मालवा व गुजरात को अपने राज्य के अंतर्गत सम्मिलित करता है और दक्षिण विजय को स्थायी बनाना है तो उसे राजपूताना के दुर्गो पर अधिकार करना होगा। इसी नीति के तहत सुल्तान ने रणथम्भौर विजय को अपनी उत्तरी भारत विजय का एक अंग बनाया। दुर्ग पर आक्रमण का बहाना भी उसे मिल गया था। उसने मंगोल विद्रोहियों को आश्रय दे रखा था। ये मंगोल विद्रोही मोहम्मद शाह के नेतृत्व में जालौर से उलुग खाँ और नुसरत खाँ के खेमे से भाग कर हम्मीर की शरण में आ गये थे। उलुग खाँ ने गुजरात विजय से लायी गयी लूट का 1/5 वां भाग माँगा था। जिसको देने में मंगोलों ने आनाकानी की थी। जब यह विद्रोही हम्मीरदेव के दरबार में चले गये। सुल्तान ने उसे अपने विद्रोहियों को लौटा देने को कहा। हम्मीर ने इनको लौटा देना अपनी शान और वंश मर्यादा के विरूद्ध समझा। वह युद्ध के लिए तैयार हो गया।[473] इसलिए इस विद्रोहों को हम रणथम्भौर आक्रमण का तत्कालीन कारण भी कह सकते है। आधुनिक इतिहासकार डॉ. के. एस. लाल के अनुसार अलाउद्दीन द्वारा रणथम्भौर पर आक्रमण के निम्न कारण थे।[474]

1. दिल्ली से रणथम्भौर की निकटता बरनी कृत तारीखें फिरोजशाही में इस कारण का उल्लेख है।

2. रणथम्भौर पर अधिकार करने में जलाजुद्दीन फिरोजशाह खिलजी की असफलता

3. रणथम्भौर दुर्ग की अर्भेघता

4. जालौर के निकट हुए नव-मुसलमानों का विद्रोह मोहम्मद शाह और उसके भाई केहब्रु को हम्मीरदेव द्वारा शरण देना।

हम्मीरहठ काव्य का लेखक चन्द्रशेखर मोहम्मद शाह के सुल्तान से विद्रोह का अलग कारण बताता है उसके अनुसार सुल्तान की मरहठठा रानी से मीर मोहम्मद शाह के प्रेम सम्बंध थे। जब सुल्तान को इसका पता चला। वह भाग कर रणथम्भौर के राव हम्मीर की शरण में चला गया। हम्मीर रासो में इस मरहठठा बेगम का नाम चिमना बेगम दिया है। परन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर इस घटना की सत्यता संदिग्ध है।[475] हम्मीर महाकाव्य के अनुसार हम्मीरदेव द्वारा का मोहम्मद शाह को शरण देना ही आक्रमण का मुख्य कारण था। इतिहासकार एसामी भी इसका समर्थन करता है। बस फर्क इतना है कि वह विद्रोहियों के नाम अलग बताता है।[476]

सर्वाधिक प्रमुख कारण अलाउद्दीन की साम्राज्य प्रसार की भावना थी। अलाउद्दीन एक महत्वाकांक्षी व साम्राज्यवादी प्रवृति का शासक था। वह समस्त भारत को अपने अधीन करना चाहता था। इसलिए रणथम्भौर पर आक्रमण अधिक समय तक टाला नहीं जा सकता था। रणथम्भौर की विजय राजपूताना विजय की प्रथम आवश्यकता थी। जो भी कारण रहा हो वास्तविक कारण राजनीतिक था। एक तरफ हम्मीर अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। दूसरी तरफ अलाउद्दीन खिलजी सम्पूर्ण भारत को अपने प्रभुत्व में लाना चाहता था। अत: दोनों में संघर्ष होना स्वाभाविक ही था।

नव-मुसलमानों का विद्रोहों:- गुजरात अभियान से लौटी हुई मुस्लिम सेना से जालौर के निकट उलुग खाँ तथा नुसरत खाँ द्वारा बल पूर्वक लूट की सम्पति वसूल करने के कारण सेना के नव मुसलमानों (मंगोलों) ने विद्रोहों कर दिया। उन्होंने रात्रि में उलुग खाँ व नुसरत खाँ को जान से मारने का भी प्रयास किया किन्तु वे इसमें असफल रहे।[477] एसामी के अनुसार नव मुस्लिमों के नेताओं में कमिजी मोहम्मद तथा कभू ने रणथम्भौर में शरण ली। यहिया के अनुसार रणथम्भौर में शरण लेने वालों में यलजक़, कसरी, बेगी, तमगान, मुहम्मद शाह, तमरबाग़, शादीबग आदि विद्रोही थे[478]

हम्मीर महाकाव्य के अनुसार हम्मीर द्वारा मोहम्मद शाह को शरण देना ही आक्रमण का मुख्य कारण था। मुस्लिम इतिहासकार एसामी भी इस कारण की पुष्टि करता है। उसके अनुसार 1299 ई. में अलाउद्दीन ने अपने दो सेना नायकों उलुग खाँ व नुसरत खाँ को गुजरात पर आक्रमण करने भेजा। गुजरात में प्राप्त धन सम्पदा के साथ जब शाही सेना वापस लौट रही थी। जालौर के निकट लूट के माल के बँटवारे को लेकर नव-मुस्लिम-जलालुद्दीन फिरोजशाह खिलजी के समय मंगोल नेता अलाकू के पौत्र उलुग खाँ ने आक्रमण किया। बाद में उलुग खाँ ने अपने 4000 समर्थकों के साथ इस्लाम धर्म स्वीकार कर भारत में ही रहने का निश्चय किया। सुल्तान ने उन्हें भारत में रहने की अनुमति प्रदान कर दी। मंगोलों को रहने का स्थान भत्ते व राजकीय पद प्रदान किये गये। सुल्तान ने अपनी एक पुत्री का विवाह उलुग खाँ के साथ किया। यही मंगोल बाद में नवीन मुसलमान कहलाये। वह स्थान आज भी मंगोलपुरी के नाम से प्रसिद्ध है।[479] शाही सेना ने बर्बरता के साथ विद्रोहियों का दमन किया। परन्तु उनके कुछ नेता भाग निकले और उनमे से मोहम्मद शाह और केहब्रू ने रणथम्भौर के हम्मीरदेव के पास के शरण ली। अलाउद्दीन की तरफ से विद्रोहियों को सौंप देने की माँग को हम्मीर ने ठुकरा दिया। जिससे सुल्तान क्रोधित हो उठा। उसने रणथम्भौर के विरूद्ध सैनिक अभियान का आदेश दिया। हम्मीर ने इनको लौटाना अपनी शान और वंश मर्यादा के विरूद्ध समझा और युद्ध के लिए तैयार हो गया।

उलुग खाँ और नुसरत खाँ के नेतृत्व में रणथम्भौर पर आक्रमण:-

अलाउद्दीन खिलजी के रणथम्भौर अभियान के विषय में समस्त मुस्लिम लेखकों ने एक ही अभियान का वर्णन किया है। जबकि इस घटना के लगभग एक शताब्दी पश्चात नयनचन्द्र सूरी द्वारा लिखित चाहमान वंश के इतिहास के विश्वसनीय ग्रन्थ 'हम्मीर महाकाव्य' में मुसलमानों के एक से अधिक आक्रमणों का उल्लेख किया है। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस ग्रन्थ में रणथम्भौर दुर्ग की आंतरिक घटनाओं का भी विस्तृत विवेचन किया गया है। जिसे कदापि नकारा नहीं जा सकता है। नयन चन्द्र सूरी ने अपने ग्रन्थ में हम्मीरदेव और अलाउद्दीन खिलजी के प्रारम्भिक संघर्ष का जो वर्णन किया है। उसका उल्लेख मुस्लिम स्रोतों में नहीं है। तथापि ऐसा कोई कारण नहीं है। जिसमे हम हम्मीर महाकाव्य के वर्णन को अस्वीकार कर सके।

जालौर के निकट 1299-1300 ईस्वी की सदियों में हुये विद्रोहों के कारण कुछ समय के बाद खिलजी सेना ने रणथंभौर पर बार-बार आक्रमण करना शुरू कर दिया। नचचंद सूरी व जोधराज ने इन हमलों का विस्तृत विवरण दिया। नयनचन्द्र सूरी के अनुसार सुल्तान ने अपने छोटे भाई उलुंग खाँ को सेना सहित रणथम्भौर पर आक्रमण लिए भेजा। जब यह सेना बनास नदी तक पहुंची। उन्होंने देखा की नदी के आगे ऊबड खाबड़ भूमि होने

के कारण घुड़सवारों की पंक्ति उपयोगी सिद्ध नहीं होगी। इसलिए उन्होंने अपनी सेना का पड़ाव बनास नदी के किनारे डाल दिया। आसपास के प्रदेशों और खेती को बर्बाद करना शुरू कर दिया। जिससें चाहमानों के अधिकार वाले क्षेत्रों में अव्यवस्था हो गयी। भविष्य में भी कोई उपज की सम्भावना ना रही। इन तरीके को इसलिये अपनाया गया था कि रणथम्भौर राज्य की आय के साधन नष्ट हो जायें। जब अपने देश की दुर्गति का हम्मीर को पता चला। उन्हीं दिनों कोटि यज्ञ को समाप्त कर मुनिव्रत से आबद्ध था। उसने अपने दो सैनिक अधिकारियों को जिनके नाम भीमसिंह व धर्मसिंह थे।[480] शत्रु का मुकाबला करने के लिए भेजा। राजपूत सेना ने बनास के किनारे पड़ी हुई शत्रु सेना पर हमला बोल दिया। जिससे शाही सेना की हार हुई। राजपूत सेना का भाग जो धर्मसिंह के नेतृत्व में था लूट का धन लेकर लौट गया। भीमसिंह के नेतृत्व वाली सेना धीरे-धीरे दुर्ग की ओर जा रही थी। राजपूतों ने ये सोचा था कि जो बनास पर सेना पड़ी हुई है वहीं सेना ही सब कुछ थी। परन्तु तुर्कों की सेना जो अलप खाँ के नेतृत्व में थी। चारों और बिखरी हुई थी। उस सेना ने लौटती हुई भीमसिंह की सेना पर हमला बोल दिया। जिसके फलस्वरूप भीमसिंह अपने साथियों सहित वीरगति को प्राप्त हुआ। उलुग खाँ ने हम्मीर की सेना से युद्ध करना सही नहीं समझा व वापस दिल्ली लौट गया।[481] [482] यह बहुत सम्भव है कि भीमसिंह की मृत्यु अकस्मात या केवल मुसलमानी बाजे बजाने से नहीं हुई। मुसलमान सेनापतियों की अनेक बार यह नीति रही है कि वे शत्रु के आक्रमण करते ही या तो पीछे हटते है या बिखर जाते है। फिर शत्रु के असावधान होने पर उस पर आक्रमण करते है। तारावाडी के युद्ध में मोहम्मद गौरी ने इस नीति का अनुसरण किया था। बहुत सम्भव है कि उलुग खाँ ने भी इसी नीति द्वारा भीमसिंह का वध करने में समर्थ हुआ हो। दूसरी और शाही सेना का आक्रमण दिल्ली सल्तनत के लिए कोई विशेष कीर्ति का कोई कारण नहीं था। सम्भव है कि मुसलमान इतिहासकारों ने इसका जिक्र नहीं किया हो। अमीर खुसरो ने केवल एक आक्रमण का उल्लेख किया है। बरनी ने दो का, यदापि वास्तव में आक्रमण चार या अधिक हुए थे।[483]

इस युद्ध के बाद रणथम्भौर में परिवर्तन:- जब हम्मीरदेव के पास भीमसिंह की मृत्यु की सूचना पहुंची। उसे बड़ा दुःख हुआ। क्योंकि इससे पूर्व धर्मसिंह द्वारा भीमसिंह को छोड़कर आगे निकल जाने के कारण भीमसिंह मुसलमानों द्वारा मारा गया था। अत: हम्मीर उससे खिन्न होकर उसे उसके पद से हटाकर भोज को नियुक्त कर दिया। भोज उस समय की रणथम्भौर की स्थिति को सम्भाल नहीं सका। इससे स्थिति और ज्यादा खराब हो गयी। धर्मसिंह ने ऐसे में धन संग्रह का आश्वासन् देकर हम्मीर से भोज सिंह का पद ले लिया। हम्मीर ने बिना सोचे समझे भोज को पदच्चुत कर दिया। उसको अपमानित भी किया। इसलिय भोज विवश होकर काशी की यात्रा के बहाने अपने भाई पृथ्वीसिंह या पीथसिंह के साथ अलाउद्दीन की शरण में चला गया। जहाँ उसे जगरा

से सम्मानित किया गया।[484] इसके बाद धर्मसिंह राज्य का सर्वसर्वा बना गया। अब हम्मीर से अपने अपमान का बदला लेना चाहताथा । धन संग्रह के लिए रणथम्भौर की प्रजा पर अनेक प्रकार के कर लगाये। जिससे प्रजा में हम्मीर के प्रति असंतोष बढ़ने लगा। उसने हम्मीर की सम्मति से दण्डनायक के पद पर रतिपाल को नियुक्त किया। सही उपयुक्त व्यक्ति नहीं था। उलुग खाँ के अभियान के बाद जो नये परिर्वतन रणथम्भौर में किये गये वे आगे चल कर हानिकारक सिद्ध हुए।[485] [486]

तुर्कों द्वारा रणथम्भौर लेने का असफल प्रयास:-

जब भोज तिरस्कृत होकर अलाउद्दीन के दरबार में पहुँचा तो उसका वहाँ पर स्वागत किया गया। उसे जागीर भी दी गयी। इससे उत्साहित होकर उसने हम्मीर के विरूद्ध अलाउद्दीन को आक्रमण करने के लिए उकसाया। भोज की सलाह से अलाउद्दीन खिलजी ने उलुग खाँ के नेतृत्व में एक बड़ी सेना भोज सहित रणथम्भौर पर आक्रमण के लिए भेजी गई। यह सेना हिन्दवाटी तक पहुँच चुकी थी। जहाँ चारों और अंधकार ही अंधकार था। हम्मीरदेव ने जब यह बात सुनी। उसने उलुग खाँ के विरूद्ध अपने भाई वीरम सहित आठ योद्वाओं को भेजा। जाजदेव ने दक्षिण से, उत्तर से गमसक ने, आग्नेय से सेनानायक रतिपाल, तीचर ने वायव्य, रणमल ने ईशान से, और मोहम्मद शाह और उसके रिश्तेदारों ने तुर्क सेना को हिन्दुवाटी में हुई मुठभेड़ में पराजित कर दिया। उलुग खाँ किसी तरह वहाँ से भाग निकला। किन्तु उसके शिविर को चाहमानों ने पूरी तरह से लूटा । रतिपाल ने राजा की ख्याति को बढ़ाने के लिये बंदीकृत मुसलमानी स्त्रियों से गाँव-गाँव में मट्टा बिकवाया। राजा ने उसके शौर्ये से प्रसन्न होकर कहा कि यह मेरा मस्त हाथी है। उस के पैरों में सोने की श्रंखलाएं डाली गयी। दूसरों को भी राजा ने प्रचुर पारितोषिक दिया।[487] कुछ समय मोहम्मद शाह और उसके भाइयों ने जगरा पर आक्रमण कर भोज व उसके कुटुम्ब को कैद कर रणथम्भौर में ले आये। इन सब से क्रुद्ध होकर अलाउद्दीन खिलजी ने रणथम्भौर पर आक्रमण करने का निश्चय किया।[488] [489]

उलुग खाँ व नुसरत खाँ के नेतृत्व में रणथम्भौर पर आक्रमण-(1300 ई.):- हम्मीरमहाकाव्य में वर्णित उपर्युक्त आक्रमण 1299-1300 ई. में हुआ। अपनी इन पराजयों से पराजित होकर सुल्तान ने हम्मीर को नष्ट करने के लिए 699 हि./1300[490] ई. में बयाना के प्रान्तपति उलुग खाँ व बरनी के अनुसार नुसरत खाँ जो उस समय कड़ा का प्रान्तपति था, को आदेश भेजा कि कड़े की समस्त सेना और हिंदुस्तान की सभी अक्ताओं की सेनाओं को लेकर रणथम्भौर की ओर प्रस्थान करे। रणथम्भौर विजय में उलुग खाँ को सहायता प्रदान करे।[491]15 दिन की यात्रा उपरांत के शाही सेना रणथम्भौर की सीमा के पास पहुंची । उन्होंने चाहमान राज्य के अग्रिम

प्रतिरोधात्मक केन्द्र झाइन पर अधिकार जमा लिया।[492] डॉ. गोपीनाथ शर्मा के अनुसार ये सफलता उन्हें इसलिये मिली कि उसने हम्मीरदेव से संधि वार्ता के लिए आने का बहाना बनाया था।[493]

इसामी के अनुसार उलुग खाँ ने झाइन पहुँचने पर हम्मीरदेव से पत्र व्यवहार किया था। उसके अनुसार उलुग खाँ ने लिखा कि कमीजी मोहम्मद और कभूरु तुम्हारी शरण में आ गये है। या तो हमारे दुश्मनों की हत्या कर दे या तो युद्ध के लिये तैयार हो जा। हम्मीर ने अपने मंत्रियों से परामर्श किया। मंत्रियों ने उन्हें सुर्पुद करने को कहा। लेकिन हम्मीर ने उत्तर दिया कि जो शरण में आ गया है। उन्हें मै किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचा सकता। चाहे प्रत्येक दिशा से इस किले पर आक्रमण करने के लिए तुर्क एकत्रित क्यों ना हो जाये। हम्मीर ने उलुग खाँ को भी उत्तर भेजा दिया। जो लोग मेरी शरण में आ गये है। उन्हें मै किसी प्रकार तुम्हें नहीं दे सकता हूँ। यदि तू युद्ध करना चाहता है तो मैं तैयार हूँ।[494]

अमृत कैलाश द्वारा रचित हम्मीर बंधन के अनुसार राज्य के बहुत से सेठ-साहूकारों तथा महाजनों ने हम्मीरदेव को शरणागतों को सौंपकर युद्ध टालने की सलाह दी थी। उनका तर्क था कि दिल्ली सुल्तान अत्यधिक शक्ति सम्पन है। वह लम्बे युद्ध को सहन कर सकता है। इसके विपरीत रणथम्भौर की जनता को दीर्धकालीन संघर्ष के कारण अत्यधिक संघर्ष का सामना करना पड़ेगा। परन्तु हम्मीर ने उनकी कायरता पूर्ण सलाह को ठुकरा दिया। उसने किसी भी कीमत पर शरणागत को सौंपने से मना कर दिया।[495]

हम्मीर महाकाव्य के अनुसार मुसलमानों द्वारा घाटी पार करने के उपरांत उलुग खाँ ने दूत मोल्हण को हम्मीरदेव के पास भेजा। मोल्हण ने रणथम्भौर में हम्मीरदेव से कहा कि जिस अलाउद्दीन ने देवगिरी जैसे दुर्ग को भी जीत लिया है। उसके छोटे भाई उलुग खाँ व नुसरत खाँ ने उसी की आज्ञा से कहलाया है। यदि तेरी राज्य करने की इच्छा है तो चार लाख स्वर्ण मुहरें चार हाथी तीन सौ घोडें व अपनी पुत्री देकर हमारी आज्ञा का पालन कर। मेरी आज्ञा को प्रलुप्त करने वाले चार मुगलों को देकर तुम राजलक्ष्मी का आनंद लो। क्रोध में आकर हम्मीरदेव ने उत्तर दिया। यदि तुम दूत के रूप में ये बातें नहीं कहते तो मैं तुम्हारी जुबान कटवा देता।[496] [497] [498]

दोनों पक्षों में संधि-वार्ता के असफल होने पर मुस्लिम सेना रणथम्भौर दुर्ग की और बढ़ी। उलुग खाँ ने दुर्ग से थोड़ी दूर ही अपना शिविर लगाया। किले के चारों तरफ पाशिब व गरगच बनवाए गये। मराबियों द्वारा भारी पत्थरों की बौछार दुर्ग रक्षकों पर जाने लगी। उधर हम्मीरदेव ने भी युद्ध की पूरी तैयारी कर ली। तारीखें

मुबारक शाही के लेखक याहिया बिन अहमद सरहिंदी के अनुसार उस समय हम्मीर के पास 12000 सवार अगणित प्यादे, प्रसिद्ध हाथी थे।[499] अमीर खुसरो के अनुसार हम्मीरदेव के पास 10000 घुड़सवार थे। राजपूत सैनिक दुर्ग की प्राचीरों से तुर्की सेना पर पत्थरों की वर्षा करते थे। बरनी के अनुसार एक दिन नुसरत खाँ किले के निकट पाशेब बंधवाने तथा गरगच लगवाने में तल्लीन था। किले के भीतर से मगरबी पत्थर फेकें जा रहे थे। अचानक एक पत्थर नुसरत खाँ को लगा। वह घायल हो गया। दो तीन दिन बाद उसकी मृत्यु हो गयी।[500] [501] हम्मीर ने शत्रुपक्ष की इस स्थिति का लाभ उठाते हुए दुर्ग के बाहर निकल कर उस पर जोरदार आक्रमण किया। उलुग खाँ इस अप्रत्याक्षित आक्रमण के लिए तैयार नहीं था। काफी क्षति उठाने के बाद वह झाई की ओर लौट गया। अपनी सेना पुन: एकत्रित करने लगा। इसके साथ ही उसने सुल्तान के पास नुसरत खाँ की मृत्यु और सेना की वापसी का समाचार भिजवाते हुए और अधिक सैनिक सहायता भिजवाने का अनुरोध किया।[502] अपने अनुज नुसरत खाँ की मृत्यु के बाद शाही सेना की हिम्मत बढ़ाने के लिए यह आवश्क था कि स्वयं सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी यह कार्य अपने हाथ में लें।

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का रणथम्भौर आगमन:-

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी को नुसरत खाँ की मृत्यु का सन्देश मिला। वह दिल्ली से रणथम्भौर अभियान का नेतृत्व करने के लिए रवाना हुआ। रास्ते में दिल्ली से 12 मील दूर तिलपत में जब सुल्तान का शिविर लगा था। इसी बीच सुल्तान के भतीजे अकत खाँ ने जो कि वकीलदार था विद्रोह कर दिया। उसने सोचा की जिस प्रकार अलाउद्दीन ने अपने चाचा की हत्या करके सत्ता प्राप्त की है। मैं भी उसी प्रकार सत्ता पाप्त कर लूं। अकत खाँ ने सुल्तान को मारने के उद्देश्य से शेर-शेर कहते हुए उस पर तीर बरसा कर घायल कर दिया। विद्रोही सुल्तान को मृत समझकर घटना से विमुख हो गये। इस बीच सुल्तान को होश आ गया। चेतना आने पर एक बार तो उसने रणथम्भौर अपने भाई उलुग खाँ के पास आने का विचार किया। लेकिन उमदतुल के पुत्र हमदुद्दीन ने सलाह दी। कि अन्नदाता को इस समय शिविर की और प्रस्थान करना चाहिए। जैसे ही प्रजा सुल्तान को देखेगी और सेना वाले यह समझ जायेगें कि अन्नदाता सुरक्षित है। सुल्तान ने वैसा ही किया। शीघ्र ही विद्रोहियों के उद्देश्य को विफल कर दिया गया।[503]

विद्रोहों के बारे में पूछताछ करने व अकत खाँ के विद्रोह को शांत करने के पश्चात में सुल्तान लगातारकूंच करता हुआ रणथम्भौर की और रवाना हुआ। वहाँ पहुँच कर सुल्तान ने अपना डेरा डाला। इससे पूर्व भी दुर्ग को घेर रखा था। सुल्तान के पहुँचने पर इसमें ओर तेजी आयी। सुल्तान के पहुँच जाने से शाही सैन्य दल में पुन: नया

उत्साह आ गया। वे पुन: चाहमानों से संघर्ष करने को तैयार हो गये।[504] ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों पक्षों में संघर्ष होने पर मुसलमानों के अत्यधिक दबाव के कारण चाहमान पुन: तलहटी से दुर्ग में आ गये।

हम्मीर महाकाव्य के अनुसार अलाउद्दीन के रणथम्भौर के समीप पहुँचने पर चाहमानों ने शाही सेना से दो दिन तक भीषण संघर्ष किया। जिसमें 85 हजार मुसलमान यौद्धा मारे गये।[505] इसके बाद दोनों पक्षों ने कुछ दिनों तक युद्ध बंद कर दिया।

अलाउद्दीन खिलजी ने ठीक सामने वाली ऊँची पहाड़ी पर पर अपना शिविर लगाया। दुर्ग व अपने शिविर के मध्य स्थित खाई को पाटने का आदेश दिया। इसके बाद घेरा बंदी का काम जोर-शोर के साथ मजबूत किया जाने लगा। बरनी के अनुसार राज्यों के चारों और से बोरियाँ लाई गयी। उनके थैले बनाकर सैनिकों में बाँट दिये गये। थैलों में बालू भर कर खाई को भरने का प्रयास किया। पाशेब बांधे गये। गरचग लगाये गये।[506] परन्तु हम्मीरदेव भी सतर्क था। उसने खाई को पाटने के सारे प्रयत्न बेकार कर दिए। उसने खाई को अग्नि के गोला से जला डाला और सुरंग में लाख और तेल फिकवाने से खाई पूरी तरह से जल गयी। दोनों तरफ के बहुत से सैनिक मारे जाते रहे । सुल्तान ने सुरंग खुदवाई थी। उसे हम्मीर ने भरवा दी। दुर्ग से फेकें जाने वाले भारी पत्थरों की वजह से खाई पाटने में जुटें सैकड़ों तुर्की सैनिकों की जान चली गयी। [507] [508]

रणथम्भौर अभियान के समय सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के विरूद्ध विद्रोह:-

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी रणथम्भौर अभियान के दौरान उसके विरूद्ध विद्रोह उठने लगे। प्रथम विद्रोह, उमर खाँ का विद्रोह, मंगू खाँ का विद्रोह, बदायूं का सूबेदार उमर खाँ और अवध का सूबेदार मंगू खाँ ये दोनों ही सुल्तान के भांजे थे।[509]

द्वितीय विद्रोह राजधानी में हाजीमौला ने किया था। हाजीमौला नामक एक अधिकारी ने दिल्ली के कोतवाल का वध करके किसी सैयद को दिल्ली के सिंहासन पर बैठा दिया। हाजी मौला के विद्रोह की सूचना ने शाही शिविर में निराशा उत्पन कर दी। सुल्तान द्वारा रणथम्भौर के घेरे में बुरी तरह उलझे रहने का लाभ इन महत्वाकांशी व उपद्रवी लोगों ने उठाया। कम से कम दो विद्रोहों के कारण तो स्वयं सुल्तान का सिंहासन भी खतरे में पड़ गया। तथापि सुल्तान दुर्ग को छोड़कर अपयश लेने के लिय तैयार नहीं हुआ। दृढ निश्चय व साहसी सुल्तान दुर्ग पर विजय प्राप्त करने के प्रयासों में लगा रहा। यह जानकर सुल्तान ने सर्वप्रथम हमीदुद्दीन तत्पश्चात

उलुग खाँ को भेजकर विद्रोह का दमन करवा दिया। वफादार शाही सेनानायकों ने शीघ्र ही उनके विद्रोह को कुचल दिया गया। उन्हें अपने परिवार जनों तथा अनुयायियों सहित मौत के घाट उतार दिया गया।[510]

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का हम्मीरदेव से संधि करने का असफल प्रयास:-

इन तमाम विपरीत परिस्थितियों में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने भी अविचलित रहते हुए रणथम्भौर की घेराबंदी को जारी किया। फिर भी अभी सफलता काफी दूर थी। शाही सैनिकों को बहुत अधिक कष्टों का सामना करना पड़ रहा था। एक-एक करके सैनिक शिविरों से जाने लगे । ऐसी स्थिति में सुल्तान ने आदेश निकाला की शिविर छोड़कर जाने वाले शाही सैनिकों को सजा व जुर्माने के रूप में अपने तीन वर्ष का वेतन देना होगा। इस आदेश के परिणामस्वरूप मुस्लिम सैनिकों का पलायन रुक गया। लगभग एक वर्ष से दोनों पक्षों की काफी क्षति हो रही थी। इसी बीच सुल्तान ने हम्मीरदेव से अनेक बार समझौता करने का प्रयास किया। किन्तु दृढ निश्चयी व हठी राजा से उसे निराशा ही हाथ लगी।

रणथम्भौर दुर्ग में अन्नादि का संकट:

जावेद अनवर की हिस्ट्री ऑफ़ रणथम्भौर के अनुसार समय बीतने के साथ ही दोनों पक्षों को अन्नादि के संकटों का सामना करना पड़ रहा था।[511] अमीर खुसरो के ख़जाइनुल फुतूह के अनुसार दुर्ग में अकाल पड़ गया। एक दाना चावल दो सोने की मुहर देकर भी नहीं प्राप्त किया जा सकता था। अमीर खुसरो ने मुस्लिम शिविर की अवस्था का चित्रण नहीं किया है तथापि अनुमान का विषय है कि यद्यपि मुस्लिम सेना के पास रसदादि के अनेक साधन थे किन्तु लम्बे समय से पड़ी होने के कारण उसे भी कई प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ा होगा।[512] शाही सैनिक सुल्तान के निर्देशानुसार चमड़े तथा कपड़े के थैलों में मिट्टी आदि भर कर खाई के अंश को पटते रहे। राजपूत सेना उनके सामने अनेक परेशानियाँ उत्पन्न करती रही। दुर्ग के चारों और लम्बी घेराबन्दी के कारण दुर्ग में खाघानों की कमी आ गयी थी। नयनचन्द सूरी कृत हम्मीर महाकाव्य के अनुसार वास्तव में अन्न की कमी नहीं थी। कोठारी जाहड़ ने इस इच्छा से की वास्तव में संधि हो जावे । झूठी ही यह सूचना दे दी कि अन्न समाप्त हो गया है। हम्मीर रासो में इसके लिय सुर्जनसिंह को दोष देता है परन्तु इन तथ्यों की सत्यता पर संदेह है। क्योंकि एक लम्बे समय तक घेरा चलने के कारण अन्न की कमी आना स्वाभाविक है।[513]

रतिपाल व रणमल्ल का विश्वासघात: जॉन ब्रिग्ज की हिस्ट्री ऑफ़ दी राइज ऑफ़ दी मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया के अनुसार वर्षाकाल की निकटता जानकर सुल्तान ने पुन: एक बार हम्मीर से समझौता करने का प्रयास

किया। दुर्ग से रतिपाल को बुलवाया। हम्मीर द्वारा रतिपाल को मुस्लिम शिविर में जाने की अनुमति से स्पष्ट होता है कि हठी शासक हम्मीर भी संकटों के कारण अब समझौते के पक्ष में हो चला था। अलाउद्दीन खिलजी युक्ति पूर्वक रणथम्भौर का राज्य देने के आश्वासन् पर न केवल रतिपाल को मिलने में सफल हो गया। वरन् उसकी सहायता से रणमल्ल आदि राजपूतों को भी अपने पक्ष में कर लिया।[514] [515] हम्मीर महाकाव्य के अनुसार सुल्तान अलाउद्दीन ने मान व दान दोनों से ही रतिपाल को वशीभूत किया। अपने भाई उलुग खाँ के अलावा सभी अधिकारियों को वहाँ से जाने को कह कर रतिपाल के समक्ष जय की याचना की। अत: पुर में लाकर उसको भोजन कराया व अपनी बहन के हाथ से मदिरा पिलाई। सुल्तान ने रतिपाल को रणथम्भौर के दुर्ग का आश्वासन् देखकर अपनी और मिला लिया। फरिश्ता भी इस कथन की पुष्टि करता है। रतिपाल के माध्यम से सुल्तान ने हम्मीर के एक अन्य सेनापति रणमल्ल को भी अपने पक्ष में मिला लिया।[516]

हम्मीरायण के अनुसार हम्मीरदेव ने दो विश्वस्त सेनानायकों को संधि वार्ता हेतु भेजा था। सुल्तान ने उन्हें पूरी बूंदी और अन्य वस्तुओं का आश्वासन् दिया था। हम्मीरायण में इन दोनों के नाम नहीं दिये गये है। एन अरेविक हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात के अनुसार रणमल्ल जो चाहमानों की तरफ से सुल्तान अलाउद्दीन से संधिवार्ता करने गया था। उसने चाहमानों का पक्ष छोड़कर अलाउद्दीन का पक्ष ग्रहण कर लिया। यहाँ पर रतिपाल की जगह रणपाल बताया गया। परन्तु फारसी ग्रंथों के अनुसार रतिपाल ही संधि वार्ता हेतु गया था।[517]

हम्मीर महाकाव्य के अनुसार रतिपाल ने रणथम्भौर पहुँच कर हम्मीरदेव से कहा। अलाउद्दीन कहता है कि वह मुर्ख अपनी लडकी को नहीं देगा तो मैं उसकी स्त्रियों को भी छीन लूँगा। इस पर मैं उसकी भर्त्सना करके चला आया। गोपीनाथ शर्मा ने भी लिखा है कि रतिपाल ने कुछ प्राचीरों और बुर्जों से मोर्चबंदी हटा ली थी। तुर्क सैनिक रस्सों और सीढियों से दुर्ग में प्रवेश कर गये[518] रतिपाल रणमल्ल आदि के मुस्लिम सेना से मिल जाने से भी हम्मीरदेव की सामरिक शक्ति में दुर्बलता आयी थी। अत: सभी इतिहासकार थोड़े बहुत अंतर के साथ रतिपाल व रणमल के विश्वास को स्वीकार करते है।

लम्बे समय से चलने वाले घेरे से यद्यपि दोनों पक्ष उब चुके थे, तथापि दुर्ग के भीतर घिरे हिन्दुओं की स्थिति अधिक संकटमय रही होगी, क्योंकि शाही सेना ने दुर्ग में जाने वाली समस्त वस्तुओं का मार्ग रोक दिया होगा। एसामी और अमीर खुसरो के अनुसार सुल्तान ने दुर्ग पर अधिकार करने के लिये अग्रसर नीति का सहारा लिया। उसने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि चमड़े और कपड़े के थैलों में मिट्टी भर कर खाईयों को भर दें ।[519] इस प्रकार की नीति से शाही सेना ने खाईयों को भर कर दुर्ग पर आक्रमण का मार्ग तैयार कर लिया।

समसामयिक साहित्य में उल्लेखित प्रथम जौहर:- शाही सेना की दीर्घ घेराबन्दी के कारण दुर्ग के भीतर खाद्यान्नों का संकट उत्पन हो गया था। ऐसी स्थिति में हम्मीरदेव ने अधिक दिनों तक दुर्ग में बंद रहना उचित नहीं समझा। शत्रु पर अंतिम आक्रमण को जाने से पूर्व राजपूत स्त्रियों के लिये जौहर की व्यवस्था की गयी। हम्मीरमहाकाव्य के अनुसार हम्मीरदेव की मुख्य रानी रंगदेवी के नेतृत्व में राजपूत नारियों ने जौहर की चिता में प्रवेश किया। हम्मीर की प्रिय पुत्री देवल्ल देवी सहित।[520] हम्मीर महाकाव्य की अमीर खुसरो, एसामी, हरविलास शारदा[521] डॉ. दशरथ शर्मा[522] आदि से भी पुष्टि होती है। अमीर खुसरो के अनुसार शाही सेना ने अग्नि की लपटों को देखा। पूरी पहाड़ी टयूलिप पहाड़ी की तरह गुलाबी लग रही थी। उन्हें तुरंत पता लग गया कि इसका मतलब क्या है।[523] अमीर खुसरो ने लिखा है कि हम्मीरदेव ने दुर्ग में आग जलवा कर अपनी स्त्रियों को आग में जलवा दिया।[524] एसामी ने फुतूह सलातीन में लिखा है कि राय हम्मीरदेव ने जौहर का आयोजन किया। अपनी समस्त मूल्यवान वस्तुओं को जला दिया।[525]

हम्मीरायण के अनुसार हम्मीरदेव ने अपने पुत्र व पत्नी को दुर्ग से बहार निकाल दिया था अर्थात उसकी रानी जौहर नहीं किया। इस तथ्य की सत्यता पर संदेह है, क्योंकि एसामी लिखता है हम्मीरदेव के परिवार से कोई भी सदस्य जीवत नहीं रहा था। इसी प्रकार यह किसी समसाहित्य में उल्लेखित जौहर का प्रथम उदाहरण है। जो रणथम्भौर के चाहमान शासक राय हम्मीरदेव की पटरानी रंगदेवी के नेतृत्व में किया गया था।

अलाउद्दीन खिलजी व राव हम्मीर देव के बीच अंतिम युद्ध व रणथम्भौर विजय 1301 ई.:- जोधराज कृत हम्मीर रासो के अनुसार हम्मीरदेव ने अपने सहयोगियों से कहा कि जिस किसी सेनानायक को अपने जीवन से अधिक स्नेह है। वह सुल्तान की सेवा में जा सकता है क्योंकि वह सुल्तान की सेवा स्वीकार नहीं करेगा।[526] हम्मीर महाकाव्य के अनुसार हम्मीर ने मोहम्मद शाह को किसी सुरक्षित जगह पहुँचने का आग्रह किया। इससे मोहम्मद शाह बिना कुछ बोले वहाँ से घर चला गया। अपनी तलवार से समस्त परिवार के प्राण ले लिये। इससे हम्मीरदेव अत्यंत दुखी हुआ।[527]

हम्मीर महाकाव्य[528] के अनुसार हम्मीरदेव ने रणथम्भौर दुर्ग जाजदेव को सौंपा क्योंकि विरमदेव ने जनापवाद के कारण राज्य ग्रहण नहीं किया। अपने 9 वीरों, तारीख ए किला रणथम्भौर में 12, हम्मीरायण में 6 और दशरथ शर्मा[529] के अनुसार 4 सेनानायकों का हम्मीर के साथ अंतिम युद्ध में उपस्थित होने का उल्लेख है। केसरिया वस्त्र धारण कर और दुर्ग का फाटक खोलकर शत्रु से अंतिम मोर्चा लेने के लिए निकल गये। अब इन शूर वीरों को अपने प्राण रक्षा की कोई चिंता नहीं ही थी। मोहम्मद शाह और केहब्रू भी हम्मीरदेव के प्रति कृतज्ञ

होकर युद्ध में कूद पड़े। हम्मीर महाकव्य के अनुसार वीरम सिंह गंगाधर चारों मुग़ल बन्धु और क्षेत्रसिंह परमार युद्ध में हम्मीरदेव के साथ थे। राजा से पूर्व व सर्वप्रथम वीरम को स्वर्ग प्राप्त हुआ। मोहम्मद शाह को बाणों से मूर्च्छित देख कर हम्मीरदेव आगे बढ़ा और अनेक शत्रुओं का वध किया। हम्मीर देव वीरतापूर्वक लड़ता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ।[530]

अमीर खुसरो कहता है कि हम्मीर अपने मुख्य साथियों के साथ शाही सेना तक पहुँच गया किन्तु शीघ्र ही उसे पीछे धकेल दिया गया। लेकिन अमीर खुसरो हम्मीर देव की मृत्यु का उल्लेख नहीं करता है।[531] बरनी के अनुसार नव मुसलमानों को जो कि गुजरात विद्रोह के बाद भाग कर उसकी शरण में पहुँच गये थे। अपने स्वाभिमान की रक्षा करता हुआ यशस्वी हम्मीर अन्य साथियों सहित रणस्थल में ही मारा गया।[532] एसामी के कथनानुसार राव हम्मीर देव का कोई भी साथी जीवित नहीं बचा और हम्मीरदेव युद्ध करता हुआ मारा गया।[533]

हम्मीर महाकाव्य के अनुसार हम्मीर देव शत्रु के हाथ न पड़ने देने के लिये स्वयं अपने हाथ से गला काट कर प्राण त्याग देने का उल्लेख करता है।[534] नयनचन्द्र का उपर्युक्त विवरण सत्य नहीं है। मुस्लिम स्रोतों के अनुसार वह लड़ता हुआ मारा गया था। नयनचन्द्र ने अपने नायक की प्रशंसा के लिये इस प्रकार का वर्णन किया है। सुर्जनचरित महाकाव्य में भी हम्मीर का शत्रु के भिन्दीपाल नामक अस्त्र की मार से मरना लिखा है।

हम्मीर की मृत्यु के बाद उसके विश्वास घातक सेनानायकों रतिपाल व रणमल्ल को अलाउद्दीन के सामने लाया गया। सुल्तान ने अपना वचन निभाने के स्थान पर उन्हें मौत की सजा दी। उसका कहना था कि जो अपने स्वधर्मी राजा के प्रति निष्ठावान न रह सके। उनसे भविष्य में स्वामी भक्ति की आशा कैसे की जा सकती है।

मोहम्मद शाह घायल अवस्था में था। सुल्तान की दृष्टि जब उस पर पड़ी तो दयावान होकर उससे पूछा कि यदि मैं तुम्हें इस भंयकर खतरे से बचा लू और तुम्हारे जख्मों की मरहमपट्टी कर ठीक कर दू तो तुम क्या करोगे। इसके बाद तुम्हारा व्यवहार कैसा रहेगा। उसने उत्तर दिया मेरे घाव ठीक हो जाये, तो मैं तुम्हें मार कर हम्मीर के पुत्र को सिंहासन पर बैठाऊगाँ । सुल्तान ने उसे मस्त हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा कर मरवा दिया। कुछ समय बाद जब उसे याद आया कि मोहम्मद शाह अपने शरण दाता के प्रति कितना सच्चा व नमक हलाल निकला। उसने मोहम्मद शाह को विधिवत दफनाने का आदेश दिया।

मुस्लिम लेखक हम्मीर के साथ निर्णायक संघर्ष की समाप्ति के साथ ही विजय की घोषणा करते है। उनके अनुसार यह विजय 3 जीकाद 700 हि./10 जुलाई 1301 ई. को मिली है। किन्तु हम्मीर महाकाव्य के अनुसार के हम्मीर देव की मृत्यु के बाद भी दुर्ग वालों ने जाजा के नेतृत्व में दो दिन तक मुस्लिम आक्रान्ताओं का प्रतिरोध करते रहे। इस प्रकार हम्मीर महाकाव्य के अनुसार उसकी विजय श्रावण शुक्ला षष्टी/12 जुलाई 1301 को हुई।[535]

रणथम्भौर के पतन के साथ ही शाकम्भरी के ध्वंशावशेषों पर उसके वंशजों का जो शासन चला आ रहा था उसकी समाप्ति हो गयी। इस प्रकार हम्मीर की मृत्यु तथा रणथम्भौर के पतन से राजपूताना की एक अत्यंत शक्तिशाली शक्ति का अन्त हो गया। सुल्तान के लिये राजपूताना में साम्राज्य विस्तार का मार्ग खुल गया। पंजाब के हिन्दू शाही राजवंश की भाँति मुस्लिम आक्रमण के तूफान के दौरान जन्म लेने वाला रणथम्भौर का चाहमान राजवंश भी निरन्तर दिल्ली सल्तनत से उल्लेखनीय किन्तु निष्फल आक्रमण के पश्चात, टकरा कर विलीन हो गया। इसके साथ ही राजपूताने का नेतृत्व चाहमान राजघराने से निकल गया। आने वाले समय में जब राजपूताना में प्रतिरोध का नेतृत्व चाहमानों ने नहीं बल्कि मेवाड़ के सिसोदियों ने किया।

उलुग खाँ के अधिकार में रणथम्भौर:-

विजय के उपरांत अलाउद्दीन खिलजी ने वहाँ के अनेक मन्दिरों को भूमिगत कर दिया। जिसमें एक बाहिरदेव का मन्दिर था।[536] अमीर खुसरो के अनुसार झायन जो कि इससे पूर्व बहुत सुंदर व आबाद और हिन्दुओं का निवास स्थान था। अब मुसलमानों का नया नगर बन गया। सर्वप्रथम बाहिरदेव के मंदिर का विनाश कर दिया गया। इसके बाद हिन्दुओं के घरों का विनाश किया गया। बहुत से मजबूत मन्दिर जिन्हें कयामत का बिगुल भी नहीं हिला सकता था। इस्लाम के चलने से भूमि पर सो गये।[537] बरनी के अनुसार रणथम्भौर तथा उस स्थान के आसपास का प्रदेश और वहाँ का सब कुछ उलुग खाँ के अधीन कर दिया गया अर्थात रणथम्भौर का दुर्ग और झायन का क्षेत्र उलुग खाँ की देख-रेख में छोड़ दिया गया।[538] लेकिन याहिया बिन अहमद सरहिंदी ने लिखा है कि रणथम्भौर दुर्ग पर एक कोतवाल को नियुक्त और झायन की अक्ता सुल्तान द्वारा उलुग खाँ को दी गयी थी।[539] किन्तु याहिया के इस कथन पर संदेह उत्पन होता है। उलुग खाँ ने लगभग 6 माह तक रणथम्भौर पर शासन किया। उसके बाद वह दिल्ली के लिए रवाना हो गया। मार्ग में अचानक उसकी मृत्यु हो गयी। इसामी लिखता है उसकी मृत्यु विष देने से हुई।

खिलजी वंश व चित्तौड़ (1296 -1321 ई.)

रणथम्भौर पर अधिकार करने के बाद सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने राजपूताना के दूसरे महत्वपूर्ण व शक्तिशाली दुर्ग चित्तौड़गढ़ पर अधिकार स्थापित करने की योजना बनाई। इससे पहले भी दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों ने चित्तौड़ पर अधिकार स्थापित करने की कोशिश की थी। लेकिन उनके हाथ निराशा ही लगी थी। चित्तौड़ पर दिल्ली सल्तनत का आधिपत्य स्थापित नहीं हुआ था। राजपूताना में चित्तौड़गढ़ का दुर्ग सबसे शक्तिशाली और उसकी स्वतंत्रता दिल्ली सल्लतन के लिए एक खुली चुनौती थी। राजपूताना में मेवाड़ जैसे राजपूत राज्य के रहते हुए अलाउद्दीन खिलजी का सम्पूर्ण भारत को विजय करने का सपना साकार नहीं हो सकता था।

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी व गुहिल वंशीय शासक समरसिंह:-

श्याममल दास कृत वीर विनोद: मेवाड़ का प्राचीन इतिहास, भाग प्रथम में उल्लेख है कि तेजसिंह के उपरांत उसका पुत्र समरसिंह (1273-1302 ई.) उसका उत्तराधिकारी हुआ। मेवाड़ में समरसिंह का शासन काल लगभग 26 वर्ष तक रहा। इसके समय के कुल आठ शिलालेख मिले है। जिसमें इसको एक प्रतिभाशाली शासक तुर्कों से गुजरात का उद्धारक अपने समय का शक्तिशाली शासक बताया गया है।[540]

मुस्लिम इतिहासकारों की किसी भी रचना में समरसिंह के समय चित्तौड़ पर दिल्ली सल्तनत के किसी सुल्तान द्वारा आक्रमण करने का उल्लेख नहीं मिलता है। जिन प्रभसूरी के तीर्थकल्प के अनुसार 1299 ई. में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने कर्णदेव के मन्त्री माधव के कहने पर उलुग खाँ के नेतृत्व में गुजरात अभियान का आदेश दिया। इस अभियान के समय शाही सेना चित्तौड़ राज्य की सीमा से गुजर रही थी। इस कारण समरसिंह को लग रहा था कि मेवाड़ को शाही सेना से नुकसान हो सकता है। अत: उसने उलुग खाँ की सेना को परेशान किया व उससे दण्ड लेकर आगे जाने दिया[541] राणपुर अभिलेख के अनुसार सीसोदा के लक्ष्मण सिंह के पिता भुवनसिंह इस समय उसकी सहायता कर रहा था।[542] इस समय उलुग खाँ का प्रमुख उद्देश्य गुजरात अभियान था। इसलिए वह वागड़ व मोडासा आदि नगरों को लूटता हुआ गुजरात चला गया।

इस घटना का उल्लेख किसी फारसी तवारीखों में नहीं हुआ है। जिन प्रभूसुरी समरसिंह व उलुग खाँ दोनों के समकालीन था। अत: यह कथन सत्य के अधिक निकट लगता है। इस समय शाही सेना का उद्देश्य गुजरात पर आक्रमण करना था इसलिए उसने मेवाड़ से उलझना उचित नहीं समझा। गुजरात अभियान को जारी रखा।

3.3.3 अलाउद्दीन खिलजी व चित्तौड़ (1302 –1303 ई.):-

रावल समरसिंह के बाद उसका पुत्र रतनसिंह 1302 ई. में मेवाड़ के राजसिंहासन पर आसीन हुआ। उसको शासन करते हुए अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ था कि दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर अधिकार स्थापित करने के हेतु आक्रमण कर दिया।

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ पर आक्रमण के कारण:

जियाउद्दीन बरनी की तारीखें फिरोजशाही के अनुसार सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी अपनी प्रारम्भिक विजय से अत्यधिक महत्वाकांशी और अंहकारी हो गया था। इसलिए वह सिकन्दर महान की तरह सम्पूर्ण विश्व को जीतना चाहता था। किन्तु उसके प्रमुख सलाहकार अलाउलमुल्क ने उसे सलाह दी कि सम्पूर्ण विश्व को विजित से पहले उसे रणथम्भौर, चित्तौड़गढ़, चंदेरी, मालवा, धार, उज्जैन, जालौर आदि प्रदेशों सहित सम्पूर्ण भारत पर अधिकार स्थापित करना चाहिए। इन्हीं उद्देश्य से प्रेरित होकर उसने दक्षिण भारत में सैनिक अभियान के आदेश दिये। दक्षिण भारत की विजय और उत्तरी भारत की विजय को स्थायी रखने के लिए यह आवश्यक था कि पहले वह दिल्ली सल्तनत के समीप के राजपूताना के स्वतंत्र राजपूत राज्यों को विजित करे। प्रथम विजय उसने रणथम्भौर पर और दूसरा आक्रमण चित्तौड पर इसी नीति का एक भाग था।[543]

मेवाड़ राज्य से गुजरात, मालवा, मध्यदेश, संयुक्त प्रान्त आदि प्रदेशों के लिए व्यापारिक मार्ग जाते थे। व्यापारिक उपयोगिता से कहीं अधिक चित्तौड दुर्ग की सैनिक उपयोगिता थी। चित्तौड़ दुर्ग के बारे में वर्णन मिलता है कि यह दुर्जेय था। सवा तीन मील लम्बाई और बीच में 1200 गज चित्तौड़ का मोर्चाबंद दुर्ग एकाकी पर्वत पर स्थित है जो मैदान से एक खड़े ढ़ाल के रूप में दिखाई देता है। इसकी पीछे की परिधि 8 मील से भी अधिक है। ऊँचाई कहीं-कहीं पाँच सौ फीट से भी अधिक है। यदि कोई उस पर चढ़ने का प्रयत्न करे तो उसे एक सीधे ढ़ाल और लगभग चालीस फीट ऊँची पत्थर की दीवार का सामना करना होगा। खुसरो के अनुसार दुर्ग हिन्दुओं के लिये स्वर्ग था। जहाँ प्रत्येक दिशा में सोते और हरे भरे मैदान थे। अलाउद्दीन खिलजी जैसे महत्वकांक्षी सुल्तान के लिए ऐसे दुर्ग पर अधिकार करना अति आवश्यक था।[544]

इन राजनीतिक, सैनिक और आर्थिक कारणों के अलावा सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का चित्तौड़ नरेश रावल रतनसिंह की पत्नी पदमनी को प्राप्त करने का व्यक्तिगत कारण भी बताया जाता है।

इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि दिल्ली सल्तनत के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का चित्तौड़ पर आक्रमण करने का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक था परन्तु चित्तौड़ अभियान का तत्कालीन कारण चित्तौड़ के शासक रावल रतनसिंह की बहुसौदर्य पत्नी पदमनी को हासिल करने की पाशविक इच्छा भी इसके पीछे थी। उपयुर्क्त कथन कितना सही है। निश्चियत तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता है तथापि सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड पर आक्रमण का कारण साम्राज्यवादी नीति थी।

चित्तौड़ विजय:-

अमीर खुसरो की ख़जाइन फुतूह :- अमीर खुसरो चित्तौड अभियान के समय सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के साथ उपस्थित था। ख़जाइन फुतूह में लिखा है कि हि. 702/28 जनवरी,1303 ई. में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली से एक बड़ी सेना लेकर चित्तौड़ अभियान के लिए निकला। चित्तौड पहुँच कर उसने आदेश दिया कि दुर्ग के दोनों ओर शाही शिविर लगाये जाये। शाही सेना द्वारा दुर्ग पर दो माह तक आक्रमण करने के उपरांत भी उसे असफलता ही हाथ लगी। राजपूत सेना व शाही सेना दोनों के बीच युद्ध होता रहा। जिस दुर्ग में चिड़िया भी प्रवेश नहीं कर सकती थी। उसमें सुल्तान ने सोमवार 11 मुहर्रम ही.706/26 अगस्त,1303 को दुर्ग में प्रवेश किया। राय को सुल्तान के समक्ष उपस्थित किया गया, लेकिन उसे कोई हानि नहीं पहुँचाई गयी। तीस हजार हिन्दुओं का कत्ल करने उपरांत अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ दुर्ग को खिज्र खाँ के अधीन रखा। उसे लाल छत्र, जरदारी खिलअत एक हरा और दूसरा काला झंडा दिया गया। चित्तौड़ का नाम अपने पुत्र खिज्र के नाम पर खिज्राबाद रखा। वापस दिल्ली लौट आया।[545]

जियाउद्दीन कृत तारीखे ए फिरोजशाही:- जियाउद्दीन कृत तारीखे-ए-फिरोजशाही के अनुसार सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी सेना सहित दिल्ली से रवाना होकर चित्तौड़ पहुँच और चित्तौड़ को घेर लिया। वह शीघ्र ही चित्तौड़ पर विजय प्राप्त करके दिल्ली वापस आ गया।[546]

मुहम्मद कासिम फरिश्ता कृत तारीखे फरिश्ता:- तारीखे-ए-फरिश्ता के लेखक मुहम्मद कासिम फरिश्ता ने लिखा है कि चित्तौड़ दुर्ग पर इससे पहले किसी मुसलमान ने आक्रमण नहीं किया था। हि.703/1303 ई. को सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने 6 माह के संघर्ष के बाद दुर्ग पर विजय प्राप्त की। यह दुर्ग उसने अपने बड़े पुत्र खिज्र खाँ के अधीन रखा। जिसके नाम से यह दुर्ग खिज्राबाद कहलाया। यहीं पर खिज्र खाँ को अपना उत्तराधिकारी भी घोषित किया।[547]

इसामी की फुतूहस्सालातीन:- इसामी की फुतूहस्सालातीन के अनुसार सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। वहाँ का राय आठ माह तक संघर्ष करता रहा, किन्तु इसके उपरांत राय ने सुल्तान अलाउद्दीन से क्षमा याचना की और सुल्तान ने उसे खिलअत आदि देकर सम्मानित किया। शिरजा नामक एक वीर को जिसे सुल्तान अलाउद्दीन अपना पुत्र मानता था, को खुसरो खाँ की उपाधि देखकर चित्तौड़ का मलिक नायब नियुक्त करके दिल्ली लौट आया।[548]

किसी भी समकालीन इतिहासकर ने तत्कालीन चित्तौड़ के शासक का नाम नहीं लिखा और ना ही पदमनी द्वारा किये गये जौहर का वर्णन किया। 6-8 माह के संघर्ष के उपरांत चित्तौड़ पर विजय प्राप्त की गयी। विजय के उपरांत रतनसिंह के साथ क्या किया गया। इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। अमीर खुसरो ने लिखा है। कि राय को क्षमा कर दिया गया और उसे कोई हानि नहीं हुई। वह यह भी लिखता है कि किले में कोई जीवित नहीं बचा था। इसामी का कहना है, उसे सम्मानित किया गया। हि. 704/1304 ई. के प्रसंग में फरिश्ता संकेत देता है कि रावल रतनसिंह सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की कैद में था।[549] इसका विस्तृत वर्णन स्थानीय स्रोतों में मिलता है।

गौरीशंकर ओझा व गोपीनाथ शर्मा व अन्य स्थानीय इतिहासकारों का मत:- डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा व डॉ. गोपीनाथ शर्मा के अनुसार सुल्तान की सेना द्वारा चित्तौड दुर्ग का घेराव लम्बें समय तक चलता रहा। दोनों के बीच संघर्ष जारी रहा। रावल रतनसिंह के द्वारा भी परकोटे पर मोर्चा बना कर शाही सेना को हानि पहुँचने लगे। शाही सेना ने मजनिकों से दुर्ग रक्षा दीवार और चट्टानें को तोड़ने का प्रयास किया किन्तु उनके हाथ कोई सफलता नहीं लगी। इसी समय सिसोदा के सामंत लक्ष्मणसिंह ने अपने सात पुत्रों सहित दुर्ग की रक्षार्थ अपने प्राणों की आहुति दी।[550]

चारों और विनाश के बादल छा रहे थे। दुर्ग को किसी भी कीमत पर नहीं बचाया जा सकता था। ना ही स्त्रियाँ व बच्चे दुश्मनों से सुरक्षित थे। डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा के अनुसार दुर्ग को छह माह से भी अधिक घेरे रहने के कारण, जिसमें शाही सेना की भी बहुत बर्बादी हुई साथ ही भोजन साम्रगी[551] आदि के खत्म होने के कारण, गोपीनाथ शर्मा के अनुसार सम्भवत: किले में महामारी[552] फ़ैल जाने के कारण, राजपूतों ने जौहर का आयोजन किया और राजपूत स्त्रियों को अग्नि में अर्पण कर दिया। दुर्ग के फाटक खोल दिये। राजपूत योद्धा शाही सेना से संघर्ष में वीरगति को प्राप्त हुए। चित्तौड़ दुर्ग पर सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की फतह हुई। विजय के उपरांत

जब सुल्तान ने दुर्ग में प्रवेश किया। तब पदमनी सहित अनेक हिन्दू महिलाएँ प्राण दे चुकीं थी। सुल्तान द्वारा तीस हजार हिन्दुओं का कत्ल कर देने के कारण कोई वीर जिन्दा नहीं बचा था।

भीषण नरसंहार के उपरांत सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का मेवाड़ पर आधिपत्य स्थापित हो गया। उसने चित्तौड़ दुर्ग को अपने बड़े पुत्र खिज्र के अधीन कर उसे लाल छत्र, काली व हरी पताका प्रदान कर इस दुर्ग का नाम बदल कर खिज्राबाद रखा गया। इसके उपरांत सुल्तान ने दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। इस प्रकार रतनसिंह की मृत्यु के साथ ही मेवाड़ की प्राचीन गुहिल वंश की जेष्ट शाखा का भी अंत हो जाता है । इस घटना के बाद सिसोदा की राणा शाखा के हम्मीर ने 18 वर्ष बाद चित्तौड को फिर अपने अधिकार में लिया। यहीं से मेवाड़ के शासक रावल से राणा या महाराणा कहलाने लगे। मेवाड़ पर दिल्ली सल्तनत का अधिकार हो जाने से राजपूताना के दूसरे शक्तिशाली राजपूत राज्यों का भी अंत समीप था। प्रथम बार चित्तौड पर दिल्ली सल्तनत का अधिकार हुआ। यह स्थिति तुगलक राजवंश के द्वितीय सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल के प्रारम्भ तक बनी रही। मुहम्मद कासिम फरिश्ता के वर्णन से प्रतीत होता है कि पड़ौसी राजपूतों ने चित्तौड पर अधिकार करने का कई बार प्रयास किया था। लेकिन अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि 1325 ई. तक चित्तौड दिल्ली सल्तनत के अधीन रहा।

खिज्र खाँ के अधीन चित्तौड़ (1303 -1313 -14 ई.):- मुहम्मद कासिम फरिश्ता के अनुसार हि.704/ 1304 ई. में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने खिज्र खाँ को आदेश दिया कि चित्तौड़ का दुर्ग रतनसिंह के भांजे मालदेव सोनगरा को सौंपकर दिल्ली आ जावें।[553] ऐसे में खिज्र खाँ को चित्तौड़ में एक वर्ष से अधिक नहीं हुआ था। खिज्र खाँ ने गम्भीरी नदी पर एक पुल बनवाया। जिसके निर्माण में दो वर्ष लेगें होंगे। चित्तौड़ दुर्ग के पास एक मकबरे से हि.709/11 मई 1310 ई. का फारसी भाषा का एक अभिलेख मिला है। जिसमे अलाउद्दीन खिलजी को सिकन्दर द्वितीय, संसार का रक्षक, दुनिया का बादशाह, आदि कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि 1310 तक चित्तौड़ खिज्र खाँ के अधीन रहा। इसलिए फरिश्ता का कथन प्रमाणित नहीं माना जा सकता है। चित्तौड़ पर खिज्र खाँ का शासन एक वर्ष ही रहा हो। मुहणोत नैणसी की ख्यात के अनुसार अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति कमालुद्दीन ने 1311 ई. व फरिश्ता के अनुसार 1309 में जालौर पर अधिकार किया। कान्हड़देव व तीसरे दिन कंवर विरमदेव मारा गया था। मालदेव सोनगरा, कान्हड़देव का भाई बचा थाण, जो दिल्ली सल्तनत के अधीनस्थ वाले प्रदेशों में उपद्रव करता था। अलाउद्दीन खिलजी ने इसे चित्तौड़ का दुर्ग देकर अपने अधीनस्थ शासक बना लिया था। इस प्रकार स्पष्ट है कि मालदेव सोनगरा को मेवाड़ का प्रदेश 1311 के बाद मिला होगा।

मुहणोत नैणसी के अनुसार मालदेव ने चित्तौड़ पर सात वर्ष शासन किया और उसकी मृत्यु चित्तौड़ में ही हुई। गौरीशंकर हिराचंद ओझा के अनुसार मालदेव को चित्तौड़ का प्रदेश 1313 ई. से 1215 ई. के बीच किसी वर्ष मिला होगा।[554] इस प्रकार स्पष्ट है कि खिज्र खाँ ने चित्तौड़ पर 1303-1315 तक शासन किया।

मालदेव सोनगरा के अधीन चित्तौड़ (1314 -15-1321 ई.):-

खिज्र खाँ के चले जाने के उपरांत डॉ. के.एस. लाल के अनुसार चित्तौड़ में अल्पकाल के लिए मलिक मोहम्मद शाहीन को नियुक्त किया गया गया था। उसके शासन काल में राजपूतों ने चित्तौड़ दुर्ग पर अधिकार करने का प्रयास किया। अलाउद्दीन के अधिकारियों को बांधकर दुर्ग के परकोटे से नीचे फैंक दिया।[555] जब सुल्तान को इस दूरस्थ प्रदेश को अपने अधीन रखने में कठिनाई आयी तो उसने दुर्ग को मालदेव के अधीन सौंप दिया। जो उसका अधीनस्थ शासक था। दिल्ली सल्तनत के समकालीन विद्वान यह स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं करते है कि सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में चित्तौड़ का शासन प्रबंध कैसा रहा होगा। चित्तौड़ विजय के उपरांत खिज्र खाँ को वहाँ का गवर्नर बनाया गया। जो चित्तौड़ में नहीं रहता था। इसामी के अनुसार मलिक शाहीन अलाउद्दीन के डर से वह गुजरात के शासक राय कर्ण के पास चला गया। ऐसा लगता है कि सुल्तान ने चित्तौड़ पर प्रत्यक्ष शासन करने की नीति को छोड़ दिया था। वहाँ के लिए केवल एक रक्षक टुकड़ी की व्यवस्था की गयी थी। मुहम्मद कासिम फरिश्ता के अनुसार दिल्ली से चित्तौड़ की दूरी को देखते हुए या राजपूतों के उपद्रव के कारण चित्तौड़ दुर्ग को राय के भांजे के सुदुर्प कर दिया गया, जो उसके अधीन था। मालदेव ने सुल्तान अलाउद्दीन के प्रति स्वामिभक्ति प्रदर्शित की। कुछ ही समय में इसने मेवाड़ में अपनी शक्ति को संगठित कर लिया। उसकी सत्ता का सभी राजपूतों ने समर्थन किया और वे उसके शासन से खुश थे। मालदेव सुल्तान अलाउद्दीन की मृत्यु तक उसकी आज्ञा का पालन करता रहा जैसे मुग़ल काल में राजपूताना के शासक अकबर आदि शासकों का करते थे। प्रत्येक वर्ष उपहार लेकर सुल्तान के दरबार में जाता था। उसे घोड़े व सम्मानसूचक बहुमूल्य वस्त्र आदि प्रदान किये जाते थे। मालदेव उसके हर सैनिक अभियान में जिसमे जाने का उसे आदेश प्राप्त होता था। पाँच हजार सवारों और दस हजार पदाति सैनिकों सहित उपस्थित रहता था। अपनी वीरता का प्रदर्शन करता था। सुल्तान अलाउद्दीन की मई 1310 ई. की चित्तौड़ प्रशस्ति[556] से प्रमाणित होता है कि चित्तौड़ ने अलाउद्दीन की सर्वौच्च सत्ता को स्वीकार किया था। क्योंकि इसमें सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी को सिकन्दर द्वितीय, संसार का बादशाह आदि उपाधियाँ उपाधियों प्रदान की गई है। फरिश्ता के वर्णन से ज्ञात होता है कि जब अलाउद्दीन खिलजी अपनी मृत्यु के नजदीक था। तब चित्तौड़ के राय ने विद्रोह कर दिया। वहाँ के मुस्लिम

अधिकारियों को दुर्ग से बाहर निकाल दिया।[557] मालदेव की मृत्यु के उपरांत सिसोदा के राणा हम्मीर ने 1326 ई. के लगभग चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया और उसके वंशज भारत की स्वतंत्र ता प्राप्ति तक मेवाड़ के शासक रहे।

3.3.4 अलाउद्दीन खिलजी व जालौर

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी द्वारा राजपूताना के रणथम्भौर व मेवाड़ की विजय के उपरांत उसने मारवाड़ को अपने आक्रमण का लक्ष्य बनाया। क्योंकि उसको सम्पूर्ण भारत पर अपना अधिपत्य स्थापित करना था। अपने दक्षिण भारतीय अभियानों को सफल बनाने दक्षिण व उत्तर भारत की विजय को स्थायित्व प्रदान करने के लिए आवश्यक था कि जालौर पर विजय प्राप्त की जाये। दक्षिण भारत जाने का मार्ग जालौर से होकर गुजरता था। जालौर के राजपूत सैनिकों द्वारा शाही सेना के यहाँ से गुजरने पर उन्हें तंग करना या लूट लेना आम बात थी। जालौर इस समय राजपूताना का महत्वपूर्ण व शक्तिशाली राज्य था। जिसने अपना काफी विस्तार कर लिया था। वह अपने गौरव पूर्ण वैभव व विस्तार की पराकाष्ठा के शिखर पर था। शेष राजपूताना के राज्य मेवाड़ व रणथम्भौर के पतन के बाद जालौर का नेतृत्व स्वीकार करने लग गये थे। ऐसे शक्तिशाली राज्य के अस्तित्व को अलाउद्दीन खिलजी जैसा शक्तिशाली व साम्राज्यवादी सुल्तान स्वीकार नहीं कर सकता है। इस समय जालौर पर कान्हड़देव व उसके पुत्र वीरमदेव का शासन था। जो अपने शौर्य व साहस के कारण जाने जाते थे। जालौर पर आक्रमण की रूपरेखा अलाउद्दीन खिलजी के 1299 ई. के गुजरात अभियान के समय ही बन गयी थी।

जालौर पर प्रथम आक्रमण: गुजरात अभियान के संदर्भ में:- कान्हड़देव प्रबंध के अनुसार 1299 ई. में गुजरात अभियान के समय शाही सेना का जालौर से होकर जाना था। इसलिए सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने जालौर के शासक कान्हड़देव के पास संदेश भेजा। उसकी सेना को गुजरात जाने के लिए रास्ता दे। लेकिन कान्हड़देव इसके लिए तैयार नहीं हुआ। उसने इस कार्य को धर्म विरूद्ध समझ कर सुल्तान के सन्देश के उत्तर में कहा कि शाही सेना हिन्दू विरोधी, गौ की हत्या करती, निर्दोष बच्चों व महिलाओं को बन्दी बनाती है। ये सब धर्म विरूद्ध होने के कारण मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता हूँ।[558] वैसे तो इस रवैये से सुल्तान के द्वारा जालौर पर आक्रमण किया जाना चाहिए था। किन्तु उस समय गुजरात अभियान जो उलुग खाँ और नुसरत खाँ के नेतृत्व में किया जा रहा था। मेवाड़ से होकर गुजरा और मार्ग में जो नगर व गाँव आये उनको लूटते व उजाड़ते हुए मोडासा होते हुए काठियावाड़ व गुजरात पर विजय प्राप्त कर सोमनाथ के मन्दिर को विध्वंस किया। लौटती हुए शाही सेना कान्हड़देव के राज्य से गुजरी। इस पर कान्हड़देव के मुख्यमंत्री देवड़ा ने शाही सेना के सेनानायकों से मिलकर

उसकी सलाह दी कि इस समय उनसे संघर्ष करना ठीक नहीं है। शाही सेना में नव मुसलमान भी थे। इन्होंने युद्ध में लूट के धन के बंटवारे को लेकर उलुग खाँ के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। उसी समय कान्हड़देव की सेना ने भी उस पर आक्रमण कर दिया। उलुग खाँ ने किसी तरह अपनी जान बचाई ।[559]

विजयी शाही सेना किस कारण जालौर की सीमा से होकर गुजरी। जालौर के आसपास का क्षेत्र भी उस समय दिल्ली सल्तनत के अधिकार क्षेत्र से बाहर था। इस विषय में समसामयिक विद्वानों ने कुछ नहीं लिखा। इस विषय में पदमनाभ का कथन सत्य प्रतीत होता है। कि उसके सेनानायक जालौर के शासक को दण्ड देने के लिये इस राज्य की सीमा से गुजरे थे।

कान्हड़देव प्रबंध के अनुसार जब जालौर नरेश शाही सेना द्वारा सोमनाथ के मंदिर को नष्ट करने व सोमनाथ मंदिर के पिंड को दिल्ली ले जाने का समाचार सुना। उसने शाही सेना पर आक्रमण करने का निश्चय किया। शाही सेना पर आक्रमण कर पिण्ड को उनसें छीन लिया।[560] लेकिन नैणसी के अनुसार जब कान्हड़देव आक्रमण की सोच रहा था। तभी शाही सेना में नव-मुसलमानों ने युद्ध में लूटी गयी सम्पति के बँटवारे को लेकर मंमुशाह/ मुहम्मद व मीरगभरू विद्रोह कर दिया। ये दोनों कान्हड़देव से मिल गये। रात्रि में बादशाह की सेना पर आक्रमण करने योजना बनाई गयी । दूसरे दिन सेना को एकत्रित कर बादशाह की सेना पर आक्रमण कर दिया। बादशाह ने भागकर अपनी जान बचाई। भागती हुई बादशाह की सेना का पीछा कान्हड़देव की सेना किया। सोमनाथ के पिण्ड को छीन कर मकराना के एक गाँव में नया मंदिर बनाकर पिण्ड की प्रतिष्ठा की गई।[561] नैणसी का उपरोक्त कथन सत्य प्रतीत नहीं होता कि बादशाह स्वयं वहाँ उपस्थित था। बरनी के वर्णन से स्पष्ट होता है कि गुजरात अभियान का नेतृत्व उलुग खाँ व नुसरत खाँ ने किया था। पद्मनाभ ने भी शाही सेना का नेतृत्व अलु खान/ उलुंग खाँ के द्वारा किया जाने का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि शाही सेना का जालौर पर अधिकार करने का प्रथम प्रयास, नव-मुस्लिम सैनिकों के नायक मुहम्मद शाह व मीरगभरू के विद्रोह व कान्हड़देव की चतुरता के कारण सफल ना हो सका आगे के कुछ वर्ष अलाउद्दीन खिलजी राजपूताना के सुदृढ़ दुर्ग-रणथम्भौर, मेवाड़ आदि के लम्बें अभियान में व्यस्त रहा, इसलिए उसने जालौर की और कोई ध्यान नहीं दिया।

जालौर विजय: द्वितीय चरण:-

मुहम्मद कासिम फरिश्ता के अनुसार सुल्तान ने 1305 ई. में एन-उल-मुल्क मुल्तानी के नेतृत्व में एक सेना जालौर के राजा के विरूद्ध भेजी। वहाँ के शासक नहरदेव/कान्हड़देव द्वारा शाही सेना के भय से बिना लड़े ही

आत्मसमर्पण कर देने का वर्णन करता है। डॉ.गोपीनाथ शर्मा के अनुसार सुल्तान के सेना नायक मुल्तानी ने कूटनीति से काम लिया। सुल्तान से सम्मानजनक संधि का आश्वासन् देकर वह कान्हड़देव को दिल्ली ले गया। खिलजी दरबार में उसे अपनी स्थिति अपमानजनक लगी। अन्य स्थान पर फरिश्ता लिखता है कि नहरदेव के दिल्ली प्रवास के दौरान सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने गर्व से कहा कि इस समय हिंदुस्तान में ऐसा कोई शासक नहीं जो उससे टक्कर ले सके। इस पर नहरदेव ने सुल्तान से कहा कि यदि सुल्तान की सेना जालौर पर अधिकार करने का प्रयत्न करती है और यदि मैं विरोध नहीं करता हूँ तो मुझे मृत्युदण्ड दिया जावे। यह सब सुनकर सुल्तान उसे दरबार से चले जाने को कहा। परिणामस्वरूप सुल्तान ने जालौर पर आक्रमण की तैयारी शुरू कर दी।[562]

फरिश्ता के उपरोक्त वर्णन को स्वीकार नहीं किया जा सकता। कान्हड़देव द्वारा एक धर्म विरूद्ध शासक के समक्ष आत्मसमर्पण करना सम्भव नहीं था। उसके पास जालौर जैसा सुद्धढ़ दुर्ग के होते हुए भी उसने कैसे आत्मसमर्पण कर दिया। इन सब कारणों का उल्लेख नहीं मिलता। सम्भवत: अलाउद्दीन खिलजी की राजपूताना में रणथम्भौर मेवाड़ विजय को देखते हुए उसने महत्वकांक्षी सुल्तान से समझौते करना ही सही समझा होगा। उसे आशा थी कि समझौते के बाद उसे ससम्मान जालौर का दुर्ग वापस मिल जायेगा। उसने दिल्ली जाने का निश्चय किया। जहाँ सुल्तान के दरबार में उसे उचित सम्मान नहीं मिला।

किशोरीसरन लाल फरिश्ता के इस कथन का को अस्वीकार करते है। डॉ. दशरथ शर्मा का कहना है कि जिस प्रकार शिवाजी को मुग़ल दरबार में ससम्मान का आश्वासन् दिया गया था। उसी प्रकार की आशा कान्हड़देव को भी रही होगी। उसने सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में जाना स्वीकार कर लिया होगा। किन्तु वहाँ पहुँचने पर उसे अपने प्रति सुल्तान का व्यवहार उचित नहीं लगा हो इसलिए वह भी शिवाजी की तरह वापस जालौर लौट आया।[563]

नैणसी की ख्यात में कान्हड़देव के स्थान पर वीरम देव का सुल्तान अलाउद्दीन के दरबार में जाने का उल्लेख मिलता है। नैणसी की कथा के अनुसार सुल्तान और वीरमदेव के बीच पासे का खेल होता है जिसमे वीरमदेव जीत जाते है। हरम की महिलाओं सहित इस खेल को सब देखते है। जिसमें सुल्तान की बड़ी बेटी जो कुंवारी थी। वह भी इस खेल को देखकर बहुत खुश होती। नैणसी ने चौहान कुलकल्पद्रुम के आधार पर इस राजकुमारी का नाम सीताई बताया है। वीरमदेव को देखकर वह उसके प्रति आसक्त हो जाती है। जब इसका पता हरम की महिलाओं व सुल्तान को लगा तो उसने राजकुमारी को समझाने का हर प्रयत्न करते है। लेकिन वह वीरम के प्रेम

से वशीभूत होकर अन्न जल सब त्याग देती है। जब उनको लगा कि राजकुमारी को किसी प्रकार से समझाया नहीं जा सकता तो उन्होंने वीरमदेव को राजकुमारी से शादी करने के लिए विवश किया गया। वीरमदेव ने इस विवाह को धर्म विरूद्ध समझकर एक दिन मौका मिलते ही वहाँ से निकल कर जालौर आ गया। सुल्तान अपनी इस मान-हानि क्षुब्ध होकर जालौर पर आक्रमण का आदेश देता है।[564]

पद्मनाभ के कान्हड़देव प्रबंध के अनुसार जब अलाउद्दीन को जालौर आक्रमण में कोई सफलता नहीं मिली, तो स्वयं राजकुमारी फिरोजा जालौर जाती है। जहाँ पर कान्हड़देव द्वारा उसका स्वागत किया जाता पर वीरमदेव से विवाह के लिए मना कर देता है। इससे हताश होकर राजकुमारी दिल्ली वापस आ जाती है। कुछ समय बाद अलाउद्दीन ने राजकुमारी की धाय गुलविहिश्त को जालौर पर आक्रमण के लिए भेजता है। उसे यह भी आदेश दिया जाता है कि वीरमदेव को या तो बंदी या फिर उसका सिर लेकर आये। जब जालौर की सेना गुलविहिश्त के आक्रमण से पराजित हो गयी। वीरमदेव को वीरगति प्राप्त हुई तो उसका सिर लाकर राजकुमारी को दिया गया। राजकुमारी उसके साथ सती होना चाहती थी लेकिन बाद में उसका अंतिम संस्कार कर वह यमुना में कूद कर अपनी जान दे देती है।[565]

इस कथानक को स्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु वास्तव में देखा जाय तो इसको रोचक बनाने के लिए काव्य लेखकों ने इसमें कुछ अंश अपनी ओर से जोड़ दिये है, वरन् आधारभूत ऐतिहासिक घटनाएँ ऐसी नहीं होती है जिन्हें पूर्णरूपेण अस्वीकार किया जाये। कान्हड़देव प्रबंध जो फरिश्ता व नैणसी से पूर्व में लिखा गया था यदि कुछ घटना का उल्लेख करता है तो उसमे कुछ सत्य है जिनको निराधार मानकर अस्वीकार करना सर्वथा उचित नहीं है। फिरोजा/सीताई का वीरम से प्रेम होना व गुल विहिश्त आदि के अंश अस्वाभाविक नहीं है। इनका उल्लेख समकालीन विद्वानों के द्वारा नहीं किये जाने के कारण इनको अस्वीकार किया जाना उचित नहीं है। कम से कम ऐसी घटनाएँ संदेहास्पद हो सकती है, पर पूर्णतया असत्य नहीं। 1299 ई. के आक्रमण व 1311 ई.के बीच एक लम्बा समय इन कथाओं को और बल देता है। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी जैसा महत्वकांक्षी शासक इतने लम्बे समय तक जालौर राज्य के प्रति उपेक्षित रहता ऐसा सम्भव नहीं लगता। क्योंकि इन प्रारम्भिक आक्रमणों में उसे सफलता नहीं मिली इसलिए समकालीन विद्वानों ने इनको उल्लेख अपनी रचनाओं में नहीं किया।

जालौर विजय का तृतीय चरण में सिवाना पर विजय:- सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने सोनगरा चौहान राज्य जालौर पर आक्रमण करने का निश्चय किया। क्योंकि वह अपनी प्रारम्भिक असफलताओं को सफलता में बदलने चाहता था। इसके अधिकार में जालौर व सिवाना नामक दो सुदृढ़ दुर्ग थे। अत: उसने उन पर एक एक करके आक्रमण करने की योजना बनाई। सिवाना का दुर्ग जोधपुर से पश्चिम की और 54 मील दूर है। इसके उत्तर में पचपदरा व दक्षिण में जालौर पूर्व में नागौर और पश्चिम में मलानी है। यह किला रेतीले भाग में स्थित है परन्तु इसके साथ ही साथ इस भाग में छप्पन की पहाड़ी का भी विस्तार है। इस पहाड़ी श्रंखला के अंतर्गत हलदेश्वर का पहाड़ सबसे ऊँचा है। जिस पर एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण हुआ है जो सिवाना कहलाता है। प्रारम्भ में इस पर पंवारों का शासन था जिसमे वीर नारायण काफी प्रसिद्ध शासक था। इसी वीर नारायण ने सिवाना दुर्ग व इसी नाम के कस्बे सिवाना की स्थापना की थी। जब अलाउद्दीन खिलजी ने नाहर मलिक व भोज खाँ डाधर को सिवाना पर आक्रमण का आदेश दिया। सिवाना का दुर्ग इस समय जालौर के अधीन था। वहाँ पर रक्षक सीतलदेव था। इससे पहले उसने रणथम्भौर और मेवाड़ जैसे सुदृढ़ दुर्गो के पतन को देखा था इसके बावजूद भी उसमे सिवाना के दुर्ग की स्वंत्रता को बनाये रखने का साहस था। वह शत्रु से बिना मुकाबला किये दुर्ग को सुदुर्प करना अपनी वंश परम्परा और सम्मान के विरूद्ध मानता था। इससे पूर्व उसने मण्डोर में खिल्जियों को पराजित किया था। मारवाड़ के कई रावों व रावतों को युद्ध में पराजित कर चुका था। सीतलदेव के शौर्ये व साहस की धाक राजपूताना में जम चुकी थी। बिना युद्ध वह शत्रुओं को किले पर अधिकार कैसे करने देता या उन्हें सिवाना से आगे जालौर की और कैसे बढ़ने दे सकता था। सुल्तान अलाउद्दीन ने अनुमान लगाया कि बिना युद्ध किये और सिवाना पर विजय प्राप्त किये बिना यहाँ से आगे बढ़ना सम्भव नहीं है इसलिए उसने 2 जुलाई 1308 ई. में उसने एक सेना किले पर अधिकार करने के लिए भेजी।[566]

सुल्तान की सेना ने किले को चारों और से घेर लिया। शाही सेना के पार्श्वो को पूर्व तथा उत्तर की और स्थापित किया गया। इन दोनों पार्श्वो के बीच का नेतृत्व कमालुद्दीन गुर्ग ने किया। चौहानों के सैनिक भी दुर्ग के बुर्जो में से शाही सेना पर प्रहार कर रहे थे। जब शाही सेना ने मजनिकों से प्रक्षेपास्त्रों की लगातार बौछार की। तब चौहान सेना अपने तीरों गोपनों तथा तेल से सने और आग से जले वस्त्रों को शाही सेना पर आक्रमण कर दिया। जब शाही सैनिकों ने दुर्ग की दीवारों पर चढ़ना शुरू किया। राजपूत वीरों ने उनके प्रयास को असफल कर देते थे। लम्बे समय तक चले घेरे से शाही सैनिकों को कोई सफलता नहीं मिली। इन सब में शाही सेना को बड़ी हानि हुई। सेनानायक नाहर खाँ और भोज को अपने प्राण देने पड़े।

अमीर खुसरो के अनुसार हि.708/3जुलाई 1308 ई. को सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली से चलकर सिवाना जो 100 फरसंग दूर है, को आक्रमण करके घेर लिया। यह दुर्ग सीतलदेव के अधीन था। शाही सेना ने किले के दक्षिण की और से उत्तरी भाग आक्रमण करना शुरू किया। पश्चिम की और मजनिकों से कमालुद्दीन गुर्ग के नेतृत्व में व मगरबियों द्वारा पहाड़ी में अनेक छेद किये गये। अंत में पाशेब पहाड़ी की चोटी तक पहुँच गये। राजपूत दुर्ग की रक्षा के लिए डटें रहे यद्यपि उनके सर के टुकड़े टुकड़े कर दिये गये। जो राजपूत भाग गये थे उनको गिरफ्तार कर लिया गया। 10 सितम्बर 1308 ई. को सीतलदेव का मृत शरीर सुल्तान के सामने लाया गया। इसके बाद सुल्तान दिल्ली चला गया।[567]

इसामी के अनुसार सुल्तान दिल्ली से सिवाना के लिए रवाना हुआ। वहाँ के दुर्ग को घेर लिया। चालीस दिन तक दोनों पक्षों में युद्ध होता रहा पर सुल्तान को कोई सफलता नहीं मिली। इसके बाद उसने दुर्ग के चारों और सैनिक दल नियुक्त किये और सब ने मिलकर एक साथ आक्रमण किया। राजपूतों ने दुर्ग की रक्षा के लिए बहुत प्रयास किया किन्तु वह सफल नहीं हो सकें। सीतलदेव निराश हो गया। शाही सेना दुर्ग में प्रवेश कर गई। सीतल देव को गिरफ्तार कर उसकी हत्या कर दी गयी।[568]

राजस्थानी स्रोतों के अनुसार प्रथम आक्रमण में शाही सेना को कोई सफलता नहीं मिली। सुल्तान स्वयं सिवाना के लिए रवाना हुआ। जब उसने देखा की शाही सेना के सभी प्रयत्नों को राजपूत असफल कर रहे है। उसने पाशविकों की मदद से दुर्ग के ऊँचे बुर्जो तक पहुँचने की व्यवस्था की। उसी समय में एक देशद्रोही भावले के सहयोग से किले के कुण्ड को जो दुर्ग के निवासियों व सैनिकों के लिए पानी का केवल एक साधन था। उसमें गौरक्त मिलाकर दूषित कर दिया। दुर्ग में खाद्य साम्रगी भी समाप्त हो गयी थी। अपनी पराजय को निकट देखकर राजपूत स्त्रियों ने सतीव्रत द्वारा अपने प्राणों की आहुति दे गयी। राजपूत वीर ने केसरी बाना पहनकर शाही सेना से युद्ध करते हुए मरे गए। सीतलदेव भी एक वीर योद्धा की भाँति अन्त तक युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। जब अगले दिन उसके विशालकाय शरीर को सुल्तान के सामने लाया गया। उसे देख कर वह हैरान रह गया। पद्मनाभ के अनुसार हिन्दुओं ने अन्त में एकत्रित होकर युद्ध किया। तीन पहर युद्ध करने के बाद सीतलदेव ही युद्ध स्थल में ही मारा गया। अमीर खुसरो ने भी युद्ध में वीरतापूर्वक लड़कर मरने वाले राजपूतों की प्रशंसा की है। अलाउद्दीन खिलजी ने विजय के बाद दुर्ग को कमालुउद्दीन गुर्ग के अधीन रखा। उसका नाम बदल कर खैराबाद रखा गया।[569]

इस प्रकार 1299 ई. से सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमणों का प्रतिरोध करने वाले सोनगरा चौहानों को सिवाना दुर्ग से खोना पड़ा।

जालौर पर आक्रमण-चतुर्थ चरण:-

सिवाना को विजित करने के बाद सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने उसको कमालुद्दीन गुर्ग के अधिकार में रखा। उसे आदेश दिया कि जालौर के निकटवर्ती प्रदेशों पर आक्रमण करे। कमालुद्दीन गुर्ग ने बाड़मेर पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। सांचौर के महावीर मंदिर को नष्ट किया। पद्मनाभ के कान्हड़देव प्रबंध के अनुसार भीनमाल जो उस समय विधा का प्रसिद्ध केन्द्र था। वहाँ से अनेक ब्राहाणों को बंदी बना लिया।[570] भीनमाल को नष्ट भ्रष्ट करने का समाचार जब कान्हड़देव प्राप्त हुआ। उसने एक राजपूत सेना शाही सेना के विरूद्ध भेजी। इस सेना ने शाही सेना को युद्ध में पराजित कर दिया। बंदी ब्राहाणों को उनके कैद से छुड़ा लिया। इसमें साल्ह चौहान नामक राजपूत की भूमिका सराहनीय रही। वि.सं. 1444/1387 ई. के उसके प्रपौत्र प्रतापसिंह के शिलालेख में साल्ह द्वारा भीनमाल से ब्राहम्मणों को छुड़ाने का उल्लेख है। कान्हड़देव प्रबंध के तृतीय खंड 88-111 चौपाई के के अनुसार भीनमाल में मुस्लिम सेना को पराजित करने की सूचना देने के लिए महीप व जैता जालौर लौट गये। क्योंकि उस दिन अमावस्या थी। अत: राजपूत सेनापति भट और साल्ह ने स्नान करने के लिए तालाब में प्रवेश किया। साथ ही उन लोगों ने शाही सेना से छीने गये वाद्य यंत्रों को भी बजा दिया। जिसे सुनकर मलिक नाइब जो उनके आक्रमण के समय शिकार खेलने गया था, आ गया और उसने 4000 हिन्दुओं की हत्या कर दी। पुन: एक सेना जालौर से महीप देवड़ा के नेतृत्व में आयी। जिसने शाही सेना युद्ध करके उसे भागने पर मजबूर कर दिया।[571]

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी को जब शाही सेना की पराजय का समाचार मिला तो उसने जालौर को नये सिरे से विजय करने की योजना बनायी और अपनी सेना को जालौर आक्रमण का आदेश दिया। शाही सेना जालौर पहुँच कर के दुर्ग को घेर लिया। रात में राजपूत सैनिक अचानक आक्रमण कर शाही सेना की सफलता को असफलता में बदल देते। इसी अवधि में शाही सेना को प्राकृतिक आपदा के कारण काफी क्षति हुई। उसने दुर्ग का घेरा उठाकर वापस लौटने को निर्णय लिया। वापस लौटती शाही सेना पर राजपूतों ने मेड़ता के पास मोकलाना नामक स्थान पर आक्रमण किया। अनेक शाही सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। शम्स खाँ और उसकी पत्नी को गिरफ्तार कर बंदी बना लिया।[572]

जालौर पर विजय का पंचम चरण:-

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने कमालुद्दीन गुर्ग व अन्य सेनानायकों को जालौर विजय हेतु भेजा। शाही सेना के आक्रमण की सूचना से आसपास के राजपूत जालौर दुर्ग की रक्षार्थ एक साथ इक्कठे हो गये रक्षा। कान्हड़देव ने सुल्तान की सेना का मार्ग रोकने के लिए अपने भाई मालदेव व पुत्र वीरम देव को भेजा। इसके नेतृत्व में राजपूत सैनिकों ने शाही सेना का मार्ग रोकने का अथक प्रयास किया परन्तु शाही सेना के सेना नायकों की सतर्कता से वह जालौर दुर्ग तक पहुँचकर में सफल हो गये।

कमालुद्दीन गुर्ग के नेतृत्व में जालौर दुर्ग का घेरा डालने से पहले ही अनेक राजपूत वीरों ने दुर्ग के बाहर रहकर शाही सेना से युद्ध करने का निर्णय किया। जब दुर्ग पर दबाव पड़ने लगा तो इन राजपूतों ने समय समय पर छापामार युद्ध प्रणाली से शाही सेना को काफी परेशानी में डाल दिया। कान्हड़देव प्रबंध के अनुसार उद्लपुर शिविर का सेना नायक मलिक निजामुद्दीन भी इस संघर्ष में मारा गया। दोनों पक्षों में संघर्ष के दौरान दुर्ग का घेरा लगभग आठ महीने होने में आठ दिन शेष थे।[573] देशद्रोही बिका दहिया राजपूत ने शत्रु को दुर्ग में प्रवेश का गुप्त मार्ग बतला दिया।[574] जब उसकी रानी हिरादेवी को इसका पता चला तो उसने देश प्रेम का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अपने पति को धिक्कार के साथ मार दिया और बाद में इसकी सूचना कान्हड़देव को दे दी।[575]

कान्हड़देव ने दुर्ग में शाही सेना के प्रवेश को रोकने की खूब कोशिश की। इसी प्रयत्न में राजपूत सैनिक एक एक कर मरने लगे। नैणसी के अनुसार कांधल ने इस समय अपना प्रबल पराक्रम दिखाया। लेकिन राजपूतों ने अपनी पराजय को नजदीक देखकर दुर्ग में उपस्थित 1584 राजपूत स्त्रियों ने जौहर का आयोजन कर अपने प्राणों की आहुति थी।[576] नैणसी ने लिखा है कान्हड़देव की चार रानियों रानी ऊमादे, रानी कंवरदे, रानी जैतदे, रानी भावलदे ने चिता में प्रवेश पर जौहर किया।[577]

पाँचवें दिन जब कान्हड़देव को सूचना मिली कि शाही सेना कान्ह स्वामी के मन्दिर को तोड़ने वाली है तो वह अनेक राजपूत वीरों के साथ निकला। दोनों पक्षों में भीषण संघर्ष हुआ। इस युद्ध में कान्हड़देव अनेक वीरों सहित नैणसी के अनुसार आल्हण देवड़ा, आल्हण सोहड़, धारा सोढो, भाणों धांधल, सिधंल पत्ता, भाभण परिहार आदि के साथ अपने स्वदेश की रक्षा करता हुआ वि. सं.1368/12 अप्रैल 1312 ई. को वीरगति को प्राप्त हुआ। पदमनाभ और नैणसी के अनुसार 12 अप्रैल 1312 ई. को जालौर विजय जबकि डॉ. दशरथ शर्मा ने खरतरगच्छ

पट्टावली के आधार पर जालौर पर दिल्ली सल्तनत के अधिकार की तिथि 1314 ई. मानते है। इनके अनुसार 1314 ई. तक जालौर पर हिन्दुओं का अधिकार था।[578]

इतना होने पर भी राजपूतों ने हिम्मत नहीं ही हारी कान्हड़देव के पुत्र वीरमदेव के नेतृत्व में राजपूत वीरों को पुन: संगठित कर युद्ध को जारी रखा। इतनी कम संख्या में राजपूत दुर्ग में शाही सेना के प्रवेश कर जाने और रसद आदि की कमी के कारण यह अधिक समय तक संघर्ष नहीं कर सके। वीरमदेव ने बन्दी बनाये जाने के भय से स्वयं अपने पेट में तलवार भौंक कर मृत्यु को प्राप्त हुआ। इस भयंकर रक्ततांडव के उपरांत जालौर के दुर्ग पर खिल्जियों का अधिकार हो गया। इस विजय की स्मृति में सुल्तान ने वहाँ पर एक मस्जिद का निर्माण करवाया, जो अभी भी दुर्ग में स्थित है। कान्हड़देव भाई का मालदेव जालौर के पतन के बाद किसी तरह बच निकला। बाद में सुल्तान ने उसे चित्तौड़ का कार्यभार प्रदान किया।[579]

इस प्रकार सोनगरा चौहानों के लम्बे प्रतिशोध के बाद सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने जालौर पर अधिकार स्थापित कर लिया। सोनगरा चौहानों की वीरता और प्रतिशोध का यह प्रमाण है कि जब अलाउद्दीन खिलजी की साम्राज्यवादी नीति के कारण 1311 ई. तक लगभग समस्त राजपूताना पर उसका अधिकार हो गया था। जबकी सोनगरा चौहान उसकी साम्राज्यवादी नीति से टक्कर लेते रहे। सबसे लम्बे तथा सबसे अन्त तक प्रतिरोध करने वाले राज्य के रूप में प्रसिद्ध हुए।

जालौर विजय के साथ ही महत्वाकांशी सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की विजय की महान योजना पूर्ण हो गयी। अब उत्तरी भारत में ही नहीं बल्कि दक्षिण भारत में भी उसके अधीन था किन्तु ऐसी शानदार सफलता अर्जित करने वाला सुल्तान अपनी विजय का आनन्द अधिक समय तक नहीं ले सका। हि. 715/ 4 जनवरी 1316 ई. उसकी मृत्यु हो गयी।[580] इसके बाद इसके पुत्र कुतुबुद्दीन मुबारक शाह खिलजी का अव्यवस्थित शासन का प्रारम्भ हुआ। राजपूताना के राजपूत लगभग शांत रहे। कदाचित् राजपूताना के रेगिस्तानी भागों, जंगली और पहाड़ी प्रदेशों में निवास कर रहे राजपूत अपने अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा में थे। इसी उथल पुथल में चार वर्ष राज करने के बाद सुल्तान के समर्थक एक धर्म परिवर्तित हिन्दू खुसरो खाँ ने 8 जुलाई, 1320 ई. को कुतुबुद्दीन मुबारक शाह खिलजी व उसके परिवार के सदस्यों की हत्या कर स्वयं नासिरुद्दीन खुसरो खाँ के नाम से सुल्तान बना।

खिलजी सुल्तानों की साम्राज्यवादी नीति के कारण लगभग छ: शताब्दी से प्रतिरोध करने वाले राजपूताना के राज्यों का अस्तित्व अन्तत: समाप्त हो गया। रणथम्भौर, चित्तौड़गढ़, जैसलमेर, सीवाना जालौर आदि के राजपूतों ने खिलजी सुल्तानों की साम्राज्यवादी नीति का दो दशक से भी अधिक उल्लेखनीय, किन्तु निष्फल प्रतिरोध किया। जिस समय खिलजी साम्राज्य की विजय पताका सुदूर दक्षिण में मदुरा तक जा पहुँचीं थी। उस समय भी राजपूताना में जालौर के सोनगरा चौहान खिलजी साम्राज्यवाद से संघर्षरत थे।

खिलजी वंश व नागौर (1290- 1320 ई.) नागौर पर मंगोल आक्रमण व अलाउद्दीन खिलजी:-

सुल्तान जलालूद्दीन फिरोजशाह खिलजी के समय भी नागौर दिल्ली सल्तनत के अधिकार में ही रहा। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने मलिक तलबगृह को नागौर का प्रान्तपति नियुक्त किया।[581] अमीर खुसरो के अनुसार सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के समय में मुहम्मद तरताक व अलीबेग ने पचास हजार वीर सैनिकों सहित हिंदुस्तान पर आक्रमण किया तो इस सेना के एक भाग ने नागौर पर आक्रमण कर उसे नष्ट भष्ट कर दिया। जब नागौर पर आक्रमण की सूचना सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी को प्राप्त हुई। उसने तुरंत मलिक काफूर व तुगलक अमीर के नेतृत्व में तीस हजार सैनिकों सहित उनका मुकाबला करने के लिए रवाना किया। दिसम्बर 1305 ई. को शाही सेना और मंगोल सेना के बीच तीव्र संघर्ष हुआ जिसमे मंगोल सेना पराजित हुई। उनके दोनों सेनानायकों को बंदी बनाकर दिल्ली लाया गया।[582] उनसे वह धन सम्पति छीन ली जो उन्होंने लूट से प्राप्त की थी।

मुहम्मद तरताक और अलीबेग की मृत्यु का बदला लेने के लिए हि.705/1306 ई. में अमीर दाऊद खाँ ने पचास हजार मंगोल सेना को दो भागों में विभक्त कर जिसमें से एक का नेतृत्व कपक कर रहा। दूसरी का इक़बाल मुदबर व मुदाबिर ताइबू को हिन्दूस्तान पर आक्रमण करने भेजा। इसमें से कपक के नेतृत्व वाली सेना ने नागौर पर आक्रमण कर उस पर अपना अधिकार कर लिया। जब इसकी सूचना सुल्तान को मिली तो उसने मलिक काफूर, गाजी मलिक तुगलक,मलिक एनुल्मुल्क खाँ आदि को विरूद्ध भेजा। अली नदी के तट पर शाही सेना और मंगोल सेना के मध्य के बीच संघर्ष हुआ मंगोल सेना पराजित हुई। जियाउद्दीन बरनी के अनुसार कनक[583], एसामी के अनुसार कबक[584] याहिया के अनुसार कीक[585] किन्तु फरिश्ता के अनुसार हैबक खाँ को बन्दी बना लिया गया। इसके बाद मलिक काफूर और मलिक गाजी तुगलक मंगोल सेना का मुकबला करने के लिए आगे बड़े जो नागौर पहुँच गयी थी। मंगोल सेना के पास पहुँचकर उस पर टूट पड़े। कपक के गिरफ्तार व दक्षिण पाशर्व पर मलिक काफूर व गाजी मलिक द्वारा शीघ्र आक्रमण करने के कारण मंगोल सेना को पूर्णत: पराजित

करके मंगोल सेना नायक कपक व इक़बाल मुदबर बन्दी बनाकर दिल्ली लाया गया। जहाँ उनको हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा दिया गया। नागौर पर पुन: दिल्ली सल्तनत का अधिकार हो गया।

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के समय में मलिक तलबगृह ही नागौर का अधिकारी रहा। उसके पुत्र कुतुबुद्दीन मुबारक शाह के शासन काल तक वह इस पद पर बना रहा। वीरता और निष्ठापूर्वक वह दिल्ली सल्तनत की सेवा करता रहा। जब खुसरो खाँ ने दिल्ली सल्तनत की सत्ता अपने हाथ में लेकर नासिरुद्दीन खुसरो खाँ की पदवी ग्रहण करके स्वयं दिल्ली सल्तनत की गद्दी पर बैठा। उसने नागौर के प्रान्तपति मलिक तलबगृह के प्रति विशेष कृपा की और पूर्व के व्यवहार को भूलकर उसका मित्र बन गया। जब दीपालपुर के गवर्नर गाजी मलिक तुगलक और खुसरो खाँ के बीच संघर्ष हुआ। उसकी सेना के एक भाग का नेतृत्व मलिक तलबगृह कर रहा था। इस संघर्ष में नागौर का गवर्नर मारा गया। खुसरो खाँ भागकर तिलमत की और चला गया लेकिन उसे पकडकर मार दिया गया। इस प्रकार खुसरो खाँ के साथ नागौर के गवर्नर का भी अन्त हो गया।[586]

3.4 खिलजी सुल्तानों की राजपूताना के सम्बंध में कोई स्पष्ट नीति नहीं

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की अपने साम्राज्य के अधीनस्थ राज्यों के विषय में एक निश्चयत आर्थिक व प्रशासनिक नीति थी। हिन्दू परम्परा के अनुसार रायों, राणाओं और रावतों के पद वंशानुगत हो तो उसने उसका विरोध नहीं किया। किन्तु वह हिन्दू व्यापारियों को अपनी और मिला सकता था। उसके समय में वह कृषकों को शाही कानून के अनुसार उनसे न्याय संगत कर ले सकता था। दक्षिण और धुर दक्षिण के चार राज्यों से भी उसकी नीति बहुत स्पष्ट थी। उनको उनकी पैतृक सम्पति से वंचित कर देना था और वार्षिक खराज देने पर विवश करना था किन्तु उनके शासन प्रबंध में कोई हस्तक्षेप नहीं करना था। उनकी एक बिस्वा भूमि भी साम्राज्य में सम्मिलित नहीं की गयी। लेकिन न तो सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की कार्यवाही और न ही समकालीन विद्वानों की रचनाओं में हमें उसकी राजपूताना के विषय में स्पष्ट नीति का वर्णन प्राप्त होता है। सुल्तान ऐसे किसी राय को सहन कर सकता था जो उसे ललकारे और उसके मार्ग में अव्यवस्था उत्पन करे। लेकिन हम यह कह सकते है कि राजपूताना के विलय की प्रकिया धीरे-धीरे कार्यविन्त और बाद में उसे अव्यहारिक समझकर अमल में लाना छोड़ दिया। रणथम्भौर और झायन के सम्बंध में लिया गया और वहाँ शाही आर्थिक कानूनों को लागू किया गया किन्तु चित्तौड़ में तीन हजार रावतों का नरसंहार लाभदायक सिद्ध नहीं हुआ। राजपूताना के अन्य विजित राज्यों को शाही कानूनों के अंतर्गत लाने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

राजपूताना के तीन प्रसिद्ध दुर्गो- रणथम्भौर, चित्तोड़, जालौर को विजित करने में भीषण नरसंहार हुआ था पर वहाँ से कोई उल्लेखीय धन सम्पति नहीं मिली थी।

राजपूताना का कोई विशिष्ट अधीनस्थ शासक उसके दरबार में आ जाता और कुछ समय के लिए एक उच्च पदाधिकारी की भाँति व्यवहार करता तो अलाउद्दीन उसके उपहारों से खुश हो जाता था। यदि सुल्तान को अपने ही अधिकारियों में से किसी को एक पराजित शासक के राज्य में नियुक्त पड़ता तो राजपूताना की सामाजिक व्यवस्था नहीं छेड़ी जाती थी। मूल स्थिति उन रावतों और स्थानीय राजा की ही रहती थी। उनके अधिकारियों को रावतों से उनकी स्वंत्रता के अनुरूप खराज वसूल करने छूट थी। उन परिस्थितियों में इसके अतिरिक्त और कुछ संभव नहीं था। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में राजपूताना उतना समृद्धशाली और महत्वपूर्ण नहीं था। जितना वह आगे आने वाले समय में हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि राजपूतों में कोई निकट सूत्री भाईचारे की भावना निहित नहीं थी। राजपूताना के शासकों के आपसी झगड़ों ने अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमणों को और सहज बना दिया। छोटे शासकों के राज्यों में विभाजित राजपूताना दक्षिण के समृद्ध राज्यों द्वारा पूरी तरह आच्छन्न हो गया था।

कुल मिलाकर एक विरोधी होते हुए भी जियाद्दीन बरनी राजपूताना की विजय के बाद सुल्तान अलाउद्दीन के साम्राज्य का निम्नलिखित वर्णन देता है। चारों और साम्राज्य के प्रान्तों पर विश्वसनीय और विरोधियों का दमन कर दिया गया था। किसानों के ह्दय भूमि के नाप के आधार पर कर दी। चराई करों सहित लगान देने के लिए तैयार हो गये थे । आमजन के मस्तिष्क से विद्रोह के भावना व विचार और दूषित महत्वकांशा दूर हो चुकी थी। अभिजात वर्ग तथा साधारण जनता शांतिपूर्वक अपने कार्यो या खेती में व्यस्त हो गयी थी। रणथम्भौर, चित्तौड़, मांडल, सिवाना और जालौर जहाँ की सरकारें दुर्लब थी, कठोर राज्यपालों के नियंत्रण में लाया गया था। नागौर, अजमेर बयाना, रणथम्भौर उलुग खाँ, झायन में मेरठ का फखरुल्मुल्क, चित्तौड़ में खिज्र खाँ, मलिक अबू मोहम्मद, सिवाना में कमालुद्दीन गुर्ग, आदि अधिकारियों की नियुक्ति कर उन्हें दृढ बनाया गया।[587]

निष्कर्ष:- दिल्ली सल्तनत के वंशों में खिलजी वंश के शासकों ने सबसे कम समय तक शासन किया। किन्तु यह राजपूताना को सर्वोधिक प्रभावित करने वाला वंश था। खिलजी वंश की स्थापना से दिल्ली सल्तनत और साथ ही राजपूताना में अनेक सामाजिक आर्थिक बदलाव के साथ-साथ तत्कालीन राज्य एवं राजनीतिक स्वरूप में भारी परिवर्तन हुए।

सुल्तान जलालुद्दीन के सम्पूर्ण शासनकाल को देखकर यह कहा जा सकता है कि उसने राजपूताना के रणथम्भौर, मण्डोर, सांचौर पर अनेक बार आक्रमण किया। किन्तु इन समस्त अभियानों में उसे मात्र कुछ धन सम्पति के अतिरिक्त उसके हाथ कुछ नहीं लगा। लगभग उसी समय राजपूताना के सभी राजपूत राज्य शक्तिशाली बन गये थे। यद्यपि झाइन पर उसकी सेना ने हम्मीर की सेना को दो बार परास्त कर अधिकार कर लिया था। आसथान की वीरगति मण्डोर पर अस्थायी सफलता प्राप्त करना उसकी राजपूताना के प्रति अग्रसर नीति का परिचायक है। किन्तु सुल्तान में दृढ निश्चय का अभाव था। इसी का लाभ उठा कर रणथम्भौर के शासकों ने जलालुद्दीन की प्रारम्भिक सफलताओं को भी असफलता में बदल दिया।

एक नये धर्म की संस्थापना व विश्व विजय की योजना अलाउद्दीन को आकर्षित कर रही थी। इसलिए उसने सिकन्दर सानी की उपाधि भी धारण की थी जो उसके कुछ सिक्कों पर अंकित है। काज़ी अलाउलमुल्क की सलाह पर सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने विश्व विजय के स्थान पर सर्वप्रथम हिन्दुस्तान की विजय का संकल्प लिया। समस्त भारत को दिल्ली सल्तनत के अधीन करने के लिए आवश्यक था कि पहले राजपूताना के राजपूत राज्यों जैसे जैसलमेर, रणथम्भौर, मेवाड़, जालौर, सिवाना, मण्डोर, मारवाड़ आदि राज्य थे जो सदियों से मुस्लिम आक्रमणकारियों का प्रतिरोध कर रहे थे। अत: इन्हें अधीन करना अति आवश्यक था। इसी कारण सुल्तान अलाउद्दीन ने सर्वप्रथम उत्तरी भारत के राजपूत राज्यों को दिल्ली सल्तनत में मिलने की योजना बनायी। इसी क्रम में सुल्तान ने राजपूताना के जैसलमेर पर प्रथम आक्रमण 1299 ई. में रणथम्भौर को (1301 ई.) में चित्तौड़ को (1303 ई.) में सिवाना 1308 ई. में जालौर 1312 ई. में पर महत्वपूर्व विजय प्राप्त कर दिल्ली सल्तनत की सीमाओं में विस्तार कर लिया। इससे पूर्व राजपूताना के नागौर, अजमेर, बयाना, मेवात, पाली, सांचौर, मण्डोर आदि पर दिल्ली सल्तनत का अधिकार स्थापित हो चुका था। इस प्रकार पहली बार सम्पूर्ण राजपूताना का विलय दिल्ली सल्तनत के अंतर्गत हो गया था। यह स्थिति दिल्ली सल्तनत के तुगलक़ वंश के प्रारम्भिक शासकों के समय तक रही।

कोई भी राजवंश इतना शक्तिशाली नहीं था कि दूसरे संघर्ष राजवंश उसकी सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार करते अथवा उसके नेतृत्व में एकजुट होकर तुर्कों का प्रतिरोध करते। विभिन्न राजपूत वंशों में एकता के अभाव के कारण ही तुर्कों को उन्हें पृथक-पृथक रूप में परास्त करने का अवसर मिल गया। अलाउद्दीन खिलजी से पूर्व दिल्ली सुल्तानों और राजपूत राज्यों में निरन्तर संघर्ष चलता रहा। इस संघर्ष में रणथम्भौर के चौहान, जालौर के चौहान और मेवाड़ के गुहिलों की विशेष भूमिका रही। अलाउद्दीन खिलजी अत्यंत महत्वकांक्षी व दृढ़ निश्चय

सुल्तान था। राजपूताना के राजपूत राज्य जो 700 वर्षो से भी अधिक समय से तुर्कों का प्रतिरोध कर रहे थे, का अंतिम अध्याय प्रारम्भ हुआ। जिसका पटाक्षेप भी उसी महत्वकांक्षी सुल्तान की जीवन-लीला के पटाक्षेप के साथ ही हो गया। यद्यपि इस समय राजपूताना के राज्य अपनी शक्तिबल में अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक शक्तिसम्पन थे किन्तु उनका शत्रु भी पूर्व के सुल्तानों से अधिक शक्तिशाली था। सम्पूर्ण राजपूताना का दिल्ली सल्तनत में विलय खिलजी वंश के समय देखने को मिलता। जो राजपूताना के एकीकरण की पहली बार एक झलक प्रस्तुत करता है। राजपूत परम्परानुसार शरणागत की रक्षा करने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने का उदाहरण पहली बार इसी काल में देखने को मिलता है। राजपूती परम्परा का पालन हुए राजपूत सरदारों द्वारा केसरिया बाना धारण करना व राजपूत महिलाओं द्वारा अपने सतीत्व को बचाने के लिए जौहर के आयोजनों का उल्लेख सर्वप्रथम समसामयिक साहित्य में इसी समय से मिलते है। जैसे रणथम्भौर की पटरानी रंगदेवी, चित्तौड़ की रानी पदमनी अपने आपको अग्नि में अर्पण कर देती है।

खिलजी सुल्तानों की राजपूताना के सम्बंध में कोई स्पष्ट नीति नहीं थी। अलाउद्दीन खिलजी की आर्थिक सुधार या बाजार नियन्त्रण व्यवस्था व सैनिक नीति का उल्लेख राजपूताना के संदर्भ में देखने को नहीं मिलता है। युद्ध के समय हिन्दू मंदिरों को नष्ट करके मस्जिदों में परिर्वतन के उदाहरण इस समय राजपूताना मिलते है। लेकिन शांति काल में मंदिरों को नष्ट करने का उल्लेख नहीं मिलता है। राजपूताना के विजित राज्यों को शाही कानूनों के अंतर्गत लाने का कोई प्रयास नहीं किया गया। सुल्तान को अपने ही अधिकारियों में से किसी को एक पराजित शासक के राज्य में नियुक्त पड़ता तो राजपूताना की सामाजिक व्यवस्था नहीं छेड़ी जाती थी। मूल स्थिति उन रावतों और स्थानीय राजा की ही रहती थी। उनके अधिकारियों को रावतों से उनकी स्वंत्रता के अनुरूप खराज वसूल करने की पूर्ण छूट थी। रणथम्भौर, चित्तौड़, मांडल, सिवाना और जालौर जहाँ की सरकारें दुर्लब थी, उन्हें राज्यपालों के उन्हें कठोर राज्यपालों के नियंत्रण में लाया गया था।

अध्याय-चतुर्थ

4. तुगलक़ वंश (1320-414 ई.) व राजपूताना

तुगलक़ वंश:- तुगलक वंश का संस्थापक गियासुद्दीन मुहम्मद तुगलक था। गियासुद्दीन तुगलक सम्पूर्ण मध्यकालीन भारतीय इतिहास में सर्वप्रथम सर्वसम्मति से सुल्तान बनने वाला प्रथम शासक था। नासिरुद्दीन खुसरो की हत्या करने के बाद अमीरों के आग्रह पर वह दिल्ली सल्तनत के सिंहासन पर बैठा। प्रो. हबीब के मतानुसार वे उसका हाथ पकड़ कर ले गए और सिंहासन पर बैठाकर गियासुद्दीन के ख़िताब सहित उसे सुल्तान घोषित कर दिया। अमीर खुसरो के तुगलकनामा के अनुसार तुगलक सुल्तान का व्यक्तिगत नाम था, जातीय नहीं।[588] इब्बनेबतूता तुगलकों को तुर्किस्तान व सिंध के मध्यवर्ती पहाड़ी क्षेत्र के करौना वंश का बताता है।[589] फरिश्ता के अनुसार मलिक तुगलक बलबन का एक तुर्क दास था। उसकी माता एक जाट परिवार की महिला थी। अमीर खुसरो के तुगलकनामा में स्पष्ट लिखा है कि वह जीविका की खोज में जलालुद्दीन खिलजी के अंग रक्षक के रूप में भर्ती हुआ था। सर्वप्रथम उलुग खाँ के नेतृत्व में रणथम्भौर के घेरे के समय अपनी शक्ति का परिचय दिया। जब उलुग खाँ की मृत्यु हो गयी तो वह अलाउद्दीन खिलजी की सेवा में आया। अलाउद्दीन के शासन काल में ही उसकी पद व प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। सुल्तान कुतुबुद्दीन खिलजी के राज्यकाल में उसे उत्तरी-पश्चिमी सीमा-प्रान्त का सूबेदार नियुक्त किया गया। मंगोलों को पराजित करने के कारण वह मलिक-उल-गाजी के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस वंश में कुल आठ शासक हुए-गियासुद्दीन तुगलक, मुहम्मद बिन तुगलक, फिरोज तुगलक, व उत्तरवर्ती तुगलक सुल्तान- गियासुद्दीन तुगलक शाह द्वितीय, अबू बक्र, नासिरुद्दीन मुहम्मद शाह, अलाउद्दीन सिकन्दर शाह, नासिरुद्दीन मुहम्मद । इन आठ तुगलक शासकों ने 1320-1414 ई. तक अर्थात 94 वर्ष तक शासन किया। दिल्ली सल्तनत के काल में तुगलक वंश के शासकों ने सबसे अधिक समय तक शासन किया।

4.1 गयासुद्दीन(1320-1325 ई.) व मुहम्मद बिन तुगलक (1325-1351ई.) व राजपूताना:-

तुगलक वंश के शासकों के समय में दिल्ली सल्तनत का सर्वाधिक विस्तार हुआ। इस राजवंश का सबसे दु:खद पहलू यह था कि जहाँ इस राजवंश के समय सर्वाधिक साम्राज्य विस्तार हुआ, वहीं ही सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद बिन तुगलक की महत्वाकांक्षाओं पर तुषारापात करके दिल्ली सल्तनत के अवशेषों पर नये राजपूत राज्यों का अभ्युदय हुआ। इन राज्यों से न केवल इस राजवंश का वरन् पूरे सल्तनत का पतन शुरू हो

गया। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने अपनी शक्ति के बल से समस्त उत्तरी भारत पर अपना आधिपत्य स्थपित किया। दक्षिण भारत में देवगिरी, द्वारसमुद्ध, वारंगल, मदुरा के हिन्दू राज्यों पर उसने प्रत्यक्ष रूप से अधिकार कर लिया, लेकिन आने वाले समय में उन पर शक्ति के बल पर ही अधिकार रखा जा सकता था। इसके साथ ही सम्पूर्ण राजपूताना दिल्ली सल्तनत के अधिकर में था, किन्तु चित्तौड़, रणथम्भौर, जालौर, सिवाना, जैसलमेर, नागौर आदि क्षेत्रों के राजपूतों में विद्रोह की भावना का जन्म हो रहा था।

4.1.1 कछवाहा कोतल का विद्रोह:-

एसामी ने फुतूह स्सालातीन में उल्लेख किया है कि तुर्माशिरीन के आक्रमण के बाद कोतल कछवाह नामक एक हिन्दू ने विद्रोह कर दिया। जब सुल्तान को इसकी सूचना मिली तो वह उसे दबाने के लिए रवाना हुआ। सुल्तान ने विद्रोह को दबाने के बाद अजमेर स्थित ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के दर्शन किये। कुछ दिन विश्राम के बाद वापस राजधानी लौट गया।[590]

4.1.2 हम्मीर द्वारा मेवाड़ की स्वतंत्रता:-

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी द्वारा 26 अगस्त, 1303 ई. को चित्तौड़ विजय के बाद इसे अपने पुत्र खिज्र खाँ के अधिकार में रखा। चित्तौड़ का नाम बदलकर खिज्राबाद रखा गया। मुहम्मद कासिम फरिश्ता के अनुसार सुल्तान ने कुछ समय बाद ही चित्तौड़ की अनुपयोगिता को देखते हुए उसे चित्तौड़ दुर्ग को खाली करके रावल रतनसिंह के भांजे मालदेव के सुपुर्द करने का आदेश दिया। मालदेव ने कुछ ही दिनों में मेवाड़ की दशा को पूर्ववर्ती शासकों जैसी स्थिति में पहुँचा दिया। इस क्षेत्र के सभी राजपूतों ने इसका नेतृत्व स्वीकार कर लिया। सुल्तान अलाउद्दीन खिजली के शासन काल के अंतिम दिनों में मेवाड़ को कर देने वाले राज्य के सादृश्य बना दिया था। वह सुल्तान को वार्षिक कर व बहुमूल्य भेंट भी समय-समय पर दिया करता था। किसी अभियान के लिए पाँच हजार सवार व दस हजार पैदल सैनिक सहित सुल्तान की सेवा के लिए तैयार रहता था, फिर आगे के प्रसंग में फरिश्ता वर्णन करता है कि मेवाड़ के राजपूतों ने दिल्ली सल्तनत के अधिकारियों को दुर्ग के बुर्जो से नीचे फेंक दिया और मेवाड़ को स्वतंत्र कर लिया।[591]

राजस्थान की ख्यातों में वर्णन मिलता है कि 1311-12 ई. में जालौर में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की विजय के समय कान्हड़देव की मृत्यु हुई। लेकिन उसने अपने वंश को बचाऐ रखने के लिए अपने भाई मालदेव को वहाँ से निकाल दिया। जो बाद में चित्तौड़ के निकटवर्ती भागों में लूट-पात करता था। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने

इन उपद्रव से परेशान होकर मालदेव ने चित्तौड़ दुर्ग को देकर अपना अधीनस्थ शासक बना लिया। चित्तौड़ पर सात साल शासन करने के पश्चात वहीं पर उसकी मृत्यु हो गयी। उसके जैसा, कीर्तिपाल, बणवीर तीन पुत्र हुए।[592]

उपरोक्त वर्णन की पुष्टि अभिलेखों से नहीं होती है। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के समय से लेकर मुहम्मद बिन तुगलक के समय तक के शिलालेख चित्तौड़ से मिले है। सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक के समय का एक चाँदी का सिक्कों चित्तौड़ से मिला है, जिसमे एक तरफ कुरान की आयात और दूसरी तरफ गयासुद्दीन गाजी का नाम लिखा है। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल का चित्तौड़ से एक शिलालेख मिला है, जिसमें जो सितम्बर,1335 ई. में चित्तौड़ में उसके गवर्नर मलिक असाउद्दीन द्वारा एक सराय के निर्माण का वर्णन मिलता है। 24 दिसम्बर,1335 ई. के करेडा शिलालेख के अनुसार मालदेव की मृत्यु के बाद उसका पुत्र बणवीर सोनगरा चित्तौड़ का शासक बना। इसी शिलालेख में उसके सिलहदार मुहम्मददेव के नाम का भी उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि इस समय तक चित्तौड़ पर दिल्ली सल्तनत का अधिकार था। इसी बणवीर से हम्मीर ने चित्तौड़ छीना था।[593]

1303 ई. में रावल रत्नसिंह की मृत्यु के साथ ही मेवाड़ में शासन कर रही। गुहिल वंश की वरिष्ठ शाखा का अंत हो गया। कुछ ही वर्ष पहले इसी वंश की एक कनिष्ठ शाखा ने रावल कर्णसिंह के समय मेवाड़ के अंतर्गत ही सिसोदा गाँव में अपनी जागीरदारी की शुरुआत की थी। इसी सिसोदा गाँव के जागीरदार लक्ष्मणसिंह ने सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय चित्तौड़ दुर्ग की रक्षार्थ अपने सात पुत्रों सहित अपने प्राणों की आहूति दी थी। चित्तौड़ को स्वतंत्रता दिलवाने वाला हम्मीर लक्ष्मणसिंह का पौत्र और अरिसिंह का पुत्र था। हम्मीर अपने चाचा अजयसिंह की मृत्यु के बाद सिसोदा का जागीरदार बना। अरावली पहाडियों में स्थित कैलवाडा को अपना केन्द्र बना कर निकटवर्ती प्रदेशों पर आक्रमण कर उन पर अधिकार करना शुरू कर दिया।[594] हम्मीर ने बणवीर को युद्ध में पराजित कर चित्तौड़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

हम्मीर के चित्तौड़ विजय समय:-

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु 20 दिसम्बर,1316 ई. और इसके उपरांत शहाबुद्दीन उमर, कुतुबुद्दीन मुबारक शाह खिलजी, नासिरुद्दीन खुसरो शाह आदि ने पाँच वर्ष तक शासन किया। इसके बाद 8 सितम्बर, 1320 ई. को गयासुद्दीन तुगलक दिल्ली सल्तनत के सिंहासन पर बैठा। सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक के शासन

काल का एक शिलालेख चित्तौड़ से मिला। जिसमे उसके गवर्नर असुददीन का उल्लेख मिलता है। इसी आधार पर डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा के अनुसार वि.सं.1381/1326[595] ई. के लगभग किसोरी सरन लाल 1321[596] ई. एवं गोपीनाथ शर्मा 1326[597] ई. को हम्मीर द्वारा चित्तौड़ पर अधिकार का समय बताते है। मुहम्मद बिन तुगलक के समय का करेडा के जैन मंदिर से वि.सं.1392/1337 ई. के अभिलेख में शासक पृथ्वीचन्द्र व सिलहदार मुहम्मद देव और मालदेव के पुत्र वणवीर के नाम का स्पष्ट वर्णन मिलता है। इसके आधार पर हम्मीर द्वारा चित्तौड़ लेने का समय 1337 ई. के बाद का होना प्रतीत होता है। अत: समसामयिक विद्वानों व अभिलेखीय प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि 10-11 वर्ष तक यानि 1323 ई. के लगभग खिज्र खाँ ने चित्तौड़ पर शासन किया। मालदेव को चित्तौड़ हि. 711/1311 ई. को चित्तौड़ मिला व सात वर्ष शासन करने के बाद चित्तौड़ में ही उसकी मृत्यु हुई। मालदेव के पुत्रों का शासन चित्तौड़ पर रहा।[598] यह गयासुद्दीन तुगलक व मोहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में चित्तौड़ से मिले शिलालेखों आदि से प्रतीत होता है।

हम्मीर की चित्तौड़ विजय की कथा:-

कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार हम्मीर का विवाह मालदेव सोनगरा की विधवा पुत्री के साथ हुआ, किन्तु इसमें कविराजा श्यामलदास व डॉ. गौरीशंकर ओझा ने आपत्ति व्यक्त की है, क्योंकि उस समय राजपूतों में विधवा विवाह का प्रचलन नहीं था। हम्मीर ने रानी की सलाह पर ससुर मालदेव से दहेज में जलधर नामक एक अति चतुर सरदार को माँग लिया। मेहता वंशीय जलधर चित्तौड़ का अति चतुर कर्मचारी था। कुछ समय उपरांत उचित अवसर देखकर जलधर मेहता की सहायता से चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। यह वृत्तान्त कहाँ तक उचित है यह नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि राजस्थानी ख्यातों में यह घटना मालदेव के समय की है। जबकि इस वृतांत के बाद चित्तौड़ को हस्तगत किया गया था।[599] कवि श्यामलदास के वीर विवोद के अनुसार हम्मीर की शादी जालौर होना बताते है। जबकि वहाँ पर उस समय मुस्लिम अधिकारी नियुक्त था[600]

इस सम्बंध में इतना ही कहना उचित होगा कि चित्तौड़ से दिसम्बर 1326 ई. के बणवीर व सिलहदार मोहम्मद देव के प्राप्त अभिलेख के अनुसार हम्मीर द्वारा चित्तौड़ पर अधिकार1326 ई. के बाद ही किया गया होगा। हो सकता है कि मुहम्मद बिन तुगलक के कराचिन अभियान के समय हम्मीर ने सुल्तान की सैनिक दुर्बलता का लाभ उठा कर उसके अधीनस्थ शासक बनवीर सोनगरा चौहान को युद्ध में पराजित चित्तौड़ पर पुन: अपने राजवंश का शासन स्थापित किया।

4.1.3 मुहम्मद बिन तुगलक द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण:-

कर्नल जेम्स टॉड ने महाराणा हम्मीर व मुहम्मद खिलजी[601] के बीच युद्ध का वर्णन किया है किन्तु यह युद्ध मुहम्मद तुगलक के साथ हुआ था। महाराणा हम्मीर से पराजित होने के बाद मालदेव (बणवीर) दिल्ली में सुल्तान मुहम्मद तुगलक के पास सहायता के लिए गया। इस पर सुल्तान ने एक बड़ी शाही सेना सहित मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया।

दोनों के बीच सिंगोली नामक स्थल पर युद्ध हुआ। जिसमें बणवीर के भाई हरिसिंह कविराजा श्यामलदास के अनुसार मालदेव के पौत्र हरिदास[602] की मृत्यु हुई। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक को कैद कर लिया गया। चित्तौड़ के किले में तीन महीने कैद रहने के बाद अजमेर, रणथम्भौर, नागौर, सोसोपुर के प्रदेश पचास लाख रुपए व एक सौ हाथी देने के उपरांत सुल्तान को रिहा किया गया।[603]

डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा उपयुक्त वर्णन को सत्य नहीं मानते उनके अनुसार इस समय तक मालदेव का जीवित रहना सम्भव नहीं था। यह मालदेव का बड़ा पुत्र जैसा होगा। उसने सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक से सहायता माँगी होगी।[604] मालदेव सोनगरा की मृत्यु के उपरांत उसके पुत्र जैसा/जयसिंह से हम्मीर ने छल या बल से चित्तौड़ पर अपना अधिकार कर लिया। मेवाड़ पर फिर से गुहिल वंशीय की राणा शाखा का राज्य स्थापित किया।[605] आर.सी.मजूमदार महोदय का कहना है कि इस शाही सेना का नेतृत्व सुल्तान द्वारा ना किया जाकर उसके किसी सेनापति द्वारा किया गया होगा। डॉ. ईश्वरी प्रसाद भी इसका समर्थन करते है। इसके विपरीत डॉ. आगा मेहँदी हुसैन व एस.दत्त का मत है कि सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक और राणा हम्मीर के बीच कोई युद्ध नहीं हुआ। राजपूत ख्यातों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। राणा सांगा ने मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी को कैद किया था जिसका श्रेय राजपूतों ख्यातों ने हम्मीर को दे दिया है।

राजपूत ख्यातें हो सकता है कि पूर्णतया सत्य नहीं हो। वि.सं.1495 की महावीर प्रसाद की प्रशस्ति में हम्मीर द्वारा तुर्को को पराजित करने का वर्णन है। सम्भव है कि सोनगरा बणवीर के पराजित होने पर सुल्तान की और से उसे सहायता के लिए सेना भेजी हो और उसको पराजित कर भगाने में हम्मीर सफल रहा हो।

इस प्रकार महाराणा हम्मीर ने 1326-ई. के आस-पास चित्तौड़ को दिल्ली सल्तनत के अधिकार से स्वतंत्र करवा लिया। सिसोदिया राजवंश की नींव रखी। यह राजवंश किसी ना किसी रूप में सात शताब्दियों तक कायम रहा। जिसने देशी राज्यों के भारत में विलय होने तक अपना अस्तित्व बनाए रखा।

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी द्वारा समस्त उत्तरी भारत सहित सम्पूर्ण राजपूताना के लोगों में जो नैराश्य की भावना घर कर गयी थी। उसको हम्मीर ने चित्तौड़ को स्वतंत्र करवा कर दूर करने का प्रयास किया। उन्हें संघर्ष का पाठ पढ़ा कर असम्भव को सम्भव कर दिखाने के लिए अभिप्रेरित किया, फिर तो देखते ही देखते सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी और तुगलक सुल्तानों की महत्वाकांक्षाओं पर तुषारापात करते हुए दिल्ली सल्तनत के अवशेषों पर नये सिरे से नवीन राजपूत राज्यों का अभ्युदय होने लगा। दिल्ली सल्तनत की उस पराधीनता के नैराश्यपूर्ण वातावरण में भी महाराणा हम्मीर ने सुल्तानों के विरूद्ध युद्धरत रहने व पुन: अपने पैतृक राज्य पर अधिकार स्थापित कर जो उदाहरण उसने प्रस्तुत किया था। वह मेवाड़ के सिसोदिया नरेशों के लिए निश्चत ही एक महत्वपूर्ण सीख थी। अकबर के विरूद्ध पहाड़ियों और जंगलों में जीवन बसर करने वाले महाराणा प्रताप को उसके पूर्वज हम्मीर से ही प्रेरणा मिली होगी।

सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में दक्षिण भारत में मदुरा के मुस्लिम राज्य 1335 ई. और 1336 ई. में विजयनगर में हिन्दू राज्य की स्थापना हुई। लगभग इसी समय दिल्ली सल्तनत के सबसे निकट देश मेवाड़ को महाराणा हम्मीर ने स्वतंत्रता प्रदान करके इन दोनों से भी गम्भीर चुनौती दिल्ली सल्तनत को दी। सल्तनत की स्थापना से पूर्व समस्त उत्तरी भारत का नेतृत्व पहले अजमेर बाद में रणथम्भौर के चौहानों के हाथों में थी लेकिन अब हम्मीर द्वारा मेवाड़ को स्वतंत्रता दिलवाने के कारण राजपूताना का नहीं बल्कि समस्त उत्तरी भारत का नेतृत्व (1326-1528 ई.) मेवाड़ के सिसोदियों के हाथों में आ गया। भारत में मुगलों के आने के कुछ वर्षा के बाद भी इन्हीं के हाथों में रहा। यह ना केवल तुगलक वंश का बल्कि सम्पूर्ण दिल्ली सल्तनत के पतन का घोतक था।

4.1.4 जालौर का स्वतंत्र होना:-

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा 1311-12 ई. में जालौर पर आक्रमण के दौरान कान्हड़देव ने अपनी पराजय को निकट जानकर अपने वंश को बचाए रखने हेतु अपने भाई मालदेव सोनगरा को दुर्ग से किसी प्रकार बाहर निकाल दिया ।[606] दोनों के बीच भीषण युद्ध के बाद 12 अप्रैल, 1312 ई. में जालौर पर सुल्तान

अलाउद्दीन खिलजी का अधिकार हो गया। अमीर खुसरो के तुगलकनामा के अनुसार गयासुद्दीन तुगलक गद्दी पर बैठते सिंहासना के समय जालौर का प्रान्तपति अमीर होशंग था ।[607]

मालदेव सोनगरा:- वीर विनोद के अनुसार मालदेव जालौर में ही निवास करता था। उसके राजपूत सैनिक किले की रक्षार्थ चित्तौड़ में रहते थे। जिनकी भोजन की व्यवस्था भी जालौर से होती थी। राणा हम्मीर की मालदेव की बेटी से शादी जालौर में ही सम्पन हुई। इस अवसर पर हम्मीर ने अपनी रानी की सलाह से मालदेव के कामदार मौजीराम मेहता को माँग लिया। कर्नल जेम्स टॉड ने इसका नाम जाल मेहता बताया है और इसके पूर्वज चित्तौड़ में शीर्ष पदों पर आसीन रहे थे।[608] मौजीराम मेहता चित्तौड़ में रहने वाले सैनिकों के वेतन देने के लिए नियमित रूप से जाया करता था। एक रात्री को पूर्व योजना के अनुसार वह चित्तौड़ दुर्ग के द्वार तक गया। मालदेव के राजपूत सैनिकों ने इसे मालदेव का विश्वस्त समझकर फाटक खोल दिये। जिससे हम्मीर सेना सहित दुर्ग में प्रवेश कर गया और वहाँ के राजपूत सैनिकों को मार कर दुर्ग पर अधिकार कर लिया।[609]

मालदेव का जालौर में रहना व शादी का जालौर में होना। उपयुक्त वर्णन की सत्यता पर संदेह है क्योंकि सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने कान्हड़देव को मार कर जालौर पर 1312 ई. में अधिकार कर लिया था। वहाँ पर सुल्तान का हाकिम रहता था, फरिश्ता के अनुसार वहाँ का मुक्ता निजाम खाँ था। अमीर खुसरो के तुगलकनामा के अनुसार खिलजी वंश की समाप्ति पर वहाँ का मुक्ता अमीर होशंग था।[610]

मुहनौत नैणसी री ख्यात के अनुसार मालदेव के दुर्ग से निकल जाने के बाद वह दिल्ली सल्तनत के नये विजित मेवाड़ व जालौर के प्रदेशों में लूट-मार करके शाही सेना को परेशान करता रहता था। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की सेना उसका पीछा किया रहती थी। इतना करने के बाद भी मालदेव ने दिल्ली जाकर सुल्तान से मुलाकात की। सुल्तान को भी राजपूतों के विरोध का सामना करना पड़ रहा था क्योंकि राजपूत शाही सेना के अधिकारियों को दुर्ग से नीचे फेंक देते थे। इसलिए सुल्तान द्वारा दिल्ली से इतनी दूर स्थित चित्तौड़ दुर्ग पर अधिकार रखने में परेशानी हो रही थी इसलिय उसने चित्तौड़ दुर्ग को जालौर के सोनगरा चौहान मालदेव के अधीन रखना ही उचित समझा। सुल्तान ने मालदेव को चित्तौड़ का दुर्ग देकर अपना अधीनस्थ शासक बना लिया था और सुल्तान की मृत्यु तक मालदेव उसकी आज्ञा का पालन करता रहा। चित्तौड़ पर मालदेव सोनगरा का अधिकार होने पर सिसोदा के जागीरदार हम्मीर ने मालदेव के अधिकार वाले क्षेत्रों पर हमला करना शुरू कर दिया। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में उसके बीमार होने के कारण दिल्ली सल्तनत की स्थिति कमजोर हो गयी थी। जिस कारण अलग-अलग प्रदेशों में विद्रोहों होने लगे। मलिक काफूर के षडयंत्रों के

कारण मुस्लिम अधिकारी भी उसके विरूद्ध हो गये। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु के कारण दिल्ली सल्तनत की स्थिति और भी अधिक दयनीय हो गयी। इस स्थिति में मालदेव को दिल्ली सल्तनत से सहायता की कोई उम्मीद नहीं थी। इस स्थिति में मालदेव ने सिसोदा के जागीरदार हम्मीर से मिल-जुलकर रहने की इच्छा से अपनी बेटी की शादी व ख्यातों के अनुसार आठ प्रदेश-मगरा, सेरानला, गिरवा,गोडवाड, बराड़, श्यामपट्टी, मारवाडा, घाटे का चोखला आदि दहेज में देने का प्रस्ताव रखा। जिसे हम्मीर ने स्वीकार कर उसकी पुत्री से शादी कर ली।[611] किन्तु वीर विनोद के रचियता कविराजा श्यामलदास ने ख्यातों के इस वर्णन को विश्वसनीय नहीं मानते है, क्योंकि सेरानला व श्यामपट्टी के प्रदेश तो उस समय हम्मीर के अधीन ही थे। गोडवाड पर उस समय हम्मीर का अधिकार नहीं था। शिलालेखों के प्रमाणों के अनुसार 1312 ई. में जालौर के सोनगरा चौहानों के अधिकार में था।[612]

गौरीशंकर हिराचंद के अनुसार मालदेव सोनगरा को चित्तौड़ दुर्ग 1313 ई. से 1315 ई. के बीच किसी वर्ष मिला होगा और नैणसी के अनुसार सात वर्ष शासन करने के उपरांत मालदेव की मृत्यु चित्तौड़ में ही हुई। इस प्रकार स्पष्ट है मालदेव ने 1315-1322 ई. तक शासन किया और इसकी मृत्यु के समय दिल्ली सल्तनत पर गयासुद्दीन तुगलक का शासन था।[613] मालदेव व इसके पुत्रों ने दिल्ली सल्तनत के दो राजवंशों खिलजी वंश व तुगलक वंश के अधीनस्थ शासक के रूप में जालौर व चित्तौड़ पर शासन किया। गयासुद्दीन तुगलक के शासन काल का चित्तौड़ से एक फारसी अभिलेख मिला। जिसे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समय यह राज्य इसके अधीन थे।

जैसा या जयसिंह:-

नैणसी री ख्यात के अनुसार मालदेव के तीन पुत्र थे जैसा, कीर्तिपाल व बणवीर।[614] डॉ. गौरी शंकर हिराचंद का कहना है कि मालदेव की मृत्यु के बाद जैसा या जयसिंह सोनगरा चौहान जालौर व चित्तौड़ का दिल्ली सल्तनत के अधीनस्थ शासक बना। इसी से सिसोदा के हम्मीर ने छल या बल से चित्तौड़ का दुर्ग लिया।

बणवीर सोनगरा:-

वि.सं.1395/1338 ई. के करेडा के शिलालेख में वर्णन है कि चित्रकूट के महाराजधिराज पृथ्वीचन्द्र श्री मालदेव के पुत्र और उसके सिलाहदार मुहम्मद देव के नाम का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि मालदेव की मृत्यु के बाद उसका सबसे छोटा पुत्र बणवीर शासक बना। इस अभिलेख में उसके सिलाहदार मुहम्मद देव का नाम उत्कीर्ण है

जिससे ज्ञात होता है कि दिल्ली सल्तनत के सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक का अधीनस्थ शासक बणवीर था। बणवीर का एक अन्य शिलालेख गोडवाड से वि.सं.1394/1337 ई.से भी बणवीर के शासन की पुष्टि होती है।[615]

सोनगरा बणवीर के शासन काल में ही राणा हम्मीर ने चित्तौड़ के दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया था। इसलिए इसने दिल्ली सल्तनत की सहायता से चित्तौड़ लेने का असफल प्रयास किया था। चित्तौड़ के हाथ से निकल जाने के बाद बणवीर ने अपना ध्यान अपने पैतृक राज्य जालौर पर लगाया। मुहम्मद बिन तुगलक की महत्वाकांक्षी योजनाओं की असफलता व अदूरदर्शी नीति के कारण उसके साम्राज्य में चारों और विद्रोहों की लहर चल रही थी। वह एक विद्रोह को शांत करने जाता तो दूसरी जगह विद्रोह हो जाता। सम्भवत इन्हीं परिस्थितियों में बणवीर ने जालौर पर अपना अधिकार स्थापित कर पुन: अपने सोनगरा चौहान राजवंश की स्थापना की। इसके शासन काल का अंतिम शिलालेख 3 अप्रैल,1394/ 1338 ई.का गोडवाड से मिला है। बणवीर की मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र रणधीर जालौर का शासक हुआ जो 1387 ई. तक निरन्तर जालौर पर शासन करता रहा। रणधीर के उपरांत राजधर जालौर का शासक बना।[616]

4.1.5 रावल घडसी के नेतृत्व में जैसलमेर की स्वतंत्रता

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने 1308 ई. में जैसलमेर के भाटियों पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया था। जैसे जालौर के शासक कान्हड़देव ने अपने वंश को जीवत रखने के लिए मालदेव को दुर्ग से बाहर भेज दिया था उसी तरह राजस्थान की ख्यातों के अनुसार जैसलमेर के शासक रावल रतनसिंह ने भी अपने वंश की रक्षा हेतु अपने पुत्र घडसी, ऊनड, कानड और चौथा उसका भांजा देवड़ा चारों को जैसलमेर से बाहर भेज दिया। एक अन्य मान्यता के अनुसार रावल रतनसिंह के भाई मूलराज ने शाही सेना के सेनानायक कमालुद्दीन गुर्ग को अपने वंश को बचाने के लिए घडसी को उसके सूपुर्द कर दिया। क्योंकि मूलराज व कमालुद्दीन गुर्ग दोनों धर्म भाई बन गये थे। कमालुद्दीन गुर्ग इन चारों सहित दिल्ली गया। जहाँ सुल्तान के भय से वह इन चारों को चार घोड़े देकर नागौर की तरफ भेज दिया, बाद में सुल्तान ने इनका पता लगाने के लिए इनके पीछे सैनिक भेजे। नागौर पहुँचने पर वहाँ के हाकिम ने इन्हें पहचान लिया। वह इनको लेकर सुल्तान के पास दिल्ली के लिए रवाना हुआ, किन्तु घडसी ने उसे मार दिया। वहाँ से वह मेहबा आये। जान पहचान होने पर वहाँ के राठौड़ शासक मालदेव ने अपनी पुत्र जगमाल की पुत्री कमला का विवाह घडसी के साथ कर दिया। पाँच छह महीने यहाँ रहने के बाद

मालदेव से आज्ञा लेकर अपने राज्य को पुन: प्राप्त करने व अपनी शक्ति का संचयन करने के लिय वह सुल्तान की सेवा में दिल्ली चला गया। वहाँ बारह साल शाही सेना में नौकरी करने के उपरांत भी उसे कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई।[617] घडसी द्वारा जैसलमेर की पुन: प्राप्ति के लिए उसने क्या प्रयास किये और किस प्रकार उसका जैसलमेर पर अधिकार हुआ। इसका उल्लेख मुहनौत नैणसी की ख्यात, जैसलमेर की ख्यात, तवारीख जैसलमेर में जैसलमेर री ख्यात से कुछ मिलता जुलता वर्णन मिलता है, हरिदत्त गिविन्द व्यास ने जैसलमेर के इतिहास आदि इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते है कि वीर घड़सी ने अपने बाहुबल से अपने पैतृक राज्य जैसलमेर पर अधिकार स्थापित कर वि.सं.1373 में महारावल की पदवी धारण की। महारावल ने जैसलमेर को पुन: नये सिरे से आबाद करने के लिए प्रयत्न किये। उनके राज्य पर पुन: अधिकार करने के कारण सर्व साधारण व सभी सामंत संतुष्ट थे, किन्तु जसोड़ के वंशज जिन्होंने कुछ समय के लिए जैसलमेर पर अधिकार कर लिया था। महारावल घड़सी जी से द्वेष रखते थे। महारावल की पदवी से विभूषित होने के बाद घड़सी ने अपना दूसरा विवाह मल्लीनाथ जी की पुत्री के साथ किया। जसोड़ों का दमन करने के लिए अपने ससुराल खेड़ से मल्लीनाथ जी के पुत्र कुंपा व जगमाल बुलाकर कोटडा व बाड़मेर की जागीर दी। विशेषकर उनके रहने के लिए जैसलमेर में दो हवेलियों का निर्माण करवाया। महारावल घड़सी ने अपने राज्य की स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए दहिया व पाहू राजपूतों पर आक्रमण कर अपने राज्य की सीमा में विस्तार किया। स्थानीय स्रोतों के अनुसार उनके राज्य की सीमा दक्षिण में बाड़मेर, कोटडा उत्तर में महोबा, पश्चिम में पारकर व बालाना पूर्व में बीठनोक तक थी।[618] महारावल घड़सी जी ने जैसलमेर के पूर्वी दरवाजे के समीप अपने नाम से घड़सी सर का निर्माण करवा रहे थे। इसी समय आसकरण जसोड़ द्वारा उन पर आक्रमण कर उनकी हत्या कर दी। राव मल्लिनाथ की पुत्री व उपपत्नियाँ उनके साथ सती हुई। लेकिन प्रमुख महारानी विमलादेवी ने इस समय सती होना उचित नहीं समझा क्योंकि महारावल घड़सी की अकस्मात मृत्यु के कारण उनका कोई उत्तराधिकारी उस समय वहाँ उपस्थित नहीं था। इसलिए उसने सर्वसम्मति से मूलराज के पौत्र व देवराज के पुत्र को मण्डोर से महारावल पद के लिए निमन्त्रण भेजा। देवराज का विवाह मण्डोर के राजा राणा रुपदे की पुत्री से साथ हुआ था। इससे केहर का जन्म हुआ था। अलाउद्दीन के जैसलमेर पर आक्रमण के समय केहर को अपनी माँ के साथ मण्डोर भेज दिया था। विमलादेवी ने महारावल घड़सी की छ:माही पर सती होने से पूर्व केहर से यह प्रतिज्ञा ली थी कि उसके उपरांत हम्मीर के पुत्रों को जैसलमेर का राज्य प्राप्त हो, क्योंकि उसने अलाउद्दीन के आक्रमण के समय उसने

अत्यधिक पराक्रम व वीरता का प्रदर्शन किया था। हम्मीर के दो पुत्र थे, जैतसी व लूणकरण और प्रतिज्ञा के अनुसार केहर ने अपने बड़े भाई हम्मीर के पुत्र जैतसी को घोषित किया था।[619]

नैणसी री ख्यात, जैसलमेर की ख्यात को पूर्णता सत्य स्वीकार नहीं किया जा सकता है। अपने वंश की रक्षार्थ घड़सी को घेरे के समय अवश्य बाहर भेज दिया होगा। लेकिन जिन प्रभुसूरी के वर्णन से यह जानकारी मिलती है कि वि.सं.1390/1333 ई. तक जैसलमेर पर दिल्ली सल्तनत के अधीन था। मुहम्मद बिन तुगलक के अराजकतापूर्ण शासन से लाभ उठाकर मेवाड़ के सिसोदिया व जालौर के चौहानों ने अपने राज्यों को स्वतंत्र करा लिया था। नि:संदेह भाटियों ने भी इनसें कुछ सिखा होगा। वि.सं.1473 के पाश्र्वनाथ के अभिलेख में वर्णन है कि घड़सी ने मलेच्छों से संघर्ष कर दुर्ग पर अधिकार किया था। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि घड़सी उचित अवसर देखकर जैसलमेर की शाही सेना से युद्ध करके अपने पैतृक राज्य पर अधिकार कर लिया। राजपूताना में मेवाड़, जालौर की तरह ही जैसलमेर में भी स्वतंत्र हिन्दू राज्य की स्थापना हो गयी। [620]

महारावल घड़सी जी की हत्या वि.सं.1418 भट्ट्रीका संवत 738/1361 ई. में हुई थी। उनके स्मारक पर उत्कीर्ण लेख के अनुसार सवंत विक्रमे 1418 भाटिके 738 मार्गसिर मवदी। बुधवारे महाराज श्री घडसिंह देवलोक गत । महाराज श्री केसरी विजय राज्ये नोहटी प्रतिष्ठापिंत। शुभ भवत।[621] महारावल घड़सी जी द्वारा जैसलमेर पर अधिकार करने तिथि 1333 ई. से 1361ई. के बीच किसी समय स्वीकार की जा सकती है। बहुत कुछ सम्भवना है कि जिस समय हम्मीर ने चित्तौड़ और बणवीर ने जालौर पर अपनी सत्ता स्थापित की, उस समय महारावल घड़सी जी ने भी जैसलमेर पर अपना अधिकार कर लिया हो। महारावल घड़सी द्वारा पुन:स्थापित भाटी राजवंश ने दिल्ली सल्तनत के पतन तक अपनी स्वतंत्रता का रसपान करता रहा।

4.1.6 **देवीसिंह द्वारा बूंदी राज्य की स्थापना:-**

बूंदी राज्य राजपूताना के उत्तरी-पूर्वी भाग में 24.59” उत्तरी अक्षांश से 26.0” उत्तरी अक्षांश से व 72.18” पूर्वी देशान्तर 76.21”से पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इस राज्य की उत्तरी सीमा में टोंक व जयपुर और पूर्वी भाग में उदयपुर राज्य, चम्बल नदी के तट पर स्थित कोटा राज्य है। इसकी दक्षिण सीमा पर चम्बल नदी व कोटा राज्य व पश्चिमी सीमा पर उदयपुर राज्य है। राजपूताना के जो प्रदेश हाड़ौती के नाम से प्रसिद्ध है। उन प्रदेशों में दो राज्य स्थापित है। इनमें से एक का नाम बूंदी और दूसरे का नाम कोटा है। कोटा, बूंदी पूर्व में एक राज्य में सम्मिलित थे। बाद में ये दो भागों में विभाजित हो गये। चम्बल नदी को इन दोनों राज्यों की सीमा मान लिया

गया। हाड़ावंशीय राजपूत इन प्रदेशों के स्वामी रहे है। उन्हीं के नाम के अनुसार इस प्रदेश का नाम हाड़ौती हुआ।[622] राव देवीसिंह ने मीणाओं को किस प्रकार पराजित कर बूंदी का राज्य प्राप्त किया। इस इस विषय में नैणसी की ख्यात, वंश भास्कर, डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा, कविराज श्यामलदास, कर्नल जेम्स टॉड, जगदीशसिंह गहलोत आदि से कई प्रकार का विवरण प्राप्त होता है। बूंदी नगर और उसके आसपास के प्रदेश पर बूंदा मीणा का अधिकार था। राव देवा के समकालीन इसका पौत्र जैसा था जो एक ब्राहाण की कन्या से विवाह करना चाहता था। इस पर उसने देवीसिंह से सहायता माँगी और देवीसिंह ने बूंदी राज्य को प्राप्त करने की एक योजना बनायी। जब मीणा बारात लेकर आये तो उसने पहले से मंडप के नीचे बारूद की एक परत बिछा दी। वहाँ आने पर उनको खूब शराब पिलाकर बारूद में आग लगा दी। जिससे सभी मीणा मारे गये। इसके उपरांत राव देवीसिंह ने बूंदी पर अधिकार कर लिया।[623] नैणसी री ख्यात के अनुसार बांगा/बंगदेव का पुत्र देवा/देवीसिंह हाड़ा भेंसरोडगढ़ में रहता था। देवीसिंह ने अपनी बेटी का विवाह चित्तौड़ के राणा लक्ष्मण सिंह के पुत्र अरसी/अरिसिंह के साथ किया। इसकी सहायता से बूंदी राज्य की स्थापना का उल्लेख किया है।[624]

नैणसी ने राणा अरिसिंह को चित्तौड़ का शासक बताया है जो भूलवश हो सकता है। क्योंकि अरिसिंह तो युवा अवस्था में ही मारा गया था। वह कभी सिसोदा व चित्तौड़ का शासक नहीं हुआ। यह घटना राणा हम्मीर के समय की हो सकती है क्योंकि बूंदी शासक देवीसिंह राणा हम्मीर के समकालीन था। डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा ने भाटो की ख्यात वंश भास्कर आदि के आधार पर देवीसिंह द्वारा मीणाओं वि.सं.1298 से बूंदी लेना बताया है जो सही नहीं है। कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार हाड़ा शासक देवीसिंह ने वि. सं. 1398/ 1341 ई. में मीणाओं को पराजित कर बूंदी पर अधिकार किया था।[625] मुहनौत नैणसी ने यह भी वर्णन किया है कि हाड़ा बंगदेव के पुत्र देवीसिंह के द्वितीय पुत्र जीतमल के बेटी जेसमादे हाडी राव जोधा की मुख्य रानी थी और इसी का पुत्र राव सुजा था किन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार प्रमुख रानी जेसमादे हाड़ा जेतमाल के पुत्र देवीदास की पुत्री थी। जिससे उसके सांतल, सुंजा व नींवा तीन पुत्रों का जन्म हुआ।[626] यह हो सकता है कि नैणसी ने पोती को बेटी लिख दिया हो। सुंजा का जन्म 1439 ई. में हुआ अत: यह सम्भव नहीं है कि हाड़ा देवीसिंह के द्वारा वि.सं 1298/1241 ई. में बूंदी पर अधिकार स्थापित हो गया।

वंश भास्कर के अनुसार राजा कोल्हन केदारनाथ के आर्शीवाद से बंबावाद आया। अपने पौत्र विजयपाल को बंबवाद का राज्य देकर गौ रक्षार्थ लाखेरी गाँव के युद्ध में सुल्तान नासुरुद्दीन के सेनापति मुस्तफा अली को युद्ध में मारकर एक हजार वीरों सहित हाड़ा राजा कोल्हन भी वीरगति को प्राप्त हुआ। इस विजयपाल का विवाह

भटनेर के सांखला परमार राजा मंडन की पुत्री रंभावती के साथ हुआ। इसी रानी से विजयपाल को बंगदेव सहित पाँच पुत्रों की प्राप्ति हुई। विजयपाल की मृत्यु पर रानी रंभावती सती हुई। इसके उपरांत बंगदेव, बंबवाद नगर के राजा बनें। बंगदेव ने कुल छह विवाह किये। इन छह पत्नियों से हाड़ा राजा बंगदेव के तेरह पुत्र हुए। पटरानी से देवसिंह व कर्मन, दूसरी राणी से सिंहन व नयनसिंह, तीसरी राणी से अर्डक व बर्डक, चौथी राणी से पत्थू, हिंगलू व खड्गहस्त और पाँचवी रानी से मोहन इन तेरह पुत्रों में से केवल चार के बारे में ही जानकारी मिलती है। हाड़ा शासक बंगदेव ने देवीसिंह के विवाह के पूर्व में चित्तौड़ गढ़, पानगढ़, मंदसौर, भानपुरा आदि के राजाओं को पराजित करके पुर, मांडल, साहडा, हिंगलाजगढ़, खैरोली, केथोली, भेंसरोड़गढ़ सहित छोटे छोटे चौबीस दुर्ग पर अधिकार स्थापित कर लिया था।[627]

इस समय बूंदी मात्र तीन सौ घरों की आबादी वाली एक बस्ती थी। गोल्हा द्वारा निर्मित बावड़ी को आज भी गोल्हाबाव और दूसरी बावड़ी बनाकर एक ढोली को दी जिसे दुमडाबाव कहा जाता है। उसारा जाति के गोल्हा के बाद उसके पुत्र जैता मीणा का बूंदी पर अधिकार था। जैता मीणा ने बाणगंगा के प्रवाह को रोककर एक तालाब का निर्माण करवाया था, जिसे बाद में हाड़ा राजा सुर्जन की माता ने बनवाया था जिसे आज भी जैतसागर के नाम से जाना जाता है। जैता मीणा इस समय बूंदी सहित बारह गाँवों की आजीविका पाकर राजाओं की तरह व्यवहार करने लग गया था। इसका प्रधान जसराज गोलवान चौहान था, जिसके दो सुन्दर बेटियाँ थी। इनके साथ जैता अपने पुत्रों का विवाह कर राजपूतों के स्तर पर आना चाहता था। जसराज ने यह बात बंबावाद जाकर सामोर चारण हरसुर से कहीं और उसने देवसिंह के कान में डाली। उसने यह सुनते ही जसराज को बुलाकर व सारी बातें जानकर बूंदी पर अधिकार करने का संकल्प लिया। योजना के अनुसार गागरोनगढ़ शासक नीमदेव के पुत्र गंगदेव के पुत्र का भय समाप्त करके देवीसिंह ने मीणाओं का विश्वास जीत कर तथा जसराज से उनके रीति रिवाजों को त्याग कर क्षत्रियों के होना के शपथ पत्र कपट से लिखवाया।। खींची गंगदेव के सुझाव पर बूंदी के पास उमरथूणा विवाह के लिए उपयुक्त स्थल चुना गया है। जब मीणाओं ने राजकुमार देवसिंह का प्रस्ताव स्वीकार किया। देवसिंह जसराज की दोनों पुत्रियों को लेकर उमरथूणा गाँव आया। देल्हा नामक ब्राहम्ण से लग्न निकलवा कर देवीसिंह ने उस नये बने हुए बाड़े में जिसमें मीणाओं को ठहराना नियत हुआ था बारूद की एक नयी परत बिछवाई फिर सारे संबंधियों सहित मीणाओं को बुलाकर उन्हें खूब शराब पिलाकर मदहोश कर दिया। इसके उपरांत बारूद में आग लगाकर सभी को मार दिया। वि.सं.1298 को पूर्व नियोजित गोलवाल जसराज की दोनों बेटियाँ का विवाह टोडा के चालुक्यराज के दोनों पुत्रों के साथ संपन्न हुआ। इस तरह हाड़ा देवीसिंह ने बूंदी पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।[628]

नाड़ौल की चौहान शाखा का संस्थापक वाक्पति का पुत्र लक्ष्मणराज था। नाड़ौल में चौहानों ने 960-1205 ई. तक शासन किया। जब दिल्ली सल्तनत की स्थापना के समय तुर्कों ने नाड़ौल पर आक्रमण किया। नाड़ौल के चौहानों की एक शाखा ने भीनमाल की ओर प्रस्थान किया।[629] वहाँ पर अपना राज्य स्थापित किया। कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार माणिक्यराव भीनमाल की चौहान शाखा का प्रसिद्ध राजा हुआ। इसने भेंसरोड़गढ़ तक अपने राज्य का विस्तार किया। इसके उपरांत बम्बवाद को अपने अधिकार में लेकर उसे अपनी राजधानी बनाया। डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा के अनुसार चित्तौड़ के किले से पूर्व में चालीस मील दूर बेगूं से कुछ ही दूर एक प्राचीन स्थल है जहाँ पूर्व में चौहानों का शासन था फिर वहाँ हाड़ावंशी शासकों का आधिपत्य स्थापित हुआ।[630] जो पूर्व इसके उत्तराधिकारियों में सभारण, जैतराव, अनगराव, कुतसिंह और विजयपाल प्रमुख थे। विजयपालदेव के बाद उसका पुत्र हरराय या हाड़ाराव बम्बावदा का शासक बना और यहीं से बम्बावदा के चौहान हाड़ा कहलाने लगे।[631] कर्नल जेम्स टॉड ने हाड़ा वंश के राजाकवि गोविन्दराम के अनुसरण पर विसलदेव के पुत्र अर्जुनराज से हाड़ावंश की उत्पत्ति होना स्वीकार किया है। अनुजराज की सीमा पर असिका या असि था। अजुनराज पुत्र अस्थिपाल गोलकुंडा के चौहान शासक रणधीर के यहाँ जाकर रहने लगता है। उसी समय कजली वन के बर्बरों ने असि व गोलकुंडा पर आक्रमण कर दिया। इसमें रणधीर अपने पुत्रों सहित मारा गया लेकिन उसकी पुत्री किसी तरह बचकर असि की तरफ आ गयी। इसके बाद इन बर्बरों ने असि पर भी आक्रमण किया। अनुजराज यहाँ से भाग निकला। अस्थिपाल ने इनका सामना करने का निश्चय किया। बर्बरों को यह से भागने पर मजबूर कर दिया। किन्तु इसमें वह बुरी तरह घायल हो गया। चौहानों की कुलदेवी देवी आशापूर्ण के आर्शीवाद से वह बच गया। अस्थिपाल ने 1025 ई. में असीर अधिकार कर लिया। जब हिजरी 714/1022 ई.में सुल्तान महमूद मुल्तान के रास्ते अजमेर पर आक्रमण किया तो अस्थिपाल के पिता अनुजराज की मृत्यु उपरांत असी-राज्य उसके हाथ से निकल गया था।[632]

सुल्तान महमूद द्वारा दक्षिण भारत (गोलकुंडा) पर आक्रमण व कलजीवन कहा स्थित था, इसका का उल्लेख किसी भी समकालीन विद्वानों की रचनाओं में नहीं मिलता है। अश्तिपाल के बाद उसका पुत्र चन्द्रकर्ण पौत्र लोकपाल था और इसके दो पुत्र हमीर व गभीर हुए। ये दोनों सम्राट पृथ्वीराज की अधीनता में प्रसिद्ध राजा थे। जब कन्नौज के राजा जयचंद की पुत्री अनंगमंजरी (संयोगिता) का अपहरण पृथ्वीराज द्वारा किया गया। इस पर दोनों के बीच युद्ध हुआ। उसमें हमीर व गमीर मारे गये थे। हमीर के कालकर्ण नामक पुत्र था। इसका पुत्र महामुग्ध के वरबाचा व बरबाचा का पुत्र रामचंद्र असीरगढ़ का राजा बना था।

इसके समय में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने असीरगढ़ के प्रसिद्ध व मजबूत दुर्ग को विध्वंस कर दिया था। इस युद्ध में रामचंद्र असीरगढ़ दुर्ग की रक्षार्थ अपने पूरे परिवार सहित मारा गया, किन्तु उसका ढ़ाई वर्ष का पुत्र रैनसी जिसे वंश भास्कर में रतनसिंह[633] कहा गया है। किसी तरह बच गया। यह चित्तौड़ के राणा का भांजा था इसलिए उसे चित्तौड़ भेज दिया गया। पूर्व में भेंसरोड़गढ़ मेवाड़ के अधिकार में था किन्तु अलाउद्दीन खिलजी चित्तौड़ विजय के उपरांत उसकी शक्ति कमजोर हो गयी थी। उचित अवसर पर दूंगा ने उस पर अधिकार कर लिया था। बड़ा होने पर रैनसी ने सेना सहित भेंसरोड़गढ़ पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। सरदार दूँगा वहाँ से भाग गया। रैनसी के कौलन व रणफर नामक दो पुत्र हुए। किसी असाध्य रोग से पीड़ित होने के कारण कौलन ने केदारनाथ की यात्रा की। वापस लौटे समय उसने बूंदी में बाणगंगा में स्नान करने के कारण वह ठीक हो गया। कौलन के पुत्र ने मैनाल पर अधिकार कर उसके पश्चिम में एक पर्वत पर बंबावाद दुर्ग का निर्माण करवाया। इसके पूर्व में भेंसरोड़गढ़ पश्चिम में मैनाल इससे हाड़ा राजा राज्य का विस्तार हुआ। बांगा द्वारा इसके उपरांत मांडलगढ़, बिजौलिया, बेगूं, रतनगढ़, चौराइतगढ़ आदि पर अधिकार होने के कारण हाड़ा राजा शक्तिशाली हो गये। राव बांगा के बारह पुत्र हुए। इन सभी ने उनकी उन्नति में सहयोग दिया। राव बांगा के बाद उसका पुत्र राव देवा राजा बना। इसके तीन पुत्र हरराज, हथसी व समरसी हुए।[634]

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ आक्रमण से पूर्व बूंदी राज्य का प्रदेश मेवाड़ के अधीन था। गुहिलों की शक्ति निर्बल पड़ जाने के कारण वहाँ के स्थानीय निवासी मीर या मीणाओं की शक्ति में वृद्धि हुए। कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार रावदेवा ने बंबावदा का राज्य अपने पुत्र हरराज को सुपूर्द कर वह बूंदी में बाणगंगा में उस स्थान पर आया। जहाँ पर उसका पूर्वज कौलन रोगमुक्त हुआ था। यहाँ पर जैता मीणा व उसारा जाति के लोगों का शासन था। यह पूर्व में मेवाड़ के अधीन में थे, लेकिन चित्तौड़ पतन के बाद राजगढ़ के खींची रावगंगा ने इस पर अधिकार स्थापित कर लिया। राव गंगा के भय से मीणा व उसारा जाति के लोगों ने उसका कर देना स्वीकार कर लिया। वह उसके अत्याचारों से काफी परेशान थे। जब रावदेवा यहाँ आया तो उसने इन लोगों की समस्याओं को जाना। रावदेवा ने मीणा व उसारा जाति के लोगों से वादा किया। अब आपको किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है। इन दोनों जाति के लोगों ने रावदेवा की प्रतिज्ञा सुनकर उस पर विश्वास कर लिया। राव गांगा के अत्याचारों से मुक्ति हेतु उसकी प्रतीक्षा करने लगे। कुछ दिनों उपरांत दोनों के बीच युद्ध हुआ। जिसमें राव देवा की विजय हुए और परिणामस्वरूप चम्बल नदी को दोनों राज्यों के बीच की सीमा मान लिया गया। मीणा व उसारा जाति के राजा जैता 1342 ई. में राव देवा को अपना स्वामी स्वीकार किया। रावदेवा ने बूंदानाल में मध्य में बूंदी नामक नगर की स्थापना की। यह नगर बाद में हाड़ा राजाओं की राजधानी के रूप में

प्रसिद्ध हुआ। उस समय बूंदी राज्य की सीमा चम्बल नदी तय हुई थी लेकिन बाद में दिल्ली सल्तनत के शासन काल में हाड़ा राजाओं ने मालवा तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया।यह सम्पूर्ण प्रदेश हाड़ौती या हाड़ावती के नाम प्रसिद्ध हुआ।[635]

अशोक कुमार सिंह ने अपनी रचना सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध में लिखा है कि दिल्ली सल्तनत के गुलाम सुल्तानों के शासन काल में बूंदी पर आक्रमण करने के लिय दो बार योजनाएँ बनाई गयी। पर दोनों ही योजना असफल रही। बूंदी पर उस समय किसके अधीन था यह स्पष्ट नहीं है।[636] कर्नल जेम्स टॉड ने सिकंदर लोदी और राव देवीसिंह के मध्य सम्बंध को स्वीकार करता किया और बूंदी राज्य स्थापना का उल्लेख किया है। हरिदत्त गिविन्द व्यास ने जैसलमेर के इतिहास में इसी तरह के सम्बन्धों उल्लेख किया है।[637]

बूंदी के हाड़ा शासक अपने राज्य को अधिक समय तक सुरक्षित नहीं रख पाए क्योंकि गुजरात व मालवा में स्वतंत्र मुस्लिम सल्तनतों की स्थापना हो चुकीं थी। जिसके कारण बूंदी राज्य एक ओर मेवाड़ व गुजरात से दूसरी और मेवाड़ व मालवा के मध्य घिर गया था। ऐतिहासिक स्रोतों से जानकारी मिलती है कि हम्मीर के उत्तराधिकारी महाराणा क्षेत्रसिंह ने मालवा के दिलावर खाँ गौरी को पराजित कर मालवा व मेवाड़ के संघर्ष की शुरुआत कर थी। जिसके कारण बूंदी राज्य पर नियन्त्रण करना आवश्यक हो गया था[638] बूंदी के हाड़ा शासकों पर आक्रमण कर मांडलगढ़ पर अधिकार कर लिया। हाड़ौती को अपना अधीनस्थ राज्य बना लिया था।[639]

4.1.7 दिल्ली सल्तनत व करौली

कंवरपाल व मोहम्मद गौरी:- करौली राज्य राजपूताना के पूर्वी भाग में स्थित है। करौली शब्द भगवान कल्याण जी के नाम पर कल्याणपुरी बाद में इसका अपभ्रंश करौली प्रचलित हो गया। इसके उत्तर में भरतपुर पश्चिम व उत्तर-पश्चिम में जयपुर दक्षिण में ग्वालियर व चम्बल नदी और पूर्व में धौलपुर का राज्य स्थित है। करौली का राजवंश यादव वंशी राजपूतों में से है। यह राजवंश यदुवंशी भगवान श्रीकृष्ण के वंशज माने जाने वाले राजपूतों की मुख्य शाखा में गिना जाता है। करौली वंश का मूल पुरुष महाराज विजयपाल मथुरा के यादव राजवंश से सम्बन्धित था। इसने मथुरा के पास स्थित मानी पहाड़ी पर 1040 ई. में विजय मंदिर नाम से एक किले का निर्माण करवाया। यह बाद में बयाना के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसकी मृत्यु के उपरांत इसका जेष्ट पुत्र तवनपाल शासक बना। इसने 1158 ई. के लगभग बयाना से पन्द्रह मील दूर एक पहाड़ी पर अपने नाम पर तवनगढ़ का

किला बनवाया। इसके समय में गजनी के सेनापति अबुब्रक बुखारी ने बयाना पर आक्रमण कर दिया। जिसे इसके पुत्र धर्मपाल ने असफल कर दिया था। इससे खुश होकर तवनपाल ने 1160 ई में राज्य अपने जेष्ट पुत्र धर्मपाल को सौंप दिया। इसके बाद इसका पुत्र कंवरपाल शासक बना। इसके समय की महत्वपूर्ण घटना 1196 में मोहम्मद गौरी ने अपने सेनानायक कुतुबुद्दीन ऐबक के साथ बयाना पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। इसके बाद गौरी ने तवनगढ़ किले पर भी अधिकार कर लिया। कंवरपाल के राज्य पर मोहम्मद गौरी का अधिकार हो जाने बाद वह अपने मामा के राज्य रीवा में जाकर रहने लगा।[640]

अर्जुनपाल द्वारा 1348 ई. में करौली की स्थापना:-

इसके बाद क्रमशः सोहनपाल, तिलोकपाल, गोकुलदेव शासक बने। 1327 ई. में गोकुलदेव का उत्तराधिकारी उसका पुत्र अर्जुनपाल बना। यह अपना पैतृक राज्य वापस प्राप्त करने के लिए चम्बल नदी के तट पर स्थित मंडरायल के नींदर गाँव में जाकर रहने लगा। इस समय मंडरायल मुस्लिम शासक मिंया मक्खन के अधिकार में था। इसके मनमानी शासन से लोग काफी परेशान थे, क्योंकि ये जमीदारों की भूमि को हड़प लेता था। महाराज अर्जुनपाल ने उचित अवसर देखकर मिंया मक्खन को मार कर मंडरायल के किले पर अधिकार कर लिया। अर्जुनपाल द्वारा मथुरा में चौबीस गाँव बसा गये। तवनपाल के समय के सभी प्रदेशों पर पुन: अधिकार कर लिया गया। अर्जुनपाल ने वि.सं.1405/1348 ई.में करौली नगर की स्थापना कर उसे राजधानी बनाया। कहा जाता है कि जिस स्थान पर करौली बसी हुई है। वहाँ एक दिन अर्जुनपाल ने एक भेड़ को सिंह का मुकाबला करते हुए देखा था। इसलिए इस स्थान को वीरोचित समझकर उस सिंह को मार कर यहीं पर अपनी राजधानी बनाने का फैसला किया। यह बने हुए दरवाजे को आज भी सिंह पीर के नाम से जाना जाता है। करौली में भेड़ को पूज्य पशु माना जाता है इसलिये उसकी हत्या वर्जित है। अर्जुनपाल ने पास में स्थित पहाड़ी पर अपनी कुलदेवी अंजली व भगवान कल्याण जी के मंदिर का निर्माण करवाया । इन्हें के नाम पर इस शहर का नाम कल्याणपुरी कुछ समय पश्चात उसका अपभ्रंश में करौली हो गया ।[641]

अपने आंतरिक संघर्ष के कारण करौली के यदुवंशी शासक उस समय की उत्तर भारत सहित राजपूताना की राजनीति में कोई विशेष भूमिका का निर्वाह नहीं कर सके। परन्तु यह दिल्ली सल्तनत के तुगलक व सैयद राजवंश के पतन तक अपनी स्वतत्रंता का उपभोग करते रहे। कुछ समय बाद ही 1454 ई. में मालवा के सुल्तान महमूद खलजी ने चन्दसेन या चंदपाल के समय में करौली पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। करौली में अपने पुत्र फिदवी खाँ को नियुक्त कर मालवा लौट गया। अपने राज्य से वंचित होने बाद चंदपाल अपने पुत्र व

पौत्रों के साथ ऊँटगढ़ में रहने लगा। अंत में गोपालदास ने अकबर के समय अपने पैतृक राज्य के कुछ प्रदेशों को पुन: प्राप्त कर सका।[642]

4.1.8 डुंगरपुर राज्य की स्थापना व दिल्ली सल्तनत:-

डूंगरपुर राज्य का प्राचीन नाम 'वागड' है जो गुजराती भाषा के शब्द 'वगडा' का समानार्थी है, जिसका अभिप्राय जंगल या कम आबादी वाला क्षेत्र होता है। इस प्राचीन वागड प्रदेश में नवीन राज्य डूंगरपुर व बाँसवाड़ा व छप्पन का भू-भाग सम्मिलित है। इसकी प्राचीन राजधानी बड़ौदा व डूंगरपुर राज्य की स्थापना के उपरांत डूंगरपुर नगर इसकी नवीन राजधानी बना। इस भू-भाग के पूर्व में बाँसवाड़ा पश्चिम में ईडर व दक्षिण में कडाणा व सौथ स्थित है। कुछ समय बाद यह प्रदेश दो भागों पश्चिमी भाग में डूंगरपुर राज्य व पूर्वी भाग में बाँसवाड़ा राज्य में विभाजित हो गया।[643]

सभी इतिहासकार यह स्वीकार करते है कि डूंगरपुर राज्य के संस्थापक मेवाड़ की गुहिल वंश की जेष्ट शाखा से और उदयपुर की कनिष्ठ शाखा है। मेवाड़ के गुहिल वंशी शासक क्षेमसिंह के दो पुत्र सामंतसिंह व कुमारसिंह थे। क्षेमसिंह की मृत्यु के बाद जेष्ट पुत्र सामंतसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा के अनुसार सामंतसिंह का गुजरात के शासक कुमारपाल के उत्तराधिकारी अजयपाल से युद्ध हुआ। चित्तौड़ का प्रदेश कुछ वर्ष पूर्व गुजरात के शासकों का अधिकार में चला गया था। इसलिए सामंतसिंह अपने पैतृक प्रदेशों पर पुन: अधिकार करना चाहता था। इस युद्ध में गुजरात का शासक अजयपाल बुरी तरह घायल हो गया। सामंतसिंह ने 1174 ई. के लगभग अपने पैतृक प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। गुजरात के शासक कीतू या कीर्तिपाल ने अजयपाल की हार का बदला लेने के लिए मेवाड़ पर आक्रमण कर सामंतसिंह से मेवाड़ का राज्य छीन लिया। इस कारण सामंतसिंह ने वि.सं. 1212/1175 ई. के लगभग वागड प्रदेश में जाकर नये राज्य की स्थापना की। डूंगरपुर राज्य के बेणेश्वर मंदिर के शिलालेख से भी स्पष्ट होता है कि 1179 ई. में सामंतसिंह वागड प्रदेश का शासक था।[644]

पृथ्वीराजरासो में उल्लेख मिलता है कि प्रसिद्ध शासक पृथ्वीराज तृतीय की बहिन पृथाबाई का विवाह मेवाड़ के रावल समरसिंह के साथ हुआ। वह पृथ्वीराज के साथ मोहम्मद गौरी से युद्ध करता हुआ मारा गया।[645] सामंतसिंह के समय मिले उसके आठ शिलालेखों से स्पष्ट होता है कि वह पृथ्वीराज की मृत्यु के एक सौ नों वर्ष बाद भी जीवित था। ऐसी स्थिति में उसका विवाह पृथाबाई के साथ होना सम्भव नहीं है।

मेवाड़ के रावल सामंतसिंह, चौहान शासक पृथ्वीराज द्वितीय, (1167-69) ई. सोमेश्वर (1169-76) ई. पृथ्वीराज तृतीय (1176-92) ई. के समकालीन था। डॉ. ओझा के अनुसार डूंगरपुर की बडवे की ख्यातों में वर्णन मिलता है कि सामंतसिंह का विवाह सांभर व अजमेर के चौहानों के यहाँ हुआ था। यदि समझे कि सामंतसिंह से वागड़ का राज्य छीन जाने के बाद वह पृथ्वीराज तृतीय के पास गया होगा। पृथ्वीराज रासो में पृथाबाई के विवाह की जो जानकारी मिलती है, यदि उसे सत्य माना जाये तो यह विवाह रावल सामंतसिंह के साथ हुआ होगा। वह पृथ्वीराज तृतीय के साथ तराईन के युद्ध में मारा गया होगा।[646]

1196 ई. के डूंगरपुर राज्य के देवड़ा गाँव के शिलालेख से स्पष्ट होता है कि वागड पर भीमदेव का शासन था इसके बाद 1220 ई. पूर्व किसी वर्ष सामंतसिंह का उत्तराधिकारी जयतसिंह या उसके पुत्र सीहड़देव ने डूंगरपुर राज्य पर अधिकार कर लिया था। इसके उपरांत विजयसिंहदेव, जयसिंहदेव, देवपालदेव, व वीरसिंह[647] राजा बने।

ख्यातों में वीरसिंह द्वारा वि.सं. 1315, 1335, 1361 और कहीं 1415 को डूंगरिया भील को मारकर डूंगरपुर नगर की स्थापना और फिर उसको अपने राजधानी बनाने वर्णन मिलता है, लेकिन गौरीशंकर हिराचंद ओझा का मानना है कि डूंगरपुर राज्य की स्थापना वि.सं. 1415 हुए हो यह सम्भव है। लेकिन डूंगरपुर राज्य की स्थापना वीरसिंह द्वारा न की जाकर डूंगरसिंह द्वारा की हो। डूंगरसिंह द्वारा वि.सं.1415/1358 ई. में डूंगरपुर राज्य की स्थापना कर बागड़ प्रदेश की राजधानी बड़ौदा की जगह डूंगरपुर की हो। दिल्ली सल्तनत की समाप्ति तक डूंगरपुर वागड प्रदेश की राजधानी रही। इस समय के अन्तराल में डूंगरपुर के शासक दिल्ली सल्तनत, मालवा सल्तनत, और गुजरात के मुस्लिम शासकों का सफल प्रतिरोध करते रहे। दिल्ली सल्तनत के पतन के बाद वागड प्रदेश डूंगरपुर व बाँसवाड़ा के दो राज्यों में विभाजित हो गया।[648]

4.1.9 सिरोही राज्य की स्थापना व दिल्ली सल्तनत:-

सिरोही राज्य राजपूताना के दक्षिण पश्चिम में भाग में स्थित है। अरावली पर्वत की सिरणवा नामक पहाड़ी के नीचे बसा होने के कारण इसे सिरोही के नाम से जाना जाता है। सिरोही शब्द की उत्पत्ति सिरणवा से मानी जाति है। यह 24^0 20’ से 25^0 17’ उत्तरी अक्षांश और 72^0 16’ से 73^0 10’ पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। देवड़ा चौहानों से पूर्व यहाँ पर मौर्य, क्षत्रप, हुण, वैस, चावड़ा, गुहिलोत, परिहार, सोंलकी, परमारों आदि का शासन रहा था।[649]

सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक इल्तुतमिश व अलाउद्दीन खिलजी व आबू व सिरोही:-

सोनगरा चौहान समरसिंह के दो पुत्र मानसिंह व उदयसिंह हुई। उदयसिंह समरसिंह का उत्तराधिकरी बना। यह एक पराक्रमी व प्रसिद्ध शासक था। हसन निजामी की ताजुल-ए-नासिर के अनुसार1210 ई में दिल्ली के सुल्तान इल्तुतुमिश ने जालौर पर आक्रमण किया। सुल्तान को 100 ऊँट व 20 घोड़े लेकर वापस लौटना पड़ा था।[650] इसी के बड़े भाई मानसिंह को सिरोही राज्य आदि पुरुष माना जाता है। इसने आबू के निकट के कुछ प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था। इसका नाम शिलालेखों में मानवसिंह व महणसिंह भी मिलता है। इसका पुत्र प्रतापसिंह व इसका पुत्र विजड हुआ। वि.सं.1333/1277 ई.का सिरोही के टोकरा गाँव के शिलालेख के अनुसार विजड ने परमारों पर आक्रमण कर आबू के पश्चिम की ओर के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था। विजड व इसकी पत्नी नामल्देवी के चार पुत्र हुए। इनमे से इसका सबसे छोटा पुत्र लुंभा उत्तराधिकारी बना।[651]

महाराव लुंभा ने परमारों के राज्य पर आक्रमण कर उनसे आबू व चन्द्रावर्ती के प्रदेश छीनकर नवीन चौहान राज्य की नींव रखी। जिसे सिरोही कहते है। महाराव लुंभा के राज्यकाल के तीन शिलालेख आबू से प्राप्त हुए है। वि.सं.1372/ 1316 ई. व वि. सं.1373/ 1317 ई. के शिलालेख दिलवाडा के जैन मंदिर से और तीसरा शिलालेख अचलेश्वर मंदिर वि.सं. 1377/1321 ई. इसमें उल्लेख है कि महाराव ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया था। अपनी व अपनी राणी की मुर्तिया अचलेश्वर मंदिर में स्थापित करवायी थी। इसके दो पुत्रों तेजसिंह व तिहुणाक के नाम दिलवाडा के जैन मंदिर अभिलेख में मिलते है। इसकी मृत्यु 1320-21ई. के आसपास हुई थी इसके उपरांत महाराव लुंभा का उत्तराधिकारी तेजसिंह हुआ। महाराव तेजसिंह1320-1336 ई. के बाद उसका पुत्र कान्हड़देव इनके पीछे सामंतसिंह, महाराव सलखा, महाराव रणमल, महाराव शिवभाण आबू के सिंहासन पर बैठे। वहाँ का राजा बना। महाराव शिवभाण ने सिरणवा पहाड़ी के नीचे 1405 ई. में एक किला बनवाया। यह शहर शिवपुरी के नाम से जाना जाता है और लोग इसे पुरानी सिरोही भी कहते है।[652]

महाराव शिवभाण के बाद उनका पुत्र सहस्रमल्ल या सैंसमल आबू के सिंहासन पर विराजमान हुए। सहस्रमल ने वि.सं. 1482/1425 ई.को अपने पिता की स्मृति में सिरोही नगर की स्थापना की। चंद्रावर्ती से राजधानी को सिरोही नगर में स्थानान्तर किया।[653] डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा के अनुसार चंद्रावर्ती जैसे प्राचीन व प्रसिद्ध नगर की जगह सिरोही नगर को नई राजधानी बनाने का कारण यह था कि दिल्ली के सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक ने प्रथम बार चंद्रावर्ती आक्रमण कर उसको नष्ट भष्ट कर दिया था। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी[654] के आक्रमणों

से भी चन्द्रवर्ती को नगर काफी हानि हुई थी। गुजरात के सुल्तान अहमदशाह ने भी चंद्रावर्ती के बहुत से मंदिरों को विध्वंस कर यहाँ के संगमरमर को अहमदाबाद ले गया। इसलिए नई राजधानी बसाना आवश्यक थी।[655]

4.2 फिरोजशाह तुगलक (1351-1388 ई.) व राजपूताना:-

1351 ई. सुल्तान मोहम्मद बिन तुगलक की मृत्यु के बाद उसका कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण उलेमा वर्ग ने उसके चचेरे भाई फिरोजशाह को दिल्ली के सिंहासन पर बैठाया गया। जहाँ मुहम्मद तुगलक के शासन काल में बड़े बड़े राज्य अपनी स्वंत्रता प्राप्ति के लिए प्रयासरत थे। वहीं फिरोजशाह तुगलक के दुर्लब राज्यकाल में छोटे छोटे सामंत व जागीरदारों ने भी लाभ उठाया। यह वह समय था। जब राजपूताना के मेवाड़ के सिसोदिया ने अपने को शक्ति को बढ़ाकर आने वाले समय में दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों के समकक्ष हो गये।

4.2.1 फिरोजशाह तुगलक़ का कालरून या गागरोन के शासक राव पीपा या वप्पा पर आक्रमण:-

नैणसी की ख्यात के अनुसार पृथ्वीराज की रानी सुन्हणदेवी उनसे नाराज होकर जायल अपने पिता के पास चली गयी। उसके पास गुंदलराय नामक खींची आता जाता था। जब यह पृथ्वीराज को मालूम हुआ। गुंदलराय को जायल से निकाल दिया। गुंदलराय खींची यहाँ से मालवा की ओर चला गया। गुंदलराय खींची ने यहाँ आकर डोडियाल राजपूतों से मऊ मेदनी गागरोंन सारंगपुर गुंगोर खाताखेड़ रामगढ़ वार बडौद आदि बारह दुर्ग उनसे छीन लिये। कहा जाता है कि गीदा या गुंदलराय बहुत बहादुर राजपूत था। इसका पुत्र महंगराव और उसके दो पुत्र वरसिंहराय व वेलमंजु थे। वेलमंजु के दो पुत्रियों गंगाबाई व जमना बाई व पुत्र देवनसिंह हुआ। इनमें गंगाबाई की शादी धूलरगढ़ के शासक विजलदेव से हुई। वि.सं. 1251 ई. में देवनसिंह का उसके बहनोई धुलरगढ़ के राजा विजलदेव व उसके कामदार गंगदास बडगुर्जर के बीच किसी बात को लेकर कहासुनी हो गयी। जिससे देवलसिंह ने धुलरगढ़ पर आक्रमण कर दिया। इसमें विजलदेव व उसका कामदार दोनों मारे गये। इसके बाद गंगाबाई सती हुई। तब से धुलरगढ़ का नाम गागरुन हुआ। देवनसिंह ने अपने बहनोई व बहन के शोक में दोनों राज्यों का त्याग कर दिया। लेकिन ब्राम्हणों के कहने पर गागरुन पर शासन करने लगा। उसने बारह वर्ष तक गागरोन पर शासन किया। चौहान कुल कल्पद्रुम में वर्णन है कि वि.सं.1262/1205 ई. में देवनसिंह ने दिल्ली के सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक की अधीनता स्वीकार कर ली थी। वि.सं. 1266/1209 ई. में उसे सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक से एक हजारी की पदवी व सन्द मिली थी। इसके पश्चात गागरून की गद्दी पर राव जीतराव

(1270-1300 ई.), राव कल्याण (1300-1335 ई.) राव कड़वाराव (1335-1360 ई.) तक गगारुन पर शासन किया।[656]

चौहान कुल कल्पद्रुम के अनुसार कडवाराव या करोधराव के चार पुत्र पीपाराव उर्फ़ प्रतापराव, अजयसिंह और मलयसिंह हुए। इनमे से इनका बड़ा पुत्र पीपाराव या वप्पा राव गागरुन की गद्दी पर बैठा।[657] तारीखे मुहम्मदी में इटावा विद्रोह के कुछ समय बाद सुल्तान फिरोजशाह द्वारा मलिक जादा फिरोज व मलिक सरवात को बारह सवार व असख्य पदाति सैनिल के सहित मालवा प्रदेश के पास स्थित कालरुन (गागरोन) पर आक्रमण का आदेश दिया। मलिक जादा फिरोज व मलिक सरदवातदार ने शाही सेना सहित गागरोन या कालरुण पहुँचकर वहाँ के दुर्ग को घेर लिया। समीपवर्ती प्रदेश में लूट-पात करके उन्हें नष्ट-भष्ट कर दिया। लेकिन शाही सेना दुर्ग पर अधिकार नहीं कर पायी। राजपूताना के दक्षिण में मालवा की सीमा पर स्थित कालीसिंध नदी से तीन और से घिरा गागरोन का दुर्ग मध्यकालीन भारत में अतिप्रसिद्ध दुर्गो में गिना जाता है। अत: शाही सेना दुर्ग की सुदढ़ता के वहाँ के चौहानों के खींची शाखा के प्रतिरोध के दुर्ग फतह नहीं कर पाये। इस कारण मालिकों ने समझौताकर व खराज निश्चित करके वापस राजधानी लौट गये।[658]

तारीखे-ए-मुहम्मदी में गागरोन के शासक का नाम का उल्लेख नहीं है। इस आक्रमण के समय सम्भवत: गागरोन पर राव पीपा या वप्पा 1360-1385 ई. का का शासन था।[659] मलिक जादा फिरोज व मलिक सरदवातदार द्वारा प्रसन्नतापूर्वक खराज लेकर वापस लौटने का वर्णन है, लेकिन समझौता करने के कारण उनके द्वारा वहाँ कुछ भेंट लेकर वापस लौटने का आभास होता है। गागरोन के खींची चौहानों के सफल प्रतिरोध करने के कारण शाही सेना वापस लौटने पर विवश हुई। यहाँ के खींची चौहान1424 ई. तक यह अपनी स्वतंत्रता को उपभोग करते रहे। मालवा में मुस्लिम सत्ता की स्थापना से होने से गागरोन मेवाड़ व मालवा के लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया।

4.2.2 मेवात के कोका चौहान व वजीर खानेजहाँ का विद्रोह

वजीर खानेजहाँ सुल्तान फिरोजशाह की वृद्धावस्था का लाभ उठाकर इतना महत्वाकांक्षी बन गया था। उसने राज्य के सभी महत्वपूर्ण कार्य अपने अधिकार में ले लिये थे। सुल्तान फिरोजशाह के अमीर व मलिक पूर्ण रूप से उसके नियन्त्रण में थे। वह अपना विरोध करने वाले को बंदी बनाकर उसकी हत्या तक कर देता था। स्थिति यह तक पहुँच गयी थी कि सुल्तान भी जो वह कहता था वहीं करता था। इसलिए राजकार्य बहुत मन्दगति से होने

लगे। वजीर शाही परिवार के सदस्यों के विरूद्ध षडयंत्र करने लगा। सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने अपने पुत्र मोहम्मद खाँ को वजीर खानेजहाँ जहाँ का दमन करने का निर्देश दिया। जुलाई 1387 ई. को मोहम्मद खाँ के नेतृत्व में शाही सैनिकों ने वजीर को उसके घर में घेर लिया। पहले तो उसने मोहम्मद खाँ का सामना करना चाहा परन्तु स्वयं को उसके मुकाबले कमजोर समझकर अपने पुत्रों व सहयोगियों सहित वहाँ से निकलकर मेवात की ओर निकल गया। महारी में पहुँच पंहुच कर उसने कोका चौहान के यहाँ शरण ली। कोका चौहान के लिए यह समय संकटपूर्ण था[660]

सितम्बर 1387 में शहजादा मुहम्मद सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के राज्यकाल में ही दिल्ली सल्तनत की गद्दी पर बैठा। उसने अपने समर्थकों को पद व उपाधियाँ दी। मलिक याकूब आखुरबेग को सिकन्दर खाँ की उपाधि प्रदान कर गुजरात की अक्ता पर नियुक्त किया और उसे सैनिकों के सहित वजीर खानेजहाँ का दमन करने के लिए कोका चौहान के यहाँ भेजा। कोका चौहान को सिंकदर खाँ के आने की सूचना प्राप्त हुई तो उसने वजीर खानेजहाँ को उनके सूपुर्द कर दिया और सिकन्दर खाँ ने उसे मार दिया।[661]

4.3 उत्तरवर्ती तुगलक सुल्तान (1388 -1414 ई.) व राजपूताना

1351-1388 ई. तक शासन करने के करने के उपरांत फिरोजशाह तुगलक की मृत्यु हि.790/20 सितम्बर 1388 में हुई। उसके बाद उसके वंशजों में गद्दी प्राप्त करने के लिए लगभग एक दशक तक संघर्ष चलता रहा, वह उत्तरवर्ती मुग़ल शासकों का स्मरण करा देते है। उत्तरवर्ती मुगल शासकों की भाँति उत्तरवर्ती तुगलक वंश के उत्तराधिकार संघर्ष में भी महत्वाकांशी एवं स्वंत्रता के लालयित राजपूताना के राज्यों ने भी बहती गंगा में हाथ धोने का प्रयास किया।

4.4 मण्डोर (मारवाड़) में राठौड़ राज्य उत्कर्ष

तेरहवीं शताब्दी में उत्तरी भारत में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी व मोहम्मद तुगलक की साम्राज्य विस्तार की नीति के कारण राजपूतों ने मैदानी भागों को छोड़कर मरुस्थली, अरावली प्रदेशों में चले गये थे। इनमें राठौड़ भी थे। इन्होंने राजपूताना के मरुस्थली प्रदेश को अपना केन्द्र चुना। राजस्थान के स्थानीय स्रोतों में राठौड़ शासकों का कहीं जगह दिल्ली सुल्तानों के साथ संघर्ष का वर्णन मिलता है। परन्तु इन स्रोतों को विश्वसनीय नहीं माना गया है। इतना आवश्यक कह सकते है कि यह राजपूताने के मरुस्थली प्रदेश में आकर निवास करने लग

गये थे। जहाँ से इन राठौड़ों के कुछ शिलालेख प्राप्त होते है।[662] उत्तर भारत में ग्वालियर में स्वतंत्र तोमर राज्य व जोनपुर में नये मुस्लिम राज्य की स्थापना के साथ ही राजपूताना के मण्डोर में चूड़ा के नेतृत्व में राठौड़ों ने अपने राज्य का सुदृढ़ किया।

मुहनौत नैणसी के अनुसार वीरमदेव का उत्तराधिकारी चूड़ा हुआ। जब वह मल्लिनाथ की सेवा में गुजरात की सीमा पर इंदा पडिहार के साथ चौकसी कर रहा था। तब वहाँ से घोड़े का एक सौदागर गुजर रहा था। चूड़ा ने उससे घोड़े छीनकर अपने राजपूत साथियों को दे दिया। इस पर सौदागर ने दिल्ली जाकर सुल्तान से सहायता की गुहार की। सुल्तान ने अपने कुछ सैनिक उसकी सहायतार्थ रवाना किये। जब सुल्तान के सैनिक माला के पास जाकर उससे घोड़ों की माँग की तो माला ने चूड़ा से घोड़े लौटने को कहा। तब चूड़ा ने उत्तर दिया कि उसने सब घोड़े अपने राजपूत साथियों में बाँट दिये। मेरे पास सिर्फ एक घोड़ा है इसे ले लो। असहाय माला ने सब घोड़ों का मूल्य देना स्वीकार किया। उसने चूड़ा को अपने राज्य से निकाल दिया। चूड़ा ने कुछ समय बाद डीडवाना गाँव पर अधिकार कर लिया। इसके पहले ही तुर्कों ने मण्डोर पर अधिकार कर लिया था। इस समय मण्डोर पर तुर्क अधिकारी ऐबक का अधिकार था। वह वहाँ के राजपूत पडिहारों से बेगार में घास की गाडियाँ मंगवाता था। जब इसका आदेश इंदा पडिहार को भी दिया गया तो उसने चूड़ा के साथ मिलकर मण्डोर पर अधिकार करने की योजना बनायी। एक दिन प्रत्येक घास की गाड़ी के साथ छह राजपूत थे चार अंदर छिपे थे। एक पीछे रक्षा के लिए और एक हाँकने वाला था। इस प्रकार यह घास की गाड़ियाँ मण्डोर दुर्ग के लिए रवाना हुई। जब ये सभी गाड़िया दुर्ग के बाहर पंहुची तो तुर्क द्वारपाल ने यह देखने के लिए कि कहीं इसमें कुछ भेद तो नहीं है। यह जानने के लिए उसने अपने भाला को घास में मारा। जिस कारण भाला एक राजपूत की जाघ पर लगा। उसने भेद नहीं खुलने के कारण उस में लगे रक्त को कपड़े से साफ कर दिया। सभी गाडियों को दुर्ग के अंदर जाने दिया गया। राजपूतों ने अंदर पहुँच कर दुर्ग के द्वार बंद कर दिये। मुसलमानों को मारकर मण्डोर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। मण्डोर की भूमि से तुर्कों को खदेड कर बाहर कर लिया। जब राव चूड़ा को इसकी सूचना मिली तो उसने मण्डोर आकर चूड़ा की प्रशंसा की। चूड़ा का अभिषेक कर उसे मण्डोर की गद्दी पर बिठाया गया और तब से वह राव कहलाने लगा।[663]

जोधपुर की ख्यात के अनुसार ईदा रायधवल व ऊदा ने अपने अपने सगे-सम्बन्धियों से परामर्श कर मण्डोर का दुर्ग सिलाड़ी माला के भतीजे व वीरम के पुत्र चूड़ा को देना का निश्चय किया। ईदा राय धवल ने अपनी पुत्री का विवाह चूड़ा के साथ कर मण्डोर को उसे दहेज में दे दिया। इसी सम्बंध में यह कहावत प्रचलित है कि- इन्दोरा

पाड़, कमधज कदे न विसरे। चुन्ड़ो चंवरी चांड, दियो मंडोवर दयाजे।[664] दयालदास री ख्यात में वर्णन है कि राव चूड़ा का जन्म वि.सं.1401/1344 ई. में हुआ। वि.सं.1462/1406 ई. में चूड़ा ने मण्डोर दुर्ग पर अधिकार कर लिया। वि.सं.1465/1408 को उसने नागौर जीत लिया। वि.सं.1471 को राणगदे भाटी को पराजित कर मार दिया। वि.सं.1475/1418 ई. केलण व मुल्तान के नवाब से करता हुआ युद्ध में वीरगति प्राप्त हुआ।[665] कवि श्यामलदास ने सिंध के मुस्लिमों को भाटियों के साथ युद्ध में काम आना लिखा है।

इस समय दिल्ली सल्तनत में तुगलक राजवंश का शासन था परन्तु उनकी शक्ति के क्षीण हो जाने के कारण राव चूड़ा के लिए यह उचित अवसर था, कि वह अपने समीप के मुस्लिम प्रदेशों पर अधिकार कर ले। जब इसका पता गुजरात के सूबेदार जफर खाँ को लगा तो उसने हि.798/1396 ई. को मण्डोर पहुँच कर दुर्ग को घेर लिया। एक साल कुछ दिनों तक दुर्ग को घेरे रहने के बाद भी उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसलिए वह मुस्लिम प्रदेशों पर आक्रमण न करने वचन लेकर अजमेर में मुईनुद्दीन चिश्ती के दर्शन कर वापस लौट गया।[666]

राव चूड़ा व सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद:-

एक और मारवाड़ क्षेत्र में राव चूड़ा का प्रभाव बढ़ रहा था। दूसरी ओर दिल्ली सल्तनत पर नासिरुद्दीन महमूद के राज्यकाल में हि.801/1398 ई. में तैमूर के आक्रमण के कारण सल्तनत की शक्ति क्षीण हो गयी थी। इससे उत्साहित होकर रावचूड़ा ने हि.802/1399 ई.में मुहनौत नैणसी री ख्यात के अनुसार इस समय नागौर खोखर के अधिकार में था। राजपूतों से परामर्श कर चूड़ा ने नागौर पर आक्रमण किया। खोखर को मार कर उस पर अधिकार कर लिया। अपने पुत्र सत्ता को मण्डोर का राज्य सूपुर्द कर स्वयं नागौर का शासक बन गया।[667] विश्वेश्वेरनाथ रेऊ ने भी वर्णन किया है कि इसमें इनके चाचा मल्लिनाथ ने सहयोग दिया था। इसके उपरांत चूड़ा ने नागौर के उत्तरी भाग पर अधिकार कर वहाँ पर चूड़ासेर नामक गाँव की स्थापना की। वहाँ के हकीमों की हत्याकर डीडवाना सांभर व अजमेर पर अधिकार कर लिया।[668]

डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा इस पर विश्वास नहीं करते है कि चूड़ा ने नागौर पर अधिकार कर लिया। नागौर से सुल्तान मुहम्मद तुगलक के समय का एक शिलालेख है। जिससे स्पष्ट होता है कि उसके समय में नागौर पर उसका शासन था। कालान्तर में जब दिल्ली सल्तनत की शक्ति कमजोर हुई तो जफर खाँ ने 1396 ई. में गुजरात में स्वतंत्र सत्ता की स्थापना की। उसने जलाल खाँ खोखर के स्थान पर अपने भाई शम्स खाँ को नागौर पर नियुक्त किया और इसके बाद इसका पुत्र फिरोज नागौर का मुक्ता नियुक्त हुआ। जिसे महाराणा मोकल ने

पराजित किया था।[669] मिराते-सिकन्दरी में भी क्रमश: जलाल खाँ खोखर, शम्स खाँ, व फिरोज का नागौर के शासक के रूप में उल्लेख हुआ है। इस प्रकार चूड़ा के समय तक नागौर पर मुस्लिम सत्ता का शासन रहा। रणमल को चूड़ा द्वारा निर्वासित किये जाने के बाद महाराणा लाखा की सेवा में चला गया। बाद में उसके पुत्र मोकल ने नागौर को जीत कर रणमल को दिया।[670] राठोड़ों द्वारा मण्डोर पर आधिपत्य के साथ ही मारवाड़ में एक नये युग की शुरुआत हुई। जोधा द्वारा वि.सं.1515/1459 ई. में जोधपुर राज्य की संस्थापना तक मण्डोर ही राठौड़ राज्य की शक्ति का केन्द्र बना रहा। दिल्ली सल्तनत के अवशेषों पर नये राज्यों की स्थापना हो रही थी। ये राज्य एक और अपनी सुरक्षार्थ सल्तनत से युद्ध कर रहे थे वहीं दूसरी और इनमे आपसी संघर्ष की भी पुन: शुरुआत हो चुकी थी।

4.5 बतनीर (भटनेर) दुर्ग पर तैमूर का आक्रमण

भटनेर का दुर्ग राजस्थान के हनुमानगढ़ जिले में स्थित है।[671] डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा ने अपने बीकानेर के इतिहास में लिखा है कि बीकानेर से चौहानों के शिलालेख बाहरवीं शताब्दी से प्राप्त होते है। प्रसिद्ध चौहान शासक विग्रराजराज चतुर्थ ने वि.सं. तेरहवीं शताब्दी में दिल्ली, हांसी, हिसार आदि प्रदेशों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह प्रदेश चौहान साम्राज्य के अंतर्गत सम्मिलित था। 1386 ई. से भटनेर (हनुमानगढ़) से चौहान शासक अजयराज का एक ताँबे का सिक्का डॉ.गौरीशंकर हिराचंद को प्राप्त हुआ जिसमें इसकी रानी सोमलदेवी का नाम लिखा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि चौहानों के सिक्के यह प्रचलित थे और यह क्षेत्र उनके अधिकार में था।[672] 1004 ई. में भाटी शासक बाजीराव के राज्यकाल में महमूद गजनवी ने भटनेर के दुर्ग पर आक्रमण किया था और चार दिन के संघर्ष के बाद उसने दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

शरफुद्दीन अली यजदी अपनी रचना जफरनामा में उल्लेख किया है कि तैमूर युद्ध के लिए हि.800/ मार्च 1397 ई. को हिंदुस्तान के लिये रवाना हुआ। हि. 801/ सितम्बर 1398 ई. को सिंध नदी पर कर मुल्तान से 33 कोस पूर्ण में तलमी किले से कर व अजान की की व्यवस्था कर अमीरशाह मसिक व तिमुर तवाची को आदेश दिया कि वह सेना लेकर दीपालपुर के मार्ग से दिल्ली जावें व दिल्ली के निकट समाना गाँव में उससे मिले। तैमूर इस स्थल से दस हजार सवार सहित दिन रात की यात्रा करके 2 नवम्बर, 1398 ई. को अजोधन पहुँचा। इससे पूर्व ही यह के अधिकांश लोग अपनी रक्षार्थ भटनेर के किले में शरण के लिए चले गये थे। लेखक के अनुसार भटनेर का किला उस समय महत्वपूर्ण व सुदृढ़ था। इसके चारों और पंचास कोस तक रेगिस्तानी प्रदेश विस्तृत था और

सौ कोस तक पीने का पानी नहीं भी मिलता था। वहाँ के लोग एक बहुत बड़ी झील से पानी प्राप्त करते थे। इससे पूर्व किसी बाहरी सेना व स्थानीय बादशाह ने इस पर आक्रमण नहीं किया था। इसलिये दीपालपुर व अजोधन के बहुत से निवासी तैमूर के डर से यह जमा हो गये थे। साहेब किरान या तैमूर मंगलवार 3 नवम्बर, 1398 ई. को अजोधन स्थित शेख शंकरगज की मज़ार के दर्शन कर बतनीर (भटनेर) दुर्ग विजय का संकल्प लेकर अजोधन से दस कोस पूर्व कोतली किले में दोपहर की नमाज के बाद शेष दिन और रात तक यात्रा कर वह अजोधन पहुँचा। अजोधन के जो लोग शाही सेना व अपने अभाग्य के कारण भाग गये थे उनमें मे से कुछ लोगों को मृत्यु दण्ड और कुछ को बंदी बना लिया गया। अजोधन की धन सम्पति का विनाश कर दिया[673]

साहेब किरान (तैमूर) सेना सहित प्रात:काल 7 नवम्बर, 1398 को बतनीर (भटनेर) पहुँचा। जब उसकी सेना वहाँ पहुंची तो चारों और हाकाकर मच गया। नगर के बाहर भारी तबाही मचाई गयी। भटनेर के दुर्ग पर इस समय राव दुलचीन (दुलचन्द) का शासन था। उसके पास बहुत बड़ी सेना व सहायक थे। इस प्रदेश के समस्त अधिकार उसके पास थे। वहाँ आने जाने वालों से वह कर वसूल करता था इस कारण व्यापारी व कारवाँ उससे सुरक्षित नहीं थे। अत: अपनी शक्ति व अभियान के कारण उसने साहेब किरान की अधीनता स्वीकार नहीं की। इसलिए दायीं ओर से अमीर सुलेमान शाह, अमीर शेख नुरुद्दीन व अल्लाह दाद ने व बायीं ओर से अमीर जादा खलील सुल्तान शेख व मोहम्मद तिमुर ने बिना समय व्यर्थ किये नगर पर आक्रमण कर दिया और पहले ही आक्रमण में नगर की दीवारों पर अधिकार कर लिया। बड़ी संख्या में हिन्दू की हत्या कर दी और उनके हाथ बहुत सी धन सम्पति लगी। तिमान व कुशुन (शाही सेना के दल)[674] के अमीर दुर्ग के निकट पहुँच गये। दुर्ग को घेर कर अपनी वीरता का प्रदर्शन करने लगे।

बतनीर का शासक राव दुलचीन दुर्ग के द्वार पर अपने वीरों सहित युद्ध के लिए को तैयार खड़ा था। दोनों की सेना के वीर सिंहनाद करके बड़े उत्साह से आक्रमण करने लगे। राव दुलचीन (दुलचन्द) अपने पराजय की सम्भवना को देखते हुए सैयद नामक दूत को बादशाह के पास क्षमा करने के लिए भेजा। कहा कि कल वह आपके दरबार में उपस्थित हो जायेगा। तैमूर ने उसे क्षमा करके युद्ध रोकने का आदेश दे दिया। जब राव दुलचीन उसके दरबार में उपस्थित नहीं हुआ तो उसने दुर्ग पर पहुँच कर खाई खोदने का आदेश दिया। राव के वीर भी दुर्ग के ऊपर से वाणों की बौछार कर रहे थे। विजय की कोई आशा न देखकर राव दुलचीन ने अपने पुत्र को अपना प्रतिनिधि बनाकर बहुमूल्य उपहार व अरबी घोड़ों सहित बादशाह के दरबार में भेजा। बादशाह ने उसके पुत्र को क्षमाकर खिलअत व सुनहरी तलवार प्रदान की। शुक्रवार 9 नवंम्बर, 1389 ई. को राव दुलचीन दुर्ग से

बाहर निकाला और बादशाह को तीन तकुज सोने के जीन सहित उपहार में भेंट किये। इस समय उसके साथ अजोधन का शेख सादुद्दीन अजोधनी भी था। तैमूर उन लोगों से बहुत रुष्ट था जो दीपालपुर व अजोधन से भाग कर भटनेर के दुर्ग व नगर में शरण ली थी। उन्हें दंडित करने के लिए आदेश दिया गया।[675]

जब यह समाचार राव दुलचंद के भाई कमालुद्दीन और उसके पुत्र को मिले तो उन्होंने 11 नवम्बर 1398 ई. को पुन: दुर्ग के दरवाजे बंद कर दियें। तैमूर ने शाही सेना को खोई खोदने एवं दुर्ग पर विजय प्राप्त करने के आदेश दिया। तैमूर की सेना की सेना के भय से राव के भाई व पुत्र ने पुन: अपनी हार स्वीकार कर आत्मसमर्पण कर दिया। 12 नवंम्बर को तैमूर ने अमीर शेख नुरुद्दीन व अल्लाहदाद को दुर्ग में अमानी की सम्पति को लेने के लिए भेजा। दुर्ग में स्थित लोग उन्हें आसानी सम्पति देना स्वीकार नहीं किया और उनका विरोध करने लगे। तैमूर को जब इसकी सूचना मिली तो उसने उनके विनाश की आज्ञा। परिणामस्वरूप शाही सेना ने रस्सी की सीढीयों की सहायता से दुर्ग पर चढना शुरू कर दिया। दुर्ग के निवासियों ने अपने को असुरक्षित देखकर अपने बच्चों व महिलाओं को बंद कर आग लगा दी। स्वयं अंतिम समय तक आक्रान्ताओं से वीरतापूर्वक लड़ते रहे। मुलफुजात-ए-तोमुरी व जफरनामा दोनों में हिन्दुओं के वीरतापूर्वक संघर्ष का वर्णन मिलता है। इस युद्ध में दस हजार हिन्दू मारे गये और तैमूर को दुर्ग से धन-सम्पति अनाज आदि प्राप्त हुआ। छह दिन के युद्ध के उपरांत साहेब किरान (तैमूर) का दुर्ग पर आधिपत्य स्थापित हो गया।[676]

4.6 उत्तरवर्ती तुगलक़ शासक व मेवाड़ के सिसोदियों का उत्कर्ष:-

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी से पूर्व से औरंगजेब के समय तक मेवाड़ के शासक अपने वंश के गौरव या अपने राज्य की रक्षा या राज्य विस्तार के लिए मुस्लिम आक्रमणकारियों से या बादशाहों से संघर्षरत रहे। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने 1303 ई. में रावल रत्नसिंह से युद्ध करके चित्तौड़ पर विजय प्राप्त की और वहाँ का दुर्ग अपने पुत्र खिज्र खाँ को दिया। चित्तौड़ का दुर्ग लगभग आठ वर्ष तक खिज्र खाँ के अधीन रहा। उसके उपरांत यह दुर्ग जालौर के सोनगरा चौहान मालदेव को दे दिया गया। मालदेव ने चित्तौड़ पर सात वर्ष तक शासन किया और उसकी मृत्यु वहीं पर हुई। उसके बाद मेवाड़ के गुहिल वंश की छोटी शाखा के सिसोदा के हम्मीर ने छल या बल से चित्तौड़ का दुर्ग लेकर राणा शाखा वाले गुहिल वंशीय या सिसोदियों के राज्य की पुन: स्थापना की। हम्मीर का दिल्ली सल्तनत के सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक से युद्ध हुआ। महाराणा हम्मीर ने दिल्ली सल्तनत की अव्यवस्था का लाभ उठाकर सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में 1326 ई में चित्तौड़ पर अपना

आधिपत्य स्थापित कर लिया। चित्तौड़ के निकटवर्ती भू-भागों पर पर अधिकार कर अपने राज्य की सीमाओं को विस्तृत भी किया।[677]

हम्मीर के बाद चित्तौड़ की गद्दी पर उसका पुत्र क्षेत्रसिंह बैठा। डॉ. गौरीशंकर हिराचंद के अनुसार क्षेत्रसिंह का राज्यकाल 1364 से 1382 ई. तक था।[678] ओझा निबंध संग्रह[679] में उल्लेख है कि दिल्ली के सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने अमीशाह (दिलावर खाँ लोदी) को मालवा का अधिकारी नियुक्त किया था। यह मेवाड़ के महाराणा क्षेत्रसिंह का समकालीन था। श्रंगी ऋषि शिलालेख, कुंभलगढ़ प्रशस्ति, एकलिंग मंदिर प्रशस्ति आदि शिलालेखों से ज्ञात होता है कि महाराणा क्षेत्रसिंह ने मालवा के शासक अमीशाह को चित्तौड़ के समीप पराजित कर असंख्य मुस्लिमों को हानि पहुँचायी। क्षेत्रसिंह का मालवा व गुजरात के विरूद्ध भी सफलता का वर्णन मिलता है। इसके अलावा इसने ईडर, देववाडा, हाड़ावटी आदि राजपूत राज्यों पर आक्रमण कर उन्हें अपना करद राज्य बनाया।[680] क्षेत्रसिंह के बाद उसका जेष्ट पुत्र लक्षसिंह या लाखा वि.सं. 1459/1382 ई. को मेवाड़ के राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। इसने मेरों पर आक्रमण कर बदनोर के प्रदेश को अपने अधीन बना लिया। लक्षसिंह/लाखा के समय मगरा जिले के जावर गाँव में चाँदी की खान मिलने से राज्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ता प्राप्त हुई। त्रि-स्थली काशी, प्रयाग, गया तीर्थ स्थलों मुसलमानों द्वारा लगाये जाने वाले कर से वहाँ के शासकों को काफी धन देकर इन्हें कर मुक्त करवाया। महाराणा लक्षसिंह के राज्य काल में मेवाड़ का राज्य महत्वपूर्ण व शक्तिशाली बन चुका था।[681]

4.7 तुगलक वंश का पतन व राजपूताना:-

हि. 808/1405 ई. मुल्तान व दीपालपुर के गवर्नर खिज्र खाँ के साथ युद्ध में इकबाल खाँ के मारे जाने के उपरांत सुल्तान महमूद कन्नौज के किले से बाहर निकल कर दिसम्बर 1405 ई. में दिल्ली पहुँचा। दिल्ली पर अधिकार होने के बाद भी सुल्तान सल्तनत के उन प्रदेशों पर अधिकार नहीं कर सका जो दूसरों के अधीन हो गये थे और नवम्बर 1412 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी थी। इस स्थिति में तुगलक राजवंश के खाली सिंहासन का कोई अधिकारी नहीं बना। इस स्थिति में प्रभावशाली अमीर दौलत खाँ अमीर बन गया। इसी समय खिज्र खाँ ने मार्च 1414 ई. को को दिल्ली पर आक्रमण कर व चार मास के घेरे के बाद दिल्ली पर आधिपत्य स्थापित कर तुगलक वंश का पटाक्षेप कर दिया।

तुगलक वंश 1320-1414 ई. का राज्यकाल दिल्ली सल्तनत के सभी राजवंशों से अनेक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण रहा। इस राजवंश की स्थापना सर्वसम्मति से हुई। इस काल में दिल्ली सल्तनत का सर्वाधिक विस्तार हुई। इसी राजवंश के समय दिल्ली सल्तनत के पतन की भी शुरूआत हुई। इस राजवंश के काल में दिल्ली सल्तनत में सर्वाधिक विद्रोहों हुए। भारत वर्ष के सभी प्रान्तों में नये राज्यों की स्थापना के लिए होड़ सी लग गयी। तुगलक वंश की स्थापना के समय लगभग सम्पूर्ण राजपूताना पर प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से दिल्ली सल्तनत का आधिपत्य स्थापित था। इस समय राजपूताना के रणथम्भौर, चित्तौड़, सिवाना, जालौर, जैसलमेर, अजमेर, नागौर, बयाना आदि राज्यों पर दिल्ली सल्तनत के अधिकारी नियुक्त थे।

गयासुद्दीन तुगलक व मुहम्मद बिन तुगलक के राज्यकाल में चित्तौड़ में मालदेव सोनगरा उनका अधीनस्थ शासक था। मालदेव व उसके उत्तराधिकारियों के राज्यकाल में मेवाड़ में चौहानों का प्रभुत्व बढ़ने लगा। गौड़वार का समृद्ध क्षेत्र भी चौहानों के अधीन हो गया। परन्तु इतना होने पर भी गुहिलों ने हिम्मत नहीं हारी। गुहिलों की ही छोटी शाखा के सिसोदा के सामंत हम्मीर ने छल या बल से चित्तौड़ के दुर्ग पर आधिपत्य स्थापित कर लिया और गुहिल वंश की छोटी शाखा सिसोदिया वंश की स्थापना कर एक नये युग का सूत्रपात किया। महाराणा हम्मीर के उत्तराधिकारी महाराणा क्षेत्रसिंह व महाराणा लाखा ने अपने पैतृक राज्य को ओर अधिक विस्तृत कर महत्वपूर्ण व शक्तिशाली राज्य बना दिया। इस प्रकार एक क्षेत्रीय शक्ति के रूप में मेवाड़ का उदय तुगलक वंश के राज्य काल में हुआ। तुगलक वंश के राज्यकाल में ही दिल्ली सल्तनत की केन्द्रीय सत्ता काफी दुर्लभ हो गयी। जिसके कारण सल्तनत के कई प्रान्तपतियों को सल्तनत के प्रभुत्व से मुक्त होकर अपने स्वतंत्र राज्यों की स्थापना का सुअवसर प्राप्त हुआ। ऐसे राज्यों में मेवाड़ के पड़ौसी राज्य मालवा, गुजरात व नागौर मुख्य थे। इन राज्यों की महत्वाकांशा थी, मेवाड़ राज्य की विजय क्योंकि मेवाड़ की बढ़ती शक्ति से उन्हें अपनी स्वतंत्रता को खोने का भय सदैव बना रहा और इस प्रकार एक नये अन्तर्क्षेत्रीय प्रतिद्धन्द्विता के युग का प्रारम्भ हुआ।

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने 1311-12 ई. में जालौर पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कार लिया। वहाँ पर निजाम खाँ या अमीर हिशंग को मुक्ता निर्युक्त किया। चित्तौड़ के हाथ से निकल जाने बाद मालदेव के पुत्र बणवीर ने अपना ध्यान अपने पैतृक राज्य जालौर पर लगाया। मुहम्मद बिन तुगलक की महत्वाकांक्षी योजनाओं की असफलता व अदूरदर्शी नीति के कारण उसके साम्राज्य में चारों और विद्रोहों की लहर चल रही थी। वह एक विद्रोह को शांत करने जाता तो दूसरी जगह विद्रोह हो जाता। सम्भवत इन्हीं परिस्थितियों में बणवीर ने जालौर

पर अपना अधिकार स्थापित कर पुन: अपने सोनगरा चौहान राजवंश की संस्थापना कर ली। जिस समय हम्मीर ने चित्तौड़ और बणवीर ने जालौर पर अपनी सत्ता स्थापित की उस समय महारावल घड़सी जी ने भी अपने पैतृक राज्य जैसलमेर पर अपना अधिकार कर लिया। महारावल घड़सी द्वारा पुन:स्थापित भाटी राजवंश ने दिल्ली सल्तनत के पतन तक अपनी स्वतंत्रता का रसपान करता रहा।

सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के समय दिल्ली सल्तनत का सर्वोधिक विस्तार हुआ और उसी के राज्यकाल में महत्वाकांक्षी योजनाओं की असफलता व अदूरदर्शी नीति के कारण उसके साम्राज्य में सर्वोधिक विद्रोहों भी हुए। इसी का लाभ उठा कर राजपूताना में कई नये राज्यों की स्थापना हुई। राजपूताना के भू-भागों में इस समय नये क्षेत्रीय राज्यों की स्थापना हुई, जिनमें प्रमुख है-राजपूताना के हाड़ावती क्षेत्र में देवीसिंह के द्वारा वि.सं 1298/1241 ई. में बूंदी राज्य की स्थापना, वि.सं.1405/1348 ई. में महाराज अर्जुनपाल द्वारा करौली में यदुवंशी राज्य की स्थापना, वागडक्षेत्र में डूंगरपुर राज्य का सुदृढ़करण, सहसमल द्वारा वि.सं. 1485/1425 ई.में सिरोही में देवड़ा चौहान राज्य आदि नवीन राज्यों का जन्म हुआ। आगे फिरोजशाह तुगलक के राज्यकाल में दिल्ली सल्तनत की दुर्बलता से लाभ उठाकर उत्तरी भारत में अनेक हिन्दू अपने राज्य की स्थापना एवं सुदृढ़ करण में व्यस्त थे। उसी समय चूड़ा के नेतृत्व में मण्डोर में राठौड़ों के राज्य का उत्कर्ष हुआ। चूड़ा द्वारा मण्डोर आधिपत्य के साथ ही मारवाड़ में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। फिरोजशाह तुगलक के शासन काल में राजपूताना के गागरोन पर आक्रमण व उत्तरवर्ती तुगलक शासकों के समय भटनेर दुर्ग पर तैमूर का आक्रमण व वहाँ के शासकों द्वारा उनका का प्रतिरोध भी उल्लेखनीय है।

अध्याय-पंचम

5. सैयद वंश (1414-1451 ई.) व राजपूताना

सैयद वंश का संस्थापक खिज्र खाँ मलिक सुलेमान का पुत्र था। फिरोज शाह के अमीर मर्दान दौलत खाँ का दत्तक पुत्र था। तुगलक शासकों के समय खिज्र खाँ एक सेनानायक के रूप में कार्यरत रहा। तैमूर के आक्रमण के समय उसने उसकी सत्ता स्वीकार कर ली थी।[682] तैमूर द्वारा उसे पंजाब का क्षेत्र प्रदत्त हुआ था।1414 ई. में दिल्ली विजय के पश्चात उसका अधिकार पंजाब और दिल्ली पर फ़ैल गया। यही सीमा उसके वंशजों के समय भी रही। इकबाल खाँ के अभियान का उद्देश्य खिज्र खाँ की बढ़ती हुई शक्ति को कुचलना था। उसका सामना करने के लिए आगे बढ़ कर साथ दे रहा था। अजोधन जिले में सतलज नदी के किनारे आया। दीपालपुर के गवर्नर खिज्र खाँ से उसका युद्ध 12 नवम्बर,1405 ई. हुआ। जिसमे इकबाल खाँ पराजित हुआ। खिज्र खाँ के सैनिकों द्वारा इकबाल को बंदी बना लिया गया और बाद में उसकी हत्या कर दी गयी। नमक हरामी व विश्वासघात का फल उसे जल्द ही मिल गया। "विश्वासघात करने में धृष्टता प्रदर्शित मत कर, तेरे कर्म का फल तेरी गोदी में शीघ्र आ जायेगा।"[683]

सैयद वंश और राजपूताना

4 जून,1414 ई.को खिज्र खाँ ने दिल्ली सल्तनत के चौथे राजवंश "सैयद वंश" की स्थापना की। सल्तनतकालीन समस्त राजवंशों में खिल्जियों के बाद सैयदों का शासन काल सबसे कम अर्थात सैंतीस वर्ष था। जिसमें कुल चार शासक हुए जो निम्नलिखित है खिज्र खाँ (1414-1421 ई.) मुबारक शाह (1421-1434 ई.) मोहम्मद शाह (1434-1443ई.) अलाउद्दीन शाह (1443-1451ई.) सैयद वंश का इतिहास न तो खिल्जियों की तरह निर्भीक साम्राज्यवादी सफलताओं का और ना तुगलकों की भाँति नवीन प्रशासनिक प्रयोगों द्वारा विभूषित था। फिर भी मध्यकालीन भारतीय इतिहास में यह एक विभाजक है, जो भारतवर्ष के पतन की और बढ़ते हुए चरणों का सूचक है। जिस समय विकेन्द्रीय वृतियों की शक्ति ने एक शक्तिशाली केन्द्रित राजतन्त्र के स्थान पर क्षेत्रीयता तथा प्रांतीयता ने अपना सिक्का जमाया।

नि:संदेह उन्होंने अत्यंत उत्तेजित राजनीतिक गतिविधियाँ देखी किन्तु सभी अत्यंत निम्नकोटि की थी। जिससे उनकी शक्ति नगण्य सरदारों और विद्रोहों से निपटने में नष्ट हुई। विशेषत: सैयद सुल्तानों के समक्ष साम्राज्य स्थापित करने का कोई आदर्श नहीं था। यहाँ तक वे मोटे तौर पर वह अपने पुर्वोधिकारियों द्वारा बनाई गईं सीमाओं के निकट तक नहीं थे। विस्तार में दिल्ली सल्तनत संकुचित हो गयी थी और उसके शासक अपनी नीतियों अत्यंत सीमित संदर्भ में प्रतिपादित करने में संतुष्ट थे। उसकी राजनीतिक दृष्टि दिल्ली के चारों और लगभग दो सौ मील के घेरे में तक सिमित थी।

सैयद काल के सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि सैयद सुल्तान कभी भी आगे बढकर किसी शक्तिशाली राजपूत राज्य पर आक्रमण नहीं कर सके। इसके स्थान पर वे छोटे-छोटे राजपूत राजाओं और सामंतों के विद्रोहों में उलझे रहे। सैयद वंश की स्थापना से पहले तक लम्बे समय से सुअवसर की प्रतीक्षारत थे राजपूतों ने मोहम्मद बिन तुगलक के साम्राज्य की अव्यवस्था से लाभ उठाया। गुहिल वंशी हम्मीर इसी स्थिति से लाभ उठाकर 1326 ई. के आसपास मेवाड़ को स्वतंत्र करने में सफल रहा। यहीं से अल्लाद्दीन खिलजी और मोहम्मद बिन तुगलक की महत्वकांक्षाओं पर तुषाराघात हुआ, फिर देखते ही देखते जालौर, जैसलमेर, हाड़ावती, करौली, डूंगरपुर, सिरोही, ईडर आगे चलकर मारवाड़ के राठौर आदि राजपूत राज्य स्वतंत्र हो गये। यही नहीं उत्तरी भारत में जौनपुर, मालवा, गुजरात और कालपी में चार महत्वपूर्ण सल्तनत का जन्म हो चुका था। इस प्रकार यह एक महत्वपूर्ण बहुकोणीय संघर्ष का काल था। एक ओर प्रांतीय राज्यों को दिल्ली सल्तनत से संघर्ष करना पड़ रहा था। दूसरी और प्रांतीय मुस्लिम सल्तनतों से।

5.1 खिज्र खाँ (1414-1421 ई.) व राजपूताना:-

खिज्र खाँ अत्यंत समर्थ और कर्मठ शासक था, जो निम्न स्तर से उठकर केवल अपनी योग्यता से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। उसका शासन अनेक विरोधी तत्वों से ग्रस्त था। खिज्र खाँ का राजपूताने के दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेशों से विशेषकर के मेवात, बयाना और आंशिक रूप से नागौर से सम्बंध रहा।

5.1.1 खिज्र खाँ और नागौर:-

इस समय नागौर प्रदेश गुजरात प्रान्त के अधीन था। जब 1404 ई. में गुजरात के सिंहासन पर मुजफ्फर शाह गद्दी पर बैठा तो उसने मलिक जलाल खाँ की जगह शम्स खाँ दन्दानी को नागौर का हाकिम नियुक्त किया। इस

प्रकार नागौर में एक नये राजवंश की नींव पड़ी जिसे खानजादा वंश कहा गया। [684] [685]जब शम्स खाँ दन्दानी नागौर में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने में लगा हुआ था। 1411ई. में मुइनुद्दीन फिरोज खाँ और उसके पिता मस्ती खाँ गुजरात के सुल्तान मुजफ्फर शाह से विद्रोह करके नागौर में शम्स खाँ दन्दानी की शरण में आ गये।[686] [687]

चित्तौड़ के राणा मोकल और नागौर के शासक शम्स खाँ दन्दानी के बीच हुए युद्ध में शाहजादा फिरोज खाँ और उसका पुत्र मुइनुद्दीन फिरोज खाँ नागौर की तरफ से युद्ध लड़ते हुए मारे गये। किन्तु शम्स खाँ दन्दानी ने अपने समय में फिरोज खाँ और मस्ती खाँ आदि गुजरात के विद्रोहियों को जो उसके भतीजे और गुजरात के सुल्तान मुजफ्फर शाह के पुत्र थे। नागौर में शरण ही नहीं दी वरन् उसने मुजफ्फर शाह को इन विद्रोहियों को समर्पित करने से इनकार कर दिया। जिससे सुल्तान मुजफ्फर शाह, शम्स खाँ दन्दानी से अत्यधिक नाराज हो गया और उसने सितम्बर 1416 ई. को नागौर पर आक्रमण कर दिया।[688] नागौर के शासक शम्स खाँ दन्दानी ने जब अपने ऊपर संकट के बादल मडराते हुए देखा। दिल्ली के सैयद सुल्तान रायात-ए-आला खिज्र खाँ से मदद माँगी। खिज्र खाँ को जब इसकी सूचना मिली। वह तो तुरंत शम्स खाँ दन्दानी की मदद के लिए टोंक के मार्ग से नागौर की और रवाना हुआ।[689] खिज्र खाँ के आने की सूचना गुजरात के सुल्तान अहमद को मिली तो वह शम्स खाँ दन्दानी से बिना युद्ध लडे ही धार होता हुआ अपनी विलायत लौट गया।[690] [691] [692] [693]

सैयद सुल्तान खिज्र खाँ द्वारा समय पर नागौर की सहायता करने से शम्स खाँ दन्दानी की संकट पूर्ण स्थिति का समाधान हुआ। लेकिन नागौर के शासक शम्स खाँ दन्दानी को इस सहायता की भारी कीमत चुकानी पड़ी। अब नागौर को गुजरात की अधीनता के स्थान पर दिल्ली के सैयद वंश की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी जो एक वर्ष तक रही। यह तो कहना ही पड़ेगा कि दिल्ली के सैयद सुल्तान खिज्र खाँ की सहायता से शम्स खाँ दन्दानी ने नागौर को सुरक्षा व सुदृढ़ता प्रदान की। शम्स खाँ दन्दानी के नेतृत्व में नागौर ने एक वर्ष तक दिल्ली के सैयद सुल्तान खिज्र खाँ के अधीनता स्वीकार की। लेकिन इसके एक वर्ष उपरांत ही 14 अगस्त 1417 ई.में मालवा के सुल्तान होशंग शाह ने नागौर के शासक शम्स खाँ दन्दानी को गुजरात के विरूद्ध आक्रमण करने पर सहायता के लिए कहा। शम्स खाँ दन्दानी ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। वह इसकी सूचना गुजरात के सुल्तान अहमद शाह को दे दी। इसी बीच अहमद शाह को सूचना मिली की मालवा का सुल्तान मोरासा तक आ गया है। शीघ्र ही गुजरात का सुल्तान अहमद शाह मोरासा के लिए रवाना हुआ। मोरासा में उसने उस स्थान के सामने अपना पड़ाव डाला, जहाँ पर होशंग शाह का पडाव था। जब इसकी सूचना मालवा के सुल्तान होशंगशाह को

मिली तो वहाँ से भाग गया [694] [695] इस प्रकार स्पष्ट है कि नागौर एक वर्ष तक ही दिल्ली के सैयद सुल्तान खिज्र खाँ के अधीन रहा और अवसर आते ही शम्स खाँ दन्दानी ने पुन: गुजरात अधीनता स्वीकार कर ली।[696]

5.1.2 खिज्र खाँ और बयाना:-

तारीखे मुबारक शाही के अनुसार 1416-1417 ई. में खिज्र खाँ ने शाही सेना सहित मलिक ताजुल्मुल्क को बयाना और ग्वालियर अभियान के लिए भेजा। इस समय बयाना पर मलिक शम्स खाँ ओहदी के भाई मलिक करीमुल्मुल्क[697] का शासन था। जब मलिक ताजुल्मुल्क बयाना पहुँचा तो दोनों के बीच शांतिपूर्ण भेंट हुई।[698]

ऐसा लगता है कि मलिक करीमुल्मुल्क ने मलिक ताजुल्मुल्क का भव्य स्वागत नहीं किया बल्कि खिज्र खाँ की अधीनता भी स्वीकार कर ली । इसके बाद मलिक ताजुल्मुल्क शाही सेना सहित ग्वालियर कम्पिल और पटियाली (एटा जिले में) के अभियान के लिए रवाना हुआ। ग्वालियर विजय से वापस आते हुए मलिक ताजुल्मुल्क पुन: बयाना आया तो मलिक करीमुल्मुल्क ने कर देना श्रेयकर समझा।

तारीखे-ए-मुबारकशाही व तबकाते-ए-अकबरी के अनुसार सुल्तान खिज्र खाँ अपने नागौर अभियान के उपरांत ग्वालियर के राय से निश्चित कर लेकर बयाना आया। बयाना के हाकिम शम्स खाँ औहदी ने धन पेशकश तथा कर प्रस्तुत किये। खिज्र खाँ वहाँ से विजय और सफलता पाकर दिल्ली लौट गया। [699]

5.1.3 खिज्र खाँ और मेवात:-

1421 ई. में खिज्र खाँ अपने वजीर ताजुल्मुल्क के साथ मेवात के विद्रोहियों का दमन करने की लिए रवाना हुआ। सुल्तान खिज्र खाँ ने बहादुर नादिर के किले के पास ही अपना पडाव डाला। किले को घेर लिया जिससे बहुत से मेव किले में घिर गये। कुछ मेवातियों ने युद्ध किया।[700] प्रथम युद्ध में ही किले पर विजय हो गयी और मेवाती भाग कर पर्वत की ओर चले गये। सुल्तान खिज्र खाँ ने किले (कोटला)[701] को नष्ट-भष्ट कर लिया। मेवातियों का दमन करने के पश्चात खिज्र खाँ ग्वालियर विजय के लिय निकल गया।[702] [703]

तारीखे-ए-मुबारकशाही अनुवाद रिजवी के अनुसार इसी युद्ध में सुल्तान खिज्र खाँ का वजीर ताजुलमुल्क 13 जनवरी, 1421 ई. को मारा गया। विजारत का पद उसके जेष्ठ पुत्र मलिकुश्शर्क मलिक सिंकदर को दिया गया।[704] हरिहर निवास द्विवेदी के अनुसार खिज्र खाँ तथा वजीर ताजुल्मुल्क ग्वालियर में पूरी तरह पराजित हुए। इस युद्ध में वजीर ताजुलमुल्क मारा गया। खिज्र खाँ लौटने के लिए विवश हो गया[705] याहिया बिन अहमद

अब्दुल्लाह सरहिंदी के मूल वाक्य से पता चलता है कि जब सुल्तान ग्वालियर विजय के लिए जा रहा था। उसी दौरान ताजुलमुल्क की मृत्यु हो गयी।[706] [707]

इस प्रकार स्पष्ट है कि सैयद सुल्तान खिज्र खाँ (रायत आला) का राजपूताना के नागौर, बयाना, मेवात से विशेष सम्बंध रहा। इसमें से नागौर प्रदेश गुजरात के आधिपत्य से निकल गया। दिल्ली सल्तनत के अधीन एक वर्ष तक रहा व अवसर मिलते ही वापस गुजरात के अधीन चला गया। जिसको वापस अपने अधीन करने का प्रयत्न सुल्तान खिज्र खाँ के द्वारा नहीं किया गया। दिल्ली का शासन सिंहासन अन्य विरोधी तत्वों में फंसा था। राजपूताना के मेवात और बयाना क्षेत्रों ने अनेक कठिन प्रशासनिक समस्याएं प्रस्तुत की। क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति से विद्रोहियों को यथेष्ट सहायता प्राप्त होती थी और उनके विरुद्ध कोई निर्णायक कार्यवाही संभव नहीं थी। फिर भी अपने मलिकों जैसे ताजुलमिल्क, जिरक खाँ, खैरुद्दीन, तथा कुछ अन्य की सहायता से उसने इन क्षेत्रों पर दिल्ली का नियंत्रण रखने के लिए कठिन संघर्ष किया। किन्तु यह अनुभव किये बिना नहीं रहा जा सकता कि खिज्र खाँ व्यर्थ संघर्ष कर रहा था। स्थिति इतनी अस्थिर थी कि दिल्ली की सेना लौटते ही सरदार पुन: विद्रोह कर देते। मेवातियों के विद्रोहियों का दमन सुल्तान खिज्र खाँ द्वारा किया गया। इस काल में बयाना से कर पेशकश आदि लेकर सुल्तान खिज्र खाँ संतुष्ट रहा।

5.2 मुबारक शाह (1421-1434 ई.) व राजपूताना:-

रायता आला खिज्र खाँ ने अपनी मृत्यु के तीन दिन पूर्व अपने पुत्र मलिक मुबारक को अपना उतराधिकारी मनोनियत कर दिया था । 20 मई 1421 ई. को मुबारक शाह विधिवत सिंहासन पर आसीन हुए।[708]

5.2.1 मुबारक शाह व मेवात:-

खिज्र खाँ के समय से ही मेवात क्षेत्र ने प्रशासनिक समस्याऐ प्रस्तुत की थी। यहाँ की यह भौगोलिक परिस्थितियों के कारण यहाँ के सरदार पुन: विद्रोहों करने पर उत्तारु हो जाते थे। जब मुबारक शाह सिंहासन पर बैठा उसके कुछ ही वर्ष बाद उसे मेवात में उपद्रव व विद्रोह की सूचना प्राप्त हुई। मुबारक शाह विद्रोह को कुचलने के लिए दिल्ली से रवाना हुआ। मेवात पहुँच कर उसने वहाँ पर लूटमार करनी प्रारम्भ कर दी। विद्रोही सरदारों ने अपने ही प्रदेशों को उजाड़ व खाली करके जहरा[709](झार) पर्वत में शरण ली। उस पर्वत दुर्ग के अत्यंत

दृढ होने के कारण उस पर विजय प्राप्त नहीं हो सकती थी। अत: सुल्तान लूट की धन-सम्पति लेकर अनाज व चारे की कमी के कारण वापस राजधानी लौट गया।[710] [711]

अगले वर्ष मुबारक शाह ने 1425 ई. को मेवात के विद्रोही सरदारों का दमन करने के लिए उस क्षेत्र की और प्रस्थान किया। उस समय मेवात के सरदार बहादुर शाह नाहर के पौत्र जल्लू और कद्दू थे। जैसे ही जल्लू और कद्दू को सुल्तान मुबारक शाह के आने की सूचना मिली। वह अपने साथियों को साथ लेकर अपने ही प्रदेशों को वीरान और खाली करके इंदौर या इन्दुर के पर्वत की तरफ चले गये। मुबारक शाह ने इन्हें इंदौर के किले में घेर लिया। जल्लू और कद्दू पर अत्यधिक शक्ति का प्रदर्शन किया। वह इन्दुर के किले को छोड़कर अलवर की पहाडियों की तरफ चले गये।[712] उन्होंने अलवर किले की किलेबंदी की। सुल्तान मुबारक शाह ने इन्दुर के किले को नष्ट-भष्ट कर दिया । जल्लू और कद्दू को अलवर के किले में घेर लिया। जब इन पर अत्यधिक दबाव पड़ा तो इन्होंने सुल्तान से क्षमा- याचना की, जिसे सुल्तान ने स्वीकार कर लिया। कद्दू ने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली। कद्दू ने सुल्तान के विरूद्ध पुन: विद्रोह करने का प्रयास किया। उसे बंदीगृह में बंद कर दिया गया। सुल्तान मुबारक शाह के द्वारा मेवात प्रदेश को विध्वंस कर दिया। कुछ समय मेवात की पहाड़ियों में विश्राम करने के उपरांत वापस दिल्ली लौट गया। 4 मास 11 दिन के बाद मुबारक शाह नवम्बर 1426 ई. में वापस मेवात आया विद्रोहियों को दंड देकर बयाना की तरफ चला गया।[713] [714] [715] [716] [717]

जब सुल्तान मुबारक शाह को इस बात का पता चला कि मलिक कद्दू मेवाती ने सुल्तान इब्राहीम शाह शर्की का साथ दिया। वह अत्यधिक नाराज हुआ। अगस्त 1428 ई. को सुल्तान मुबारक शाह ने मलिक कद्दू मेवाती[718] को उसी के घर में बंदी बना कर उसकी हत्या करवा दी। मलिक सरवरुल मुल्क को शाही सेना सहित विद्रोह को शांत करने और उस प्रदेश की शासन व्यवस्था को सुव्यवस्थित करने के लिए भेजा। वह कुछ गाँवों को नष्ट करता हुआ इन्दुर पर्वत की तरफ चला गया। जहाँ मलिक कद्दू का भाई जलाल खाँ व अन्य सरदार अहमद खाँ मलिक फखुदीन मलिक अली तथा उसके सगे-सम्बन्धी अश्वोरोहियों व पदातियों सहित इन्दुर के किले में छिपे थे। जबकि तबकात-ए-अकबरी में इन्दुर किले के स्थान पर अंदरुन के किले में एकत्र होना लिखा है।[719] जब मलिक सरवरुल मुल्क किले के पास पहुँचा तो वह उनका मुकाबला नहीं कर सका। उन्होंने संधि की वार्ता प्रारम्भ की मेवातियों ने सुल्तान मुबारक शाह की अधीनता स्वीकार कर ली। मलिक सरवरुल मुल्क, धन कर और दास लेकर दिल्ली लौट गया। ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद के अनुसार नवम्बर 1428 ई. में बयाना विद्रोहों को शांत करने के बाद सुल्तान मुबारक शाह मेवात ने पर्वत की और प्रस्थान किया और महदूराई पहुँचा। वहाँ पर अपना

पड़ाव डाला। जलाल खाँ मेवाती न अन्य मेवाती सरदारों ने अपना बकाया राजस्व आदि सुल्तान मुबारक शाह को देकर उसकी आज्ञाकारिता स्वीकार की। इसके उपरांत 1429 ई. सुल्तान दिल्ली लौट गया।[720] [721] [722] [723] [724]

नवम्बर 1432 ई. में सुल्तान मुबारक शाह ने मेवात की पहाड़ियों की तरफ प्रस्थान किया। ताऊर कस्बे तक पहुँच गया। जब इसकी सूचना जलाल खाँ मेवाती को मिली तो वह अपनी सेना लेकर प्रसिद्ध दुर्ग अंदरुन में जाकर छिप गया। दूसरे ही दिन सुल्तान ने अपनी पूरी तैयारी के साथ अंदरुन किले पर आक्रमण किया। अभी अग्रिम सेना का दल वहाँ पहुँचा भी नहीं था कि जलाल खाँ ने किले में आग लगा कर कोटला की तरफ भाग निकला। जो खाद्य साम्रगी उसने किले के अंदर युद्ध करने के लिए रखी थी। वह शाही सेना के हाथ लग गयी। सुल्तान मुबारक शाह वहाँ से आगे बढ़कर तिजारा कस्बे तक पहुँचा। अधिकांश मेवात प्रदेशों का नष्ट कर दिया। तजारा करबे में ही मलिक इमादुलमुल्क बयाना की अक्ता से अत्यधिक अश्वारोहियों और पदातियों को लेकर सुल्तान की सेवा में उपस्थित हुआ। जब जलाल खाँ अत्यधिक विवश और व्याकुल हो गया तो उसने सुल्तान की आज्ञाकारिता स्वीकार कर ली और प्रथानुसार धन और कर प्रदान किया। सुल्तान ने उसकी दुष्टता क्षमा कर दी और उसे शाही कृपादृष्टि द्वारा सम्मानित किया गया और सुल्तान जनवरी 1433 ई. में दिल्ली लौट आया।[725] [726] [727] [728]

5.2.2 मुबारक शाह और बयाना:-

सुल्तान मुबारक शाह के समकालीन बयाना का अमीर औहद खाँ का पुत्र मोहम्मद खाँ था। सुल्तान मुबारक शाह ने मेवात के विद्रोह को दमन करने के उपरांत दिसम्बर 1426 ई. बयाना आया। मोहम्मद खाँ ने अपने आप को किले में बंद कर लिया और किला ऊँचाई पर होने के कारण 16 दिनों तक सुल्तान मुबारक शाह से युद्ध करता रहा। तारीखे मुबारक शाही के अनुसार 31 जनवरी 1427 को शाही सेना ने मोहम्मद खाँ पर धावा किया। सुल्तान एक बड़ी सेना लेकर पीछे के द्वार से किले में प्रवेश किया जब उसमे सुल्तान से टक्कर लेने की शक्ति ना रही। निजामुद्दीन अहमद के अनुसार उसके अधिकांश सहायक उससे पृथक होकर सुल्तान से मिल गये। जब इसकी सूचना मोहम्मद खाँ को मिली तो वह घबराहट में अपने गले में रस्सी डाल कर किले से बाहर आया और सुल्तान की अधीनता स्वीकार की। सुल्तान ने उसे क्षमा कर दिया। किले में जो भी धन-सम्पति, घोड़े, अस्त्र-शस्त्र आदि मिले, शाही सेना को भेंट कर दिए। मोहम्मद खाँ का परिवार दुर्ग से बाहर लाया गया। जहाँपनाह

कुश्क में रहने के लिए दिल्ली भेज दिया गया। बयाना का शिकदार मलिक मुकाबिल को नियुक्त किया गया।[729] [730] [731] [732] [733]

कुछ दिनों बाद मोहम्मद खाँ औहदी दिल्ली से परिवार सहित भाग कर मेवात चला गया। वहाँ उसके सभी सहायक जो उससे बिछड़ गये थे, इकट्टे हुए। इसी बीच उसे मालूम हुआ कि मलिक मुकाबिन खाँ अपनी सेना सहित महाबन की ओर चला गया है। खैरद्दीन तुहफा को किले में छोड़ गया और बयाना का प्रदेश खाली है। मोहम्मद खाँ ने बहुत कम जमीदारों की सेना लेकर आक्रमण कर दिया। प्रदेश के अधिकांश लोग भी उससे मिल गये। खैरुद्दीन तुहफा उसके सामने टिक नहीं सका और अपनी सेना सहित दिल्ली लौट गया। मोहम्मद खाँ औहदी ने किले पर अधिकार कर लिया। मुबारक शाह ने बयाना की अक्ता मुकाबिन खाँ से लेकर मलिक मुबारिज को इस शर्त पर सौंप दी कि वह उस पर अधिकार करेगा और एक बड़ी सेना सहित उसे बयाना में शांति स्थापित करने के लिए भेजा। मुबारिज खाँ ने किले को घेर लिया और मोहम्मद खाँ औहदी को किले में बंद कर लिया। मोहम्मद खाँ औहदी अपनी सेना को किले में अपने अनुयायों के नेतृत्व में छोड़कर सुल्तान इब्राहीम शर्की के पास में चला गया। मलिक मुबारिज खाँ ने बयाना के प्रदेश पर अधिकार कर लिया। सुल्तान ने कुछ समय उपरांत मुबारिज खाँ को किसी काम से दिल्ली बुला लिया और स्वयं बयाना के लिए रवाना हुआ। सुल्तान इब्राहीम शर्की का भय खत्म होने के बाद सुल्तान ग्वालियर के राय आदि से कर लेकर बयाना की ओर आया। मोहम्मद खाँ सुल्तान इब्राहीम शर्की के साथ मिल गया। अत: भय के कारण वह किले में बंद हो गया था। किले की ऊँचाई अधिक होने के कारण सुल्तान मुबारक शाह का किले पर अधिकार करना कठिन था। तारीखे-ए-मुबारक शाही के अनुसार किले में पानी की कमी के कारण मोहम्मद खाँ औहदी को परेशान होकर क्षमा-याचना करनी पड़ी। सुल्तान द्वारा उसे क्षमा कर दिया गया और उसे अमानी की खिलअत से सम्मानित किया गया।[734] [735] [736] [737]

राजधानी के कुछ महत्वाकांक्षी लोगों ने सैयद सुल्तान मुबारक शाह के विरोधी सरवरुलमुल्क का सहयोग किया और इन लोगों ने सुल्तान की हत्या कर दी। कुछ काल के लिए ही सही दिल्ली सल्तनत का प्रभुत्व सरवरुलमुल्क व उनके सहयोगियों के हाथों में आ गया। पर यह स्थिति अधिक दिनों तक न रह सकी और जल्दी ही इस गुट का अंत कर दिया गया। इन आंतरिक गृहयुद्धों एवं बाह्य विद्रोहों के परिणामस्वरूप दिल्ली सल्तनत की सीमा इतनी संकुचित हो गयी कि शीघ्र ही अल्लाउद्दीन खिलजी एवं मुहम्मद तुगलक के राजसिंहासन पर विराजमान सैयद सुल्तान के विषय में कहा जाने लगा कि "संसार के बादशाह का राज्य दिल्ली से पालम तक" है।

5.3 मोहम्मद शाह (1434-1443ई.) अलाउद्दीन शाह (1443-1451ई व राजपूताना:-

सुल्तान मुबारक शाह की हत्या के उपरांत सरवरुल मुल्क ने अपने सहयोगियों को उपहार स्वरूप जागीरें प्रदान की। इसी क्रम में सिद्धपाल को बयाना की जागीर दी गयी। फरिश्ता के अनुसार सिद्धपाल ने अपने रानू नामक दास को बयाना पर आधिपत्य स्थापित करने के लिय भेजा। जबकि निजामुद्दीन अहमद के अनुसार सरवरुल मुल्क ने अपने दास अबू शाह को बयाना के अमीर युसूफ खाँ औहदी से कर लेने भेजा था। 24 मार्च 1434 ई. में रानू बयाना पहुँचा। उस समय बयाना का अमीर हिन्दुवान में था। जब उसको इसकी सूचना मिली तो वह अपने साथ एक विशाल सेना लेकर आया। जब दोनों के मध्य युद्ध का प्रारम्भ हुआ तो इतनी बड़ी सेना देख कर रानू अपने को मुकाबला करने में असमर्थ समझ कर युद्ध स्थल से भाग गया। लेकिन युसूफ खाँ औहदी की सेना ने उसका पीछा करके उसे पकडकर मौत के घाट उतर दिया। उसके परिवार की स्त्रियों और बच्चो को बंदी बना लिया गया। इस प्रकार रानू द्वारा बयाना पर आधिपत्य स्थापित करने के प्रयास के साथ ही सरवरुल मुल्क के गुट का पतन शुरू हो गया।[738] [739] इन परिस्थितियों में राजपूताना के विभिन्न राज्यों के शासक अपने पड़ौसी मुस्लिम सुल्तानों से संघर्ष करते रहे। इनमे जालौर, नागौर, मारवाड़, डूंगरपुर के राज्यों ने गुजरात के सुल्तानों से संघर्ष किया। गागरोन के खींची एवं बूंदी के हाड़ाओं ने मालवा के सुल्तानों से और मेवाड़ के शासकों ने नागौर मालवा एवं गुजरात के सुल्तानों से संघर्ष किया।

सैयद के शासन काल (1414-1451ई.) के समकालीन राजपूताना के मेवाड़ में मुख्यतः तीन शासक हुए महाराणा लक्षसिंह/लाखा1382-1421 ई. मोकल1421-1433 ई. महाराणा कुम्भा 1433-1468 ई. इसी वंश के महाराणा ने हम्मीर ने 1326-1364 ई. में अपने राज्य को विदेशी आक्रमणाकारियों से मुक्त कराकर उसे अपने उत्तराधिकारियों को हस्तांतरित किया और एक शाश्वत ख्याति अर्जित की।[740] [741] इसका उत्तराधिकारी उसका जेष्ट पुत्र क्षेत्रसिंह था। जिसने अपने पराक्रम से अजमेर, जहाजपुर, मांडलगढ़ और छप्पन पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित की और अपने पद की प्रतिष्ठा बढ़ाई। उसे अपने भुजबल पर मालवा के सुल्तान अमीशाह को परास्त में सफलता प्राप्त की। उसके पीछे उसका पुत्र लाखा 1382 ई. में मेवाड़ का स्वामी बना। उसने तुर्क सत्ता से संघर्ष कर तथा कला और सार्वजनिक कार्य में रूचि लेकर अपने वंश के गौरव को बढ़ाया। उसी के पुत्र मोकल ने 1428 ई. में नागौर के फिरोज खाँ पर विजय स्थापित कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।1433 ई. में मेवाड़ की बागडोर महाराणा कुम्भा के हाथ में आना एक प्रकार से मेवाड़ की प्रतिष्ठा के नक्षत्र का उदय का

आव्हान था। उसने राज्य की रक्षा के लिए अनेकों दुर्ग बनवाये और शत्रुओं को उनके द्वारा परास्त कियागया । मालवा और गुजरात के सुल्तानों से टक्कर लेकर उसने मेवाड़ को उत्तरी भारतवर्ष के शक्ति-संतुलन की घूरी बना दिया। ये कार्य महाराणा की अनुपम कूटनीति के परिचायक थे।[742] [743] [744] [745] इस प्रकार मेवाड़ राजघराने ये प्रसिद्ध शासक इस काल में हुए यही कारण है कि मेवाड़, दिल्ली, गुजरात, व मालवा के आक्रमणात्मक नीति के विरूद्ध अपने साम्राज्य की सुरक्षा करने में सफल ही नहीं हुआ बल्कि अपने साम्राज्य को विस्तृत व सुदृढ़ भी किया।[746] दिल्ली सल्तनत के इतिहास में इस समय (1414-1451ई.) सैयद सुल्तानों का शासन था, अपनी ही समस्याओं में उलझे हुए थे। इनके लिए मेवाड़ प्रदेश में हस्तक्षेप करना संभव नहीं था।

सैयद वंशीय सुल्तानों के समय की (1414-1451ई.) राजपूताना की सबसे महत्वपूर्ण घटना जालौर के सोनगरा राजवंश और गागरोन के खींची राजवंश को अपने पड़ौसी मुस्लिम शासकों क्रमशः गुजरात और मालवा के सुल्तानों के संघर्ष के परिणामस्वरूप उनका विनाश था। लगभग एक शताब्दी तक अपनी स्वतंत्रता का उपभोग करने के उपरांत दोनों राजवंश का अंत हो गया।

अध्याय-षष्टम

6. लोदी वंश (1451-1526 ई.) व राजपूताना

सल्तनत कालीन राजवंशों में लोदी अंतिम वंश था। खिल्जियों की तुलना में उसकी आयु अधिक थी। उत्तरकालीन तुगलकों तथा सैयदों से उत्तम उपलब्धियों का श्रेय उन्हें प्राप्त था। फिर भी उसका पचहत्तर वर्षीय इतिहास संघर्ष की कहानी है, अर्थात राजा और कुलीन वर्ग, साधारण जमींदार और शक्तिशाली अधिकारियों, युग की विकेन्द्रीय प्रवृतियों और शासकों की अभिकेन्द्रीय आकांक्षाओं राजतंत्रीय निरकुंश सत्ता के आदर्श और शासन में साझेदारी की अफगान धारणा के बीच संघर्ष की कहानी है। व्यक्तिगत रूप से अफगान भारत में बहुत पहले आ गये होंगे, किन्तु सुल्तान नसीरुद्दीन महमूद के शासनकाल में वे सेना में भारी संख्या में भर्ती किए गए। 1260 ई. में उलुग खाँ में बाद में बलबन मेवातियों के दमन के लिए तीन हजार सैनिक भर्ती किए।[747] बाद में बलबन ने दिल्ली, जलाली, कम्पिल, पटियाली, के निकट अफगान सैनिक चौकियाँ स्थापित की।

बलबन ने उनका उपयोग मंगोलों के विरुद्ध लड़ने के लिए तथा अप्रभावित क्षेत्रों को अपने अधीन करने के लिए किया गया था।[748] इस अवधि में अफगानों ने जो महत्व प्राप्त किया। उन्हें भविष्य में अपने प्रभाव का विस्तार करने में यथेष्ठ सहायता प्रदान की और उनकी शक्ति के विस्तार का प्रभावशाली आधार प्रस्तुत किया। अलाउद्दीन के शासन काल में इख्तायारुद्दीन अफगान और मलिक मख अफगान थे। जिन्होंने खिलजी और तुगलक कालों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में अफगान शासक वर्ग के एक आवश्यक तत्व थे और उनके विरुद्ध विद्रोह संगठित करने में उनकी एक विशिष्ट भूमिका रही। फिरोज तुगलक के काल में अफगान प्रांतीय गवर्नरों के रूप में नियुक्त किये जाने लगे। उनकी सभी नियुक्तियाँ वंशानुगत कर दी गयी।[749] अपने साहस और चरित्र के कारण अफगान सैनिक भारी सख्याँ में सीमांत प्रदेशों में भर्ती किये जाते थे। मुल्तान के एक मुक्ता ने भारी संख्या में अफगान भर्ती किये। जिनमें बहलोल शाह लोदी का एक पूर्वज मलिक बहराम भी था।[750] सैयद शासकों के अंतर्गत अफगान सैनिकों की शक्ति में वृद्धि हुई। 1417 में खिज्र खाँ ने सरहिंद मलिक शाह बहराम लोदी को दिया।[751]

लोदी वंश (1451-1526 ई.):- "दिल्ली सल्तनत " के पाँचवे और अंतिम राजवंश व प्रथम अफगान राज्य "लोदी वंश" की स्थापना 17 अप्रैल, 1451[752] ई./15 रबी-उल-अव्वल 855 हि. को सैयद वंश के अंतिम शासक

अलाउद्दीन शाह को उसके अफगान मंत्री बहलोल लोदी द्वारा सत्ता से हटाकर की थी। लोदी वंश का शासन काल 1451 ई.से 1526 ई. अर्थात 75 वर्ष तक रहा। इस 75 वर्षीय शासन काल में तीन शासकों ने शासन किया। लोदी वंशीय शासक निम्नलिखित थे। बहलोल लोदी (1451-1489 ई. सिकंदर लोदी (1489-1517 ई.) इब्राहीम लोदी (1517-1526 ई.)

लोदी वंश (1451-1526 ई.) व राजपूताना:-

15वीं सदी के अंत में लोदी सुल्तानों द्वारा जौनपुर को अपनी सल्तनत में मिला लिए जाने के बाद परिस्थितियाँ बदलने लगी। इसी विजय के बाद लोदियों ने पूर्वी राजस्थान और मालवा की ओर अपनी सत्ता का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया। इन्हीं दिनों आंतरिक कारणों से मालवा बिखरने लगा। उस पर कब्जा करने के लिए राजपूताना (मेवाड़) गुजरात और दिल्ली सल्तनत के शासक लोदियों में प्रतिद्विव्द्वता में तीव्रता आई। लग रहा था कि इस जोर-आजमाई में जीतने वाला पूरे उत्तर भारत पर राज करेगा। इसी नीति के तहत दिल्ली सल्तनत के लोदी सुल्तानों ने राजपूताना के विभिन्न राज्यों पर कई बार आक्रमण किये। जिसके परिणामस्वरूप राजपूताना के कई राज्य दिल्ली सल्तनत के अधीन हो गए। इस काल में दिल्ली सल्तनत का राजपूताना के मेवाड़, धौलपुर, बयाना, रणथम्भौर, मदरायल/मंदलायर(करौली के समीप), नागौर, अजमेर के साथ विशेष सम्बंध रहा।

अपने पूर्व राजवंश की भाँति लोदी काल में भी 'बहुकोणीय संघर्ष' हुआ। एक और राजपूताना के राज्य लोदी सुल्तानों से संघर्षरत थे। दूसरी और उन्हें जौनपुर, गुजरात और मालवा की मुस्लिम सेना से भी संघर्ष करना पड़ रहा था।

6.1 बहलोल लोदी व राजपूताना (1451-1489 ई.):-

बहलोल लोदी दिल्ली सल्तनत के अंतिम राजवंश लोदी वंश का संस्थापक था। लोदी वंश के शासकों में बहलोल लोदी एक योग्य शासक था। उसने दिल्ली सल्तनत के सभी शासकों में सर्वोधिक समय (1451-1489 ई.)[753] 38 वर्ष तक शासन किया है। अपने लम्बे शासन काल में उसने दिल्ली सल्तनत की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुर्नस्थापित किया। उसकी मुत्यु के समय तक उसका राज्य पंजाब से लेकर बिहार तक विस्तृत था। बहलोल लोदी का राजपूताना के किसी राज्य पर अधिकार नहीं था क्योंकि जब 1485 ई. में उसने अपने राज्यों को

अपने पुत्रों और अफगान जातिवर्गों[754] में विभाजित किया था। तब किसी राजपूताने के राज्य का सीधा उल्लेख नहीं मिलता है। बहलोल लोदी ने अपने साम्राज्य विस्तार की महत्वकांक्षा के लिए राजपूताना के राज्यों के साथ सम्बंध स्थापित किये जो इस प्रकार है।

6.1.1 बहलोल लोदी और मेवाड़:-

अहमद यादगार के अनुसार बहलोल लोदी ने 1463-64 ई. में मेवाड़ पर आक्रमण किया।[755] अजमेर पहुँचने पर उसने वहाँ पर शाही शिविर लगाया। यही से एक शक्तिशाली सेना राणा के विरुद्ध भेजी। राणा का भागिनेय चत्रसाल (छत्रसाल) 10 हजार अश्वारोहियों सहित उदयपुर में था। क़ुतुब खाँ भी वहाँ पहुँचा और राणा की सेना से युद्ध शुरू हो गया। युद्ध के प्रारम्भ में शाही सेना पराजित हुई और युद्ध स्थल से भागने लगी। कहीं अफगानी सैनिक इस युद्ध में मारे गये। बाद में क़ुतुब खाँ और खांनेखाँना फर्मुली ने तलवार और कटार से युद्ध शुरू किया और राणा की सेना को नष्ट कर दिया और छत्रसाल भी मारा गया।[756] युद्ध क्षेत्र में काफ़िर इतनी अधिक संख्या में मारे गये कि उनके सिरों के ढेर लग गये। उनके रक्त से नदी बह निकली। सुल्तान की सेना को पाँच हाथी चालीस घोड़े व अत्यधिक धन सम्पति प्राप्त हुई। परिणामस्वरूप राणा ने शाही सेना से संधि स्वीकार की और उदयपुर में सुल्तान के नाम का ख़ुत्बा एवं सिक्का जारी हो गया। [757] [758]

अहमद यादगार के उपर्युक्त विवरण का वर्णन अन्य किसी मुस्लिम साहित्य से प्राप्त नहीं होता है। यद्यपि कर्नल जेम्स टॉड के वर्णन से पता चलता है कि ऊदा या उदयसिंह ने 1468 ई.में अपने पिता राणा कुम्भा को मारकर मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। उसके इस कार्य को राजपूत सरदारों ने पसंद नहीं किया। अंत में रावत चूड़ा के पुत्र कांधल आदि सरदारों ने सोच-विचार कर महाराज रायमल को बुलाया जो उस समय अपने ससुराल ईडर में था। सूचना मिलते ही रायमल शीघ्र ही कुम्भलमेर में आ पहुँचा और बाहर से सरदारों को सूचना दी। सरदारों ने महाराणा उदयसिंह को शिकार के बहाने से बाहर निकाला और महाराणा रायमल को किले के भीतर ले लिया। 1473 ई. में महाराणा रायमल को सब राजपूत सरदारों ने मिलकर गद्दी पर बैठाया।[759] इससे निराश होकर ऊदा/उदयसिंह दिल्ली के मुस्लिम बादशाह के पास पहुँचा। अपनी लड़की की शादी सुल्तान से कराना स्वीकार कर लिया। जब उदयसिंह महल से अपने डेरे की तरफ आने लगा तो उस समय मार्ग में एकाएक उस पर बिजली आ गिरी। जिससे उसकी मुत्यु हो गयी। अब दिल्ली के बादशाह ने ऊदा के दो पुत्रों सैसमल और सूरजमल को लेकर मेवाड़ पर आक्रमण किया। 'घासा' नामक स्थान पर मेवाड़ और दिल्ली की सेना में युद्ध हुआ। जिसमें

दिल्ली की सेना पराजित होने के बाद वापस चली गयी। सैसमल और सुरजमल ने रायमल की अधीनता स्वीकार कर ली।[760]

कवि श्यामलदास कृत वीर विनोद में उदयसिंह का दिल्ली के सुल्तान के पास ना जाकर मांडू के बादशाह गयासुद्दीन के पास जाने का उल्लेख है।[761] गौरीशंकर हिराचंद ओझा के अनुसार कर्नल टॉड ने दिल्ली के सुल्तान का नाम नहीं लिया और ये सारा वर्णन भाटों की ख्यातों से लिया जाने के कारण विश्वसनीय नहीं है।[762]

उपर्युक्त कथनों को देखते हुए भी यह कहना निरर्थक न होगा कि न तो टॉड के कथन को और न अहमद यादगार के कथन को पूर्णरूप से स्वीकार किया जा सकता है। दोनों लेखकों ने पक्षपात के कारण ही अपने नायकों की विजयों का अतिरंजित वर्णन प्रस्तुत किया है। समस्त तथ्यों के अवलोकन के उपरांत इस स्थल पर यही कहना उचित होगा। दिल्ली व मेवाड़ के बीच यह संघर्ष अनिर्णित ही रहा होगा। अहमद यादगार के द्वारा उदयपुर का उल्लेख करना और वहाँ सुल्तान के नाम का ख़ुत्बा एवं सिक्का जारी किये जाने का उल्लेख न केवल अतिशयोक्तिपूर्ण है वरन् गैर-ऐतिहासिक भी है। किसी भी शिलालेख या ग्रन्थ से पता नहीं चलता कि महाराणा कुम्भा ने दिल्ली सल्तनत के किसी शासक से संघर्ष किया हो। इसलिये इस घटना पर विश्वाश नहीं किया जा सकता है। चूँकि कर्नल टॉड और अहमद यादगार के अलावा किसी भी मुस्लिम और गैर मुस्लिम स्रोतों से इसकी पुष्टि नहीं होती है।

सुल्तान बहलोल लोदी और मेवात:-

सुल्तान बहलोल लोदी को स्थायित्व प्राप्त हो जाने के बाद उसकी शक्ति और अधिकारों में वृद्धि होने लगी। अपने साम्राज्य का विस्तार करने के उद्देश्य से उसने राज्यों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया । सर्वप्रथम वह मेवात पहुँचा। अहमद खाँ मेवाती ने उसका स्वागत करके आज्ञाकारिता स्वीकार कर ली। सुल्तान बहलोल लोदी ने उसके अधिकार से सात परगने लेकर शेष उसे प्रदान कर दिये। अहमद खाँ मेवाती ने चाचा मुबारक खाँ को स्थायी रूप से सुल्तान की सेवा में रहने के लिए नियुक्त कर दिया ।[763]

6.1.2 बहलोल लोदी और धौलपुर:-

धौलपुर सल्तनत काल में राजपूताना में नहीं बल्कि ग्वालियर राज्य में था। वर्तमान ये राजस्थान का एक जिला है। जौनपुर में अपनी स्थिति मजबूत करने के बाद बहलोल लोदी ने कालपी पर अधिकार कर उसे अपने पौत्र

आजम हुमायूँ को प्रदान किया। तत्पश्चात बहलोल लोदी ने धौलपुर की और प्रस्थान किया। धौलपुर के राय ने बहलोल लोदी की अधीनता स्वीकार की और कई मन सोना भी भेंट किया।[764] और उसके राज्यों के हितैषियों में सम्मिलित हो गया।[765]

6.1.3 बहलोल लोदी और रणथम्भौर:-

दिल्ली के सुल्तान बहलोल लोदी ने अल्हनपुर के कस्बे पर जो की मालवा के सुल्तानों के अधीन था, पर आक्रमण कर वहाँ के निवासियों को अत्यधिक हानि पहुँचाई। जब यह समाचार माडू में प्राप्त हुआ तो किसी को इस बात का साहस नहीं हुआ कि वह इस विषय में सुल्तान गयासुद्दीन को इस विषय में बताये। अंत में वजीरों से परामर्श करके हसन खाँ ने एक दिन उचित अवसर देखकर सुल्तान से कहा कि सुल्तान बहलोल प्रति वर्ष सुल्तान महमूद शाह की सेवा में पेशकश तथा सलामी का धन भेजा करता था। आज सुना जा रहा है कि वह धृष्टता प्रदर्शित कर रहा है। उसकी सेना ने अल्हनपुर कस्बे को नष्ट-भष्ट कर दिया है। सुल्तान गयासुद्दीन ये सुनते ही चंदेरी के हाकिम बशीर खाँ बिन मुजफ्फर खाँ को आदेश दिया। तुम भिल्लसा और सारंगपुर की सेना लेकर सुल्तान बहलोल पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान करों। फरमान प्राप्त होते ही शेर खाँ अपनी सेना तैयार करके बयाना की और प्रस्थान किया। सुल्तान बहलोल लोदी अपने को असमर्थ पाकर बयाना लौट कर दिल्ली चला गया। सुल्तान बहलोल लोदी ने युक्ति से तथा उपहार देकर लौटा दिया। शेर खाँ ने अल्हनपुर कस्बे को पुनः बसा कर चंदेरी की और चला गया।[766] तबकात-ए-अकबरी के अनुसार भी बहलोल लोदी ने धौलपुर के बाद बारी से होता हुआ। अल्हनपुर पहुँचा जो रणथम्भौर के पूर्व में है। बहलोल लोदी ने रणथम्भौर के अधीन अल्हनपुर पर चढ़ाई की। अल्हनपुर की विलायत को विध्वंस करके वहाँ के उधानों तथा वृक्षों को नष्ट-भष्ट कर दिया। दिल्ली वापस चला गया।[767] नियामतुल्ला ने भी इसी प्रकार का वर्णन दिया है कि जौनपुर की विजय के बाद बहलोल लोदी रणथम्भौर के निकट अल्हनपुर गया और उसे लूटा।[768]

6.2 सिकन्दर लोदी व राजपूताना (1489-1517 ई.):-

सिकन्दर लोदी का मूल नाम निजाम था। उसकी माँ जैबन्द एक सुनार की पुत्री थी। बहलोल लोदी के नौ पुत्रों में निजाम खाँ सबसे योग्य था। उसने अपनी मुत्यु से पहले ही उसे अपना उतराधिकारी घोषित कर दिया था। बहलोल लोदी की मुत्यु के बाद 16 जुलाई 1489 ई.में निजाम खाँ सिकन्दर लोदी के नाम से सिंहासनारूढ़

हुआ।[769] तैमूर के आक्रमण के पश्चात दिल्ली सल्तनत की सीमा में अधिकतम वृद्धि सिकन्दर लोदी के समय हुयी परिणामस्वरूप उसका सम्बंध राजपूताना से भी स्थापित हुआ।

6.2.1 सिकन्दर लोदी और बयाना:-

कालपी व जथरा पर अधिकार करने के तत्पश्चात सिकन्दर लोदी ने बयाना की और ध्यान दिया। वहाँ का शासक सुल्तान अशरफ अपने प्रदेश का स्वतंत्र सत्ताधारी था। उसका पिता सुल्तान अहमद जिलवानी जौनपुर के सुल्तान हुसैन के प्रति निष्ठावान था, किन्तु जब जौनपुर का राज्य संकट के समय से गुजर रहा था। सुल्तान हुसैन भी बहलोल लोदी द्वारा बार-बार पराजित हो रहा था। सुल्तान जिलवानी पूर्णरूपेण स्वतंत्र हो गया। सिकन्दर लोदी ने इसे शर्की राज्य के दिल्ली साम्राज्य में विलय की योजना का इसे एक महत्वपूर्ण अंग समझा ताकि शर्कीयों के ऐसे अधीनस्थ अधिकारी समाप्त किये जाएं। उसने अहमद जिलवानी के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि यदि वह बयाना समर्पित कर दे, तो वह जलेसर, चंदवार, मारहरा और सकीत उसे प्रदान करेगा। जिलवानी ने पहले प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उमर खाँ सरवानी को दुर्ग की कुंजियाँ देने के लिए इच्छा प्रकट की। किन्तु पुन: विचार के बाद उसने विरोध का निश्चय किया। सिंकदर लोदी ने आगरा घेरने का आदेश दिया जो हैबत खाँ जिलवानी के अधीन था। वह सुल्तान अशरफ के प्रति निष्ठावान था और फिर बयाना की और बढ़ा। सुल्तान अशरफ जिलवानी को आत्मसमर्पण के लिए विवश किया गया।1491 ई. में बयाना दिल्ली सल्तनत में मिला लिया गया। सिंकदर लोदी ने बयाना खानेखाना फरमुली के अधिकार में छोड़ा और दिल्ली लौट आया। [770] [771]

सन् 1500 ई. के आसपास सुल्तान को सूबेदार फर्मुली की मृत्यु का समाचार मिला इसके दो पुत्र थे, इमाद सुलेमान को सुल्तान ने फार्मुली का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया, किन्तु समय के अनुसार ये दोनों ही लड़के इतने काबिल नहीं थे कि बयाना जैसे दुर्ग, जो राजमार्ग पर स्थित होने के कारण सदैव ही राजद्रोह और गड़बड़ियों का केन्द्र रहा को सम्भाल पाते। इसलिए सुल्तान ने खव्वास खाँ जैसे बहादुर सेनापति की नियुक्ति इस दुर्ग पर कर दी और इन लडकों को शम्साबाद, जलेसर, माँगरोल, शाहबाद और कुछ इलाके देकर संतुष्ट कर दिया।

सुल्तान सिकन्दर लोदी ने बयाना दुर्ग का सामरिक महत्व और राजमार्गो से अनुबंधित तथा पूर्व में बहाउद्दीन तुगरिल द्वारा बनाई गई सुरक्षित सैनिक छावनी के भग्नावशेशों का गहराई से अध्ययन करने के बाद ही इसे साम्राज्य का भावी राजधानी बनाने का निश्चय किया। लिहाजा इसने तुगरिल द्वारा आबाद किये नगर खंडहरों

जो 1196 ई. में सुल्तानकोट के नाम से ख्याति प्राप्त रहा था, पर आवश्यक निर्माण कराते हुए इसे अपनी राजधानी घोषित कर दिया अर्थात 1501 ई. से सभी योजनाओं का संचालन यही से होने लगा।[772] कालान्तर में क्षेत्र सुल्तान के नाम से सिकन्दर बयाना कहलाया जो वर्तमान तक प्रचलित है। 1501 ई. में सुल्तान ने यही से धौलपुर पर चढ़ाई की।

6.2.2 सिंकदर लोदी और धौलपुर:-

सुल्तान सिकन्दर लोदी ने अब तक अपने विद्रोहियों पर सफलता प्राप्त कर ली थी, किन्तु जब जौनपुर का राज्य संकट के समय से गुजर रहा था। तब वह ग्वालियर पर विजय की योजना बना रहा था लेकिन उस समय ग्वालियर पर आक्रमण करना कठिन था, क्योंकि ग्वालियर का दुर्ग धौलपुर, मंडरैल, अंतगढ़ और नरवर जैसे सुदृढ़ किलों से घिरा था जिसमे नरवर के अतिरक्त शेष पर तोमरों के सामंतों का अधिकार था। अत: ग्वालियर पर विजय प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि सर्वप्रथम वह इन किलों पर विजय प्राप्त करे। धौलपुर पर आक्रमण का दूसरा कारण यह भी था कि उन विद्रोहियों को जिन्होंने बयाना के राज्यपाल इमादुलमुल्क को हटाया था धौलपुर के राय ने उकसाया था। निजामुद्दीन अहमद और फरिश्ता ने धौलपुर के शासक का नाम विनायक देव और इसके विपरीत बदायूँनी और नियामतुल्ला राय मानिक देव बताया है।[773] आधुनिक लेखकों में हरिहर निवास द्विवेदी और गोरेलाल तिवारी ने राय विनायक देव ही स्वीकार किया है।[774] [775]

ग्वालियर विजय करने के क्रम में सर्वप्रथम सुल्तान सिकन्दर लोदी ने धौलपुर पर अधिकार स्थापित करने का निश्चय किया। इसके लिए उसने मेवात के राज्यपाल आलम खाँ रापरी के राज्यपाल खानेंखाना लोहरी और बयाना के नवनिर्युक्त राज्यपाल ख्वाजा खाँ को धौलपुर पर आक्रमण करने का आदेश दिया। धौलपुर के शासक राय मानिकदेव ने शाही सेना से जमकर विरोध किया और ख्वाजा बब्बन[776] नामक एक शाही शूरवीर को इस संघर्ष में मारा डाला गया। जब इन सब की सूचना सुल्तान सिकन्दर लोदी को मिली तो वह संबल से धौलपुर के लिए रवाना हुआ और 25 मार्च, 1501 ई. को धौलपुर[777] पहुँचा। राय मानिक देव भयभीत होकर ग्वालियर कुँच कर गया। ग्वालियर दुर्ग की रक्षक सेना सिकन्दर लोदी की सेना का मुकाबला नहीं कर सकी और अपने को असमर्थ पाकर रात्रि में भाग निकली। इस प्रकार सिकन्दर लोदी का धौलपुर के दुर्ग पर अधिकार हो गया। लोदी सेना ने ना केवल धौलपुर को लूटा बल्कि आस-पास के सात कोस तक समस्त वृक्षों तक को नष्ट कर दिया।[778] तारीखे दाऊदी के अनुसार सिकन्दर लोदी ने इस अवसर पर मन्दिरों के स्थान पर मस्जिदों का निर्माण करवाया।[779]

धौलपुर के दुर्ग पर अधिकार करने के बाद सिकन्दर लोदी एक माह तक वहाँ रहा और इस अवधि में उसने धौलपुर की कानून-व्यवस्था और ग्वालियर विजय की योजना तैयार की। आदमखाँ लोदी को धौलपुर का अधिकारी निर्युक्त कर ग्वालियर के लिए प्रस्थान किया। निहाल के शिष्टमंडल की असफलता के अतिरिक्त ग्वालियर के शासक राय ने धौलपुर के शासक राय मानिक देव सहित अन्य विद्रोहियों को शरण देने के कारण सिकन्दर लोदी उससे चिढ़ा हुआ था। दो माह तक वह ग्वालियर के निकट असान नामक झील के तट पर पड़ाव डाले रहा। अंत में 1503 ई. में राय ने संधि के लिए प्रार्थना की और विद्रोहियों को अपने दुर्ग से निकाल दिया व अपने पुत्र को बंधक के रूप में सुल्तान के पास भेज दिया और बाद में धौलपुर का दुर्ग भी राय मानिक देव को लौटा दिया। प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण सिकन्दर लोदी धौलपुर के दुर्ग को राय मानिक देव के अधीन अधिक दिनों तक सहन नहीं कर सका। 1505 ई. में सुल्तान सिकन्दर लोदी धौलपुर के लिये रवाना हुआ। इस अवसर पर मुस्लिम लेखकों ने किसी संघर्ष का उल्लेख नहीं किया है। जुलाई 1505 ई.के पूर्व धौलपुर पर सुल्तान ने अधिकार जमा लिया था। मुस्लिम स्रोतों के अनुसार धौलपुर का दुर्ग राय मानिक देव से लेकर मलिक मुईनुद्दीन को दे दिया गया। जबकि तबकाते-ए-अकबरी और फरिश्ता ने मलिक मुईनुद्दीन के स्थान पर कमरुद्दीन[780]का नाम लिखा है। 1506 ई. में सुल्तान ने धौलपुर में कारवां सराय[781] बनाने का आदेश दिया था।

6.2.3 सिकन्दर लोदी व नागौर

1570 ई. में फिरोज खाँ द्वितीय नागौर का शासक बना। उसके शासन काल के फ़ारसी तथा देवनागरी अभिलेखों से यह सिद्ध होता कि सांभर, डीडवाना, नारायणा, लाडनू, खाटू तथा उसके निकटवर्ती अन्य स्थान नागौर राज्य के अंतर्गत थे। फिरोज शाह द्वितीय स्वभाव से उदार अन्य राज्यों से आने वाले शरणार्थियों, सूफी, संतों, और विद्वानों को शरण देने तथा उनको दान-दक्षिणा से संतुष्ट किया करता था। उसके शासन काल में सभी धर्मावलम्बियों को धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। वह सभी धर्मो का आदर करता था। उसके शासनकाल में एक बार दिल्ली के सुल्तान सिकन्दर लोदी का एक सेवक मियाँ महमूद फर्मुली जिसे टोडरमल भी कहते थे और जो ख्वाजगी शेख का पुत्र तथा वीरता एवं दान देने में अद्वितीय था। सुल्तान सिकन्दर लोदी तथा अपने पिता से नाराज होकर उसने 60 प्रसिद्ध तथा वीर सहायकों के साथ जो तलवार चलाने में उसी के समान दक्ष थे नौकरी की तलाश में रवाना हुआ और नागौर पहुँचा। फिरोज खाँ द्वितीय ने उन सभी को बड़े आदर सम्मान के साथ अपने पास रख लिया। इन लोगों के द्वारा नागौर में बहुत से महान कार्य सम्पन हुए, जिससे फिरोज खाँ द्वितीय ने प्रसन्न होकर मियाँ महमूद फर्मुली को पताका तथा नक्कारा, जो उस समय के अत्यधिक सम्मानसूचक चिन्ह थे

प्रदान किये। मियाँ महमूद फर्मुली के पास चार सौ अश्वारोही थे जिनकी सहायता से वह नागौर के शासक की सेवा करने लगा। कुछ समय उपरांत जब सिकन्दर लोदी को ज्ञात हुआ कि मियाँ महमूद फर्मुली ने नागौर के शासक के पास नौकरी कर ली है तो उसने उसे उसके पिता ख्वाज्गी शेख सईद के द्वारा नागौर से बुलवा लिया। मियाँ महमूद फर्मुली अपने 60 सहायकों के साथ नागौर गया था, परन्तु नागौर के शासक की कृपा से वह ४०० अश्वारोहियों एवं पताका तथा नक्कारा सहित अत्यधिक सम्मान के साथ नागौर से दिल्ली वापस लौटा।[782]

मोहम्मद खाँ और सुल्तान सिकन्दर लोदी:-

संक्षेप में फिरोज खाँ द्वितीय एक महान शासक की भाँति बड़े गौरव के साथ वीरता एवं उदारतापूर्वक 1497 ई. तक के अंत तक नागौर पर शासन करता रहा।[783] फिरोज खाँ द्वितीय के पाँच पुत्र- मोहम्मद खाँ, अहमद खाँ, अली खाँ, अबुब्रक खाँ, तथा हसन खाँ थे। इन सभी पुत्रों में मोहम्मद खाँ जेष्ठ और योग्य था। अंत: फिरोज खाँ द्वितीय की मृत्यु के बाद मोहम्मद खाँ ही नागौर का शासक हुआ। मोहम्मद खाँ बड़ा वीर एवं कुशल शासक था। परन्तु उसके भाइयों में से अली खाँ और अबुब्रक खाँ को उसका शासक होना पसंद नहीं आया। परिणामस्वरूप उन्होंने गुप्त रूप से उसका विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। यही नहीं उन्होंने 1501 ई. में अपने भाई मोहम्मद खाँ के विरुद्ध किसी प्रकार उसकी हत्या तथा नागौर राज्य पर अधिकार करने की षडयंत्रकारी योजना भी बनाई। किन्तु उन्हें अपने इस दुष्ट कार्य में किसी प्रकार की कोई सफलता न प्राप्त हुई। उनके इस षडयंत्र की सूचना मोहम्मद खाँ को मिल गयी। उसने तत्काल उन लोगों पर आक्रमण कर दिया। जिससे वह भागकर सुल्तान सिकन्दर लोदी के दरबार में शरण हेतु चले गये। मोहम्मद खाँ ने अपने भाइयों तथा तथा सम्बन्धियों के विरोध और उनके सुल्तान सिकन्दर लोदी की सेवा में शरण लेने तथा इससे उत्पन सुल्तान द्वारा नागौर राज्य में हस्तक्षेप के भय के कारण एक कुशल दूरदर्शी राजनीतिज्ञ की भाँति भविष्य का ध्यान रखते हुए, निष्ठायुक्त पत्रों सहित अत्यधिक पेशकश कर दिल्ली के सुल्तान सिकन्दर लोदी की सेवा में भेजी और उसका नाम भी खुत्वे तथा सिक्के में रख दिया। [784] [785] [786] सुल्तान सिकन्दर लोदी ने मोहम्मद खाँ के इस सद्भावनापूर्ण व्यवहार तथा उदारता से प्रसन्न होकर उसके लिये घोड़ा तथा खिलअत भेजा।[787] अली खाँ और अबुबक्र खाँ को सुल्तान सिकन्दर लोदी ने अपने पास रख लिया। अली खाँ को उसने सुई सुबेर की सरकार प्रदान की किन्तु उसने अंत में सुल्तान सिकन्दर के साथ भी वैसे ही शत्रुता प्रकट की जैसे इसके पूर्व नागौर में अपने भाई मोहम्मद खाँ के साथ की थी। सुल्तान सिकन्दर ने अली खाँ की शत्रुता से परिचित होकर सुई सबेर की सरकार अली खाँ से लेकर उसके भाई अबुब्रक खाँ को प्रदान कर दी। और अली खाँ के प्रति इससे अधिक कठोरता न प्रदर्शित की गयी। [788]

[789] इस प्रकार से नागौर के शासकों अपने ही पारिवारिक षड्यन्त्रो के कारण गुजरात के सुल्तानों के आधिपत्यों से निकल कर दिल्ली के सुल्तान सिकन्दर लोदी के प्रभुत्व को स्वेच्छापूर्वक स्वीकार करना पड़ा। परन्तु नागौर के शासक अपने राज्य के आंतरिक मामलों में पूर्ण रूप से इस समय भी उसी प्रकार स्वतंत्र रहा जिस प्रकार से वह इसके पूर्व गुजरात के सुल्तानों के अंतर्गत थे। मोहम्मद खाँ की मुत्यु के बाद उसका जेष्ठ पुत्र फिरोज खाँ तृतीय नागौर का शासक बना वह एक वीर और उदार शासक था। फिरोज खाँ तृतीय ने अपने शासन काल में लोदी वंश का पतन और मुग़ल वंश की स्थापना का हाल देखा।

6.2.4 रणथम्भौर और सुल्तान सिकन्दर लोदी:-

इस समय रणथम्भौर के किले का हाकिम शहजादा दौलत खाँ था जो मालवा के सुल्तान महमूद के अधीन था। इसी समय अली खाँ नागौरी जिसको सुल्तान सिकन्दर लोदी ने सुई सुबेर प्रान्त में नियुक्त किया था। अली खाँ नागौरी ने शहजादा दौलत खाँ से मित्रता बढ़ा कर सुल्तान सिकन्दर लोदी की अधीनता स्वीकार करने पर राजी कर ली। यह निश्चय कराया की रणथम्भौर का किला वह सुल्तान को उपहार में दे दे। इस विषय में सुल्तान के पास प्रार्थना पत्र भेजा। सुल्तान इस सुखद समाचार से प्रसन्न होकर शीघ्र बयाना के पास पहुँच गया। सिकन्दर लोदी चार महीने तक वह शिकार तथा आलिमों और सूफियों विशेष कर सैयिद नैमतुल्लाह तथा शेख अब्दुल्लाह हुसेनी के साथ, जो अपने चमत्कार के लिए प्रसिद्ध थे समय व्यतीत करता रहा। शाहजादा दौलत खाँ और उसकी माता को जो रणथम्भौर के किले के स्वामी थे, अली खाँ ने अत्यधिक प्रोत्साहित करके यह निश्चय किया कि शहजादा शीघ्रातिशीघ्र सुल्तान की सेवा में उपस्थित हो। सुल्तान ने उसे अपने पुत्रों की तरह सम्मानित करके विशेष खिलअत कुछ घोड़े तथा हाथी प्रदान किये और पूर्व निश्चय वादे के अनुसार रणथम्भौर का किला समर्पित करने कहा। संयोग वंश उसी अली खाँ नागौरी ने शत्रुता प्रदर्शित करते हुए शाहजादा दौलत खाँ को इस बात के लिए तैयार किया कि वह रणथम्भौर का किला न दे। उसे अपने वचन को तोड़ने के लिए प्रोत्साहित किया। शाहजादा किले को समर्पित करने में टालमटोल करने लगा। सुल्तान अली खाँ नागौरी की शत्रुता से परिचित होकर की सुई सुबेर की सरकार उसके भाई अबुबक्र को दे दी। उसने अपने स्वाभाविक दया तथा सौजन्य के कारण अली खाँ के प्रति इससे अधिक कठोरता प्रदर्शित नही की और रणथम्भौर के शाहजादे के प्रति भी किसी प्रकार का क्रोध प्रदर्शित नही किया।[790]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मालवा में व्याप्त स्थिति का पूर्ण लाभ उठा कर सुल्तान सिकन्दर लोदी ने उस क्षेत्र में अपनी सत्ता का विस्तार करना चाहा। उसने सुई सोपर को अबूबक्र खाँ को प्रदान कर दी। अबुल फजल के

अनुसार उस समय सुई सोपर रणथम्भौर की सरकार थी। 1571 ई. को सिकन्दर लोदी ने रणथम्भौर की ओर कूच किया, किन्तु कठगढ़ पर विजय प्राप्त नहीं कर सका। रणथम्भौर के राज्यपाल ने उसकी सर्वसत्ता को स्वीकार कर ली।[791]

6.3 इब्राहीम लोदी व राजपूताना (1517-1526 ई.):-

सिकन्दर लोदी की मृत्यु के बाद उसका जेष्ट पुत्र इब्राहीम लोदी 22 नवम्बर, 1517 ई[792]. को गद्दी पर बैठा। वह लोदी वंश का अंतिम शासक था। इस समय तक राजपूताना के मेवात, धौलपुर, अल्ह्नपुर (रणथम्भौर), बयाना, नागौर आदि राज्य दिल्ली सल्तनत के साथ प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से सम्बन्धित थे।

6.3.1 सुल्तान इब्राहीम लोदी व बयाना:-

इब्राहीम लोदी के शासन काल में बयाना का हाकिम मुजाहिद खाँ का बेटा निजाम खाँ था। इसने सुल्तान के शासन काल के तीसरे वर्ष में अपने पिता की स्मृति में एक मीनार का निर्माण करवाया था। इसे वर्तमान में उषा मीनार (मुंडारा) के नाम से पुकारा जाता है। नागौर आदि राज्य दिल्ली सल्तनत के साथ प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से सम्बन्धित थे।

6.3.2 सुल्तान इब्राहीम लोदी व नागौर:-

सुल्तान सिकन्दर लोदी के समय नागौर और दिल्ली सल्तनत के मध्य प्रत्यक्ष सम्बंध था। इसका उल्लेख हम कर चुके है। मोहम्मद खाँ ने बड़ी वीरता और योग्यता के साथ सन् 1497 ई. से 1520 ई. नागौर राज्य पर शासन किया जैसा कि नागौर राज्य से प्राप्त उसके 1504,1506 व1507 ई. के फारसी अभिलेखों जिसमें मोहम्मद खाँ के राज्य काल में उसके वंशजों तथा अन्य लोगों द्वारा मस्जिदों एवं मकबरों आदि बनवाने और उनका जीर्णोद्धार कराने का उल्लेख है। उसी के शासन काल में 1504 ई. में "सारस्वत प्रकिया" 1516 ई. में "कुमार सम्भव" एवं 1519 .ई. में "योगशास्त्रम" आदि रचित पांडुलिपियों से स्पष्ट है कि उसका देहांत 1520 ई. के अंत में हुआ था। मोहम्मद खाँ की मृत्यु के बाद उसका जेष्ट पुत्र फिरोज खाँ तृतीय नागौर का शासक हुआ। वह एक वीर और उदार शासक था उसने अपने शासनकाल में लोदी वंश का पतन और मुग़ल वंश की स्थापना को होते हुए देखा था।[793]

6.3.3 मेवाड़ और सुल्तान इब्राहीम लोदी:-

मेवाड़ अपने अनुपम इतिहास के लिए बेजोड़ है। उसकी परम्पराओं तथा विशुद्ध ऐतिहासिक घटनों में वहाँ के राजा एवं प्रजा के उन साहसपूर्ण कार्यो के ब्योरों देश रक्षा हेतु किये गए बलिदान के वर्णन एवं संस्कृति के संरक्षण के स्तुत्य प्रयत्न समावेशित है। लोदी वंश (1451-1526 ई.) के समय मेवाड़ में प्रमुख रूप से तीन शासक महाराणा कुम्भा 1433-1468 ई. राणा रायमल 1473-1508 ई. और महाराणा सांगा या संग्राम सिंह 1508-1528ई. कुम्भा जैसे प्रतापी और विद्वान शासक की हत्या उसके पुत्र उदा द्वारा की गयी। उसकी महत्वकांक्षा में संकुचितता एवं अनुदारता थी जिसको स्वाभिमानी सामंत सहन नहीं कर सके। उन्होंने उदा के छोटे भाई रायमल को राज्य लेने के लिये अपने ससुराल ईडर से बुलाया। 1573 ई. रायमल का मेवाड़ पर अधिकार हो गया। रायमल वैसे तो अपनी वंश परम्परा के अनुकूल मांडू के सुल्तानों और अन्य शत्रुओं से संघर्ष करता रहा परन्तु उसके पुत्रों और भाई-भतीजों के विरोध से राज्य की स्थिति निर्बल होती रही। इस स्थिति से आंतरिक सुरक्षा और आर्थिक व्यवस्था को बड़ा धक्का लगा।

भाग्यवश इस प्रकार की अव्यवस्था से मेवाड़ की बाह्य प्रतिष्ठा को कोई हानि नहीं हुई इसका प्रमुख कारण यह था कि उस समय की दिल्ली सल्तनत उतनी प्रबल नहीं थी कि जो मेवाड़ की आन्तरिक स्थिति से कोई लाभ उठा सके। सिकन्दर लोदी जो उस समय का दिल्ली का शक्तिसम्पन सुल्तान था। अपने पड़ोसी विरोधियों को एवं सामंतों को ठीक करने में व्यस्त था। प्रांतीय राज्य भी केन्द्रीय सत्ता से समान अधिकार प्राप्त करने की होड़ में लगे हुए थे। मालवा व गुजरात के सुल्तान महमूद द्वितीय और मुजफ्फर शाह द्वितीय भी दिल्ली की और अपनी आँखें लगाये हुए थे। इन्हें मेवाड़ के साथ युद्ध छेड़कर बड़ी हानि उठानी पड़ी। जिससे उनमें महाराणा के विरूद्ध सक्रिय कदम उठाने का साहस नहीं रहा था।[794]

जब दिल्ली सल्तनत और मेवाड़ की स्थिति बड़ी विषम अवस्था से गुजर रही थी कि संग्राम सिंह जो सांगा के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। 1508-1509 ई. में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा।[795] राणा सांगा को एक और मालवा एवं गुजरात के सुल्तानों के साथ संघर्ष करना पड रहा था, तो दूसरी और दिल्ली सल्तनत के लोदी सुल्तानों को भी जमकर टक्कर दी। इस समय दिल्ली का सुल्तान सिकन्दर लोदी था। गौरी शंकर हिराचन्द ओझा के अनुसार सुल्तान सिकन्दर लोदी के समय से ही महाराणा सांगा ने दिल्ली सल्तनत को निर्बल समझकर उसके अधीनस्थ वाले मेवाड़ के निकटवर्ती भागों को अपने राज्य में मिलाना शुरू कर दिया। लेकिन सिंकदर लोदी के अपने

आंतरिक समस्याओं में उलझे रहने के कारण वह महाराणा सांगा के साथ कोई कार्यवाही नहीं कर सका। सुल्तान सिकन्दर लोदी की मृत्यु के बाद 1517 ई. में उसका पुत्र इब्राहीम लोदी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा, तो राणा से युद्ध होना आवश्यक हो गया, क्योंकि राणा भी उतना ही महत्वाकांशी शासक था। तब उसने एक बड़ी सेना के साथ मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी।[796] [797]

ओझा का उपर्युक्त वर्णन सत्य प्रतीत नहीं होता क्योंकि इसकी पुष्टि अन्य स्रोतों से नहीं होती है। प्रथम तो सुल्तान सिकन्दर लोदी इतना निर्बल शासक नहीं था। दूसरा महाराणा सांगा इस समय मालवा में महमूद द्वितीय के विरूद्ध संघर्ष में उलझा हुआ था। तीसरा सुल्तान इब्राहीम लोदी के पास इतना समय नहीं था कि वह गद्दी पर बैठते ही मेवाड़ पर चढ़ाई कर देता। इसके अतिरिक्त मेवाड़ और दिल्ली सल्तनत के मध्य संघर्ष के निम्नलिखित कारण थे –कविराजा श्यामलदास के अनुसार-सिंहासन पर बैठने के पश्चात राजपूताने पर अधिकार स्थापित करने के लिए राणा सांगा ने अजमेर पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया और उसे अपने आश्रयदाता कर्मचंद पंवार को अजमेर का पट्टा पर दे दिया था।[798] तारीखे शाही के लेखक अहमद यादगार के अनुसार इसके पश्चात राणा ने चाकसू को भी दिल्ली सल्तनत से छीन लिया। जहाँ उसने सैयद परिवारों पर भीषण अत्याचार किये। यह कार्य सुल्तान सिकन्दर लोदी के समय हो चुका था। दिल्ली की गद्दी पर बैठने के बाद इब्राहीम लोदी ने राणा की इस कार्यवाही का यथोचित प्रतिकार करना चाहता था।[799]

हरविलास शारदा ने संघर्ष का कारण यह बताया है कि इब्राहीम लोदी जब अपने भाई जलाल खाँ के विरूद्ध संघर्ष में लीन था। ऐसे उपयुक्त अवसर पर राणा ने बयाना के प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। यह कार्यवाही सुल्तान के लिये कड़ी चुनौती थी। अत: आंतरिक संघर्ष समाप्त होते ही सुल्तान इब्राहीम लोदी के लिए बयाना को पुन: प्राप्त करने का मुख्य प्रश्न था।[800]

राणा और सुल्तान इब्राहीम लोदी के मध्य मालवा का राज्य डॉ. अवध बिहारी पाण्डेय के अनुसार कबाब में हड्डी की तरह था। पाण्डेय ने अपनी पुस्तक फर्स्ट अफगान एम्पायर इन इंडिया में लिखा है कि दोनों उस पर अधिकार करना चाहते थे।[801] सिकन्दर लोदी द्वारा चंदेरी और इब्राहीम लोदी द्वारा ग्वालियर पर अधिकार करने के कारण दिल्ली सल्तनत और मेवाड़ राज्य की सीमा आपस में जा टकराई। कुंभा की मृत्यु और सांगा के सिंहासन्रोहन के बीच के काल में सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि मालवा सल्तनत तेजी से बिखरती चली गयी। वहाँ के सुल्तान महमूद द्वितीय की पूर्वी मालवा के शक्तिशाली राजपूत नेता से जिसने महमूद को गद्दी हासिल करने में मदद दी थी अनबन हो गयी थी। महमूद द्वितीय ने गुजरात से सहायता की याचना की तो मेदिनीराय

भी सांगा के दरबार में पहुँच गया और पूर्वी मालवा जिसमे चंदेरी[802] भी शामिल था। राणा के प्रभुत्व में आ गया। दिल्ली के लोदी शासक इस परिस्थिति को बहुत दिलचस्पी के साथ देख रहे थे। मालवा के पराजय की घटना से वे चिंतित हो उठे और दोनों शासक मालवा में हस्तक्षेप कर अपना प्रभुत्व बढ़ाने के लिए प्रयासरत थे।[803] [804]

6.3.4 खातोली का युद्ध 1517. ई.:-

सुल्तान इब्राहीम लोदी और राणा सांगा के मध्य पहला युद्ध बूंदी के निकट खातोली नामक स्थान पर हुआ। वीर विनोद के अनुसार सुल्तान इब्राहीम लोदी को जब ये समाचार मिले कि महाराणा सांगा ने दिल्ली सल्तनत के प्रदेशों पर अधिकार करना शुरू कर दिया है। तो इब्राहीम लोदी बड़ी सेना लेकर चित्तौड़ की तरफ रवाना हुआ और ये खबर सुनकर महाराणा सांगा भी अपने बहादुर राजपूतों के साथ रवाना हुआ। हाड़ौती की सीमा पर खातोली गाँव के पास दोनों फौजों में युद्ध हुआ। दो पहर तक लड़ाई होती रहने के कारण लोदी की सेना पलायन करना लगी। सुल्तान लोदी ने सेना को रोकने के लिए बहुत प्रयास किया, लेकिन उसे सफलता नहीं मिली तब उसको भी सेना के साथ पलायन पड़ा। लेकिन लोदी के एक शाहजादे ने पीछा कर महाराणा की सेना का मुकाबला किया जिससे वह पकड़ा गया। इस लड़ाई में महाराणा सांगा का एक हाथ तलवार से कट गया और वह एक पैर से लंगड़ा हो गया। इसके बाद महाराणा ने चित्तौड़ आकर शाहजादे से कुछ दंड लेकर छोड़ दिया।[805] राजपूत स्रोतों में भी दोनों पक्षों के संघर्ष में राणा का "खातोली" के युद्ध में पूर्ण विजयी[806] होने का उल्लेख मिलता है। कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार दिल्ली और मालवा के सुल्तानों के साथ अठारह बार संघर्ष किया जिसमे से उसने इब्राहीम लोदी से बकरोल और खातौली में संघर्ष किया था जिसमें से अंतिम संघर्ष[807] में राणा सांगा ने इब्राहीम लोदी की सेना को बुरी तरह पराजित किया था। राणा सांगा और इब्राहीम लोदी के बीच शेख रिज्कुल्लाह मुश्ताकी[808] व तारीखे दाऊदी[809] में अब्दुल्लाह ने एक बार और अहमद यादगार[810] के अनुसार दो बार युद्ध का उल्लेख किया है।

6.3.5 बारी (धौलपुर) का युद्ध 1518-19 ई.:-

अपने भाई व राज्य के प्रतिद्वंदी जलालुद्दीन और ग्वालियर के राजा मान को पराजित करने के उपरांत इब्राहीम लोदी ने एक साल पूर्व हुई खातोली की पराजय का प्रतिशोध लेने के लिये मियाँ माखन के नेतृत्व में मियाँ मारुफ़ और मियाँ हुसैन फर्मुली सहित चालीस हजार अश्वोरोहियों को महाराणा सांगा से युद्ध करने का आदेश दिया।

शीघ्र ही इब्राहीम लोदी अपनी शंकालु प्रवृति के कारण मियाँ माखन को गुप्त रूप से आदेश दिया कि वह मियाँ मारुफ़ और मियाँ हुसैन फर्मुली को बंदी बना ले। परन्तु मियाँ माखन द्वारा कार्यवाही करने से पहले ही इसकी जानकारी मियाँ हुसैन को मिल गयी। इसलिए वह अपने समर्थकों को लेकर महाराणा सांगा से मिल गया। इसी समय महाराणा सांगा ने धौलपुर के नजदीक लोदी सेना पर धावा बोल दिया। मियाँ हुसैन का महाराणा सांगा के साथ मिल जाने के उपरांत भी मिया माखन की सेना में तीस हजार अश्वारोही और तीन सौ हाथी थे। मियाँ माखन ने दायें व बायें भाग की सेना का नेतृत्व किया। महाराणा की सेना ने जान हथेली पर रख कर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इस युद्ध में लोदी सेना की पराजय हुई। उसके अधिकांश योग्य योद्धा मारे गये और अन्य लोग भाग कर अन्य स्थल चले गये। बुरी तरह पराजित होने व क्षति के उपरांत मियाँ माखन को वापस लौटना पड़ा। तारीखे दाऊदी के लेखक अब्दुल्लाह के अनुसार महाराणा सांगा सेना लेकर इब्राहीम की सेना के विरूद्ध रवाना हुआ। मियाँ माखन को जो सेनापति था, को उचित दंड देकर पराजित कर दिया। महाराणा सांगा की सेना ने सुल्तान इब्राहीम लोदी की सेना का बयाना तक पीछा करते हुए अत्यधिक लोगों की हत्या कर दी (अब्दुल्लाह, तारीखे दाऊदी (उत्तर तैमूरकालीन भारत),1958) । इस जीत से मालवे का कुछ हिस्सा जो मांडू के सुल्तान महमूद खिलजी के छोटे भाई के विरूद्ध विद्रोह कर हड़प लिया था। जिस पर पीछे से सुल्तान सिंकन्दर लोदी का अधिकार हो गया था। महाराणा को मिले हुए बहुत से स्थानों में से एक चंदेरी भी था जो उन्होंने मेदनीराय को दे दिया। अब्दुल्लाह शेख रिज्कउल्लाह और अहमद यादगार ने महाराणा सांगा की विजय का श्रेय मियाँ हुसैन को दिया है। अब्दुल्लाह के अनुसार वह वहाँ से तोदा चला गया। वहाँ से वह षडयंत्र करके महाराणा सांगा से मिल गया (अब्दुल्लाह,1958) । इसके विपरीत रिज्कउल्लाह का कहना है कि मियाँ हुसैन इस आक्रमण के समय धीरे-धीरे बढ़ रहा था। घोड़ो को तेज नहीं बढ़ा रहा था। वह चाहता था दोनों सेनाओं में युद्ध हो तो इनकी विजय हो (मुश्ताकी,1958) । अहमद यादगार के अनुसार यद्यपि मियाँ हुसैन महाराणा सांगा के साथ था। युद्ध के समय वह उपस्थित भी था लेकिन उसके लिए यह आवश्यक था कि सुल्तान के नमक का हक अदा किया जाये। इसलिये उसने मियाँ माखन की सेना का मुकाबला नहीं किया है (यादगार, तारीखे शाही (उत्तर तैमूर कालीन भारत), 1958) ।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि फारसी लेखकों की तवारीखों में काफी भिन्नता है। जिससे उनका मत खंडित हो जाता है। मियाँ हुसैन की स्थिति राणा के साथ होते हुए युद्ध क्षेत्र में हमेशा संदेहास्पद ही रही है। इनमें इस युद्ध

में महाराणा सांगा की हार होना भी उल्लेखित है। लेकिन बाबर ने धौलपुर की लड़ाई में राजपूतों की विजय होना लिखा है जो पिछली तवारीखों की तुलना में विश्वसनीय है। वैसे तो स्थानीय साहित्य में राणा के द्वारा कई बार दिल्ली मांडू तथा गुजरात के सुल्तानों को पराजित करने का उल्लेख है। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि महाराणा सांगा ने इन सुल्तानों को बारी-बारी से पराजित कर अपने साहस और शौर्ये का परिचय दिया था। इन विजय से उत्तरी भारत का नेतृत्व उसे ही प्राप्त हो गया (इलियट ए. ड., 1869)।

अब्दुल्लाह के अनुसार मियाँ माखन के नेतृत्व वाली सेना की पराजय की सूचना जब सुल्तान इब्राहीम लोदी को मिली तो वह आगरा से रवाना होकर कनेरी नदी के पर पहुँचा। आगे शेख रिज्कउल्लाह लिखता है मियाँ हुसैन खाँ सुल्तान इब्राहीम की सेवा में चला गया। ऐसी स्थिति में राणा वापस चला गया। महाराणा सांगा के शिविरों को ग्रामीणों ने नष्ट कर दिया, फिर उसने पीछे मुडकर कर नहीं देखा (रिजवीं, 1958)।

इससे आगे का वर्णन अहमद यादगार ने लिखा है उसके अनुसार उस रात मियाँ हुसैन खाँ ने मियाँ माखन को संदेश भेजा। अब आप को हितैषियों का महत्व ज्ञात हो गया होगा। खेद है कि 30000 अश्वोरोही गिनती के थोड़े से हिन्दुओं द्वारा पराजित हो गये है। अब आप निष्ठावान दासों की नमक हलाली की लीला देखें। उसने गुप्त रूप से मियाँ मारुफ़ खाँ को संदेश भेजा। जब आधी रात हो जाये तो सेना को युद्ध के लिए तैयार करके मुझे से भेंट करे। कारण यह कि मियाँ माखन की सरदारी देख ली है। अब ये आवश्यक है कि सुल्तान के नमक का हक अदा किया जाये। मियाँ मारुफ़ खाँ छ: हजार अश्वारोहियों को युद्ध के लिए तैयार करके मियाँ हुसैन खाँ की सेना से दो कोस की दूरी पर पहुँच गया। उसने सूचना कराई। दोनों सेना एक स्थान पर एकत्र हुई। राणा की सेना अपने विजय पर अभिमान करके भोग-विलास में ग्रस्त गई हो थी। कुछ लोग सो रहे थे और मौत उनकी असावधानी पर हँस रही थी। अचानक नक्कारे तथा तुरही की ध्वनि ने काफिरों के सावधानी के कानों से असावधानी की रुई निकाल दी। वे परेशान हो गये। अफगानों ने तलवार निकाल कर कत्ले आम शुरू कर दिया। राणा घायल होकर अधमरा हो गया। कुछ लोगों के साथ भाग गया। अन्य लोगों ने भी प्राण तलवारों को दे दिये। लोदी के पुत्र मियाँ बायजीद ने जो सेना का बख्शी था और हुसैन खाँ का मित्र था। मियाँ हुसैन खाँ और मियाँ मारुफ़ खाँ के विजय-पत्र सुल्तान की सेवा में लिखे। तदुपरान्त मियाँ हुसैन खाँ ने 15 हाथी 300-400 उत्तम घोड़े तथा अत्यधिक लूट की धन-सम्पति देहली भेजी। सुल्तान ने इस विजय की बड़ी खुशियाँ मनाई। उसने आदेश दिया कि ख़ुशी के नक्कारे बजाये जाये। तदुपरान्त अत्यधिक कृपा प्रदर्शित करते हुए फरमान लिखा

जिसमे दो विशेष खिलअते, दो कटार, दो प्रसिद्ध हाथी तथा चार घोड़े हुसैन खाँ एवं मियाँ हुसैन खाँ के पास भेजे (यादगार, 1958)।

गौरीशंकर हिराचंद ओझा (ओझा ग. ह., उदयपुर राज्य का इतिहास (हिस्ट्री ऑफ़ राजपूताना), 1927) और हर विलास शारदा (शारदा, 1932) के अनुसार अहमद यादगार के उपर्युक्त वर्णन पर विश्वास नहीं किया जा सकता है क्योंकि तारीखे दाऊदी और वाकयाते मुश्ताकी दोनों इस सम्बंध में कुछ नहीं लिखते है। इन अमीरों के पास इतने अधिक सैनिक नहीं थे, जिनकी सहायता से वह ऐसा करने में सक्षम नहीं थे। दोनों पक्षों में युद्ध के परिणामस्वरूप मालवा के एक बड़े भूभाग व बयाना तक के भू-भाग पर महाराणा सांगा का आधिपत्य इस द्वितीय अभियान को मिथ्या सिद्ध करता है। यदि मियाँ हुसैन खाँ की सहायता से सुल्तान की विजय हुई तो वह युद्ध के कुछ दिनों बाद चंदेरी में उसका वध नहीं करवाता।

अहमद यादगार द्वारा वर्णित द्वितीय आक्रमण के सम्बंध में निश्चियत तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता है। अत: दोनों पक्षों के संघर्ष को अनिर्णित संघर्ष कहना ही उचित होगा। इस संघर्ष में जहाँ राणा साँगा को अपने महत्वपूर्ण शारीरिक अंगों से हाथ धोना पड़ा। वहीं इब्राहीम लोदी को इस संघर्ष के परिणामस्वरूप भू-भागों से हाथ धोना पड़ा। ज्योंही चंदेरी में इब्राहीम लोदी के प्रतिनिधि मियाँ हुसैन की हत्या हुई। त्योहीं राणा सांगा ने चंदेरी पर आक्रमण कर उस पर आधिपत्य स्थापित कर लिया (इलियट, 1869)। तुजुक-ए-बाबरी में भी इब्राहीम की पराजय की लिखी हुई है। इस प्रकार एक अर्थ में राणा अनिर्णित संघर्ष को निर्णायक संघर्ष का रूप देने में सफल हो गया। (टॉड, एनाल्स एंड एंटीकुतिज ऑफ़ राजस्थान, 1920) कर्नल टॉड के अनुसार बयाना के निकट बहने वाली पिलखाल मेवाड़ की उत्तरी सीमा बन गयी। इन विजय से उत्तरी भारत का नेतृत्व भी उसे प्राप्त हो गया। सुल्तान इब्राहीम लोदी की यह पराजय महाराणा की प्रतिष्ठा बढ़ाने में सहायक बनी। वैसे तो दिल्ली सल्तनत के शासक निर्बल हो गये थे फिर भी उनकी एक प्रतिष्ठा थी। वे देश के शासक माने जाते थे। दिल्ली के शासक को पराजित करने से राजनीतिक धुरी मेवाड़ की और हो गयी और सभी शक्तियाँ देशी व विदेशी सांगा की शक्ति को मान्यता देने लगी। मेवाड़ की शक्ति की यह चरम सीमा थी। राणा इन विजयों में राजपूत संगठन का नेता स्वीकार किया गया था। राणा सांगा से बुरी तरह हार कर वह दिल्ली लौट गया। यहाँ अपनी आन्तरिक स्थिति को मजबूत करने के काम में लग गया। इस बीच भारत के दरवाजे पर बाबर दस्तक दे

रहा था। इस प्रकार 1525 तक उत्तरी भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ तेजी से बदलने लगी थी। इस प्रदेश पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए एक निर्णायक युद्ध अवश्यंभावी प्रतीत हो रहा था ।

निष्कर्ष:-

छोटे से राज्य मेवाड़ द्वारा वृहद दिल्ली सल्तनत का सामना कर उसे परास्त कर देना राणा सांगा के लिए एक गौरवपूर्ण कार्य था। इससे राणा की ख्याति में वृद्धि नहीं हुई बल्कि राजपूताने के शासकों के लिए वह सम्मानित शासक हो गया। धौलपुर की विजय ने राणा सांगा को राजपूताना का प्रतिनिधित्व ही नहीं प्रदान किया। बल्कि उत्तरी भारत में हिन्दू-शासकों और राज्यों में वह सर्वशक्तिशाली शासक पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। डॉ. गोपीनाथ शर्मा के अनुसार अब राजनीतिक धुरी दिल्ली की जगह मेवाड़ की ओर घूम गई और सभी देशी और विदेशी शक्तियाँ राणा सांगा की शक्ति को मान्यता प्रदान करनी लगी। मेवाड़ की शक्ति की यह चरम सीमा थी। हमारे शब्दों में राणा इन विजयों में राजपूत संगठन का नेता स्वीकार कर लिया गया था। उसके व्यक्तित्व में हिन्दू शौर्य की आभा देदीप्यमान हो चली थी (शर्मा ग., राजस्थान का इतिहास, 1971)।

उपसंहार

1173 से 1526 ई. तक का राजपूताना का इतिहास पूर्व मध्यकालीन एवं मध्यकालीन भारतीय इतिहास की मुख्य धारा के साथ जुड़ा हुआ है। यदि हमनें इस समय या इससे पूर्व के राजपूताना के इतिहास का अध्ययन नहीं किया तो हम भारतीय इतिहास में अपनी समझ नहीं बढ़ा पायेगें। इसे मुगलों के साथ सम्बद्ध करने की भूल करते रहेगें। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में मुगल काल 1526 से 1707 ई. व राजपूताना के सम्बन्धों के बारे अपेक्षित जानकारी उपलब्ध है। जबकि इन सम्बन्धों की पृष्ठभूमि दिल्ली सल्तनत 1173 से 1526 ई. के समय बन चुकी थी। जब मुगल बादशाह अकबर ने भारत वर्ष की विभिन्न रियासतों को विजित किया और अंतत: इसमें वह सफल भी रहा। बादशाह अकबर अपनी इन विजय को स्थायी बनाना चाहता था। इसलिए उसने दिल्ली सल्तनत व भारत वर्ष की विभिन्न रियासतों विशेषकर राजपूताना की रियासतों के इतिहास को समझने के लिए उस समय के उपलब्ध साहित्य जैसे अरबी फारसी व हिंदी के ग्रंथों का अनुवाद करवाना शुरू किया था। इसी कारण बादशाह अकबर ने राजपूतों के साथ एक विशेष नीति का अवलम्बन किया। वह राजपूतों के सहयोग से अपने साम्राज्य को सुरक्षित रख पाया। राजपूताना की विभिन्न रियासतों ने 1173 से 1526 ई. या इससें पूर्व के भारतवर्ष के इतिहास में अपनी विशेष पहचान रखती है। इस क्षेत्र का इतिहास अनुसंधान की दृष्टि से अपेक्षित ही रहा है।

प्राचीन भारत में सम्राट हर्ष को अंतिम महान हिन्दू शासक कहा जाता है । परन्तु यह गौरव उसकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गया। क्योकिं उसका प्रशासन सामंतवाद पर आधारित था। हर्ष की मृत्यु के बाद सामंती तत्व शक्तिशाली हो गये । उन्होंने स्वंत्रत सत्ता की स्थापना कर ली । उत्तर व पश्चिमी भारत में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। इन्ही परिस्थतियों में पूर्व मध्य युग के प्रारम्भ में राजपूताना के विभिन प्रदेशों में राजपूत जाति के वीरों ने अपने अपने राज्यों की स्थापना की। इनके द्वारा स्थापित राज्य स्थान विशेष अथवा अपने वंश के नाम से प्रसिद्व हुए। कालान्तर में इन्हें विविध राजपूत राज्यों की संज्ञा दी गयी ।

ये राज्य व राजपूत वंश जैसे अजमेर का चौहान राजपूत वंश, मेवाड़ का गुहिल राजवंश, मारवाड़ राज्य में राठौड़ वश, रणथम्भौर का चौहान वंश, जैसलमेर राज्य के यदुवंशी भाटी राजपूत, आमेर के कछवाहों राजपूत,

जालौर के सोनगरा चौहान, नागौर, बयाना, मंडौर, बूंदी, मेवात या अलवर, करौली का यदुवंशी राजपूत वंश, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, सिरोही राज्य, गागरौण का राज्य आदि थे।

712 ई. में सिंध में अरब शासन की स्थापना हुई। परन्तु वे सिंध से आगे नही बढ़ सके। भारत में इस्लामी राज्य की स्थापना का श्रेय तुर्कों को दिया जाता है। महमूद गजनवी ने11वीं सदी में भारत पर आक्रमण किया। भारत सहित राजपूताना के विभिन राजपूत राज्यों की सैन्य शक्ति को कमजोर कर दिया और उनकी धन सम्पति को खूब लुटा। लेकिन महमूद गजनवी ने उत्तर–पश्चिम सिंध, पंजाब व मुल्तान के अलावा भारत के किसी क्षेत्र को अपने साम्राज्य में सम्मिलित करने में कोई रूचि नही ली।

महमूद गजनवी के आक्रमणों के 148 वर्षो बाद मुहम्मद गौरी ने भारत पर आक्रमण किया। जिसके परिणामस्वरूप भारत में तुर्की राज्य की स्थापना हुई। तुर्कों के इन 320 वर्षों का शासन काल भारत के इतिहास में दिल्ली सल्तनत (1206-1526 ई.) के नाम से जाना जाता है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में शोधार्थी ने सप्तम अध्यायों के अंतर्गत दिल्ली सल्तनत व उसका राजपूताना के साथ सम्बन्धों (1173-1526 ई.) का विश्लेषणात्मक रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

प्रथम-अध्याय, राजस्थान: एक परिचय में राजस्थान के विभिन्न प्रदेशों के प्राचीन व मध्यकालीन प्रदेशों के नामों का उल्लेख किया गया है। राजपूताना से राजस्थान नाम तक की विकास यात्रा का वर्णन,राजस्थान की भौगोलिक विशेषताओं का वर्णन और किस प्रकार राजस्थान की भौगोलिक स्थिति ने यह के इतिहास को प्रभावित किया आदि का वर्णन किया है। राजपूताना के प्रमुख राज्यों की स्थापना से लेकर दिल्ली सल्तनत की स्थापना(1206 ई.) तक की ऐतिहासिक प्रष्ठभूमि की विवेचना की गई है।

द्वितीय अध्याय ***"मोहम्मद गौरी (1173-1206 ई.), गुलाम वंश (1206-1290 ई.) व राजपूताना"*** की विवेचना से स्पष्ट होता है कि गौर प्रदेश जहाँ से शंसबानी राजवंश के मोहम्मद गौरी ने भारत पर आक्रमण किया। वह आधुनिक अफगानिस्तान में स्थित है। इसी मोहम्मद गौरी ने बाहरवीं सदी के चतुर्थ में भारत पर आक्रमण किये। यह अपना साम्राज्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। मोहम्मद गौरी के आक्रमण के समय भारत की स्थिति में राजवंशों के परिवर्तन के अलावा और कोई परिर्वतन नहीं हुआ। सिंध और मुल्तान में शिया मुस्लिम राज्य था। गुजरात में चालुक्य, दिल्ली और अजमेर में पृथ्वीराज चौहान, कन्नौज में जयचंद, बुन्देलखंड

में चन्देल, बंगाल में पाल व सेन का शासन था। दक्षिण भारत अलग थलग था। उत्तरी भारत की राजनीति भी इस समय उदासीन थी।

मोहम्मद गौरी के भारतवर्ष पर जो आक्रमण हुए उसके पीछे उसका मुख्य उद्देश्य भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना करना था। वह एक महत्वाकांक्षी और साहसी व्यक्ति था धार्मिक भावना, भारत से धन प्राप्त करना इन्हीं सब उदेश्यों से मोहम्मद गौरी ने भारतवर्ष पर आक्रमण करने की योजना बनायी।

गुजरात के चालुक्य शासक भीमदेव द्वितीय 1178-1248 ई. के विरुद्ध आक्रमण करने के लिए मोहम्मद गौरी ने 1178 ई. में मुल्तान से रवाना हुआ। वह मुल्तान से ऊँच्छ, देरावर (वर्तमान पाकिस्तान में) बीकमपुर, लुद्रवा से होते हुए गुजरात जा रहा था। जैसलमेर रावल शालिवाहन ने उन्हें सुरक्षित मार्ग नहीं दिया और उनका रास्ता रोक दिया। गौरी के पहले आक्रमण को भाटियों ने पीछे धकेल कर विफल कर दिया था, पर बाद की झड़पों में वह हार गये। किन्तु जैसा कि डेढ़ सौ पचास वर्ष पहले रावल बाछुजी के समय भाटियों ने महमूद गजनवी की सेना के साथ किया था। वैसा ही गौरी की सेना के पिछले व पाशर्व भागों पर बार-बार धावे करके भाटियों ने उन्हें परेशान करके भौतिक हानि पहुँचा कर किया। गुजरात अभियान के समय ही पृथ्वीराज विजय महाकाव्य के अनुसार मोहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज चौहान को तटस्थ रखने के लिए उसके पास दूत भेजा था, क्योंकि उसे अनुमान था कि वह चालुक्य शासक की मदद कर सकता है। पृथ्वीराज चौहान चालुक्य की सहायता करना चाहता था। पर अपने मंत्री कदम्बवास के कारण वह ऐसा नहीं कर सका। लेकिन मोहम्मद गौरी इस युद्ध में राजपूताना के सिरोही राज्य के कायर्दा नामक स्थान पर पराजित हुआ था। यह भारत में मोहम्मद गौरी की प्रथम पराजय थी।

अजमेर व दिल्ली का चौहान शासक पृथ्वीराज तृतीय इस समय अपने दिग्विजय की योजना को साकार रूप दे चुका था। वह एक वृहत राज्य का स्वामी था। जिससे उसका सीधा सर्म्पक तुर्की राज्य सीमा से होना स्वाभाविक था। चौहान और तुर्क एक प्रकार से निकट के पड़ौसी और शत्रु निर्धारित हो चुके थे। ऐसी स्थिति में यदि चौहान अपनी शक्ति को स्थिर बनाये रखना चाहते थे, तो उन्हें तुर्को को उत्तर-पश्चिम सीमांत भागों से निकाल देना आवश्यक था। और यदि मोहम्मद गौरी तुर्की सल्तनत का विस्तार करना चाहता था तो उसके लिए दिल्ली और अजमेर जितना आवश्यक था जो भारतीय सत्ता का प्रमुख केन्द्र था। इस प्रकार की राजनीतिक स्थिति ने 1178 से 1190 ई. के बीच चौहान-तुर्क छेड़छाड़ को जन्म दिया।

तराईन के द्वितीय युद्ध के बाद भारत में दिल्ली सल्तनत की स्थापना का सूत्रपात हुआ। लेकिन अभी भी उनके लिए राजपूताना विजय की राह आसन् नहीं थी। चौहानों पर विजय प्राप्त करने के बाद मोहम्मद गौरी गजनी लौट गया। भारतीय प्रदेशों का प्रशासक कुतुबुद्दीन ऐबक को नियुक्त किया। इस दौरान कुतुबुद्दीन को राजपूताना में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। राजपूताना के जैसलमेर, मारवाड़, बयाना, रणथम्भौर के शासकों ने तुर्कों का प्रतिरोध जारी रखा। राजपूताना में गौरी की यह विजय अभी अस्थायी थी। तुर्कों के करद शासक के रूप गोविन्दराज को चौहान राजपूतों ने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने हरिराज के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। परिणामस्वरूप कुछ समय के लिए सही अजमेर में पुन: पृथ्वीराज तृतीय के वंशज व भाई हरिराज का राज्य स्थापित हो गया। अजमेर के मुस्लिम गवर्नर के अत्याचार अथवा जबरदस्ती कर की वसूली के कारण अजमेर के मेर लोगों ने विद्रोह कर दिया। यह भारत में तुर्की शासन की स्थापना करने वालों के विरूद्ध भारतीय जनता द्वारा किये गये सबसे बड़े एवं व्यापक विद्रोह के रूप में अजमेर के मेर विद्रोहों को स्वीकार किया जाता। रणथम्भौर पर भी मोहम्मद गौरी की विजय स्थायी सिद्ध नहीं हो सकी। हरिराज के विद्रोह के कारण रणथम्भौर में व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी। कुछ समय बाद कुतुबुद्दीन ऐबक को इस पर दुबारा अधिकार करना पड़ा। कुतुबुद्दीन ऐबक के द्वारा रणथम्भौर के प्रशासनिक कार्यो को सुव्यवस्थित किया। परन्तु इस बार कुतुबुद्दीन ऐबक ने गोविन्दराज को अजमेर का राज्य ना देकर रणथम्भौर का राज्य दिया। रणथम्भौर का दुर्ग गोविन्दराज के अधिकार में आने से कई वर्षों तक यह दुर्ग उसकी राजधानी रहा। गोविन्दराज की मृत्यु के बाद उसका पुत्र बल्हणदेव व उसके उत्तराधिकारियों ने कुछ वर्ष बाद रणथम्भौर को स्वतंत्र करा लिया। तराईन के द्वितीय युद्ध के बाद पृथ्वीराज तृतीय या अजमेर व दिल्ली के चौहान वंश का अंत नहीं हुआ बल्कि वह दिल्ली व अजमेर की जगह रणथम्भौर में स्थापित हो गया। जालौर में सोनगरा चौहान शासक कीर्तिपाल व समरसिंह के राज में अपनी शक्ति का संचय कर रहे थे। इन पर मोहम्मद गौरी व उसके अधिकारी कोई निर्णायक विजय प्राप्त नहीं कर सके।

राजपूताना के नागौर में 1200 ई. तक मोहम्मद गौरी ने अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर लिया।बयाना के शासक कंवरपाल ने भी मोहम्मद गौरी के द्वितीय भारत अभियान के दौरान आत्मसमर्पण कर दिया। शेष राजपूताना में तुर्कों का विरोध जारी था।

मोहम्मद गौरी और उसके सेनापतियों के नेतृत्व में हुए भारतीय अभियानों का फल यह हुआ कि महमूद गजनवी द्वारा स्थापित हिन्दू और मुस्लिम साम्राज्य की सीमा रावी नदी से हटकर ब्रहा पुत्र की घाटी तक पहुँचीं। इस

बीच के समस्त भू-भाग को उन्होंने स्थायी न सही आँधी की भाँति ही झनझौर अवश्य दिया। लाहौर में स्थापित नया राजवंश कालान्तर में इन्हीं भू-भागों पर अपना स्थायी अधिकार स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील हो गये।

रावी के तट से ब्रह्मापुत्र की घाटी तक मुस्लिम साम्राज्य को विस्तारित करने वालों को भी कायद्रा एवं तराईन के प्रथम युद्ध में शर्मनाक पराजय झेलनी पड़ी थी। इसके पश्चात भी तराईन दिल्ली, मेरठ, बरन, कोल, चन्दवार, अजमेर, रणथम्भौर, जालौर, जैसलमेर, बयाना, ग्वालियर, कालिंजर, बदायूं, हांसी आदि में उनको प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा। हांसी दिल्ली अजमेर में मोहम्मद गौरी के विरूद्ध पुन: विद्रोह स्पष्ट करता है कि विजित प्रान्तों में भी आसानी से विदेशी अधीनता को बर्दाश्त करने वाले नहीं थे। यही अनेक राज्यों ने तो अल्पकाल में ही विदेशी अधीनता के जुआ को उतार फेका।

"गुलाम वंश (1206-1290 ई.) व राजपूताना" की विवेचना से स्पष्ट होता है कि तब अपनी अनुपस्थिति में भारतीय प्रदेशों का शासन चलाने के लिए मोहम्मद गौरी ने कुतुबद्दीन ऐबक को भारतीय प्रदेशों का गवर्नर नियुक्त कर दिया। 1192-1206 ई. तक कुतुबद्दीन ऐबक ने गवर्नर के रूप में भारतीय प्रदेशों का शासन संचालन किया। जब 1206 ई. में मोहम्मद गौरी की मृत्यु हुई। तब कुतुबद्दीन ऐबक ने स्वयं को भारत का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। सुल्तान गयासुद्दीन महमूद ने कुतुबुद्दीन ऐबक को शाही छत्र के साथ सुल्तान की उपाधि प्रदान की। ऐबक दिल्ली से लाहौर पहुँच कर 25 जून, 1206 ई. को लाहौर की गद्दी पर बैठा। इस प्रकार भारत में एक नये और स्वतंत्र राजवंश की स्थापना हुई। जिसे आधुनिक लेखकों ने दास, गुलाम अथवा ममलुक वंश की संज्ञा दी है। कुतुबुद्दीन ऐबक ने राजपूताना की ओर ध्यान दिया। अजमेर में उसने हरिराज के विद्रोहों का दमन कर पुन: तुर्क सत्ता की स्थापना की। अजमेर के मेर या मेढ विद्रोह के समय कुतुबुद्दीन की स्थिति अत्यंत सोचनीय हो गयी थी। यदि उसे मोहम्मद गौरी के द्वारा गजनी से समय पर सहायता प्राप्त नहीं होती तो स्थिति और कुछ होती। पाँच माह के अपार कष्ट के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक के जीवन का कठिनतम संकट समाप्त हो गया। कुतुबुद्दीन ऐबक ने सैयद हुसैन खिगसवार को अजमेर का गवर्नर जबकि हरविलास शारदा के अनुसार अजमेर का गवर्नर सैयद हुसैन मशेदी को नियुक्त किया है। गोविन्दराज के अजमेर से रणथम्भौर जाने के कारण वहाँ की शासन व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी थी। यहाँ पर चौहानों की शक्ति का दमन कर ऐबक ने रणथम्भौर के प्रशासनिक कार्यो को सुव्यवस्थित किया। लेकिन गोविन्द राज की मृत्यु के बाद बल्हणदेव रणथम्भौर का शासक बना। चौहानों ने तुर्क सेना को मारपीट कर किले से बाहर निकाल दिया। वे स्वतंत्र शासक हो गये। बल्हणदेव ने

रणथम्भौर की सीमाओं को बढ़ाकर अपने राज्य का विस्तार किया। बल्हणदेव व उसके बाद उसका पुत्र प्रहलाद नारायण, वीरनारायण रणथम्भौर का शासक बना।

जालौर में कुतुबुद्दीन ऐबक के समकालीन शासक समरसिंह व उदयसिंह थे। इनके विरूद्ध वह कोई निर्णायक नीति नहीं बना सका। थंगीर के शासक कंवरपाल के विरूद्ध कार्यवाही करके कुतुबुद्दीन ऐबक ने इस दुर्ग को अपने योग्य सेनापति बहाउद्दीन तुगरिल के अधिकार में रखा। राजपूताना के नागौर पर ऐबक के समय भी दिल्ली सल्तनत का अधिकार बना रहा। अत: कुतुबुद्दीन ऐबक के समय राजपूताना पर तुर्कों का नियंत्रण कुछ ढीला हो गया था। एक बार पुन: राजपूतों ने अपनी दासता का अन्त करने का प्रयास किया, वे इसमें सफल भी रहे।

1210 ई में आरामशाह को पराजित कर इल्तुतमिश दिल्ली सल्तनत की गद्दी पर बैठा। अपनी आंतरिक समस्याओं के कारण वह राजपूताना की और विशेष ध्यान नहीं दे सका। राजपूतों ने भी इस स्थिति का लाभ उठाकर अपनी शक्ति को पुन: संगठित करने तथा अपने राज्यों की सीमाओं को बढ़ाने का प्रयास किया। जालौर के चौहान शासक उदयसिंह व रणथम्भौर के शासक बल्हणदेव व चित्तौड़ में समरसिंह तीनों शक्तिशाली शासक थे। इन्होंने अपनी शक्ति का काफी विस्तार कर लिया था। कुछ दिनों तक अजमेर पर भी चौहानों का अधिकार बना रहा। अलवर और बयाना के क्षेत्रों में भी तुर्क शासन लड़खड़ाने लग गया था। सुल्तान इल्तुतमिश का राजपूताना के रणथम्भौर, मंडोर (मारवाड़) जालौर, बूंदी, अजमेर, सांभर, तहनगढ (बयाना), मेवाड़ आदि के राजपूत शासकों से साथ विशेष सम्बंध रहा।

अपने उत्तराधिकार में मिले राज्य की सीमाओं को शक्तिशाली सुल्तान इल्तुतमिश ने शक्ति के बल पर विस्तार का जी तोड़ प्रयास किया। उनमें वह आंशिक रूप से सफल भी रहा। रणथम्भौर, मंडोर, नागौर, बयाना, जालौर, थंन्गीर, अजमेर, सांभर, बूंदी, जीतते हुए वह नागदा तक जा पहुँचा। राजपूताना के रेगिस्तानी प्रदेशों में कुछ सफलता अर्जित की, किन्तु मेवाड़ के गुहिल शासकों के विरूद्ध वह सफल नहीं हो सका।

अपने राजपूताना अभियान के दौरान इल्तुतमिश के काल में एक हिन्दू मंदिर व एक संस्कृत पाठशाला के अवशेषों पर मस्जिदों का निर्माण कार्य पूर्ण करवाया। एक अजमेर में ढ़ाई दिन का झौपड़ा और दूसरा बयाना में उषा मस्जिद का निर्माण करवाया। सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम अपने टंकों पर टकसाल का नाम लिखने की प्रथा शुरू की थी। उसके शासन काल में सिक्के ढ़ाले जाने वाले नगरों में नागौर भी एक प्रमुख नगर

था। नागौर में जो सिक्के डाले गये। उनमें सोने का एक अद्वितीय सिक्का भी था। यह सिक्का इल्तुतमिश के सिंहासन्रोहण के द्वितीय वर्ष 1211 ई. में डाला गया था। इसके अतिरिक्त अन्य अनुपम सिक्का चाँदी का था जो नागौर में ढ़ाला गया था। इस काल में नागौर में सिक्कों का डाला जाना इस बात का समुचित प्रणाम है कि इल्तुतमिश के शासन काल में नागौर दिल्ली सल्तनत के प्रमुख प्रान्तों में से एक था। चित्तौड़ के गुहिल, जैसलमेर के भाटी, शासक स्वतंत्र रूप से शासन करते रहे किन्तु अजमेर, बयाना, मेवात, सांभर और नागौर पर इल्तुतमिश का नियन्त्रण बना रहा।

1236 ई.में इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद उसके पाँच उत्तराधिकारियों ने 1236-1266 ई. तक शासन किया। इन तीस वर्षों की प्रमुख विशेषता यही रही कि दिल्ली सुल्तानों द्वारा विजित प्रदेशों में छोटे-बड़े राजपूताना के राज्यों के शासकों का निरन्तर विद्रोह दिल्ली सल्तनत के शासकों के लिए सर दर्द बना रहा। इसी कारण से ये सुल्तान कोई नई महत्वपूर्ण विजय प्राप्त नहीं कर सके। इस काल की राजपूताना की प्रमुख घटना रणथम्भौर का 1236 ई. में रुकनुद्दीन फिरोजशाह के शासन काल में वाग्भट के नेतृत्व स्वतंत्र होना था वाग्भट के नेतृत्व में चौहानों को अपने पैतृक दुर्ग पर लगभग 1236 ई. में पुन: अधिकार हो गया। सुल्तान रजिया ने 1236 ई. में कुतुबुद्दीन हुसैन गौरी को रणथम्भौर पर अधिकार करने के लिए भेजा, किन्तु वह असफल रहा। अन्न-पानीदि की कमी से पीड़ित होकर आस-पास के स्थलों आदि को बंजर कर लगभग तीन महीने बाद वापस दिल्ली लौट गया। नासिरुद्दीन महमूद के शासनकाल में (1246-1266 ई.) रणथम्भौर पर पुन: अधिकार स्थापित करने के लिए दो अभियान उलुग खाँ (बलबन) और एक अभियान मलेकन नायब ऐबक के नेतृत्व कुल तीन अभियान किये गये। लेकिन उसका कोई भी अभियान सफल नहीं हो सका। इसी सुल्तान के समय मेवाड़ और बूंदी के विरूद्ध सैनिक अभियान भेजा गया था, किन्तु दोनों अभियान असफल ही रहे। ये दिल्ली सल्तनत के खिलाफ नित्य संघर्ष के वर्ष थे। इस दौरान कोई विशेष सम्बंध राजपूताना के साथ नहीं रहा।

सुल्तान गयासुद्दीन बलबन का राजपूताना के नागौर से विशेष सम्बंध रहा। तदुपरांत उलुग खान-ए-आजम जब सुल्तान गयासुद्दीन बलबन के नाम से स्वयं दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान हुआ। तब से लेकर सन् 1287 ई. में उसकी मृत्यु तक नागौर का प्रान्त उसने अपने प्रत्यक्ष अधिकार में रखा। बलबन का राजपूताना में सबसे प्रमुख कार्य मेवातियों के विद्रोहियों को समाप्त करना था। चित्तौड़ अभियान को अपवाद मान लिया जाय तो कहा जा सकता है कि बलबन ने राजपूताना के शक्तिशाली राज्यों से संघर्ष न करने का जो निर्णय लिया था। उसी के परिणामस्वरूप एक तरफ वह अपने राज्य में होने वाले छोटे-छोटे हिन्दू विद्रोह एवम् उपद्रव का दमन करने में

सफल हो सका । दूसरी और मंगोलों के आक्रमण से अपने राज्य को सुरक्षित रख सका। बलबन के उत्तराधिकारियों का तीन वर्ष 1287-1290 ई. इनका राजपूताना के संदर्भ में कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

अध्याय तृतीय ***"खिलजी वंश (1290-1320 ई.) व राजपूताना"*** की विवेचना से स्पष्ट होता है कि खिलजी वंश की स्थापना 1290 ई. में जलालुद्दीन फिरोजशाह ने की थी। इस वंश के कुल चार शासकों ने 30 वर्षों तक दिल्ली सल्तनत पर शासन किया। दिल्ली सल्तनत के वंशों में खिलजी वंश के शासकों ने सबसे कम समय तक शासन किया। किन्तु यह राजपूताना को सर्वोधिक प्रभावित करने वाला वंश था। खिलजी वंश की स्थापना से दिल्ली सल्तनत और साथ ही राजपूताना में अनेक सामाजिक आर्थिक बदलाव के साथ-साथ तत्कालीन राज्य एवं राजनीतिक स्वरूप में भारी परिवर्तन हुए। इस समय राजपूताना के रणथम्भौर में चौहान शासक हम्मीरदेव, चित्तौड़ में गुहिल शासक रावल रतनसिंह, जैसलमेर में राजपूत भाटी शासक जैत्रसिंह, जालौर में सोनगरा चौहान कान्हड़देव, सिवाना में सीतलदेव, सिरोही में परमार राजपूत बाद में देवड़ा राजपूत शासक आदि स्वतंत्र रूप से शासन कर रहे थे। परन्तु अजमेर, बयाना, मेवात (अलवर का क्षेत्र), सांभर और नागौर आदि दिल्ली सल्तनत के नियन्त्रण के अंतर्गत थे। खिलजी वंश की स्थापना से दिल्ली सल्तनत और साथ ही राजपूताना में अनेक सामाजिक आर्थिक बदलाव के साथ-साथ भारत के तत्कालीन राज्य एवं राजनीतिक स्वरूप में भी परिवर्तन हुए। दिल्ली सल्तनत के खिलजी राजवंश ने राजपूताना के सभी राज्यों के साथ राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक रूप से सम्बंध स्थापित किये। जो भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

जलालुद्दीन फिरोज खिलजी का रणथम्भौर पर दो बार असफल आक्रमण पाली सांचौर और मण्डोर पर आक्रमण। सुल्तान जलालुद्दीन के सम्पूर्ण शासनकाल को देखकर यह कहा जा सकता है कि उसने राजपूताना के रणथम्भौर मण्डोर सांचौर पर अनेक बार आक्रमण किया। किन्तु इन समस्त अभियानों में उसे मात्र कुछ धन सम्पति के अतिरिक्त उसके हाथ कुछ नहीं लगा। लगभग उसी समय राजपूताना के सभी राजपूत राज्य शक्तिशाली बन गये थे। यद्यपि झाइन पर उसकी सेना ने हम्मीर की सेना को दो बार परास्त कर अधिकार कर लिया था। आसथान की वीरगति मण्डोर पर अस्थायी सफलता प्राप्त करना उसकी राजपूताना के प्रति अग्रसर नीति का परिचायक है। किन्तु सुल्तान में दृढ निश्चय का अभाव था। इसी का लाभ उठा कर रणथम्भौर के शासकों ने जलालुद्दीन की प्रारम्भिक सफलताओं को भी असफलता में बदल दिया।

अलाउद्दीन खिलजी 21 अक्टूबर, 1296 ई. दिल्ली के राजसिंहासन पर विराजमान हुआ। एक नये धर्म की संस्थापना व विश्व विजय की योजना अलाउद्दीन को आकर्षित कर रही थी। इसलिए उसने सिकन्दर सानी की उपाधि भी धारण की थी जो उसके कुछ सिक्कों पर अंकित है। काज़ी अलाउलमुल्क की सलाह पर सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने विश्व विजय के स्थान पर सर्वप्रथम हिन्दुस्तान की विजय का संकल्प लिया। समस्त भारत को दिल्ली सल्तनत के अधीन करने के लिए आवश्यक था कि पहले राजपूताना के राजपूत राज्यों जैसे जैसलमेर, रणथम्भौर, मेवाड़, जालौर, सिवाना, मण्डोर, मारवाड़ आदि राज्य थे जो सदियों से मुस्लिम आक्रमणकारियों का प्रतिरोध कर रहे थे। अत: इन्हें अधीन करना अति आवश्यक था। इसी कारण सुल्तान अलाउद्दीन ने सर्वप्रथम उत्तरी भारत के राजपूत राज्यों को दिल्ली सल्तनत में मिलने की योजना बनायी। इसी क्रम में सुल्तान ने राजपूताना के जैसलमेर पर प्रथम आक्रमण 1299 ई. में रणथम्भौर को (1301 ई.) में चित्तौड़ को (1303 ई.) में सिवाना 1308 ई. में जालौर 1312 ई. में पर महत्वपूर्व विजय प्राप्त कर दिल्ली सल्तनत की सीमाओं में विस्तार कर लिया। इससे पूर्व राजपूताना के नागौर अजमेर बयाना मेवात पाली सांचौर मण्डोर आदि पर दिल्ली सल्तनत का अधिकार स्थापित हो चुका था। इस प्रकार पहली बार सम्पूर्ण राजपूताना का विलय दिल्ली सल्तनत के अंतर्गत हो गया था। यह स्थिति दिल्ली सल्तनत के तुगलक़ वंश के प्रारम्भिक शासकों के समय तक रही। राजपूताना को सर्वोधिक प्रभावित करने वाला दिल्ली सल्तनत का खिलजी राजवंश था।

खिलजी वंश की स्थापना के साथ ही राजपूताना में अनेक सामाजिक आर्थिक बदलाव के साथ- साथ तत्कालीन राज्य एवं राजनीतिक स्वरूप में भी परिवर्तन हुए। राजपूताना के राजपूत राजवंश अलग-अलग क्षेत्रों में शासन कर रहे थे। कोई भी राजवंश इतना शक्तिशाली नहीं था कि दूसरे संघर्ष राजवंश उसकी सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार करते अथवा उसके नेतृत्व में एकजुट होकर तुर्कों का प्रतिरोध करते। विभिन्न राजपूत वंशों में एकता के अभाव के कारण ही तुर्कों को उन्हें पृथक-पृथक रूप में परास्त करने का अवसर मिल गया। अलाउद्दीन खिलजी से पूर्व दिल्ली सुल्तानों और राजपूत राज्यों में निरन्तर संघर्ष चलता रहा। इस संघर्ष में रणथम्भौर के चौहान जालौर के चौहान और मेवाड़ के गुहिलों की विशेष भूमिका रही। अलाउद्दीन खिलजी अत्यंत महत्वकांक्षी व दृढ़ निश्चय सुल्तान था। राजपूताना के राजपूत राज्य जो 700 वर्षो से भी अधिक समय से तुर्कों का प्रतिरोध कर रहे थे, का अंतिम अध्याय प्रारम्भ हुआ। जिसका पटाक्षेप भी उसी महत्वकांक्षी सुल्तान की जीवन-लीला के पटाक्षेप के साथ ही हो गया। यद्यपि इस समय राजपूताना के राज्य अपनी शक्ति बल में अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक शक्तिसम्पन थे किन्तु उनका शत्रु भी पूर्व के सुल्तानों से अधिक शक्तिशाली था।

सम्पूर्ण राजपूताना का दिल्ली सल्तनत में विलय खिलजी वंश के समय देखने को मिलता। जो राजपूताना के एकीकरण की पहली बार एक झलक प्रस्तुत करता है।

राजपूत परम्परानुसार शरणागत की रक्षा करने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने का उदाहरण पहली बार इसी काल में देखने को मिलता है। राजपूती परम्परा का पालन हुए राजपूत सरदारों द्वारा केसरिया बाना धारण करना व राजपूत महिलाओं द्वारा अपने सतीत्व को बचाने के लिए जौहर के आयोजनों का उल्लेख सर्वप्रथम समसामयिक साहित्य में इसी समय से मिलते है। जैसे रणथम्भौर की पटरानी रंगदेवी, चित्तौड़ की रानी पदमनी अपने आपको अग्नि में अर्पण कर देती है।

खिलजी सुल्तानों की राजपूताना के सम्बंध में कोई स्पष्ट नीति नहीं थी। अलाउद्दीन खिलजी की आर्थिक सुधार या बाजार नियन्त्रण व्यवस्था व सैनिक नीति का उल्लेख राजपूताना के संदर्भ में देखने को नहीं मिलता है।

युद्ध के समय हिन्दू मंदिरों को नष्ट करके मस्जिदों में परिर्वतन के उदाहरण इस समय राजपूताना मिलते है। लेकिन शांति काल में मंदिरों को नष्ट करने का उल्लेख नहीं मिलता है। राजपूताना के विजित राज्यों को शाही कानूनों के अंतर्गत लाने का कोई प्रयास नहीं किया गया। सुल्तान को अपने ही अधिकारियों में से किसी को एक पराजित शासक के राज्य में नियुक्त पड़ता तो राजपूताना की सामाजिक व्यवस्था नहीं छेड़ी जाती थी। मूल स्थिति उन रावतों और स्थानीय राजा की ही रहती थी। उनके अधिकारियों को रावतों से उनकी स्वंत्रता के अनुरूप खराज वसूल करने की पूर्ण छूट थी। रणथम्भौर चित्तौड़ मांडल सिवाना और जालौर जहाँ की सरकारें दुर्लब थी उन्हें कठोर राज्यपालों के नियंत्रण में लाया गया था। नागौर अजमेर बयाना रणथम्भौर उलुग खाँ झायन में मेरठ का फखरुल्मुल्क चित्तौड़ में खिज्र खाँ मलिक अबू मोहम्मद सिवाना में कमालुद्दीन गुर्ग आदि अधिकारियों की नियुक्ति कर उन्हें दृढ बनाया गया।

अध्याय चतुर्थ ***"तुगलक़ वंश और राजपूताना में सम्बंध (1320-1414 ई.)"*** की विवेचना से स्पष्ट होता है कि तुगलक वंश का शासन काल से अनेक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण रहा। इस काल में दिल्ली सल्तनत का सर्वाधिक विस्तार हुई। इसी राजवंश के समय दिल्ली सल्तनत के पतन की भी शुरूआत हुई। इस राजवंश के काल में दिल्ली में सल्तनत में सर्वाधिक विद्रोहों हुई। भारत वर्ष के सभी प्रान्तों में नये राज्यों की स्थापना के लिए होड़ सी लग गयी। तुगलक वंश की स्थापना के समय लगभग सम्पूर्ण राजपूताना पर प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से दिल्ली

सल्तनत का आधिपत्य स्थापित था। इस समय राजपूताना के रणथम्भौर, चित्तौड़, सिवाना, जालौर, जैसलमेर, अजमेर, नागौर, बयाना आदि राज्यों पर दिल्ली सल्तनत के अधिकारी नियुक्त थे।

इस वंश के समय राजपूताना की प्रमुख घटना में कोतल कछवाह नामक एक हिन्दू का विद्रोह, गयासुद्दीन तुगलक का चित्तौड़ के साथ सम्बंध था। इसकी पुष्टि पुरातात्विक व अभिलेखीय साक्ष्य से होती है। हम्मीर ने बणवीर को युद्ध में पराजित कर चित्तौड़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया। सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक के शासन काल का एक शिलालेख चित्तौड़ से मिला। जिसमे उसके गवर्नर असुददीन का उल्लेख मिलता है। इसी आधार पर डॉ. गौरीशंकर हिराचंद ओझा के अनुसार वि.सं.1381/1326 ई. के लगभग, किसोरी सरन लाल 1321 ई. एवं गोपीनाथ शर्मा 1326 ई. को हम्मीर द्वारा चित्तौड़ पर अधिकार का समय बताते है। दोनों के बीच सिंगोली नामक स्थल पर युद्ध हुआ जिसमें बणवीर के भाई हरिसिंह, कविराजा श्यामलदास के अनुसार मालदेव के पौत्र हरिदास की मृत्यु हुई और सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक को कैद कर लिया गया। चित्तौड़ के किले में तीन महीने कैद रहने के बाद अजमेर, रणथम्भौर, नागौर, सोसोपुर के प्रदेश, पचास लाख रुपए व एक सौ हाथी देने के उपरांत सुल्तान को रिहा किया गया।

हम्मीर के बाद चित्तौड़ की गद्दी पर उसका पुत्र क्षेत्रसिंह बैठा। डॉ. गौरीशंकर हिराचंद के अनुसार क्षेत्रसिंह का राज्यकाल 1364 से 1382 ई. तक था। ओझा निबंध संग्रह में उल्लेख है कि दिल्ली के सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने अमीशाह (दिलावर खाँ लोदी) को मालवा का अधिकारी नियुक्त किया था। यह मेवाड़ के महाराणा क्षेत्रसिंह का समकालीन था। श्रंगी ऋषि शिलालेख, कुंभलगढ़ प्रशस्ति, एकलिंग मंदिर प्रशस्ति आदि शिलालेखों से ज्ञात होता है कि महाराणा क्षेत्रसिंह ने मालवा के शासक अमीशाह को चित्तौड़ के समीप पराजित कर असंख्य मुस्लिमों को हानि पहुँचायी। क्षेत्रसिंह का मालवा व गुजरात के विरूद्ध भी सफलता का वर्णन मिलता है। इसके अलावा इसने ईडर, देववाडा, हाड़ावटी आदि राजपूत राज्यों पर आक्रमण कर उन्हें अपना करद राज्य बनाया।

क्षेत्रसिंह के बाद उसका जेष्ट पुत्र लक्षसिंह या लाखा वि.सं. 1459/1382 ई. को मेवाड़ के राज-सिहांसन् पर आसीन हुआ। इसने मेरों पर आक्रमण कर बदनोर के प्रदेश को अपने अधीन बना लिया। लक्षसिंह/लाखा के समय मगरा जिले के जावर गाँव में चाँदी की खान मिलने से राज्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ता प्राप्त हुई। त्रि-स्थली काशी, प्रयाग, गया तीर्थ स्थलों मुसलमानों द्वारा लगाये जाने वाले कर से वहाँ के शासकों को काफी धन देकर इन्हें कर मुक्त करवाया। महाराणा लक्षसिंह के राज्य काल में मेवाड़ का राज्य महत्वपूर्ण व शक्तिशाली बन चुका था।

चित्तौड़ के हाथ से निकल जाने बाद बणवीर ने अपना ध्यान अपने पैतृक राज्य जालौर पर लगाया। मोहम्मद बिन तुगलक की महत्वाकांक्षी योजनाओं की असफलता व अदूरदर्शी नीति के कारण उसके साम्राज्य में चारों और विद्रोहों की लहर चल रही थी। वह एक विद्रोह को शांत करने जाता तो दूसरी जगह विद्रोह हो जाता। सम्भवत इन्हीं परिस्थितियों में बणवीर ने जालौर पर अपना अधिकार स्थापित कर पुन: अपने सोनगरा चौहान राजवंश की संस्थापना की। इसके शासनकाल का अंतिम शिलालेख 3 अप्रैल, 1394/ 1338 ई. का गोडवाड से मिला है। बणवीर की मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र रणधीर जालौर का शासक हुआ जो 1387 ई. तक निरन्तर जालौर पर शासन करता रहा। रणधीर के उपरांत राजधर जालौर का शासक बना।

बूंदी के हाड़ा शासक अपने राज्य को अधिक समय तक सुरक्षित नहीं रख पाए क्योंकि गुजरात व मालवा में स्वतंत्र मुस्लिम सल्तनतों की स्थापना हो चुकीं थी। जिसके कारण बूंदी राज्य एक और मेवाड़ व गुजरात से, दूसरी और मेवाड़ व मालवा के मध्य घिर गया था। ऐतिहासिक स्रोतों से जानकारी मिलती है कि हम्मीर के उत्तराधिकारी महाराणा क्षेत्रसिंह ने मालवा के दिलावर खाँ गौरी को पराजित कर मालवा व मेवाड़ के संषर्ष की शुरुआत कर थी। जिसके कारण बूंदी राज्य पर नियन्त्रण करना आवश्यक हो गया था बूंदी के हाड़ा शासकों पर आक्रमण कर मांडलगढ़ पर अधिकार कर लिया। हाड़ौती को अपना अधीनस्थ राज्य बना लिया था।

करौली के शासक दिल्ली सल्तनत के तुगलक व सैयद राजवंश के पतन तक अपनी स्वतंत्रता का उपभोग करते रहे। कुछ समय बाद ही 1454 ई. में मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी ने चन्दसेन या चंदपाल के समय में करौली पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। करौली में अपने पुत्र फिदवी खाँ को नियुक्त कर मालवा लौट गया। अपने राज्य से वंचित होने बाद चंदपाल अपने पुत्र व पौत्रों के साथ ऊँटगढ़ में रहने लगा। अंत में गोपालदास ने अकबर के समय अपने पैतृक राज्य के कुछ प्रदेशों को पुन: प्राप्त कर सका।

फिरोजशाह तुगलक़ की मृत्यु बाद उसके वंशजों में गद्दी प्राप्त करने के लिए लगभग एक दशक तक संघर्ष चलता रहा। वह उत्तरवर्ती मुग़ल शासकों का स्मरण करा देते है। उत्तरवर्ती मुगल शासकों की भाँति उत्तरवर्ती तुगलक वंश के उत्तराधिकार संघर्ष में भी महत्वाकांशी एवं स्वतंत्र के लालयित राजपूताना के राज्यों ने भी बहती गंगा में हाथ धोने का प्रयास किया।

इस समय दिल्ली सल्तनत में तुगलक राजवंश का शासन था परन्तु उनकी शक्ति के क्षीण हो जाने के कारण राव चूड़ा के लिए यह उचित अवसर था कि वह अपने समीप के मुस्लिम प्रदेशों पर अधिकार कर ले। जब इसका पता

गुजरात के सूबेदार जफर खाँ को लगा तो उसने हि.798/1396 ई. को मण्डोर पहुँच कर दुर्ग को घेर लिया। एक साल कुछ दिनों तक दुर्ग को घेरे रहने के बाद भी उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसलिए वह मुस्लिम प्रदेशों पर आक्रमण न करने का वचन लेकर अजमेर में मुईनुद्दीन चिश्ती के दर्शन कर वापस लौट गया।

सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के समय राजपूताना के भू-भागों में नये क्षेत्रीय राज्यों की स्थापना हुई। जिनमे प्रमुख है- राजपूताना के हाड़ावती क्षेत्र में देवीसिंह के द्वारा वि.सं 1298/1241 ई. में बूंदी राज्य की स्थापना, वि.सं.1405/1348 ई. में महाराज अर्जुनपाल द्वारा करौली में यदुवंशी राज्य की स्थापना, वागडक्षेत्र में डूंगरपुर राज्य का सुदृढ़करण, सहसमल द्वारा वि.सं. 1485/1425 ई.में सिरोही में देवड़ा चौहान राज्य आदि नवीन राज्यों का जन्म हुआ। आगे फिरोजशाह तुगलक के राज्यकाल में दिल्ली सल्तनत की दुर्बलता से लाभ उठाकर उत्तरी भारत में अनेक हिन्दू अपने राज्य की स्थापना एवं सुदृढ़ करण में व्यस्त थे। उसी समय चूड़ा के नेतृत्व में मण्डोर में राठौड़ों के राज्य का उत्कर्ष हुआ। चूड़ा द्वारा मण्डोर आधिपत्य के साथ ही मारवाड़ में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। फिरोजशाह तुगलक के शासनकाल में राजपूताना के गागरोन पर आक्रमण व उत्तरवर्ती तुगलक शासकों के समय भटनेर दुर्ग पर तैमूर का आक्रमण व वहाँ के शासकों द्वारा उनका का प्रतिरोध भी उल्लेखनीय है।

पंचम अध्याय ***"सैयद वंश व राजपूताना (1414-1451 ई.)"*** की विवेचना से स्पष्ट होता है कि सैयद सुल्तान खिज्र खाँ (रायत आला) का राजपूताना के नागौर, बयाना, मेवात से विशेष सम्बंध रहा। इसमें से नागौर प्रदेश गुजरात के आधिपत्य से निकल गया। दिल्ली सल्तनत के अधीन एक वर्ष तक रहा। अवसर मिलते ही वापस गुजरात के अधीन चला गया। जिसको वापस अपने अधीन करने का प्रयत्न सुल्तान खिज्र खाँ के द्वारा नहीं किया गया। दिल्ली का शासन सिंहासन अन्य विरोधी तत्वों में फँसा था। राजपूताना के मेवात व बयाना क्षेत्रों ने अनेक कठिन प्रशासनिक समस्याएं प्रस्तुत की। क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति से विद्रोहियों को यथेष्ट सहायता प्राप्त होती थी। उनके विरुद्ध कोई निर्णायक कार्यवाही संभव नहीं थी। फिर भी अपने मलिकों जैसे ताजुलमिल्क, जिरक खाँ, खैरुद्दीन, तथा कुछ अन्य की सहायता से उसने इन क्षेत्रों पर दिल्ली का नियंत्रण रखने के लिए कठिन संघर्ष किया। यह अनुभव किया बिना नहीं रहा जा सकता कि खिज्र खाँ व्यर्थ संघर्ष कर रहा था। स्थिति इतनी अस्थिर थी कि दिल्ली की सेना लौटते ही सरदार पुन: विद्रोह कर देते। मेवातियों के विद्रोहियों का दमन सुल्तान खिज्र खाँ द्वारा किया गया । इस काल में बयाना से कर पेशकश आदि लेकर सुल्तान खिज्र खाँ संतुष्ट रहा।

खिज्र खाँ के उत्तराधिकारियों के शासन काल में आंतरिक गृहयुद्धों एवं बाह्य विद्रोहों के परिणामस्वरूप दिल्ली सल्तनत की सीमा इतनी संकुचित हो गयी थी कि अल्लाउद्दीन खलजी एवं मुहम्मद तुगलक के राजसिंहासन पर विराजमान सैयद सुल्तान के विषय में कहा जाने लगा कि संसार के बादशाह का राज्य दिल्ली से पालम तक है।

इन परिस्थितियों में राजपूताना के विभिन्न राज्यों के शासक अपने पड़ौसी मुस्लिम सुल्तानों से संघर्ष करते रहे। इनमे जालौर, नागौर, मारवाड़, डूंगरपुर, के राज्यों ने गुजरात के सुल्तानों से संघर्ष किया। गागरोन के खींची एवं बूंदी के हाड़ाओं ने मालवा के सुल्तानों से और था मेवाड़ के शासकों ने नागौर मालवा एवं गुजरात के सुल्तानों से संघर्ष किया।

दिल्ली सल्तनत के सैयद वंश शासन काल (1414-1451ई.) के समकालीन राजपूताना के मेवाड़ में मुख्यतः तीन प्रमुख शासक हुए महाराणा लक्षसिंह/लाखा (1382-421ई.) मोकल(1421-433ई.) महाराणा कुम्भा (1433-1468 ई.) इसी वंश के महाराणा हम्मीर ने 1326-364 ई. में अपने राज्य को विदेशी आक्रमणाकारियों से मुक्त कराकर उसे अपने उत्तराधिकारियों को हस्तांतरित किया और एक शाश्वत ख्याति अर्जित की। इसका उत्तराधिकारी उसका जेष्ठ पुत्र क्षेत्रसिंह था। जिसने अपने पराक्रम से अजमेर, जहाजपुर, मांडलगढ़, और छप्पन पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित की और अपने पद की प्रतिष्ठा बढ़ाई। उसे अपने भुजबल पर मालवा के सुल्तान अमीशाह को परास्त करने में सफलता प्राप्त की। उसके पीछे उसका पुत्र लाखा 1382 ई. में मेवाड़ का स्वामी बना। उसने तुर्क सत्ता से संघर्ष कर तथा कला और सार्वजनिक कार्य में रूचि लेकर अपने वंश के गौरव को बढ़ाया। उसी के पुत्र मोकल ने 1428 ई. में नागौर के फिरोज खाँ पर विजय स्थापित अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। 1433 ई. में मेवाड़ की बागडोर महाराणा कुम्भा के हाथ में आना एक प्रकार से मेवाड़ की प्रतिष्ठा के नक्षत्र का उदय का आव्हान था। उसने राज्य की रक्षा के लिए अनेकों दुर्ग बनवाये और शत्रुओं को उनके द्वारा परास्त किया। मालवा और गुजरात के सुल्तानों से टक्कर लेकर उसने मेवाड़ को उत्तरी भारतवर्ष के शक्ति-संतुलन की धुरी बना दिया। ये कार्य महाराणा की अनुपम कूटनीति के परिचायक थे। इस प्रकार मेवाड़ राजघराने ये प्रसिद्ध शासक इस काल में हुए यही कारण है कि मेवाड़, दिल्ली, गुजरात व मालवा के आक्रमणात्मक नीति के विरूद्ध अपने साम्राज्य की सुरक्षा करने में सफल ही नहीं हुआ बल्कि अपने साम्राज्य को विस्तृत व सुदृढ़ भी किया। दिल्ली सल्तनत के इतिहास में इस समय (1414-1451ई.) सैयद सुल्तानों का शासन था जो अपनी ही समस्यों में उलझे हुए थे, इनके लिए मेवाड़ प्रदेश में हस्तक्षेप करना संभव नहीं था।

सैयद वंशीय सुल्तानों के समय की (1414-1451ई.) राजपूताना की सबसे महत्वपूर्ण घटना जालौर के सोनगरा राजवंश और गागरोन के खींची राजवंश का अपने पड़ौसी मुस्लिम शासकों क्रमशः गुजरात और मालवा के सुल्तानों के संघर्ष के परिणामस्वरूप उनका विनाश था। लगभग एक शताब्दी तक अपनी स्वतंत्रता का उपभोग करने के उपरांत दोनों राजवंश का इतिहास गर्त में विलीव हो गये।

पष्ठम अध्याय ***"लोदी वंश व राजपूताना (1451-1526 ई.)"***की विवेचना से स्पष्ट होता है कि 15वीं सदी के अंत में लोदी सुल्तानों द्वारा जौनपुर को अपनी सल्तनत में मिला लिए जाने के बाद परिस्थितियों बदलने लगी। इसी विजय के बाद लोदियों ने पूर्वी राजस्थान और मालवा की ओर अपनी सत्ता का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया। इन्हीं दिनों आंतरिक कारणों से मालवा बिखरने लगा और उस पर कब्जा करने के लिए राजपूताना (मेवाड़), गुजरात व दिल्ली सल्तनत के शासक लोदियों में प्रतिद्वन्द्वता में तीव्रता आई। लग रहा था कि इस जोर-आजमाई में जीतने वाला पूरे उत्तर भारत पर राज करेगा। इसी नीति के तहत दिल्ली सल्तनत के लोदी सुल्तानों ने राजपूताना के विभिन्न राज्यों पर कई बार आक्रमण किये। जिसके परिणामस्वरूप राजपूताना के कई राज्य दिल्ली सल्तनत के अधीन हो गए। इस काल में दिल्ली सल्तनत का राजपूताना के मेवाड़, धौलपुर, बयाना, रणथम्भौर, मदरायल/मंदलायर(करौली के समीप), नागौर, अजमेर के साथ विशेष सम्बंध रहा। अपने पूर्व राजवंश की भाँति लोदी काल में भी 'बहुकोणीय संघर्ष' हुआ। एक ओर राजपूताना के राज्य लोदी सुल्तानों से संघर्षरत थे, तो दूसरी ओर उन्हें जौनपुर, गुजरात और मालवा की मुस्लिम सेना से भी संघर्ष करना पड़ रहा था।

अहमद यादगार व कर्नल जेम्स टॉड ने बहलोल लोदी व मेवाड़ के बीच युद्ध का वर्णन किया है। समस्त तथ्यों के अवलोकन के उपरांत इस स्थल पर यही कहना उचित होगा। दिल्ली व मेवाड़ के बीच यह संघर्ष अनिर्णित ही रहा होगा। अहमद यादगार के द्वारा उदयपुर का उल्लेख करना और वहाँ सुल्तान के नाम का ख़ुत्बा एवं सिक्का जारी किये जाने का उल्लेख न केवल अतिशयोक्तिपूर्ण है वरन् गैर-ऐतिहासिक भी है। किसी भी शिलालेख या ग्रन्थ से पता नहीं चलता कि महाराणा कुम्भा ने दिल्ली सल्तनत के किसी शासक से संघर्ष किया हो। इसलिये इस घटना पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। चूँकि कर्नल टॉड और अहमद यादगार के अलावा किसी भी मुस्लिम और गैर मुस्लिम स्रोतों इसकी पुष्टि नहीं होती है। कवि श्यामलदास कृत वीर विनोद में उदयसिंह का दिल्ली के सुल्तान के पास ना जाकर मांडू के बादशाह गयासुद्दीन के पास जाने का उल्लेख है। गौरीशंकर

हिराचंद ओझा के अनुसार कर्नल टॉड ने दिल्ली के सुल्तान का नाम नहीं लिया और ये सारा वर्णन भाटों की ख्यातों से लिया जाने के कारण विश्वसनीय नहीं है।

सुल्तान बहलोल लोदी को स्थायित्व प्राप्त हो जाने के बाद उसकी शक्ति और अधिकारों में वृद्धि होने लगी। अपने साम्राज्य का विस्तार करने के उद्देश्य से, उसने राज्यों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। सर्वप्रथम वह मेवात पहुँचा। अहमद खाँ मेवाती ने उसका स्वागत करके आज्ञाकरिता स्वीकार कर ली। जौनपुर कालपी पर अधिकार करने के बाद बहलोल लोदी धौलपुर पहुँचा। धौलपुर के राय ने बहलोल लोदी की अधीनता स्वीकार कर ली। नियामतुल्ला ने भी इसी प्रकार का वर्णन दिया है कि जौनपुर की विजय के बाद बहलोल लोदी रणथम्भौर के निकट अल्हनपुर गया और उसे लूटा। यह क़स्बा इस समय मांडू के अधिकार में था। इस प्रकार सुल्तान बहलोल लोदी का राजपूताना के तथाकथित मेवाड़, मेवात, धौलपुर व रणथम्भौर के अल्हनपुर से सम्बंध रहा। 1491 ई. में बयाना दिल्ली सल्तनत में मिला लिया गया।

ग्वालियर विजय करने के क्रम में सर्वप्रथम सुल्तान सिकन्दर लोदी ने धौलपुर पर अधिकार स्थापित करने का निश्चय किया। धौलपुर के शासक राय मानिकदेव ने शाही सेना से जमकर विरोध किया और ख्वाजा बब्बन नामक एक शाही शूरवीर को इस संघर्ष में मारा डाला गया। जब इन सब की सूचना सुल्तान सिकन्दर लोदी को मिली तो वह संबल से धौलपुर के लिए रवाना हुआ और 25 मार्च, 1501 ई. को धौलपुर पहुँचा। राय मानिक देव भयभीत होकर ग्वालियर कुँच कर गया। इस प्रकार सिकन्दर लोदी का धौलपुर के दुर्ग पर अधिकार हो गया। लोदी सेना ने ना केवल धौलपुर को लूटा बल्कि आस-पास के सात कोस तक समस्त वृक्षों तक को नष्ट कर दिया। तारीखे दाऊदी के अनुसार सिकन्दर लोदी ने इस अवसर पर मन्दिरों के स्थान पर मस्जिदों का निर्माण करवाया। तबकाते-ए-अकबरी और फरिश्ता ने मलिक मुईनुद्दीन के स्थान पर कमरुद्दीन का नाम लिखा है। 1506 ई. में सुल्तान ने धौलपुर में कारवाँ सराय बनाने का आदेश दिया था। आदम खाँ लोदी को धौलपुर का अधिकारी नियुक्त कर ग्वालियर के लिए प्रस्थान किया मोहम्मद खाँ की मृत्यु के बाद उसका जेष्ट पुत्र फिरोज खाँ तृतीय नागौर का शासक हुआ। वह एक वीर और उदार शासक था। उसने अपने शासनकाल में लोदी वंश का पतन और मुग़ल वंश की स्थापना को होते हुए देखा था।मालवा में व्याप्त स्थिति का पूर्ण लाभ उठा कर सुल्तान सिकन्दर लोदी ने उस क्षेत्र में अपनी सत्ता का विस्तार करना चाहा। उसने सुई सोपर को अबूबक्र खाँ को प्रदान कर दी। अबुल फजल के अनुसार उस समय सुई सोपर रणथम्भौर की सरकार थी। 1571 ई. को सिकन्दर लोदी

ने रणथम्भौर की ओर कूच किया, किन्तु कठगढ़ पर विजय प्राप्त नहीं कर सका। रणथम्भौर के राज्यपाल ने उसकी सर्वसत्ता को स्वीकार कर ली।

गौरीशंकर हिराचन्द ओझा के अनुसार सुल्तान सिकन्दर लोदी के समय से ही महाराणा सांगा ने दिल्ली सल्तनत को निर्बल समझकर उसके अधीनस्थ वाले मेवाड़ के निकटवर्ती भागों को अपने राज्य में मिलाना शुरू कर दिया। लेकिन सिंकदर लोदी के अपने आंतरिक समस्याओं में उलझे रहने के कारण वह महाराणा सांगा के साथ कोई कार्यवाही नहीं कर सका। कविराजा श्यामलदास के अनुसार सिंहासन पर बैठने के पश्चात राजपूताने पर अधिकार स्थापित करने के लिए राणा सांगा ने अजमेर पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया और उसे अपने आश्रयदाता कर्मचंद पंवार को अजमेर का पट्टा दे दिया था। तारीखे शाही के लेखक अहमद यादगार के अनुसार इसके पश्चात राणा ने चाकसू को भी दिल्ली सल्तनत से छीन लिया। जहाँ उसने सैयद परिवारों पर भीषण अत्याचार किये। यह कार्य सुल्तान सिकन्दर लोदी के समय हो चुका था। दिल्ली की गद्दी पर बैठने के बाद इब्राहीम लोदी ने राणा की इस कार्य वाही का यथोचित प्रतिकार करना चाहता था। हरविलास शारदा ने संघर्ष का कारण यह बताया है कि इब्राहीम लोदी जब अपने भाई जलाल खाँ के विरूद्ध संघर्ष में लीन था। ऐसे उपयुक्त अवसर पर राणा ने बयाना के प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। यह कार्यवाही सुल्तान के लिये कड़ी चुनौती थी। अत: आंतरिक संघर्ष समाप्त होते ही सुल्तान इब्राहीम लोदी के लिए बयाना को पुन:प्राप्त करने का मुख्य प्रश्न था। राणा व सुल्तान इब्राहीम लोदी के मध्य मालवा का राज्य डॉ. अवध बिहारी पाण्डेय के अनुसार कबाब में हड्डी की तरह था। पाण्डेय ने अपनी पुस्तक फर्स्ट अफगान एम्पायर इन इंडिया में लिखा है कि दोनों उस पर अधिकार करना चाहते थे। सिकन्दर लोदी द्वारा चंदेरी और इब्राहीम लोदी द्वारा ग्वालियर पर अधिकार करने के कारण दिल्ली सल्तनत और मेवाड़ राज्य की सीमा आपस में जा टकराई।

सुल्तान सिकन्दर लोदी की मृत्यु के बाद 1517 ई. में उसका पुत्र इब्राहीम लोदी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा तो राणा से युद्ध होना आवश्यक हो गया क्योंकि राणा भी उतना ही महत्वाकांशी शासक था। तब उसने एक बड़ी सेना के साथ मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। महाराणा सांगा व सुल्तान इब्राहीम लोदी के मध्य शेख रिज्कुल्लाह मुश्ताकी व तारीखे दाऊदी में अब्दुल्लाह ने एक बार और अहमद यादगार के अनुसार दो बार युद्ध का उल्लेख किया है। प्रथम युद्ध खातोली का युद्ध 1517 ई. व द्वितीय बारी (धौलपुर) का युद्ध 1518-19 ई. प्रथम युद्ध में सभी इतिहासकारों महाराणा सांगा की विजय स्वीकार करते है। बारी के युद्ध में अहमद यादगार ने सुल्तान इब्राहीम लोदी की विजय का उल्लेख किया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. ओझा, गोरीशंकर हिराचंद(1937). *राजपूताना का प्राचीन इतिहास,जिल्द प्रथम,* अजमेर:वैदिक यन्त्रालय,पृ.11.
2. गहलोत,जगदीश सिंह(1991). *मारवाड़ राज्य का इतिहास,* जोधपुर:महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाशन, दुर्ग, पृ. 2-3.
3. रेऊ, पंडित विश्वेश्वर(1938). *मारवाड़ का इतिहास,भा.१,*जोधपुर:आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट, पृ.2.
4. गहलोत,जगदीशसिंह(1991). *मारवाड़ राज्य का इतिहास,*जोधपुर:महा.मानसिंह पुस्त प्रकाश,पृ. 3.
5. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ.2.
6. ओझा, गोरीशंकर हिराचंद(1937). *राजपूताना का प्राचीन इतिहास,* अजमेर:वैदिक यन्त्रालय,पृ. 2.
7. ओझा,गोरीशंकर हिराचंद(1937). *राजपूताना का प्राचीन इतिहास,* अजमेर:वैदिक यन्त्रालय, पृ. 42.
8. द्विजेन्द्र नारायणझा, व कृष्ण मोहन श्रीमाली, (1981). *प्राचीन भारत का इतिहास,* दिल्लीः हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, पृ.164.
9. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ. 2.
10. ओझा, गोरीशंकर हिराचंद(1937). *राजपूताना का प्राचीन इतिहास,.*अजमेर:वैदिक यन्त्रालय, पृ 12.
11. रेऊ, पंडित विश्वेश्वर(1938). *मारवाड़ का इतिहास,भा.1* जोधपुर:आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट,पृ.1.
12. माहेश्वरी, हरिबल्लभ (2006). *जैसलमेर का इतिहास,* ग्वालियर: दि हेरिटेज, पृ.7-8.
13. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ.2.
14. ओझा,गौरीशंकर हिराचंद(1937). *राजपूताना का प्राचीन इतिहास,* अजमेर:वैदिक यन्त्रालय,पृ. 42.
15. सक्सेना, हरिमोहन (2016). *राजस्थान का भूगोल,* जयपुरः राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी पृ. 2.
16. शर्मा, कालूराम(1991). *एनल्स एंड एंटीक्यूटीज ऑफ़ राजपूताना*, जयपुर: मंगल प्रकाशन.पृ.1.
17. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ. 2-3.
18. ओझा, गोरीशंकर हिराचंद(1937). *राजपूताना का प्राचीन इतिहास,* अजमेर:वैदिक यन्त्रालय,पृ. 41.
19. ओझा, गोरीशंकर हिराचंद(1937). *राजपूताना का प्राचीन इतिहास,* अजमेर: वैदिक यन्त्रालय,पृ. 1.
20. शर्मा,गोपीनाथ(1989). *राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास,* जयपुर:राज.हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृ.1.
21. शर्मा,गोपीनाथ(1968). *सोशल लाइफ इन मिडिवल राजस्थान,* आगरा:लक्ष्मीनारायण अग्र. पृ.1.
22. विलियम, फेंकलिन (1805). *मिलिट्री मेमायर्स ऑफ़ मिस्टर जार्ज टॉमस,* लंदनः पृ. 347
23. टॉड, कर्नल जेम्स (1995). *राजस्थान का इतिहास,* अनु. डॉ. ईश्वरी प्रसाद, इलाहबाद: आदर्श हिंदी पुस्तकालय, पृ.17
24. शुक्ला, डी.सी (1978). *अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ राजस्थान,* बनारस: भारतीय विधा प्रकाशन, पृ.3
25. पाण्डेय,गोविन्द चन्द(1974).अध्यक्षीय भाषण,पाली: *राज.हिस्ट्री कांग्रेस,* सातवाँ अधिवेशन,पृ 2-3.

26. श्रीमाली,गोविन्दलाल(2001). *राजस्थान के अभिलेख,*जोधपुर:महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश,पृ.4
27. सक्सेना, हरिमोहन (2016). *राजस्थान का भूगोल,* जयपुरः राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी पृ.6.
28. शर्मा,गोपीनाथ(1968).*दि सोशल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान,* आगरा:लक्ष्मीनारायण अग्र. पृ.33.
29. शर्मा,कालूराम(1991).*एनल्स एंड एंटीक्यूटीज ऑफ़ राजपूताना,* जयपुर:मंगल प्रकाशन, पृ..46-47.
30. ओझा,गोरीशंकर हिराचंद(1937).*राजपूताना का प्राचीन इतिहास,* अजमेर:वैदिक यन्त्रालय, पृ.43.
31. शर्मा,गोपीनाथ(1968).*दि सोशल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान,* आगरा:लक्ष्मी नारायण अग्र.,पृ 6.
32. शर्मा, गोपीनाथ(1971).*राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी,पृ. 5.
33. शर्मा,गोपीनाथ(1968).*दि सोशललाइफ इन मेडिवल राजस्थान,* आगरा:लक्ष्मी नारायण अग्र.पृ.9.
34. शर्मा, गोपीनाथ(1971).*राजस्थान का इतिहास,.* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ. 7-8.
35. श्यामलदास (1989). *वीरविनोद:मेवाड़ का प्राचीन इतिहास,* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, पृ.2.
36. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1937). *राजपूताने का इतिहास, (राजपूताने का प्राचीन इतिहास), जिल्द प्रथम,* अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, द्वितीय संस्करण, पृ.5.
37. शर्मा,कालूराम (1991). एनल्स एंड एंटीक्यूटीज ऑफ़ राजपूताना' हिंदी अनुवाद, जयपुर: मंगल प्रकाशन, पृ.119-120.
38. कविराजा शयामलदास (1986). *वीर विनोद, भाग प्रथम,* दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृ.151.
39. शर्मा, गोपीनाथ(1971).*राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ.36.
40. शयामलदास (1986).*वीर विनोद, भाग प्रथम,* नई दिल्लीःमोतीलाल बनारसीदास, पृ. 247-249.
41. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999).*उदयपुर राज्य का इतिहास,*जोधपुर:राजस्थानी ग्रंथा.पृ. 71-72.
42. शर्मा,कालूराम(1991).*एनल्स एंड एंटीक्यूटीज ऑफ़ राजपूताना'* हिंदी अनुवाद, जयपुर:मंगल प्रकाशन. पृ. 125-126.
43. शर्मा, गोपीनाथ(1971).*राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ.43.
44. शयामलदास (1986). *वीर विनोद, भाग प्रथम,* नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृ.186-188.
45. ओझा, गौरीशंकरहिराचंद(1999).*उदयपुर राज्य का इतिहास,*जोधपुर:राजस्थानी ग्रंथा.पृ. 81-85.
46. शर्मा, गोपीनाथ(1971).*राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ. 43.
47. शर्मा,दशरथ(1966).*राजस्थान थ्रू दि एजेज,* बीकानेर:राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज, पृ. 241-149.
48. शर्मा, गोपीनाथ (1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ.52.
49. शयामलदास (1986). *वीर विनोद, भाग प्रथम,* नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृ.190-191.
50. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999).उदयपुर राज्य का इतिहास,जोधपुर:राज.ग्रंथागार, पृ.115-116.
51. शर्मा, गोपीनाथ(1971).*राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ.50.
52. शर्मा, कालूराम(1991).एनल्स एंड एंटीक्यूटीज ऑफ़ राजपूताना, जयपुर:मंगल प्रकाशन. पृ.132.

53. टॉड, कर्नल जेम्स (1920). *एनाल्स एंड एंटीक्वितिज ऑफ़ राजस्थान, ऑर दी सेंट्रल एंड वेस्टर्न राजपूत स्टेट ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम प्रथम,* लन्दन, एडिनबुर्ग, ग्लास्गोव, न्यूयॉर्क, टोरंटो, मेलबोर्न, बॉम्बे : हुम्फ्रे मिल्फोर्ड ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 196-197.

54. चितौड़ का वि.1331 का शिलालेख, शर्मा, गोपीनाथ (1972). *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, भाग प्रथम,* जयपुरः राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ट 112-113,

55. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ.54-55.

56. राजपूताना म्यूजियम रिपोर्ट, (1913-140). अजमेर: राजपूताना म्यूजियम, राजस्थान पृ.2.

57. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास.* जोधपुर:राज.ग्रंथा.पृ.122-124.

58. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ.57.

59. ओझा,गौरीशंकरहिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,.* जोधपुर:राज. ग्रंथागार,पृ.126-134.

60. शर्मा,गोपीनाथ (1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ. 57.

61. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राज. ग्रंथागार, पृ.134.

62. ओझा,गौरीशंकरहिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राजस्थानी ग्रंथागार, पृ.134.

63. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,भा.1,*जोधपुर:राज.ग्रंथागार, पृ.135.

64. कविराजा शयामलदास (1986). *वीर विनोद, भाग प्रथम,* नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृ.212.

65. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट नैणसी री ख्यात, पत्र 42

66. कुम्भलगढ़ शिलालेख, शर्मा, गोपीनाथ (1972). *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, भाग प्रथम,* जयपुर: राजस्थान हिंदी अकादमी, पृष्ट 145-148

67. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर: राज.ग्रंथा.पृ.153-154.

68. चीरवे का शिलालेख, शर्मा, गोपीनाथ (1972). *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, भाग प्रथम,* जयपुर: राजस्थान हिंदी अकादमी, पृष्ट 110-111.

69. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राज.ग्रंथा.पृ.154-55.

70. शर्मा, दशरथ(1966). राजस्थान थ्रू दि एजेज,1, बीकानेर: राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज, पृ.240.

71. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राज. ग्रंथा.पृ.158-159.

72. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राज.ग्रंथा.पृ.150-146.

73. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ.183.

74. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,.,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ.87

75. जयानक (1941). *पृथ्वीराजविजय महाकाव्य, द्वितीय सर्ग 2, श्लोक 1-43,* (संपादक –डॉ.गौरीशंकर हिराचंद ओझा), अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, पृष्ट 30-43

76. सुरि, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग 12, भाग तृतीय,* (सम्पादक, मुनि जिनविजय), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.264.

77. टॉड, कर्नल जेम्स (1920). *एनाल्स एंड एंटीक्वुतिज ऑफ़ राजस्थान, ऑर दी सेंट्रल एंड वेस्टर्न राजपूत स्टेट ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम प्रथम,* लन्दन, एंड बॉम्बे:हुम्फ्रे मिल्फोर्ड ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेसपृ.80.

78. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राज.ग्रंथागार, पृ.72-75.

79. शर्मा, दशरथ(1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्टीज,* जालन्धर: एस. चन्द एंडकम्पनी, पृ. 9-10.

80. राय, एच.सी. (1937). *दी डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ़ नोर्देन इंडिया,* (अर्ली मिडिवल पीरियड), भाग द्वितीय, कलकत्ता: यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.1052.

81. सुरि, नयन चन्द्र, (1993). *हम्मीर महाकाव्य,* (सम्पादक, मुनि जिनविजय), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 5.

82. शर्मा, दशरथ(1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्टीज,* जालन्धर: एस. चन्द एंड कम्पनी, पृ. 23-24.

83. जयानक (1941). *पृथ्वीराजविजय महाकाव्य, पंचम सर्ग,* श्लोक 31-37, (संपादक –डॉ.गौरीशंकर हिराचंद ओझा), अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, पृष्ट 108-109.

84. हर्षनाथ मंदिर लेख, शर्मा, गोपीनाथ (1973). राजस्थान के इतिहास के स्रोत, भाग प्रथम, जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ट 66.

85. हर्षनाथ मंदिर लेख, श्लोक 16, शर्मा, गोपीनाथ (1973). *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, भाग प्रथम,* जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ट 66.

86. शर्मा, दशरथ(1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्टीज,* जालन्धर: एस. चन्द एंड कम्पनी, पृ. 26-27.

87. हर्षनाथ अभिलेख, श्लोक19, शर्मा, गोपीनाथ (1973). *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, भाग प्रथम,* जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ट 66.

88. जयानक (1941). *पृथ्वीराजविजय महाकाव्य, पंचम सर्ग,* श्लोक 38-39, (संपादक –डॉ.गौरीशंकर हिराचंद ओझा), अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, पृष्ट 117.

89. बिजोलिया लेख, शर्मा, गोपीनाथ (1973). *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, भाग प्रथम,* जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ट 94.

90. तबकात-ए-नसीरी, मिनहाज-उस-सिराज, इलियट, एच. एम. एंड डाउसन, जॉन (1869). *दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, दी मुहम्मदन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृ.279-280.

91. शर्मा, दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दि एजेज,भा.प्र.,* बीकानेर:राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज,पृ.257.

92. शर्मा, दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दि एजेज,* बीकानेर:राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज, पृ.699-700.

93. जैन, कैलाशचन्द, (1972).एन्सेंट सिटीज एंड टाउन ऑफ़ राजस्थान, वाराणसी, पटना व दिल्लीः मोतीलाल बनारसी दास, पृ.301

94. आर.सी.मजुमदार (1957). *दी स्ट्रेगिल फॉर एम्पाइर, (दि हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ़ दी इंडियन पीपल) भाग पंचम,* बॉम्बे: भारतीय विधा भवन .पृ. 82.

95. जयानक (1941). *पृथ्वीराजविजय महाकाव्य, पंचम सर्ग,* श्लोक 90-91 , (संपादक –डॉ.गौरीशंकर हिराचंद ओझा), अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, पृष्ट 122-146,

96. जैन, कैलाशचन्द (1972). *एन्सेंट सिटीज एंड टाउन ऑफ़ राजस्थान,* वाराणसी, पटना व दिल्लीःमोतीलाल बनारसी दास, पृ.243.

97. सिंह, आर.बी. (1964). *हिस्ट्री ऑफ़ दी चौहान,* गोरखपुर: वैशाली प्रकाशन, पृ.137.

98. आर.सी.मजुमदार (1957). *दी स्ट्रेगिल फॉर एम्पाइर, (दि हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ़ दी इंडियन पीपल) भाग पंचम,* बॉम्बे: भारतीय विधा भवन .पृ. 82.

99. जैन, कैलाशचन्द (1972). *एन्सेंट सिटीज एंड टाउन ऑफ़ राजस्थान,* वाराणसी, पटना व दिल्लीः मोतीलाल बनारसी दास, पृ.243

100. जयानक (1941). *पृथ्वीराजविजय महाकाव्य, पंचम सर्ग,* श्लोक 192-193, (संपादक –डॉ.गौरीशंकर हिराचंद ओझा), अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, पृष्ट 147.

101. शर्मा, दशरथ(1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्टीज,* जालन्धर: एस. चन्द एंड कम्पनी, पृ.43-44

102. शर्मा, दशरथ शर्मा(1959).*दि अर्ली चौहान डाइनेस्टीज,* जालन्धर:एस. चन्द एंड कम्पनी,पृ.53-54.

103. सिंह, आर.बी. (1964). *हिस्ट्री ऑफ़ दी चौहान,* गोरखपुर: वैशाली प्रकाशन, पृ.140.

104. शर्मा, दशरथ(1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्टीज,* जालन्धर: एस. चन्द एंड कम्पनी, पृ.55.

105. शर्मा, दशरथ(1959).*दि अर्ली चौहान डाइनेस्टीज,*जालन्धर:एस. चन्द एंड कम्पनी,पृ.56-57.

106. शर्मा, गोपीनाथ(1971).*राजस्थान का इतिहास,,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ. 95.

107. जैन, कैलाशचन्द (1972). *एन्शेट सिटीज एंड टाउन्स ऑव राजस्थान,* वाराणसी, पटना व दिल्लीः मोतीलाल बनारसी दास, पृ.244.

108. शर्मा,दशरथ (1966). *राजस्थान थ्रू दि एजेज,1,* बीकानेर: राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज, पृष्ट 97.

109. आर.सी.मजुमदार (1957). *दी स्ट्रेगिल फॉर एम्पाइर, (दि हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ़ दी इंडियन पीपल) भाग प्रथम,* बॉम्बे: भारतीय विधा भवन .पृ. 86.

110. सिंह, आर.बी. (1964). *हिस्ट्री ऑफ़ दी चौहान,* गोरखपुर: वैशाली प्रकाशन, पृ.153-54

111. शर्मा, गोपीनाथ(1971).*राजस्थान का इतिहास, भाग प्र.* आगरा:शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी,पृ.97.

112. शर्मा, गोपीनाथ(1971).*राजस्थान का इतिहास,.* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृष्ट 97.

113. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहासभा.प्र.* जोधपुर:राज.ग्रंथागार, पृ.61.

114. सिंह, आर.बी. (1964). *हिस्ट्री ऑफ़ दी चौहान,* गोरखपुर: वैशाली प्रकाशन, पृ. 160-161.

115. शर्मा, दशरथ(1959).*दि अर्ली चौहान डाइनेस्टीज,* जालन्धर: एस. चन्द एंड कम्पनी, पृ.73-74.

116. जयानक (1941). *पृथ्वीराजविजय महाकाव्य, दसम सर्ग,* श्लोक 7-31, (संपादक –डॉ.गौरीशंकर हिराचंद ओझा), अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, पृष्ट 243-250.

117. शर्मा, दशरथ शर्मा (1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्टीज,* जालन्धर: एस. चन्द एंड कम्पनी, पृ 74.

118. चन्द्रबरदाई (1906). *पृथ्वीराजरासो, भाग प्रथम,* (संपादकमोहनलाल,विष्णुलालपाण्ड्य व श्यामसुन्दरदास), बनारस: नागरी प्रचारणी ग्रन्थमाला, पृष्ट. 54-56.

119. सिंह, आर.बी. (1964). *हिस्ट्री ऑफ़ दी चौहान,* गोरखपुर: वैशाली प्रकाशन, पृ.169 -170.

120. जोधराज (1949). *हम्मीर रासो,* संपादक श्यामसुन्दरदास, काशी: नागरी प्रचारणी सभा, पृष्ट 23.

121. गहलोत,जगदीश सिंह (1937). *दी हिस्ट्री ऑफ़ राजपूताना, भाग द्वितीय,* जोधपुर: हिंदी साहित्य मंदिर, पृ. 25-26.

122. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास (1955). *खलजी कालीन भारत,* अलीगढ़: डिपार्टमेंट ऑफ़ हिस्ट्री,अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविधालय, पृ 171.

123. कायस्थ,हीरानन्द(1963).तारीख ए किला रणथम्भौर, सक्सेना जयपुर:संघी प्रकाशन पृ.1.

124. जोधराज, (1949). *हम्मीर रासो,* संपादक श्यामसुन्दरदास, काशी: नागरी प्रचारणी सभा, पृष्ट 23.

125. कविराजा शयामलदास, (1986). *वीर विनोद, भाग प्रथम,* नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृ.

126. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राजस्थानी ग्रंथागार, पृ.4.

127. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास (1955). *खलजी कालीन भारत,* अलीगढ़: डिपार्टमेंट ऑफ़ हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविधालय,पृ.205.

128. सुरि, नयनचन्द्र, (1993). *हम्मीर महाकाव्य,* संपादक – जिनविजयसूरी, जोधपुर: राजस्थान प्राच्य विधा मंदिर प्रतिष्ठा, पृ.29.

129. जावेद अनवर, (1990). *हिस्ट्री ऑफ़ रणथम्भौर,* सवाई माधोपुर: रणथम्भौर पब्लिकेशन, पृ.12.

130. शर्मा, गोपीनाथ (1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ.100.

131. टॉड, कर्नल जेम्स(1920). *एनाल्स एंड एंटीक्वितिज ऑफ़ राजस्थान, ऑर दी सेंट्रल एंड वेस्टर्न राजपूत स्टेट ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम द्वितीय,* लन्दन एंड बॉम्बे:हुम्फ्रे मिल्फोर्ड ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.1176-1204.

132. नैणसी,मुंहता,(1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 279.

133. शर्मा,दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दि एजेज,भाग1,* बीकानेर: राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज, पृष्ट 232.

134. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा:शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी,ष्ट 100.

135. शर्मा, दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दि एजेज,भा.१*बीकानेर:राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज,पृष्ट 280- 82.

136. नैणसी, मुंहता, (1962). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग द्वितीय,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ. 280.

137. टॉड, कर्नल जेम्स (1920). *एनाल्स एंड एंटीक्वुतिज ऑफ़ राजस्थान, ऑर दी सेंट्रल एंड वेस्टर्न राजपूत स्टेट ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम द्वितीय,* लन्दन एंड बॉम्बे : हुम्फ्रे मिल्फोर्ड ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.1203.

138. आर.सी.मजुमदार (1957). *दी स्ट्रेगिल फॉर एम्पाइर, (दि हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ़ दी इंडियन पीपल)भाग पंचम,* बॉम्बे: भारतीय विधा भवन, पृ.19-20.

139. नैणसी, मुंहता (1962). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग द्वितीय,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ 32.

140. शर्मा,दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दि एजेज,भा. १*बीकानेर: राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज, पृ.286.

141. नैणसी, मुंहता, (1962). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग द्वितीय,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.281.

142. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा:शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृष्ट101,

143. शर्मा,दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दि एजेज,भागप्रथम,* बीकानेर:राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज, पृ.287.

144. नैणसी, मुंहता, (1962). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग द्वितीय,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ. 288, 292, 295.

145. आर.सी.मजुमदार, (1957). *दी स्ट्रेगिल फॉर एम्पाइर, (दि हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ़ दी इंडियन पीपल) भाग पंचम,* बॉम्बे: भारतीय विधा भवन, पृ.56.

146. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद, (1937). *दि राजपूताने का इतिहास, राजपूताने का प्राचीन इतिहास, जिल्द प्रथम,* अजमेर : वैदिक यन्त्रालय, पृष्ट 204. पृ.69.

147. शर्मा, हनुमान,(1937). *जयपुर राज्य का इतिहास, भाग प्रथम,* दिल्ली: श्रीकृष्णा कार्यालय, पृष्ट. 8,

148. मिश्रण, सूर्यमल (2007), *वंश भास्कर, द्वितीय खंड,* संपादक: चन्द्र प्रकाश देवल, नई दिल्लीः साहित्य अकादमी, पृष्ट 1014

149. शर्मा, हनुमान(1937). *जयपुर राज्य का इतिहास,भाग प्रथम,* दिल्ली: श्रीकृष्णा कार्यालय, पृष्ट 5-7.

150. भंडारी, सुखसम्पतराय (1927). *भारत के देशी राज्य(जयपुर राज्य का इतिहास),* इंदौर: राज्य मंडल पब्लिकेशन हाउस,पृष्ट 5,

151. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1937). *राजपूताने का इतिहास, (राजपूताने का प्राचीन इतिहास), जिल्द प्रथम,* अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, द्वितीय संस्करण, पृ.236.

152. शयामलदास, (1986). *वीर विनोद, भाग प्रथम,* नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 85.

153. नन्दशर्मण, श्रीरामनाथ (1943). *जयपुर राज वंशावली,* जयपुरः जयपुर संस्थान, पृ. 5.

154. हिंदी विश्व कोश में लिखा है कि गलतात के ढूंढूंढा दैत्य से ढूढाड विख्यात हुआ

155. शर्मा, हनुमान(1937). *जयपुर राज्य का इतिहास,भा.प्र.* नई दिल्ली: श्रीकृष्णा कार्यालय, पृ.12-13.

156. कविराजा शयामलदास(1986) *वीर विनोद,भाग प्रथम,* नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 85.

157. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ. 105.

158. शर्मा, हनुमान(1937). *जयपुर राज्य का इतिहास, भाग प्रथम,* नई दिल्ली:श्रीकृष्णा कार्यालय, पृ.19.

159. कविराजा शयामलदास(1986). *वीर विनोद, भाग द्वितीय,* दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास,पृ. 46.

160. टॉड, कर्नल जेम्स (1965). *एनाल्स ऑफ़ एन्टीक्टीज ऑफ़ राजस्थान* (हिंदी अनुवाद डॉ. ईश्वरी प्रसाद), इलाहवाद: आदर्श हिंदी पुस्तकालय, पृष्ट 636.

161. सहगल, के.के. (1971). *राजस्थान डिस्ट्रिक गजेटियरस,* जालौर, जयपुर: डायरेक्टरेट डिस्ट्रिक्ट, राजस्थान गवर्मेन्ट, पृ.1-2.

162. शर्मा,दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दि एजेज*बीकानेर:राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज, पृष्ट 121-122.

163. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1937). *दि राजपूताने का इतिहास, राजपूताने का प्राचीन इतिहास, जिल्द प्रथम,* अजमेर : वैदिक यन्त्रालय, पृष्ट 204.

164. जैन, कैलाशचन्द (1972). *एन्सेंट सिटीज एंड टाउन ऑफ़ राजस्थान,* वाराणसी, पटना व दिल्लीः मोतीलाल बनारसी दास, पृष्ट 185-186.

165. मिनहाज उस सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी.एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.369-370.

166. मुहम्मद हबीब व खलिक अहमद निजामी (सं.), *दिल्ली सल्तनत, खंड प्रथम,* (दिल्ली,1978) पृ.134.

167. मजुमदार, आर.सी. (1957). *दी स्ट्रगल फॉर अम्पायर (हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ़ दी इंडियन पीपल भाग पंचम,* बॉम्बे : भारतीय विधा भवन पृष्ट 117.

168. मिनहाज-उस-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु.मेजरजी.एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न.272-278. पृ. 449.

169. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. जॉन ब्रिज (1908). *दी हिस्ट्री ऑफ़ दी राइज दी मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया,* कलकत्ता एंड लंदनः कैम्बे एंड के.आर.केगन, त्रुबनेर ट्रेंच एंड कम्पनी,पृ. 95.

170. व्यास, हरिदत्त गोविन्द (1947). *जैसलमेर का इतिहास,* पृष्ट 40-41.

171. भाटी,नारायणसिंह(1981). *जैसलमेर री ख्यात,* जोधपुर: राजस्थान शोध संस्थान, चोपासनी, पृ.17.

172. सोमानी, रामवल्लभ (1990). *हिस्ट्री ऑफ़ जैसलमेर,* पंचशील प्रकाशन, पृष्ट 25-26

173. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख ए फरिश्ता, (1908). अनु. जॉन ब्रिग्ज, *दी हिस्ट्री ऑफ़ मुहम्मडन राइज मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया, वॉल्यूम प्रथम,* कलकत्ता एंड लंदनः आर.कैम्ब्रय एंड कम्पनी,केगन पॉल, ट्रेंच त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृष्ट 169.

174. भाटी, हरिसिंह (1998). *गजनी से जैसलमेर,* बीकानेर: हरिसिंह भाटी पुरानी गिन्नानी, पृ. 19-20

175. व्यास, हरिदत्तगोविन्द (1947). *जैसलमेर का इतिहास,* पृष्ट 41

176. माहेश्वरी, हरिबल्लभ (2006). *जैसलमेर का इतिहास,* ग्वालियर : दी हेरिटेज, पृ. 18-21.

177. मांगीलाल मयंक, *जैसलमेर राज्य का इतिहास,* पृ.46-47.

178. सोमानी, राजवल्लभ (1990). *हिस्ट्री ऑफ़ जैसलमेर,* जयपुर: पंचशील प्रकाशन, पृ.22-24.

179. शर्मा,दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दी एजेज, भाग प्रथम,*बीकानेर: राजस्थान स्टेट अर्चिवेस, पृ.259.

180. भाटी,हरिसिंह (1998). *गजनी से जैसलमेर,* बीकानेर:हरिसिंह भाटी पुरानी गिन्नानी, पृ. 214-219.

181. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1911). *सिरोही राज्य का इतिहास,* अजमेर: वैदिक यन्त्रालय,पृष्ट 36.

182. मिनहाज-उस-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.451-452.

183. जयानक (1940). *पृथ्वीराज विजय महाकाव्य,* सम्पादक गोरीशंकर हिराचन्द सर्ग दशम श्लोक 42, अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, पृष्ट 253 – 255,

184. जयानक (1940). *पृथ्वीराज विजय महाकाव्य,* सम्पादक गोरीशंकर हिराचन्द सर्ग दशम श्लोक 50, अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, पृष्ट 256.

185. *प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ द आर्कोलोजिकल सर्व ऑफ इंडिया,* वेस्टर्न सर्किल, (1906-07). दिल्ली: आर्कियोलॉजिकल सर्व ऑफ़ इंडिया, पृ.41-42.

186. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम तारीख ए फरिश्ता (1908). अनु. जॉन ब्रिग्ज, *दी हिस्ट्री ऑफ़ मुहम्मडन राइज मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया, वॉल्यूम प्रथम,* कलकत्ता एंड लंदनः आर.कैम्ब्रय एंड कम्पनी, केगन पॉल, ट्रेंच त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृ.95.

187. मिनहाज-उस-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी.एस.रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.451

188. हबीबुल्लाह, (1945). *दी फाउंडेशन ऑफ़ मुस्लिम रूल इन इंडिया,* लाहोर : मुहम्मद अशरफ कश्मीरी बाज़ार, पृष्ट 52-53.

189. इलियट एंड डाउसन(1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भा.द्वि.* लंदनःत्रुबनेर पृ.167.

190. ओझा, गौरीशंकर हिराचन्द(1911). *सिरोही राज्य का इतिहास,* अजमेर : वैदिक यन्त्रालय, पृष्ट 36.

191. मिनहाज उस सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी.एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.451-452.

192. मेरुतुग (1933). *गापार्यकृत प्रबंध चिंतामणि , प्रथम भाग,* गुजरात : शांति निकेतन, पृ. 97.

193. मिनहाज उस सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी.एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 452-453.

194. मजुमदार, आर. सी. (1957). *दी स्ट्रगल फॉर अम्पायर, (दि हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ़ दी इंडियन पीपल,) भाग पंचम,* बांम्बे: भारतीय विधा भवन, पृष्ट 117.

195. मिनहाज-उस-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी.एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक

सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 453-456.

196. जयानक (1940). *पृथ्वीराज विजय महाकाव्य,* सम्पादक गोरीशंकर हिराचन्द सर्ग दशम श्लोक 42, अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, पृष्ट 253 – 255,

197. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी,* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.449-451.

198. शर्मा, दशरथ (1959). *दी अर्ली हिस्ट्री चौहान डाइनेस्टिज,* जालन्ध:एस. चन्द एंड कम्पनी, पृष्ट186.

199. टॉड, कर्नल जेम्स (1920). *एनाल्स एंड एन्टीकूस्टिज ऑफ़ राजस्थान, वॉल्यूम प्रथम,* लंदनः हुम्फ्रे मिल्फोर्ड ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ट 196-197

200. शर्मा, दशरथ (1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्तिज,* दिल्ली व जालन्धर : चन्द एंड कम्पनी, पृ.81.

201. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.457-458.

202. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.457-458

203. मजुमदार, आर. सी. (1957). *दी स्ट्रगल फॉर अम्पायर, (दि हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ़ दी इंडियन पीपल, भाग पंचम,* बॉम्बे: भारतीय विधा भवन, पृष्ट 109-115.

204. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.459-460;

205. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम तारीख ए फरिश्ता (1908). अनु. जॉन ब्रिग्ज, *दी हिस्ट्री ऑफ़ मुहम्मडन राइज मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया, वॉल्यूम प्रथम,* कलकत्ता एंड लंदनः आर.कैम्ब्रय एंड कम्पनी केगन पॉल, ट्रेंच त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृ. 97.

206. द्विवेदी, हरिहरनिवास (1973). *दिल्ली के तोमर,* ग्वालियर:विधा मंदिर प्रका. पृ. 52,155 -156.

207. श्रीवास्तव, ए.एल.(1950). *दी सल्तनत ऑफ़ दिल्ली (711-1526),* आगरा:शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी पृ. 76.

208. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 458-459.

209. मजुमदार, आर. सी. (1957). *दी स्ट्रगल फॉर अम्पायर, (दि हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ़ दी इंडियन पीपल, भाग पंचम,* बॉम्बे: भारतीय विधा भवन,पृष्ट.110.

210. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी,* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 459.

211. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 466-467.

212. शर्मा, गोपीनाथ (1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल एंड कम्पनी, पृष्ट 168.

213. द्विवेदी, हरिहरनिवास (1973). *दिल्ली के तोमर,* ग्वालियर : विधा मंदिर प्रकाशन, भा. 1, पृ. 285.

214. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख ए फरिश्ता (1908). अनु. जॉन ब्रिग्ज, *दी हिस्ट्री ऑफ़ मुहम्मडन राइज मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया, वॉल्यूम पंचम,* कलकत्ता एंड लंदनः आर.कैम्ब्रय एंड कम्पनी, केगन पॉल, ट्रेंच त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृ.97.

215. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी,* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.461-464.

216. शर्मा, गोपीनाथ (1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल एंड कम्पनी, पृष्ट168.

217. शर्मा, दशरथ (1966). *राजस्थान थ्रू दी एजेज,* बीकानेर: राजस्थान स्टेट अर्चिवेस, पृ. 297.

218. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 464.

219. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 119.

220. मिनहाज ए सिराज, तबकात ए नासिरी, (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.466-467.

221. सूरी, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग तृतीय,* श्लोक 47-73, सम्पादक मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 5.

222. द्विवेदी, हरिहरनिवास,(1973).*दिल्ली के तोमर, भाग प्रथम*ग्वालियर:विधा मंदिर प्रकाशन, पृ.285.

223. शर्मा, गोपीनाथ (1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल एंड कम्पनी, पृष्ट169.

224. *इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली* (सितेम्बर,1940).कलकत्ता ओरिन्टल जनरल, कलकत्ता ओरिन्टल प्रेस

225. ताजुल मासिर, इलियट एंड डाउसन (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग तृतीय,,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ. 157;

226. सूरी, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग तृतीय,* श्लोक 47-73, सम्पादक मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 5-6.

227. *पृथ्वीराज रासो,* अनु. मोहनलाल विष्णुलाल, राधा कृष्ण दास व श्यामसुन्दर दास, (1910). बनारस: नागर प्रचारणी सभा, पृ. 216-226.

228. शर्मा, दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दी एजेज,१,* बीकानेर : राजस्थान स्टेट आर्कोइब्ज, पृष्ट 45.

229. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख ए फरिश्ता (1908). अनु. जॉन ब्रिग्ज, *दी हिस्ट्री ऑफ़ मुहम्मडन राइज मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया, वॉल्यूम प्रथम,* कलकत्ता एंड लंदनः आर.कैम्ब्रय एंड कम्पनी केगन पॉल, ट्रेंच त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृ.99-100.

230. इलियट एंड डाउसन (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ. 140.

231. इलियट एंड डाउसन (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ. 147.

232. *इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली (सितेम्बर,1940).* कलकत्ता ओरिन्टल जनरल, कलकत्ता ओरिन्टल प्रेस, पृ.571

233. तबकात-ए-नासिरी, इलियट एंड डाउसन (1869). हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय, लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ. 176.

234. इलियट एंड डाउसन, (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ. 147.

235. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 468-469.

236. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ..466. फरिश्ता, भा.1 पृ.176.

237. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 468-469.

238. ताजुलमसीर, इलियट एंड डाउसन (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ. 157.

239. *पृथ्वीराज रासो,* बांणबोध प्रस्ताव, पृथ्वीराज रासो, अनु. मोहनलाल विष्णुलाल, राधा कृष्ण दास व श्यामसुन्दर दास, (1910). बनारस: नागर प्रचारणी सभा, पृ..2387-2468.

240. सूरी, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य,सर्ग तृतीय, श्लोक 67-72,* सम्पादक मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 5.

241. पद्मनाथ (1997). *कान्हड़देव प्रंबध,* सम्पादक – बलदेव व्यास, कान्तिदेव, चतुर्थ खंड, पद 326 329, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान (जयपुर 1953) पृष्ट 228-229.

242. सिंह, आर.बी. (1964). *हिस्ट्री ऑफ़ दी चौहान,* गोरखपुर : वैशाली प्रकाशन, पृष्ट 188-190.

243. शर्मा, दशरथ (1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्तिज,* दिल्ली व जालन्धर: चन्द एंड कम्पनी, पृ.87.

244. ताजुल मासीर, इलियट एंड डाउसन (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ.160.

245. सूरी, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग चतुर्थ, श्लोक 67-72,* सम्पादक मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 6.

246. *आन्युअल रिपोर्ट ऑफ़ द राजपुताना म्यूजियम* , अजमेर,1912 -13, पृष्ट 2,5.

247. ताजुल मआसिर, इलियट एंड डाउसन, (1869). हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग 2, लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ.160.

248. ताजुल मआसिर, इलियट एंड डाउसन, (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनःत्रुबनेर एंड कम्पनी पृ.63 , 65.

249. सूरी, नयन चन्द्र, (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग सप्तम,* श्लोक 159, सम्पादक मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 8.

250. इलियट एंड डाउसन, (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ.160.

251. मुहम्मद हबीब व अहमद निजामी,(1978).*दिल्ली सल्तनत, खंड प्रथम,* (दिल्ली,1978) पृ.142.

252. सूरी, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग चतुर्थ, श्लोक 67-72,* सम्पादक मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 4.

253. *आन्युअल रिपोर्ट ऑफ़ राजपुताना म्यूजियम,* अजमेर,1912-13, पृ. 2,5.

254. ताजुल मासिर, इलियट एंड डाउसन (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ.160.

255. जावेद अनवर, (1990).*हिस्ट्री ऑफ़ रणथम्भौर,* सवाई माधोपुर: रणथम्भौर पब्लिकेशन, पृ.16-18.

256. हसन निजामी, ताजुल मासिर, अनु. इलियट एंड डाउसन, (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ.164

257. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख ए फरिश्ता, (1908). अनु. जॉन ब्रिग्ज, *दी हिस्ट्री ऑफ़ मुहम्मडन राइज मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया, वॉल्यूम प्रथम,* कलकत्ता एंड लंदनः आर.कैम्ब्रय एंड कम्पनी, केगन पॉल, ट्रेंच त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृ.109.

258. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.519.

259. हसन निजामी, ताजुल मआसिर, अनु. इलियट एंड डाउसन, (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ.163-164.

260. हसन निजामी, *ताजुल मआसिर,* अनु. इलियट एंड डाउसन, (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ.164.

261. सूरी, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग चतुर्थ, श्लोक 16-19,,* सम्पादक मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 9.

262. द्विवेदी, हरिहरनिवास, (1976). *ग्वालियरके तोमर भाग द्वितीय,* मुरार- ग्वालियर : विधा मंदिर प्रकाशन, पृ.2.

263. हसन निजामी, *ताजुल मआसिर,* अनु. इलियट एंड डाउसन, (1869). हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग 2, लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ. 164.

264. एस.ए.आई.,तिरमिजी,*अजमेर थ्रू इन्स्क्रप्सस* (न्यू देहली),भूमिका पृष्ट 11.

265. शारदा, हरविलास (1911). *अजमेर: हिस्टोरिकल एंड डिस्क्रिप्टिव,* (रिवाइज्ड एडिशन 1941), अजमेर: फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, पृ.50-51.

266. तबकाते नासिरी, अनु. इलियट एंड डाउसन (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ.276.

267. रेऊ,विश्वेश्ववर(1938).*मारवाड़ राज्य का इतिहास,* जोधपुर:आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट, पृ.13-14

268. *आईने-अकबरी*, भाग द्वितीय , पृ.506.

269. टॉड, कर्नल जेम्स (1920). *एनाल्स एंड एन्टीकूस्टिज ऑफ़ राजस्थान, वॉल्यूम प्रथम,* लंदनः हुम्फ्रे मिल्फोर्ड ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ट 105.

270. टॉड, कर्नल जेम्स (1920). *एनाल्स एंड एन्टीकूस्टिज ऑफ़ राजस्थान, वॉल्यूम द्वितीय,* लंदनः हुम्फ्रे मिल्फोर्ड ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ट 640.

271. कनिघम की आर्कियोलॉजिकल सर्व रिपोर्ट,भा.11,पृ.123.

272. रेऊ, पंडित विश्वेश्वर (1938). *मारवाड़ राज्य का इतिहास, भाग प्रथम,* जोधपुर: आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट, पृष्ट 31-32.

273. जैन, कैलाश चन्द (1959). *एन्शेन्ट सिटीज एंड टाउन्स ऑन हिस्ट्री ऑन राजस्थान,* दिल्ली व वाराणसीःमोतीलाल बनारसीदास, पृष्ट 244.

274. सिंह, आर.बी. (1964). *हिस्ट्री ऑफ़ दी चौहान,* गोरखपुर : वैशाली प्रकाशन, पृष्ट 171-176.

275. शर्मा, दशरथ (1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्तिज,* दिल्ली: चन्द एंड कम्पनी, पृष्ट, 76.

276. शर्मा,दशरथ(1966).*राजस्थान थ्रू दी एजेज,१*बीकानेर:राजस्थान स्टेट आर्कोइब्ज,पृ. 477,700.

277. जैन, कैलाश चन्द (1959). *एन्शेन्ट सिटीज एंड टाउन्स हिस्ट्री ऑन राजस्थान,* दिल्ली व वाराणसीः मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ट 244-246.

278. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278.

279. हबीब, मोहम्मद एंड के.एम.निजामी (1970) *कम्प्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, भाग पंचम,* इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस दिल्ली पीपल्स पब्लिकेशन्स हाउस, पृ.172.

280. रिजवी, अतहर अब्बास (1956). *आदि तुर्क कालीन भारत (1206- 1290),* अलीगढ़ : डिपार्टमेंट ऑफ़ हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, पृ. 301, टिप्पणी न. 2.

281. शर्मा, दशरथ(1966).*राजस्थान थ्रू दी एजेज,वॉ.प्र.* बीकानेर:राजस्थान स्टेट अर्चिवेस,पृ.303-304,700.

282. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.549.

283. सिंह, चंद्रमणि (2008), *जयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, पृष्ट 10-11.

284. मंडावा, देवीसिंह, (2001). कच्छवाहों का इतिहास, जोधपुर : राजस्थानी ग्रंथागार, पृष्ट 9 -11.

285. *राजस्थान डिस्ट्रिक गजेटियरस,* भरतपुर, (जयपुर,1971),पृ.475-476.

286. द्विवेदी, हरिहरनिवास (1976). *ग्वालियर के तोमर,* मुरार- ग्वालियर : विधा मंदिर प्रकाशन, पृ.4.

287. मुहम्मद हबीब व खलिक अहमद निजामी (सं.),*दिल्ली सल्तनत,खंड प्रथम,* (दिल्ली,1978) पृ.144.

288. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.545,

289. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.628

290. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी,* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.628.

291. अशोक कुमार सिंह, *अजमेर का मेर विद्रोह और उसका ऐतिहासिक महत्व,* शोध-प्रत्रिका, वर्ष 34, अंक 3-4,पृ.34-42.

292. हसन निजामी, ताजुल मआसिर, अनु. इलियट एंड डाउसन (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ. 166.

293. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख ए फरिश्ता (1908). अनु. जॉन ब्रिग्ज, *दी हिस्ट्री ऑफ़ मुहम्मडन राइज मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया, वॉल्यूम प्रथम,* कलकत्ता एंड लंदनः आर.कैम्ब्रय एंड कम्पनी, केगन पॉल, ट्रेंच त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृष्ट 110..

294. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी,* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 520.

295. हसन निजामी, ताजुल मआसिर, अनु. इलियट एंड डाउसन (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ. 166.

296. हसन निजामी, ताजुल मआसिर, अनु. इलियट एंड डाउसन (1869). *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय,* लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ. 166-168.

297. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 627.

298. अशोक कुमार सिंह, *अजमेर का में विद्रोह,* शोध-प्रत्रिका, वर्ष 34, अंक 3-4, पृष्ट 43.

299. सेहगल, के.के. *राजस्थान डिस्ट्रिक गजेटियरस,* जालौर, (जयपुर,1971,) पृ.571-572.

300. शर्मा, दशरथ (1959).*दि अर्ली चौहान डाइनेस्टिज,* जालन्धर : चन्द एंड कम्पनी, पृ.145-146.

301. मुंहता, नैंणसी (1960). *नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* सम्पादक - बद्रीप्रसाद साकरिया, जोधपुर : प्राच्य विधा प्रतिष्ठान, पृ.152.

302. शर्मा, गोपीनाथ(1971).*राजस्थान का इतिहास,* आगरा:शिवलाल अग्रवाल एंड क. पृ.182-183.

303. सुंडा पर्वत शिलालेख, शर्मा, गोपीनाथ (1993). *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, भाग प्रथम,* जयपुर राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ट 6-7.

304. शर्मा, दशरथ(1959).*दि अर्ली चौहान डाइनेस्टिज,* दिल्ली: चन्द एंड कम्पनी, पृ.149-155.

305. मुंहता, नैंणसी (1960). *नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* सम्पादक-बद्रीप्रसाद साकरिया, जोधपुर: प्राच्य विधा प्रतिष्ठान, पृ.158.

306. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 473-475.

307. डेनजिल इबेटसन, (1911). अ ग्लोसरी ऑफ़ दी ट्राइ ब्स एंड कास्ट्स ऑफ़ दी पंजाब एंड नार्थ-वेस्ट फ्रंटियर प्राविन्स, क्म्पोल्ड बाई एच.ए.रोज,खंड 2,(लाहौर1911), पृ. 274-276,539-540.

308. हसन निजामी, ताजुल मआसिर, अनु. इलियट एंड डाउसन, (1869). हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग 2, लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ. 169-170.

309. मिनहाज ए सिराज, तबकात ए नासिरी, (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.481-483.

310. हसन निजामी, *ताजुल मआसिर,* अनु. इलियट एंड डाउसन, (1869).हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मुहम्मडन पीरियड, भाग द्वितीय, लंदनः त्रुबनेर एंड कम्पनी पृ. 170-171.

311. मिनहाज ए सिराज, *तबकात ए नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.483-486.

312. मुहम्मद हबीब व खलिक अहमद निजामी (सं.), *दिल्ली सल्तनत,खंड प्रथम,* (दिल्ली,1978) पृ.166.

313. शर्मा, दशरथ (1959).*दि अर्ली चौहान डाइनेस्टिज,* जालन्धर : चन्द एंड कम्पनी, पृ. 100-101.

314. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.396-398, 521-526.

315. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.140.

316. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.526-530, 605-606.

317. लटौचे, जे.डी. (1875). *गज़ेटियर ऑफ़ अजमेर-मारवारा इन राजपूताना,* कलकत्ता: ऑफिस ऑफ़ सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्मेन्ट प्रिंटिंग, पृ.12.

318. हबीब,मुहम्मद व अहमद निजामी(1978).*दिल्ली सल्तनत, खंड प्रथम,* (दिल्ली,1978), पृ.142.

319 इलियट, एच.एम. व जॉन डाउसन(1869).*दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,वॉ.II,* लन्दन:त्रुबनेर एंड कंपनी, पृ.225-26.

320. शर्मा, दशरथ (1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्टिज,* जालन्धर: चन्द एंड कम्पनी, पृ.101-102.

321. जावेद अनवर(1990).*ए हिस्ट्री ऑफ़ रणथम्भौर,* सवाई माधोपुर: रणथम्भौर पब्लिकेशन,पृ.17-18.

322. *ताजुल-ए-मासिर,* अनु. इलियट,एच.एम. व जॉन डाउसन (1869). *दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,वॉल्यूम II,* लन्दन : त्रुबनेर एंड कंपनी, पृ.225.

323. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा : शिवलाल अग्रवाल एंड क.पृ 183.

324. मुंहता, नैंणसी (1960). *नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* सम्पादक-बद्रीप्रसाद साकरिया,जोधपुर: प्राच्य विधा प्रतिष्ठान, पृ.158.

325. मुंहता, नैंणसी (1960). *नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* सम्पादक-बद्रीप्रसाद साकरिया,जोधपुर: प्राच्य विधा प्रतिष्ठान,पृ.153.

326. *ताजुल मआसिर,* अनु.रिजवी, अतहर अब्बास (1956). *आदि तुर्क कालीन भारत* (1206- 1290), अलीगढ़ : डिपार्टमेंट ऑफ़ हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, पृ.274.

327. *ताजुल-ए-मासिर,* अनु. इलियट,एच.एम. व जॉन डाउसन (1869). *दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,वॉल्यूम II,* लन्दन: त्रुबनेर एंड कंपनी, पृ.238.

328. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी,* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.512.

329. गर्ग,दामोदरलाल (2010). *भारत का प्राचीन नगर बयाना,* जयपुर : अपोलो प्रकाशन. पृ.55-56.

330. *ताजुल-ए-मासिर,* अनु. इलियट,एच.एम. व जॉन डाउसन (1869). *दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,वॉल्यूम II,* लन्दन : त्रुबनेर एंड कंपनी, पृ.226.

331. सिद्दीकी,मोहम्मद हलीम (2001). *मध्यकालीननागौर का इतिहास,* जोधपुर: महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश.पृ.16,

332. देसाई, लल्लूभाई बी. (1927). *चौहान कुल कल्पद्रुम, भाग प्रथम,* बडौदा:न्यायारातना देसाई लल्लूभाई भीमभाई ,पृष्ट 95-101

333. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 606.

334. शर्मा, दशरथ (1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्टिज,* जालन्धर : चन्द एंड कम्पनी, पृ.149-155.

335. *ताजुल मआसिर,* अनु.रिजवी, अतहर अब्बास (1956). *आदि तुर्क कालीन भारत (1206- 1290),* अलीगढ़ : डिपार्टमेंट ऑफ़ हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, पृ. 274.

336. मुंहता, नैंणसी (1960). *नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* सम्पादक-बद्रीप्रसाद साकरिया, जोधपुर: प्राच्य विधा प्रतिष्ठान,पृ.158.

337. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ. 274.

338. *ताजुल-ए-मासिर,* अनु. इलियट, एच.एम. व जॉन डाउसन (1869). *दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,वॉल्यूम II,* लन्दन : त्रुबनेर एंड कंपनी, पृ.172; ताजुल मआसिर, आ. तू. का. भा. पृ. 274-275.

339. शर्मा, दशरथ (1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्टिज,* जालन्धर : चन्द एंड कम्पनी, पृ.150-152.

340. चिमनलाल, डी.दलाल *जयसिंह सुरि विरचित हम्मीरमदमर्दन* (बडौदा,1920),अंक 2, पृ.11, 21.

341. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन : एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 609.

342. शर्मा, दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दी एजेज, वॉ. १,* बीकानेर: राजस्थान स्टेट अर्चिवेस, पृ.615.

343. शर्मा, दशरथ (1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्टिज,* जालन्धर : चन्द एंड कम्पनी, पृ. 102-103.

344. सूरी,नयन चन्द्र(1993).*हम्मीर महाकाव्य, सर्ग चतुर्थ, श्लोक 41,* सम्पादक मुनिजिनविजय, जोधपुर:राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 72-73.

345. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.610-611.

346. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख ए फरिश्ता(1908). अनु. जॉन ब्रिग्ज,*दी हिस्ट्री ऑफ़ मुहम्मडन राइज मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया, वॉल्यूम प्रथम,* कलकत्ता एंड लंदनः आर.कैम्ब्रय एंड कम्पनी, केगन पॉल, ट्रेंच त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृष्ट 210.

347. *ताजुल-ए-मासिर,* अनु. इलियट,एच.एम. व जॉन डाउसन (1869).*दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,वॉल्यूम II,* लन्दन: त्रुबनेर एंड कंपनी, पृ.174.

348 मिनहाज- ए-सिराज,*तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 610-611.

349. सूरी, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग चतुर्थ, श्लोक 67-72,* सम्पादक मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 80-82.

350. गहलोत, जगदीश (1937). *हिस्ट्री ऑफ़ राजपूताना,* जोधपुर: हिंदी साहित्य मंदिर पृष्ट 50.

351. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 610-611.

352. गहलोत, जगदीश(1937).*हिस्ट्री ऑफ़ राजपूताना,* जोधपुर:हिंदी साहित्य मंदिर पृ.45-46.

353. रेऊ, पंडित विश्वेश्वर (1938).*मारवाड़ का इतिहास,* जोधपुर:आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट पृ. 15.

354. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख ए फरिश्ता (1908). अनु. जॉन ब्रिग्ज, *दी हिस्ट्री ऑफ़ मुहम्मडन राइज मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया, वॉल्यूम प्रथम,* कलकत्ता एंड लंदनः आर.कैम्ब्रय एंड कम्पनी, केगन पॉल, ट्रेंच त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृष्ट 210.

355. ताजुल-ए-मासिर, अनु. इलियट, एच.एम. व जॉन डाउसन(1869).*दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,वॉल्यूम II,* लन्दन : त्रुबनेर एंड कंपनी, पृ.204.

356. तबकात-ए-नासिरी, अनु. इलियट,एच.एम. व जॉन डाउसन(1869).दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,वॉल्यूमII लन्दन : त्रुबनेर एंड कंपनी, पृ. 325.

357. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन : एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 611.

358. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999).*उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राजस्थानी ग्रंथा. पृ. 96.

359. अनिल चन्द्र बनर्जी, *राजपूत स्टडीज* (कलकत्ता,1944 ई), पृ.47.

360. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राज. ग्रंथागार, पृष्ट 163.

361. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन : एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.163.

362. शर्मा, गोपीनाथ(1971). राजस्थान का इतिहास, आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ.199.

363. चीरवे का शिलालेख, शर्मा, गोपीनाथ (1993). *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, भाग प्रथम,* जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ट 110-111.

364. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राजस्थानी ग्रंथा.पृष्ट 161.

365. आबू पर्वत शिलालेख, शर्मा, गोपीनाथ (1993). *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, भाग प्रथम,* जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ट 121-123.

366. ओझा,गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राज. ग्रंथागार, पृष्ट 162.

367. शर्मा, दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दी एजेज,वॉ.प्रथम,* बीकानेर:राजस्थान स्टेट अर्चिवेस, पृ.654.

368. बनर्जी, अनिल चन्द्र (1962). *लेक्चरस ऑन राजपूत हिस्ट्री,* राग्बुनात्ब प्रसाद नोपानी लेक्चर , कलकत्ता यूनिवर्सिटी (1960). पृ.50.

369. एम.एल.माथुर, *"रावल जैत्रसिंह ऑफ़ मेवाड़ : ए सर्व आफहिज फोरेन पॉलिसी"* पी.आई.एच.आई. चौदहवां सम्मेलन जयपुर,1951,पृ. 344.

370. शर्मा, दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दी एजेज,* बीकानेर: राजस्थान स्टेट अर्चिवेस, पृ.654.

371. हबीबउल्ला, ए. बी. एम्. (1945). *दी फाउंडेशन ऑव मुस्लिम रूल्स इन इंडिया (1200-1290),* कलकत्ता : डिपार्टमेंट ऑफ़ इस्लामिक हिस्ट्री एंड कल्चर, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, पृ.100.

372. मिनहाज-ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.200.

373. हबीबउल्ला,ए.बी.एम्.(1945). *दी फाउंडेशन ऑव मुस्लिम रूल्स इन इंडिया (1200-1290),* कलकत्ता: डिपार्टमेंट ऑफ़ इस्लामिक हिस्ट्री एंड कल्चर, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, पृ.270.

374. जैन, कैलाश चन्द (1959). *एन्शेन्ट सिटीज एंड टाउन्स हिस्ट्री ऑन राजस्थान,* दिल्ली व वाराणसीः मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ट 244.

375. हबीबउल्ला, ए.बी.एम्. (1945). *दी फाउंडेशन ऑव मुस्लिम रूल्स इन इंडिया (1200-1290),* कलकत्ता : डिपार्टमेंट ऑफ़ इस्लामिक हिस्ट्री एंड कल्चर, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, पृ.270.

376. इलियट,एच.एम. व जॉन डाउसन (1869). *दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,वॉल्यूम II,* लन्दन: त्रुबनेर एंड कंपनी, इलियट, हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,वॉल्यूम II, पृ.326.

377. हबीबउल्ला, ए.बी.एम्. (1945). *दी फाउंडेशन ऑव मुस्लिम रूल्स इन इंडिया (1200-1290),* कलकत्ता : डिपार्टमेंट ऑफ़ इस्लामिक हिस्ट्री एंड कल्चर, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, पृ.100.

378. *वाकयात-ए-बाबरी,* अनु. इलियट, एच.एम.व जॉन डाउसन (1869). *दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,वॉल्यूम iv,* लन्दन : त्रुबनेर एंड कंपनी,इलियट, पृ.199.

379. गर्ग, दामोदर लाल (2010). *भारत का प्राचीन नगर बयाना,* जयपुर: अपोलो प्रकाशन,पृ.57.

380. सूरी, नयन चन्द्र (1993).*हम्मीर महाकाव्य, सर्ग चतुर्थ, श्लोक 41,* सम्पादक मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 83-85.

381. शर्मा, दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दी एजेज,* बीकानेर: राजस्थान स्टेट अर्चिवेस,पृ.616-617.

382. मिनहाज- ए-सिराज, तबकात-ए-नासिरी (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 642.

383. हबीबउल्ला, ए.बी.एम्. (1945). *दी फाउंडेशन ऑव मुस्लिम रूल्स इन इंडिया (1200-1290),* कलकत्ता : डिपार्टमेंट ऑफ़ इस्लामिक हिस्ट्री एंड कल्चर, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, पृ.145.

384. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 818.

385. शर्मा, दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दी एजेज, वॉ.प्रथम,* बीकानेर:राजस्थान स्टेट अर्चिवेस, पृ.618.

386. जावेद अनवर (1990). *ए हिस्ट्री ऑफ़ रणथम्भौर,* सवाई माधोपुर: रणथम्भौर पब्लिकेशन,पृ.20.

387. शर्मा,दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दी एजेज,वॉ.प्रथम,* बीकानेर: राजस्थान स्टेट अर्चिवेस, पृ. 618.

388. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 818.

389. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 684-685.

390. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.828.

391. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन:एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.713.

392. पाण्डेय, अवध बिहारी, *पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास*, पृ.74-75.

393. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.685.

394. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख ए फरिश्ता (1908). अनु. जॉन ब्रिग्ज,*दी हिस्ट्री ऑफ़ मुहम्मडन राइज मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया, वॉल्यूम प्रथम,* कलकत्ता एंड लंदनःआर.कैम्ब्रय एंड कम्पनी, केगन पॉल, ट्रेंच त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृष्ट 238.

395. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख ए फरिश्ता (1908). अनु. जॉन ब्रिग्ज,*दी हिस्ट्री ऑफ़ मुहम्मडन राइज मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया, वॉल्यूम प्रथम,* कलकत्ता एंड लंदनःआर.कैम्ब्रय एंड कम्पनी, केगन पॉल, ट्रेंच त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृष्ट 242.

396. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 704-706.

397. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास भाग प्रथम,* जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, पृष्ट 165-166.

398. शर्मा, दशरथ(1956). *राजस्थान थ्रू दी एजेज*बीकानेर:राजस्थान स्टेट अर्चिवस, पृ.656.

399. मिनहाज- ए-सिराज, तबकात-ए-नासिरी, (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ. 828.

400. शर्मा, गोपीनाथ(1971).राजस्थान का इतिहास, आगरा:शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ.204.

401. हबीबउल्ला, ए.बी.एम्.,(1945). दी फाउंडेशन ऑव मुस्लिम रूल्स इन इंडिया (1200-1290), कलकत्ता: डिपार्टमेंट ऑफ़ इस्लामिक हिस्ट्री एंड कल्चर, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, पृ.147.

402. मिनहाज-ए-सिराज, तबकात-ए-नासिरी, (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.715.

403. मिनहाज- ए-सिराज, तबकात-ए-नासिरी, (1873). अनु. मेजर जी. एस.रैवर्टी, लन्दन: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. पृ.760.

404. हबीबउल्ला, ए.बी.एम्. (1945). *दी फाउंडेशन ऑव मुस्लिम रूल्स इन इंडिया (1200-1290),* कलकत्ता : डिपार्टमेंट ऑफ़ इस्लामिक हिस्ट्री एंड कल्चर, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, पृ.147-148.

405. बरनी, *तारीखे, फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, खलजी कालीन भारत, (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृष्ट 55-56.

406. बरनी, *तारीखे, फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, खलजी कालीन भारत, (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृष्ट 56-57.

407. जैन, कैलाश चन्द (1959). *एन्शेन्ट सिटीज एंड टाउन्स हिस्ट्री ऑन राजस्थान,* दिल्ली व वाराणसीः मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ट 244.

408. दास,श्यामल(1986). *वीर विनोद, पन्द्रवा प्रकरण,* नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ट 1759.

409. टॉड, कर्नल जेम्स (1920). *एनाल्स एंड एन्टीकूस्टिज ऑफ़ राजस्थान, वॉल्यूम द्वितीय,* लंदनः हुम्फ्रे मिल्फोर्ड ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ट 1210.

410. शर्मा, दशरथ(1956). *राजस्थान थ्रू दी एजेज वॉ. प्रथम*, बीकानेर: राजस्थान स्टेट अर्चिवस, पृ. 680.

411. जैन, कैलाश चन्द (1959). *एन्शेन्ट सिटीज एंड टाउन्स हिस्ट्री ऑन राजस्थान,* दिल्ली व वाराणसीः मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ट 244.

412. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राजस्थानी ग्रंथा.पृ.171.

413. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ.205.

414. सुरि,नयनचन्द्र(1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग 8, श्लोक 56-57,* सम्पादक, मुनि जिनविजय,जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.30.

415. लाल, किशोरीशरण (1950). *हिस्ट्री ऑफ़ दी खल्जिस,* इलाहाबाद: इंडियन प्रेस लिमिटेड, पृ. 28.

416. *मिफताहुल फ़ुतूह,* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृष्ट 183-184.

417. *मिफताहुल फ़ुतूह,* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.184.

418. *मिफताहुल फ़ुतूह* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृष्ट 183.

419. एलियट,एच.एम. एंड डाउसन जॉन (1871). *दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, भाग तृतीय,* लन्दन: त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृ.390.

420. शर्मा, दशरथ(1956). *राजस्थान थ्रू दी एजेज, प्रथम,* बीकानेर: राजस्थान स्टेट अर्चिवस, पृ.625.

421. सुरि, नयन चन्द्र, (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग9, श्लोक 10,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.32-33.

422. जावेद अनवर (1990). *ए हिस्ट्री ऑफ़ रणथम्भौर,* सवाई माधोपुर: रणथम्भौर पब्लिकेशन,पृ.28.

423. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.30-31

424. शर्मा, दशरथ(1956). *राजस्थान थ्रू दी एजेज* बीकानेर: राजस्थान स्टेट अर्चिवस, पृ.624.

425. जावेद अनवर (1990). *ए हिस्ट्री ऑफ़ रणथम्भौर,* सवाई माधोपुर:रणथम्भौर पब्लिकेशन, पृ.27-28

426. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.35.

427. रेऊ, पंडित विश्वेश्वर(1938). *मारवाड़ का इतिहास,* जोधपुर: आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट, पृ.44.

428. गहलोत,जगदीश सिंह (1991). *मारवाड़ राज्य का इतिहास,* जोधपुर: महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, दुर्ग, पृ. 73.

429. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राजस्थानी ग्रंथा., पृ.64.

430. शर्मा, गोपीनाथ (1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, पृ.243

431. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 224, *नैणसी री ख्यात,* भाग द्वितीय, पृ.55-57.

432. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राज.ग्रंथा. पृ.158-165.

433. सेहगल, के.के. *राजस्थान डिस्टिक गज़ेटियर,* जालौर, (जयपुर,1973) पृ. 311.

434. जिनविजय(सं), *जिन प्रभूसुरी विरचित विविधतीर्थकल्प* (शांति निकेतन 1934), पृ.10.

435. शर्मा, गोपीनाथ (1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा : शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, पृ.183.

436. रेऊ,पंडितविश्वेश्वर(1938). *मारवाड़ का इतिहास,भा.प्र.* जोधपुर:आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट पृ,15.

437. *एसामी, फुतूह- ए-सलातीन* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.231.

438. जैन, कैलाश चन्द (1959). *एन्शेन्ट सिटीज एंड टाउन्स हिस्ट्री ऑन राजस्थान,* दिल्ली व वाराणसीः मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ट 171.

439. रेऊ, पंडित विश्वेश्वर(1938). *मारवाड़ का इतिहास,* जोधपुर: आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट पृ,15.

440. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत (1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़,पृ.53.

441. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.69-70.

442. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 224. *मुह्नोत नैणसी की ख्यात,* हिंदी अनुवाद, राम नारायण दुगादा, बनारस. भा.2, पृ.284-85.

443. *तारीख ए मासूमी* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.44.

444. शर्मा, दशरथ, *ड इनवेजन ऑफ़ जैसलमेर बाई ड खलजीज,आई.एच.क्यू.,खण्ड तृतीय,* मार्च 1935, पृ.49-52,

445. शर्मा, दशरथ(1956). *राजस्थान थ्रू दी एजेजप्रथम* बीकानेर: राजस्थान स्टेट अर्चिवस, पृ.106-152.

446. सोमानी, राजवल्लभ, *ऐतिहासिक शोध संग्रह,* (जोधपुर,1970), पृ.151-152.

447. *तारीखे ए मासूमी* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ. 44.

448. सोमानी. राजवल्लभ, *ऐतिहासिक शोध संग्रह* (जोधपुर,1970), पृ.150.

449. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर:राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 224, *मुह्नोत नैणसी की ख्यात,* हिंदी अनुवाद, राम नारायण दुगादा, बनारस. भाग द्वितीय पृ.284

450. शर्मा, गोपी नाथ1990). *राजस्थान थ्रू द एजेज, द्वितीय,* बीकानेर: राजस्थान स्टेट अर्चिवस, पृ.680.

451. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 224, *मुह्नोत नैणसी की ख्यात,* हिंदी अनुवाद, राम नारायण दुगादा, बनारस. भाग द्वितीय पृ.288.

452. शर्मा, गोपी नाथ(1990). *राजस्थान थ्रू द एजेज, द्वितीय,* बीकानेर:राजस्थान स्टेट अर्चिवस, पृ.684.

453. भाटी, नारायण सिंह(1981). *जैसलमेर री ख्यात, द्वितीय* जोधपुर:राजस्थानी शोध संस्थान, पृ.291.

454. शर्मा, गोपीनाथ(1990). *राजस्थान थ्रू द एजेज, द्वितीय,* बीकानेर:राजस्थान स्टेट अर्चिवस, पृ.685.

455. नैणसी, मुंहता, (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया),

जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 224, *मुह्नोत नैणसी की ख्यात,* हिंदी अनुवाद, राम नारायण दुगादा, बनारस. भाग द्वितीय पृ.291-95.

456. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 224, *नैणसी री ख्यात,* अनु. खण्ड द्वितीय पृ.298.

457. भाटी, नारायणसिंह(1981). *जैसलमेर री ख्यात,* जोधपुर : राजस्थानी शोध संस्थान, पृ.55-58.

458. शर्मा, गोपीनाथ(1990). *राजस्थान थ्रू द एजेज,* बीकानेर:राजस्थान स्टेट अर्चिवस, पृ.685-86.

459. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 224,नैणसी री ख्यात, अनु. खण्ड द्वितीयपृ.290-305.

460. राजवल्लभ सोमानी, *ऐतिहासिक शोध संग्रह* (जोधपुर,1970), पृ.150

461. शर्मा, गोपी नाथ(1990). *राजस्थान थ्रू द एजेज,* बीकानेर:राजस्थान स्टेट अर्चिवस, पृ.685-86

462. शर्मा, दशरथ, *हम्मीरमहाकाव्य में ऐतिहासिक साम्रगी,* पृ.30.

463. सुरि, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग8, श्लोक 56-57,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 159, 55-56.

464. सुरि, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग9, श्लोक 99,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान,पृ. 102-105.

465. वी.एस. भार्गव, *राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण,* पृ.83.

466. शर्मा, दशरथ (1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्टिज,* जालन्धर:एस. चन्द एंड कम्पनी, पृ. 107-108.

467. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा:शिवलाल अग्रवालएंड कंपनी, पृ.176-177.

468. शर्मा, दशरथ, *हम्मीरमहाकाव्य में ऐतिहासिक साम्रगी,* पृ.32.

469. शर्मा, दशरथ, इतिहास के रूप में हम्मीरमहाकाव्य, पृ.6.

470. शर्मा,कालूराम(2001). *मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास(1200- 1761),* जयपुरःपंचशील प्रकाशन पृ.45.

471. अमीर खुसरो, *आशिका,* एलियट, एच.एम. एंड डाउसन जॉन ,(1871). दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, भाग तृतीय लन्दन : त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृ. 549.

472. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही, मिफताहुल फुतूह* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.71,

473. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही,* एलियट, एच.एम. एंड डाउसन जॉन, (1871). *दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, भाग तृतीय* , लन्दन : त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृ.148.

474. लाल, किशोरीशरण (1950). *हिस्ट्री ऑफ़ दी खल्जिस,* इलाहाबाद: इंडियन प्रेस लिमिटेड,पृ.82.

475. कवि चन्द्र शेखर (संवत 2006). *हम्मीर हठ,* सम्पादक जगन्नाथदास रत्नाकर, वाराणसीः नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. 53.

476. एसामी, *फ़ुतुह्स्सलातीन* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.235.

477. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.47.

478. एसामी, *फ़ुतुह्स्सलातीन* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.235

479. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.47.

480. हरविलास शारदा, *हम्मीर,* पृष्ट 16-18.

481. सुरि, नयन चन्द्र, (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग नवम,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.108-150.

482. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, पृष्ट 178.

483. शर्मा, दशरथ *हम्मीरमहाकाव्य में ऐतिहासिक साम्रगी,* पृ.37-38.

484. सुरि, नयन चन्द्र, (1993). हम्मीर महाकाव्य, सर्ग नवम, श्लोक 1-8, सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.151-188,

485. सुरि, नयन चन्द्र, (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग नवम,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.151-158

486. शर्मा,दशरथ(1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्टिज,* जालन्धर:एस.चन्द एंड कम्पनी पृ.110-111.

487. सुरि, नयन चन्द्र, (1993). *हम्मीर महाकाव्य, प्रस्ताविक परिचय,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.7.

488. सुरि, नयन चन्द्र, (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग दसम, श्लोक 64-135,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.35-61.

489. शर्मा,दशरथ शर्मा1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्टिज,* जालन्धर:एस.चन्द एंड कम्पनी,पृ.111-112

490 बसु, के.के. *तारीख ए मुबारकशाही,* बड़ोदा, 1932, पृ.76.

491. अमीर खुसरो, *देवलरानी खिज्र खां* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.205.

492. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.71.

493. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, पृ.179.

494. एसामी, *फ़ुतुह्स्सलातीन*(1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास,*खलजी कालीन भारत* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.235

495. अमृत कैलाश, *हम्मीरप्रबंध,* बड़ोदा, छंद 83-128

496. सुरि, नयन चन्द्र, (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग11, श्लोक 23,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.54-72.

497. जोधराज(1929).*हम्मीररासो,*सम्पा.श्यामसुन्दर, वाराणसीः नागर प्रचारिणी सभा, भूमिका पृ. 16.

498. कवि चन्द्र शेखर(1982). *हम्मीर हठ,* सम्पादक जगन्नाथदास रत्नाकर, वाराणसीःनागरी प्रचारिणी सभा, पृ.16-17.

499. याहिया अहमद सरहिंदी, *तारीखे ए मुबारकशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.266.

500. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,(1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.71.

501. सुरि, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग11, श्लोक 70-100,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.16.

502. शर्मा, गोपीनाथ (1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, पृ.179.

503. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,(1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.71-74.

504. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,(1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.74-75..

505. सुरि, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग12, श्लोक 1-89,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.106-117.

506. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत(1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.74-75..

507. सुरि, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग13, श्लोक 36-38,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.120.

508. श्रीवास्तव, अशोक क. (1981). *खलजी सुल्तान इन राजस्थान,* गोरखपुर: पूर्वाचल प्रकाशन, पृ.80.

509. बरनी, तारीखे फिरोजशाही (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* (1290-1320), हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.75.

510. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत (1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.75-76.

511. जावेद अनवर(1990). *ए हिस्ट्री ऑफ़ रणथम्भौर,* सवाई माधोपुर:रणथम्भौर पब्लिकेशन,पृ.55-56.

512 . अमीर खुसरो, *खज़ाइनुल फ़ुतूह* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास,*खलजी कालीन भारत (1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.192.

513. सुरि, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग13, श्लोक 166-196,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.132-133

514. सुरि, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग13, श्लोक 64-135,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.122-128.

515. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. ब्रिग्ज,जॉन(1908).*हिस्ट्री ऑफ़ दी राइज दी मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया,वॉ.I,* कलकत्ता: कैम्ब्र एंड क., केगनपॉल ट्रेंच, त्रुबनेर एंड क.पृ.195.

516. सुरि, नयन चन्द्र, (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग13, श्लोक 64-135,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.122-128

517. जावेद अनवर (1990).*ए हिस्ट्री ऑफ़ रणथम्भौर,* सवाई माधोपुर : रणथम्भौर पब्लिकेशन, पृ.57.

518. शर्मा, गोपीनाथ (1971).*राजस्थान का इतिहास,* आगरा : शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, पृ.180.

519. याहिया अहमद सरहिंदी, *तारीखे ए मुबारकशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत (1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.266.

520. सुरि, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग13, श्लोक 171-185,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.131-132.

521. हारविलास शारदा, *हम्मीर ऑफ़ रणथम्भौर,* पृ. 44

522. शर्मा, दशरथ (1956). *राजस्थान थ्रू दी एजेज वॉल्यूम 1,* बीकानेर:राजस्थान स्टेट अर्चिवस, पृ.632.

523. मुहम्मद हबीब,*खज़ाइनुल फुतूह* (1955).अनु.रिजवीं, अतहर अब्बास,*खलजी कालीन भारत (1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.40-41.

524. अमीर खुसरो, *खज़ाइनुल फुतूह*(1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास,*खलजी कालीन भारत (1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.192.

525. एसामी, *फुतुह्स्सलातीन* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत (1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.237.

526. जोधराज (1929). *हम्मीररासो,* सम्पादक श्यामसुन्दर, वाराणसीः नागर प्रचारिणी सभा, पृ. 24.

527. सुरि, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग13, श्लोक 135-168,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर : राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.128-135.

528. सुरि, नयन चन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग13, श्लोक 160-225,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.130-136.

529. शर्मा, दशरथ (1956). *राजस्थान थ्रू दी एजेज*, बीकानेर:राजस्थान स्टेट अर्चिवस, पृ.633.

530. हबीब, मोहम्मद एंड के.ए. निज़ामी (1970). *ए कोम्प्रेहेंसिवे हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम पंचम,* इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, दिल्लीः पीपल्स पब्लिकेशन हाउस, पृष्ट 347.

531. मुहम्मद हबीब, *खज़ाइनुल फुतूह* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत (1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.40-41

532. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत (1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.79.

533. एसामी, *फ़ुतुहस्सलातीन* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत (1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.237

534. सुरि, नयनचन्द्र (1993). *हम्मीर महाकाव्य, सर्ग13, श्लोक 196-225,* सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.132-136.

535. सुरि, नयनचन्द्र(1993). हम्मीर महाकाव्य, सर्ग13, श्लोक 196, सम्पादक, मुनि जिनविजय, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृ.132.

536. अमीर खुसरो, *खज़ाइनुल फ़ुतूह* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत (1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.41

537. अमीर खुसरो, *मिफताहुल फ़ुतूह* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत (1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.192.

538. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत (1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.79

539. याहिया, *तारीखे ए मुबारकशाही, मिफताहुल फ़ुतूह,* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत (1290-1320),* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.266.

540. श्यामलदास, (1999). *वीर-विनोद : मेवाड़ का प्राचीन इतिहास, भाग प्रथम,* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास,पृ. 271-273.

541. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग प्रथम*, जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, पृ. 172.

542. सिंह, अशोक (1992). *सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध,* जयपुर : स्कीम पब्लिकेशन, पृ.244.

543. बरनी, *जियाउद्दीन,तारीखे फिरोजशाही* (1999). अनु.रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* इलाहाबाद : विश्वविधालय प्रकाशन, पृ.69

544. हबीब, मोहम्मद एंड के.ए. निज़ामी (1970). *ए कोम्प्रेहेंसिवे हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,* दिल्ली सल्तनत, वॉल्यूम पंचम इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, दिल्लीः पीपल्स पब्लिकेशन हाउस, पृ. 312.

545. अमीर खुसरों, *खज़ाइन ए-फ़ुतूह* अनु.रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत*, इलाहाबाद : विश्वविधालय प्रकाशन, पृ.193.

546. बरनी, जियाउद्दीन, *तारीखे फिरोजशाही* (1999). अनु.रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* इलाहाबाद : विश्वविधालय प्रकाशन, पृ.69

547. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, *तारीख-ए-फरिश्ता,* अनु. ब्रिग्ज,जॉन, (1908). *हिस्ट्री ऑफ़ दी राइज ऑफ़ दी मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया, वॉ.प्रथम,* कलकत्ता एंड लन्दन : आर. कैम्ब्र एंड क., केगन पॉल, ट्रेंच, त्रुबनेर एंड क. पृष्ट 353-354

548. इसामी, *फ़ुतूहस्सालातिन* (1999). अनु.रिजवीं, अतहर अब्बास,*खलजी कालीन भारत,* इलाहाबाद : विश्वविधालय प्रकाशन, पृ. 238.

549. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, *तारीख-ए-फरिश्ता,* अनु. ब्रिग्ज,जॉन, (1908). *हिस्ट्री ऑफ़ दी राइज ऑफ़ दी मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया,वॉ.प्रथम,* कलकत्ता एंड लन्दन: आर. कैम्ब्र एंड क., केगन पॉल, ट्रेंच, त्रुबनेर एंड क. पृ. 361–363.

550. कुम्भलगढ़ अभिलेख, शर्मा, गोपीनाथ (1993). *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पुरात्वत भाग प्रथम,* जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ट 148.

551. ओझा,गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,*जोधपुर:राजस्थानी ग्रंथागार, पृ.198.

552. शर्मा, गोपीनाथ (1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, पृष्ट 216.

553. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, *तारीख-ए-फरिश्ता,* अनु. ब्रिग्ज,जॉन, (1908). *हिस्ट्री ऑफ़ दी राइज ऑफ़ दी मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया,वॉ.प्रथम,* कलकत्ता एंड लन्दन: आर. कैम्ब्र एंड क., केगन पॉल, ट्रेंच, त्रुबनेर एंड क. पृ. 363.

554. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राज. ग्रंथागार, पृ.197.

555. लाल, के.एस. (1950). *हिस्ट्री ऑफ़ खल्जिस,* इलाहाबाद: इंडियन प्रेस लिमिटेड, पृष्ट 130.

556. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,भा.प्र.* जोधपुर:राज.ग्रंथागार, पृ.193.

557. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, *तारीख-ए-फरिश्ता,* अनु. ब्रिग्ज,जॉन,(1908). *हिस्ट्री ऑफ़ दी राइज ऑफ़ दी मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया,वॉ.प्रथम,* कलकत्ता एंड लन्दन: आर. कैम्ब्र एंड क., केगन पॉल, ट्रेंच, त्रुबनेर एंड क. पृ. 362 -363.

558. शर्मा, दशरथ शर्मा(1959). *दि अर्ली चौहान डाइनेस्टिज,* जालन्धर:एस. चन्द एंड कम्पनी, पृष्ट 160.

559. पद्मनाभ (1997). *कान्हड़देव प्रबंध, प्रथम खंड, पद 32, 33-34,*(सम्पादक- व्यास, कान्तिलाल, बलदेवराम), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 7.

560. पद्मनाभ (1997). *कान्हड़देव प्रबंध, प्रथम खंड, पद 134-196,*(सम्पादक- व्यास, कान्तिलाल, बलदेवराम), जोधपुर : राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 28-34.

561. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 219.

562. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, *तारीख-ए-फरिश्ता.* (1908). अनु. जॉन ब्रिग्ज, *दी हिस्ट्री राइज ऑफ़ दी मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया,* कलकत्ता एंड लन्दन : आर. कैम्ब्रि एंड कम्पनी, पृ.36.

563. शर्मा, दशरथ(1956). *राजस्थान थ्रू दी एजेज, वॉ.प्र.,* बीकानेर:राजस्थान स्टेट अर्चिवस,पृ. 641-42.

564. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 222-224.

565. पद्मनाभ (1997). *कान्हड़देव प्रबंध, चतुर्थ खंड, पद 326-329,*(सम्पादक- व्यास, कान्तिलाल, बलदेवराम),जोधपुर : राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 228 -229.

566. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा:शिव. अग्रवाल एंड कम्पनी,पृ.187-187.

567. अमीर खुसरो, *खज़ाइन फ़ुतूह* (1955) अनुवाद – रिजवी, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत,* अलीगढ़: हिस्ट्री डिपार्टमेंट, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, पृष्ट 191.

568. इसामी, *फ़ुतूहस्सलातीन,* अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास (1955). *खलजी कालीन भारत,* अलीगढ़: हिस्ट्री डिपार्टमेंट, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, पृष्ट 205 .

569. शर्मा, गोपीनाथ (1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, 188.

570. पद्मनाभ (1997). *कान्हड़देव प्रबंध, तृतीय खंड, चोपाई 22-34,* (सम्पादक- व्यास, कान्तिलाल, बलदेवराम), जोधपुर : राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 104 -107.

571. पद्मनाभ (1997). *कान्हड़देव प्रबंध, तृतीय खंड, चोपाई 88-111,* (सम्पादक- व्यास, कान्तिलाल, बलदेवराम), जोधपुर : राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 120-125.

572. पद्मनाभ (1997). *कान्हड़देव प्रबंध, तृतीय खंड, चोपाई 176-191,* (सम्पादक- व्यास, कान्तिलाल, बलदेवराम), जोधपुर : राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 141-143.

573. पद्मनाभ (1997). *कान्हड़देव प्रबंध, चतुर्थ खंड, चोपाई 152 -162,* (सम्पादक- व्यास, कान्तिलाल, बलदेवराम), जोधपुर : राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 193-197.

574. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 224.

575. पद्मनाभ (1997). *कान्हड़देव प्रबंध, चतुर्थ खंड, चोपाई 202-207,* (सम्पादक- व्यास, कान्तिलाल, बलदेवराम), जोधपुर : राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 204-205.

576. पद्मनाभ (1997). *कान्हड़देव प्रबंध, चतुर्थ खंड, चोपाई 243,* (सम्पादक- व्यास, कान्तिलाल, बलदेवराम), जोधपुर : राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 212.

577. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 225.

578. शर्मा,दशरथ(1966). *राजस्थान थ्रू दि एजेज,* बीकानेर:राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज,पृ. 647.

579. शर्मा, गोपीनाथ(1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, पृष्ट 190.

580. *दिवलरानी खिज्र खां,* अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास (1955). *खलजी कालीन भारत,* अलीगढ़: हिस्ट्री डिपार्टमेंट, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, पृष्ट 175.

581. हबीब, मोहम्मद एंड के.ए. निज़ामी (1970). *ए कोम्प्रेहेंसिवे हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम पंचम,* इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, दिल्लीः पीपल्स पब्लिकेशन हाउस, पृष्ट 447.

582. *तारीखे-ए-मुबारकशाही,* अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास (1955).*खलजी कालीन भारत,* अलीगढ़:हिस्ट्री डिपार्टमेंट, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, पृष्ट 222-223.

583. जियाद्दीन बरनी, *तारीखे-ए-फिरोजशाही,* अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास(1955). *खलजी कालीन भारत,* अलीगढ़: हिस्ट्री डिपार्टमेंट, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, पृष्ट 88..

584. *तारीखे-ए-मुबारकशाही,* अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास(1955).*खलजी कालीन भारत,* अलीगढ़: हिस्ट्री डिपार्टमेंट, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, पृष्ट 199.

585. *तारीखे-ए-मुबारकशाही,* अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास (1955).*खलजी कालीन भारत,* अलीगढ़: हिस्ट्री डिपार्टमेंट, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, पृष्ट 223.

586. जियाद्दीन बरनी, *तारीखे-ए-फिरोजशाही,* अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास (1955). *खलजी कालीन भारत,* अलीगढ़: हिस्ट्री डिपार्टमेंट, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, पृष्ट 89-90.

587. जियाद्दीन बरनी, *तारीखे-ए-फिरोजशाही,* अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास (1955). *खलजी कालीन भारत,* अलीगढ़: हिस्ट्री डिपार्टमेंट, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, पृष्ट 89-90.

588. अमीर खुसरो, *तुगलकनामा,* अनु.रिजवीं, सैयद अतहर अब्बास (1956). *खलजी कालीन भारत,* भाग प्रथम, अलीगढ़: डिपार्टमेंट ऑफ़ हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविधालय, पृ.192.

589. इब्बबतूता, *यात्रा विवरण*, अनु..रिजवीं, सैयद अतहर अब्बास,(1956) *तुगलक कालीन भारत, भाग प्रथम*, अलीगढ़: डिपार्टमेंट ऑफ़ हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिमविश्वविधालय, पृ.178.

590. एसामी (1956), *फ़ुतुहस्सालातीन,* अनु.रिजवीं, सैयद अतहर अब्बास,(1956). *खलजी कालीन भारत,भाग प्रथम,* अलीगढ़: डिपार्टमेंट ऑफ़ हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिमविश्वविधालय, पृ.192

591. हबीब, मोहम्मद एंड के.ए. निज़ामी (1970). *ए कोम्प्रेहेंसिवे हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया: दिल्ली सल्तनत, वॉल्यूम पंचम,* इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, दिल्लीः पीपल्स पब्लिकेशन हाउस, पृ. 49-50-

592. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 205.

593. करेडा अभिलेख, शर्मा, गोपीनाथ (1993). *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पुरात्वत भाग प्रथम,* जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ट 126.

594. श्यामलदास (1999). *वीर-विनोद : मेवाड़ का प्राचीन इतिहास, भाग प्रथम,* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 294-95 .

595. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग प्रथम,* जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, पृ.233.

596. लाल, किसोरीसरन (1950). इलाहबाद: इंडियन प्रेस लिमिटेड, पृष्ट 131.

597. शर्मा, गोपीनाथ(1971).*जस्थान का इतिहास,* आगरा:शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृष्ट 218.

598. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 205.

599. सोमानी, राजवल्लभ (1999). *वीर भूमि चितौड़,* जयपुर: चम्पालाल एंड कम्पनी, पृष्ट 44.

600. श्यामलदास (1999). *वीर-विनोद : मेवाड़ का प्राचीन इतिहास, भाग प्रथम,* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 294.

601. टॉड, कर्नल जेम्स (1920).*एनाल्स एंड एंटीक्वितिज ऑफ़ राजस्थान, ऑर दी सेंट्रल एंड वेस्टर्न राजपूत स्टेट ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम प्रथम,* लन्दन व बॉम्बे:हुम्फ्रे मिल्फोर्ड ऑक्सफ़ोर्ड यूनि.प्रेस, पृष्ट 318.

602. श्यामलदास (1999). *वीर-विनोद : मेवाड़ का प्राचीन इतिहास, भाग प्रथम,* दिल्ली: मोतीलाल

बनारसीदास, पृ. 297.

603. टॉड,कर्नल जेम्स (1920). *एनाल्स एंड एंटीक्वुतिज ऑफ़ राजस्थान, ऑर दी सेंट्रल एंड वेस्टर्न राजपूत स्टेट ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम प्रथम,* लन्दन व बॉम्बे:हुम्फ्रे मिल्फोर्ड ऑक्सफ़ोर्ड यूनि. प्रेस,पृष्ट 319.

604. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग प्रथम,* जोधपुर:राजस्थानी ग्रंथागार, पृ.234..

605. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग प्रथम,* जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, पृ. 202.

606. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 205.

607. अमीर खुसरो, *तुगलकनामा,* अनु.रिजवीं, सैयद अतहर अब्बास, (1956). *खलजी कालीन भारत, भाग प्रथम,* अलीगढ़: डिपार्टमेंट ऑफ़ हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविधालय, पृ.187..

608. टॉड, कर्नल जेम्स, (1920). *एनाल्स एंड एंटीक्वुतिज ऑफ़ राजस्थान, ऑर दी सेंट्रल एंड वेस्टर्न राजपूत स्टेट ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम प्रथम,* लन्दन व बॉम्बे: हुम्फ्रे मिल्फोर्ड ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ट 318.

609. श्यामलदास (1985). *वीर-विनोद: मेवाड़ का प्राचीन इतिहास, भाग प्रथम,* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, पृ.298-99.

610. अमीर खुसरो, *तुगलकनामा,* अनु.रिजवीं, सैयद अतहर अब्बास (1956). *खलजी कालीन भारत, भाग प्रथम,* अलीगढ़: डिपार्टमेंट ऑफ़ हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविधालय, पृ.187

611. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग प्रथम,* जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, पृ.199.

612. श्यामलदास (1985). *वीर-विनोद : मेवाड़ का प्राचीन इतिहास, भाग प्रथम,* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, पृ.295.

613. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग प्रथम,* जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, पृ.197.

614. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 205.

615. करेडा अभिलेख, शर्मा, गोपीनाथ (1993). *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पुरात्वत भाग प्रथम,* जयपुर:राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ट 126.

616. सिंह, अशोक (1992). *सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध,* जयपुरः स्कीम पब्लिकेशन, पृष्ट 311-312.

617. नैणसी, मुंहता (1962). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग द्वितीय,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 66-68.

618. महेश्वरी, हरिबल्लभ (2006). *जैसलमेर का इतिहास,* ग्वालियर: हेरिटेज, पृष्ट 46.

619. व्यास, हरिदत्त गोविन्द, (1947).जैसलमेर का इतिहास, पृष्ट 76 -76

620. सोमानी, राजवल्लभ (1970). *ऐतिहासिक शोध संग्रह,* जोधपुर: हिंदी साहित्य मंदिर, पृ.151-152.

621. सोमानी, राजवल्लभ (1990). *हिस्ट्री ऑफ़ जैसलमेर,* जयपुर: पंचशील प्रकाशन, पृष्ट 40.

622. *एनुअल रिपोर्ट ऑन दि एडमिनिस्ट्रेशन बूंदी स्टेट 1937-38,* बूंदी: दि श्रीरंगनाथ प्रेस, पृष्ट 1,

623. गहलोत,जगदीशसिंह(1960). *बूंदी राज्य का इतिहास,* जोधपुर: हिंदी साहित्य मंदिर पृष्ट 44.

624. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 98-99.

625. टॉड, कर्नल जेम्स(1998). *बूंदी राज्य का इतिहास,* (अनु. व सम्पादक-बलदेवप्रसाद एवं ज्वालाप्रसाद मिश्र), जयपुरः यूनिक ट्रेडर्स, पृष्ट 25.

626. सिंह, रधुवीर व राणावत, मनोहर सिंह (1988). *जोधपुर राज्य की ख्यात,* नई दिल्ली एंव जयपुरः भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद एवं पंचशील प्रकाशन, पृष्ट 55.

627. मिश्रण, सूर्यमल्ल(2007). *वंश भास्कर, तृतीय खंड,* संपादक :चन्द्र प्रकाश देवल, नई दिल्लीः साहित्य अकादमी, पृष्ट 2272-2297

628. मिश्रण, सूर्यमल (2007), *वंश भास्कर, तृतीय खंड,* संपादक :चन्द्र प्रकाश देवल, नई दिल्लीः साहित्य अकादमी, पृष्ट 2297 -2317

629. *एपिग्राफिया इंडिका, (रीप्रिंट 1981).वॉल्यूम 11, 1911-12,* दिल्लीः डायरेक्टर ऑफ़ जनरल, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, पृष्ट 65.

630. *बंबावदा संपादकीय* टिप्पणी 247

631. गहलोत, जगदीशसिंह (1960). *बूंदी राज्य का इतिहास,* जोधपुर: हिंदी साहित्य मंदिर पृष्ट 47.

632. टॉड, कर्नल जेम्स (1965). *एनाल्स ऑफ़ एन्टीक्टीज ऑफ़ राजस्थान,* (हिंदी अनुवाद डॉ. ईश्वरी प्रसाद), इलाहवाद: आदर्श हिंदी पुस्तकालय, पृष्ट 732

633. मिश्रण, सूर्यमल (2007), *वंश भास्कर, तृतीय खंड,* संपादक: चन्द्र प्रकाश देवल, नई दिल्लीः साहित्य अकादमी, पृष्ट 2277

634. टॉड, कर्नल जेम्स (1965). *एनाल्स ऑफ़ एन्टीक्टीज ऑफ़ राजस्थान,* (हिंदी अनुवाद डॉ. ईश्वरी प्रसाद), इलाहवाद: आदर्श हिंदी पुस्तकालय, पृष्ट 749

635. टॉड, कर्नल जेम्स (1965). *एनाल्स ऑफ़ एन्टीक्टीज ऑफ़ राजस्थान,* (हिंदी अनुवाद डॉ. ईश्वरी प्रसाद), इलाहवाद: आदर्श हिंदी पुस्तकालय, पृष्ट 749

636. सिंह, अशोक कुमार (1992). *सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध,* जयपुर: पब्लिकेशन स्कीम, पृष्ट 313.

637. टॉड, कर्नल जेम्स, (1965). *एनाल्स ऑफ़ एन्टीक्टीज ऑफ़ राजस्थान* , (हिंदी अनुवाद डॉ. ईश्वरी प्रसाद), इलाहवाद: आदर्श हिंदी पुस्तकालय, पृष्ट 734

638. शर्मा, गोपीनाथ (1971). *राजस्थान का इतिहास,* आगरा:शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृष्ट 219.

639. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* जोधपुर:राज.ग्रंथा., पृ.244-45.

640. गहलोत,जगदीशसिंह(1937). *राजपूताने का इतिहास,* जोधपुर:हिंदी साहित्य मंदिर,पृष्ट 600-1.

641. गहलोत,जगदीशसिंह(1937). *राजपूताने का इतिहास,* जोधपुर: हिंदी साहित्य मंदिर, पृष्ट 602.

642 गहलोत, जगदीशसिंह (1937). *राजपूताने का इतिहास,* जोधपुर: हिंदी साहित्य मंदिर, पृष्ट 603.

643. सेहगल, के. के. *राजस्थान डिस्ट्रिक गज़ेटियर*- डूंगरपुर, जयपुर: डायरेक्टरेट, डिस्ट्रिक गज़ेटियर, गवर्मेन्ट ऑफ़ राजस्थान

644. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1936). *राजपूताने का इतिहास: डूंगरपुर राज्य का इतिहास, जिल्द 3, भाग प्रथम,* अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, पृष्ट 42-49.

645. चन्द्रबरदाई(1955). *पृथ्वीराज रासो,* उदयपुर:साहित्य-संस्थान,राजस्थान विश्वविधापीठ, 216-226

646. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1936). *राजपूताने का इतिहास: डूंगरपुर राज्य का इतिहास, जिल्द 3, भाग प्रथम,* अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, पृष्ट 42-43

647. गहलोत, जगदीशसिंह(1937). *राजपूताने का इतिहास,* जोधपुर: हिंदी साहित्य मंदिर, पृष्ट 492.

648. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1936). *राजपूताने का इतिहास: डूंगरपुर राज्य का इतिहास, जिल्द 3, भाग प्रथम,* अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, पृष्ट 42-43

649. भौंदियल, बी. एन. *राजस्थान डिस्ट्रिक गज़ेटियर- सिरोही,* जयपुर: डायरेक्टरेट, डिस्ट्रिक गज़ेटियर, गवर्मेन्ट ऑफ़ राजस्थान

650. निजामी, हसन (1869). *ताजुल-ए- नासिर, दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,* एलियट एंड डाउसन, लन्दन: त्रुबनेर एंड कम्पनी, पृष्ट 238.

651. ओझा,गौरीशंकर हिराचंद(1911). *सिरोही राज्य का इतिहास,* अजमेर:वैदिकयन्त्रालय,पृ.184-190.

652. लाला, सीताराम (1920). *हिस्ट्री ऑफ़ सिरोही राज्य,* इलाहाबाद: दी पोइनीर प्रेस, पृष्ट 164.

653. नैणसी, मुंहता (1960). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग प्रथम,* (सम्पादक- बद्रीप्रसाद साकरिया), जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 135.

654. लाला, सीताराम (1920). *हिस्ट्री ऑफ़ सिरोही राज्य,* इलाहाबाद: दी पोइनीर प्रेस, पृष्ट 165.

655. ओझा,गौरीशंकर हिराचंद(1911). *सिरोही राज्य काइतिहास,* अजमेर:वैदिक यन्त्रालय,पृ.184-190.

656. देसाई, लल्लूभाई बी. (1927). *चौहान कुल कल्पद्रुम, भाग प्रथम,* बडौदा: न्यायारातना देसाई लल्लूभाई भीमभाई ,पृष्ट 95-101

657. देसाई, लल्लूभाई बी. (1927), *चौहान कुल कल्पद्रुम, भाग प्रथम,* बडौदा: न्यायारातना देसाई लल्लूभाई भीमभाई ,पृष्ट 103

658. *तारीखे-ए-मुहम्मदी* (1956). अनु. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास, *तुगलक कालीन भारत, भाग प्रथम,* अलीगढ़: डिपार्टमेंट ऑफ़ हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिमविश्वविधालय, पृ.225.

659. *प्रोसेडिंग इतिहास परिषद, वॉल्यूम 112, पार्ट 28,* दिल्लीः 89th कांग्रेस, 2 सेशन,

660. *तारीखे-ए-मुहम्मदी* (1957). अनु. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास, *तुगलक कालीन भारत, भाग द्वितीय,* अलीगढ़: डिपार्टमेंट ऑफ़ हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिमविश्वविधालय, पृ.207.

661. सिंह,अशोककुमार(1992). *दिल्ली सल्तनत में हिन्दू प्रतिरोध,*जयपुर:पब्लिकेशन स्कीम,पृ.323-324.

662. नैणसी, मुहनौत (1962). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग द्वितीय,* संपादक- बद्रीप्रसाद साकरिया, जोधपुर: राजस्थान प्राच्य विधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 301,

663. नैणसी, मुहनौत (1962). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग द्वितीय,* संपादक- बद्रीप्रसाद साकरिया, जोधपुर: राजस्थान प्राच्य विधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 308-309.

664. सिंह, रघुवीर व राणावत मनोहर (1988). *जोधपुर राज्य की ख्यात,* नई दिल्ली व जयपुर : भारतीय अनुसंधान परिषद व पंचशील प्रकाशन, पृष्ट 76.

665. दयालदास, सिद्वायच (1948). *दयालदास री ख्यात, भाग प्रथम,* सम्पादक- दशरथ शर्मा, बीकानेर: अनूप संस्कृत पुस्तकालय, पृष्ट 106-17.

666. रेऊ, विश्वेश्वरनाथ(1938).*मारवाड़ का इतिहास, भाग प्रथम,* जोधपुर:आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट जोधपुर गवर्मेन्ट, पृ. 62.

667. नैणसी, मुहनौत (1962). *मुहनौत नैणसी री ख्यात, भाग द्वितीय,* संपादक- बद्रीप्रसाद साकरिया, जोधपुर: राजस्थान प्राच्य विधा प्रतिष्ठान, पृष्ट 310.

668. रेऊ, विश्वेश्वरनाथ(1938). *मारवाड़ का इतिहास, भाग प्रथम,* जोधपुर:आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट, जोधपुर गवर्मेन्ट, पृ. 63.

669. जस, बुर्गेस, (1892). *एपिग्रफिया इंडिका एंड आर्कियोलॉजिकल सर्व ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम द्वितीय,* कलकत्ता: दी सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ़ गवर्मेन्ट प्रिंटिंग, इंडिया, पृ. 417

670. ओझा,गौरीशंकर हिराचंद(1938).*जोधपुर राज्य का इतिहास,* अजमेर:वैदिक यंत्रालय,पृ.210-211.

671. सेहगल, के. के. *राजस्थान डिस्ट्रिक गज़ेटियर- गंगानगर,* जयपुर: डायरेक्टरेट, डिस्ट्रिक गज़ेटियर, गवर्मेन्ट ऑफ़ राजस्थान, पृ.34.

672. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1938).*बीकानेर राज्य का इतिहास,* अजमेर:वैदिक यंत्रालय,पृ.70-71

673. यज़दी, सराफुद्दीन, *जफरनामा* (1871). इलियट,एच,एम, एंड डाउसन, जॉन, *दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया अस टोल्ड ओवन हिस्टोरियन,पार्ट तृतीय,* लंदनःतुर्बनेर एंड कम्पनी, पृष्ट 480-490

674. यजदी, सराफुद्दीन, *जफरनामा* (1957). रिजवी, सैयद अतहर अब्बास, *तुगलक कालीन भारत, भाग द्वितीय,* अलीगढ़: डिपार्टमेंट ऑफ़ हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिमविश्वविधालय,

675. यज़दी, सराफुद्दीन, *जफरनामा* (1871). इलियट,एच.एम.एंड डाउसन, जॉन, *दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया अस टोल्ड ओवन हिस्टोरियन, पार्ट तृतीय,* लंदनःतुर्बनेर एंड कम्पनी, पृष्ट 490-91

676. *मलफुजात-ए-तोमरी,* (1871). इलियट,एच.एम.एंड डाउसन, जॉन, *दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया अस टोल्ड ओवन हिस्टोरियन, पार्ट तृतीय,* लंदनःतुर्बनेर एंड कम्पनी, पृष्ट 394-421.

677. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1954). *ओझा निबंध संग्रह, भाग द्वितीय,* उदयपुर: साहित्य संस्थान-राजस्थान विश्व विधापीठ, पृष्ट 247-249.

678. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1999). उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, पृ.243-244.

679. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1954). *ओझा निबंध संग्रह, भाग द्वितीय,* उदयपुर: साहित्य संस्थान-

राजस्थान विश्व विधापीठ, पृष्ट 257.

680. कुम्भलगढ़ शिलालेख, शर्मा, गोपीनाथ (1993). *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पुरात्वत भाग प्रथम,* जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ट 112.

681. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग द्वितीय,* जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, पृ.259-261

682. *तारीखे-ए-मुबारक शाही,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं,(1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526),भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.14.

683. *तबकाते अकबरी,* ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद, शब्द महिमा प्रकाशन (जयपुर), पृ.40-41.

684. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1938). राजपूताने का इतिहास, भाग चतुर्थ, जोधपुर राज्य का इतिहास भाग प्रथम, अजमेर: वैदिक यंत्रालय, पृ. 42,202.

685. श्यामलदास(1986).*वीर विनोद- मेवाड़ का इतिहास,* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, पृ.34.

686. मीरआत-ए-सिकन्दरी, पृ. 40.

687. रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास(1959). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग द्वितीय,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ. 262-264.

688. रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं(1959). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग द्वितीय,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.192-194.

689. तबकाते अकबरी, ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद, शब्द महिमा प्रकाशन (जयपुर), पृ. 40-41.

690. *तारीख-ए-मुबारकशाही,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ. 17.

691. मजुमदार, आर.सी. (1960).*दी दिल्ली सल्तनत, दी हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ़ इंडिया पीपल, वॉल्यूम चतुर्थ,* बॉम्बे: भारतीय विधा भवन, पृ.127.

692. श्यामलदास (1986).*वीर विनोद- मेवाड़ का इतिहास, भाग प्रथम,* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास,पृ.36-37.

693. लाल, के. एस.(1963).*ट्वाईलाईट ऑफ़ द सल्तनत,* बॉम्बे:एशिया पुलिशिंग हाउस, पृ. 76-77.

694. रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास(1959). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग द्वितीय,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ. 269-270.

695. मीरआते-ए-सिकन्दरी,पृष्ट 46-47.

696. सिद्दीकी, मोहम्मद हलीम (2001). *मध्यकालीन नागौर का इतिहास (1200-1526ई.),* जोधपुर: महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, पृ 30.

697. गर्ग, दामोदर (2010). *भारत का प्राचीन नगर बयाना,* जयपुर : अपोलो प्रकाशन, पृ. 62.

698. *तारीखे-ए-मुबारक शाही*, रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं, (1958).*उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.17

699. *तबकाते-ए-अकबरी,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.65.

700. *तबकाते-ए-अकबरी,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.67.

701. पोवलेत्त, पी.डब्लू. (1878). *गैजेटियर ऊवूर,* लन्दन: त्रुबनेर एंड कम्पनी,लुदगते हिल,पृ.3

702. *तारीखे-ए-मुबारकशाही,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526) भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.21.

703. *तबकाते अकबरी*, ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद, शब्द महिमा प्रकाशन (जयपुर), पृ.53.

704. *तारीखे-ए-मुबारकशाही,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.21.

705. द्विवेदी, हरिहरनिवास (1973). *ग्वालियर के तोमर*, ग्वालियर: विधा मंदिर प्रकाशन, पृ.59-60.

706. *तारीख-ए-मुबारक शाही*, अनुवाद रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन,पृष्ट 192.

707. पोवलेत्त, पी. डब्लू. (1878). *गैजेटियर ऊवूर,* लन्दन: त्रुबनेर एंड कम्पनी,लुदगते हिल, पृ.3-4.

708. *तारीखे-ए-मुबारक शाही,* अनुवाद रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.22.

709. पोवलेत्त, पी. डब्लू. (1878). *गैजेटियर ऊवूर*, लन्दन: त्रुबनेर एंड कम्पनी,लुदगते हिल, पृ.4.

710. *तबकाते अकबरी,* ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद, शब्द महिमा प्रकाशन (जयपुर), पृ.61.

711. पोवलेत्त, पी. डब्लू. (1878). *गैजेटियर ऊवूर,* लन्दन: त्रुबनेर एंड कम्पनी,लुदगते हिल, पृ.4.

712. पोवलेत्त,पी.डब्लू. (1878). *गैजेटियर ऊवूर,* लन्दन: त्रुबनेर एंड कम्पनी,लुदगते हिल, पृ.4.

713. हबीब, मोहम्मद एंड के.ए. निज़ामी (1970). *ए कोम्प्रेहेंसिवे हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम 5, इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस,* दिल्लीः पीपल्स पब्लिकेशन हाउस, पृ.551.

714. *तबकाते अकबरी,* ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद, शब्द महिमा प्रकाशन (जयपुर), पृ.61.

715. *तबकात-ए-अकबरी,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.72-73.

716. *तारीखे-ए-मुबारकशाही,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.21.

717. पोवलेत्त, पी.डब्लू. (1878). *गैजेटियर ऊवूर,* लन्दन: त्रुबनेर एंड कम्पनी,लुदगते हिल, पृ.4.

718. पोवलेत्त,पी.डब्लू.(1878). *गैजेटियर ऊवूर,* लन्दन: त्रुबनेर एंड कम्पनी,लुदगते हिल, पृ.4-5.

719. *तबकात-ए-अकबरी,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.75.

720. हबीब, मोहम्मद एंड के.ए. निज़ामी (1970). *ए कोम्प्रेहेंसिवे हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम पंचम,* इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, दिल्लीः पीपल्स पब्लिकेशन हाउस, पृ. 553.

721. तबकात-ए-अकबरी, रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.75.

722. पोवलेत्त, पी. डब्लू.(1878). *गैजेटियर ऊवूर,* लन्दन: त्रुबनेर एंड कम्पनी,लुदगते हिल, पृ.4.

723. *तबकाते अकबरी,* ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद, शब्द महिमा प्रकाशन (जयपुर), पृ.64-65.

724. तारीखे-ए-मुबारकशाही, रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.34.

725. हबीब, मोहम्मद एंड के.ए. निज़ामी (1970). *ए कोम्प्रेहेंसिवे हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम पंचम,* इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, दिल्लीः पीपल्स पब्लिकेशन हाउस, पृ..557.

726. *तबकाते अकबरी,* ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद, शब्द महिमा प्रकाशन (जयपुर), पृ.71-72.

727. *तारीखे-ए-मुबारकशाही,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.44.

728. *तारीखे-ए-मुबारकशाही,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.79-80.

729. गर्ग, दामोदर, (2010). भारत का प्राचीन नगर बयाना, जयपुर : अपोलो प्रकाशन, पृ.23.

730. हबीब, मोहम्मद एंड के.ए. निज़ामी (1970). *ए कोम्प्रेहेंसिवे हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम पंचम,* इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, दिल्लीः पीपल्स पब्लिकेशन हाउस, पृ. 551-552.

731. *तबकाते अकबरी,* ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद, शब्द महिमा प्रकाशन (जयपुर), पृ.61-62.

732. तारीखे-ए-मुबारकशाही, रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.30.

733. *तबकात-ए-अकबरी,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं,(1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.73.

734. *तारीखे-ए-मुबारकशाही,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.33.

735. हबीब, मोहम्मद एंड के. ए.निज़ामी (1970). *ए कोम्प्रेहेंसिवे हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम पंचम,* इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, दिल्लीः पीपल्स पब्लिकेशन हाउस, पृ. 552-553.

736. गर्ग,दामोदर (2010). *भारत का प्राचीन नगर बयाना,* जयपुर: अपोलो प्रकाशन, पृ. 23-24.

737. *तबकाते अकबरी,* ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद, शब्द महिमा प्रकाशन (जयपुर), पृ.64.

738. *तारीखे-ए-मुबारकशाही,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.51.

739. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. ब्रिग्ज, जॉन (1908). हिस्ट्री ऑफ़ दी राइज ऑफ़ दी मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया,वॉ.प्रथम, कलकत्ता एंड लन्दन:आर. कैम्ब्र एंड क., केगन पॉल, ट्रेंच, त्रुबनेर एंड क. पृ. 309.

740. एकलिंग महात्म्य,राज वर्णन, श्लोक 88-89.

741. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1927). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* अजमेर:वैदिक यन्त्रालय, पृ. 235.

742. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1927). *उदयपुर राज्य का इतिहास, खंड प्रथम,* अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, पृ. 245,259- 261,273,279315.

743. कुंभलगढ़ का शिलालेख, शर्मा, गोपीनाथ (1993). *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पुरात्वत भाग प्रथम,* जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ट 198.

744. एकलिंगजी का शिलालेख, शर्मा, गोपीनाथ (1993). राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पुरात्वत भाग प्रथम, जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ट 39-40.

745. बर्गेस,जस(1892). *एपिग्रापी इंडिका,2* कलकत्ता:दि सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ़ गव.प्रिंटिंग इंडिया, पृ.417.

746. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद(1927). *उदयपुर राज्य का इतिहास,* अजमेर: वैदिक यन्त्रालय,पृ. 279.

747. मिनहाज- ए-सिराज, *तबकात-ए-नासिरी* (1873). अनु. मेजर जी. एस. रैवर्टी, लन्दन : एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, न्यू सीरीज न. 272-278. मिन्हाज उस-सिराज, तबकात-ए-नसीरी,पृ.315.

748. बरनी, *तारीखे फिरोजशाही* (1955). अनु. रिजवीं, अतहर अब्बास, *खलजी कालीन भारत(1290-320)* हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, पृ.57-59.

749. सिरहिंदी, यहया बिन अहमद अब्दुल्लाह (1958). *तारीखे मुबारकशाही,* अनु. सैयिद अतहर अब्बासरिजवीं, *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन,पृ.127

750. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. ब्रिग्ज,जॉन (1908).*हिस्ट्री ऑफ़ दी राइज ऑफ़ दी मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया,वॉ.I,* कलकत्ता एंड लन्दन:आर.कैम्ब्र एंड क.केगन पॉल ट्रेंच, त्रुबनेर एंड क. पृ.173.

751. सिरहिंदी, यहया बिन अहमद अब्दुल्लाह (1958).*तारीखे मुबारकशाही,* अनु. सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं,*उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526),*दिल्लीःराजकमल प्रकाशन,पृ.176.

752. *'तारीखे खानेजहानी'* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं (1958).*उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.140.

753. यादगार, अहमद, 1958). *तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगाना* (1958). अनु. सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं, *उत्तर तैमूरकालीन भारत(1300-1526),भाग प्रथम,* दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.311.

754. रिजवी, सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं,(1958).उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भा.1, नई दिल्लीःराजकमल प्रकाशन,पृ. दिल्ली सल्तनत, पृ.583.

755. यादगार, अहमद (1958). *तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगाना* (1958). अनु. सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं, *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526),* दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.318-19.

756. जोशी, वी.के. *राराजस्थान के साथ लोदी सुल्तानों के सम्बंध, (1320-1500 ई.)* जर्नल, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस, प्रोसे. वॉल्यूम x, उदयपुर सेशन (1977).

757. यादगार, अहमद (1958). *तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगाना,*. अनु. सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं, *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ. 316-317,तबकात-ए-अकबरी, भाग 1,पृ.210.

758. *तबकात-ए-अकबरी,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं(1958).*उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन,पृ. 210.

759. शयामलदास (1986). वीर विनोद, भाग प्रथम, नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 305.

760. टॉड, कर्नल जेम्स (1920). *एनाल्स एंड एंटीक्वितिज ऑफ़ राजस्थान, ऑर दी सेंट्रल एंड वेस्टर्न राजपूत स्टेट ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम 1,* लन्दन, एडिनबुर्ग, ग्लास्गोव, न्यूयॉर्क, टोरंटो, मेलबोर्न, बॉम्बे : हुम्फ्रे मिल्फोर्ड ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 233-234.

761. श्यामलदास, (1986). वीर विनोद, भाग प्रथम,नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 305.

762. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1999). *उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग प्रथम,* जोधपुर:राजस्थानी ग्रंथागार, पृ. 327.

763. रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं (1958).*उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीःराजकमल प्रकाशन,पृ. 203.

764. तबकात- अकबरी भाग तृतीय, रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958).*उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन,पृ.352.

765. *तबकात-ए-अकबरी,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958).*उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन,पृ. 210.

766. रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1959).*उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.14.

767. रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं (1959).उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम, नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ 210.

768. लाल, के. एस. (1963). *ट्वाईलाईट ऑफ़ द सल्तनत,* बॉम्बे:एशिया पुलिशिंग हाउस पृ.154.

769. *तबकात-ए-अकबरी,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526),भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन,पृ.314.

770. *तबकात-ए-अकबरी,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास रिजवीं (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526),भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन,तबकाते अकबरी, पृ 212.

771. हबीब, मोहम्मद एंड के.ए. निज़ामी (1970).*ए कोम्प्रेहेंसिवे हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम पंचम,* इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, दिल्लीः पीपल्स पब्लिकेशन हाउस, पृ.588.

772. *तुजुक-ए-बाबरी,* इलियट, एच.एम. व जॉन डाउसन(1869).*दी हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम iv,* लन्दन : त्रुबनेर एंड कंपनी, पृ.200.

773. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. ब्रिग्ज,जॉन (1908). *हिस्ट्री ऑफ़ दी राइज ऑफ़ दी मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया,वॉ.I,*कलकत्ता कैम्ब्र एंड क.केगन पॉलट्रेंच,त्रुबनेर एंड क.पृ.338.

774. तिवारी, गोरे लाल(1990).*बुन्देलखंड का संक्षित इतिहास,* काशी,पृ. 86.

775. द्विवेदी, हरिहरनिवास(1973).*ग्वालियर के तोमर*, मुरार, ग्वालियर: विधा मंदिर प्रकाशन, पृ. 156.

776. तबकात-ए-अकबरी, रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम*, नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ .324.

777. द फस्ट अफगान अम्पायर इन इण्डिया,पृ.132.

778. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. ब्रिग्ज,जॉन, (1908). *हिस्ट्री ऑफ़ दी राइज ऑफ़ दी मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया,वॉ.I,* कलकत्ता एंड लन्दन:आर.कैम्ब्रएंड क. केगनक.पृ.338.

779. अब्दुला, *तारीखे दाऊदी,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.60.

780. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. ब्रिग्ज,जॉन, (1908). *हिस्ट्री ऑफ़ दी राइज ऑफ़ दी मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया,वॉ.I*, कलकत्ता:केगन पॉल, ट्रेंच, त्रुबनेर एंड क.पृ.338.

781. जोशी, वी. के. *राजस्थान का लोदी सुल्तानों के साथ सम्बंध, (1320-1500 ई.)*, जर्नल,राज.हिस्ट्री कांग्रेस,प्रो.दसवां, उदयपुर सेशन 1977.

782. सिद्दीकी, मोहम्मद हलीम (2001). *मध्यकालीन नागौर का इतिहास (1200-1526ई.),* जोधपुर: महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, पृ.52.

783. शर्मा, दशरथ (1972).*दी खानजदाज ऑव नागौर देयर ओरिजिनल हिस्ट्री,* राजस्थान हिस्ट्री ऑफ़ कांग्रेस, प्रोसीडिंग्स भाग चतुर्थ, अजमेर सेशन 1972,पृ.35-36.

784. अब्दुल अलीम '*हिस्ट्री आव दी लोदी सुल्तान आव देह्ही एंड आगरा* पृ.100-101, ए, बी. पांडे, *दी फर्स्ट अफगान अफगान एम्पाइर इन इंडिया,* पृ.147-149.

785. पांडे, ए.बी. *दी फर्स्ट अफगान अफगान एम्पाइर इन इंडिया,* पृ.147-149.

786. लाल, के. एस. (1963). ट्वाईलाईट ऑफ़ द सल्तनत, बॉम्बे: एशिया पुलिशिंग हाउस, पृ.173-74.

787. मजुमदार, आर.सी. (1960). *दी दिल्ली सल्तनत, दी हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ़ इंडिया पीपल, वॉल्यूम षष्ठम,* बॉम्बे: भारतीय विधा भवन, पृष्ट 716.

788. रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.224-226

789. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम, तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. ब्रिग्ज,जॉन, (1908). हिस्ट्री ऑफ़ दी राइज ऑफ़ दी मुहम्मडन पॉवर इन इंडिया,वॉ.I, कलकत्ता एंड लन्दन : आर. कैम्ब्र एंड क., केगन पॉल, ट्रेंच, त्रुबनेर एं क. पृ.473--475.

790. रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीःराजकमल प्रकाशन, पृ.226.

791. हबीब, मोहम्मद एंड के.ए. निज़ामी (1970). *ए कोम्प्रेहेंसिवे हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम पंचम,* इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, दिल्लीः पीपल्स पब्लिकेशन हाउस, पृ 593.

792. *तबकात-ए-अकबरी*, रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.365.

793. शर्मा, दशरथ, *दी खानजदाज ऑव नागौर देयर ओरिजिनल हिस्ट्री, राजस्थान हिस्ट्री ऑफ़ कांग्रेस, प्रोसीडिंग्स भाग चतुर्थ,* अजमेर सेशन 1972, पृ.36.

794. हैग, वोल्सेली (1987). *केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, भाग तृतीय, तुर्क एंड अफगान,* दिल्लीः एस. चन्द एंड कम्पनी पृ. 243-245,

795. शर्मा, गोपीनाथ(1962). *मेवाड़ एंड मुग़ल इम्पररर्स,* आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, पृ.11.

796. शारदा, हरविलास (1932). *हिन्दुपति महाराणा सांगा,* अजमेर: वैदिक यंत्रालय, पृष्ट 82-83

797. ओझा,गौरीशंकर हिराचंद (1927). राजपूताने का इतिहास: *उदयपुर राज्य का इतिहास, (हिस्ट्री ऑफ़ राजपूताना) भाग प्रथम*, अजमेर: वैदिक यन्त्रालय, पृ.351

798. श्यामलदास(1986). *वीर विनोद-मेवाड़ का इतिहास, भा.प्र.* दिल्ली:मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 354

799. *तारीखे-ए- शाही,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.

800. शारदा, हरविलास, (1932).हिन्दुपति महाराणा सांगा, अजमेर: वैदिक यंत्रालय, पृ.49.

801. पांडे, ए.बी. *दी फर्स्ट अफगान अफगान एम्पाइर इन इंडिया,* पृ.147-149.

802. शारदा, हरविलास (1932). *हिन्दुपति महाराणा सांगा*, अजमेर वैदिक यंत्रालय, पृ. 68-69.

803. ओझा, गौरीशंकर हिराचंद (1927). *राजपूताने का इतिहास: उदयपुर राज्य का इतिहास, (हिस्ट्री ऑफ़ राजपूताना) भाग प्रथम,* अजमेर: वैदिक यन्त्रालय,पृ.353-366.

804. बेले, *हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात*, पृ. 263.

805. श्यामलदास(1986). *वीर विनोद-मेवाड़ का इतिहास,*.दिल्ली:मोतीलाल बनारसीदास, पृ.324-325.

806. शारदा,हरविलास(1932). *हिन्दुपति महाराणा सांगा,* अजमेर वैदिक यंत्रालय,पृ.351.

807. टॉड, कर्नल जेम्स (1920). *एनाल्स एंड एंटीक्वितिज ऑफ़ राजस्थान, ऑर दी सेंट्रल एंड वेस्टर्न राजपूत स्टेट ऑफ़ इंडिया, वॉल्यूम 1,* लन्दन, एडिनबुर्ग, ग्लास्गोव, न्यूयॉर्क, टोरंटो, मेलबोर्न, बॉम्बे : हुम्फ्रे मिल्फोर्ड ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.241.

808. *वाकेआते-मुश्ताकी,* रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास,(1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृ.164-167.

809. रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास,(1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृष्ट, 299-301

810. तारीखे शाही, रिजवीं, सैयिद अतहर अब्बास (1958). *उत्तर तैमूरकालीन भारत (1300-1526), भाग प्रथम,* नई दिल्लीःराजकमल प्रकाशन, पृ.344-347.